

नंदी

(सम्पादित/विवेचित)

NANDI

(EDITED/EXPLAINED)



वाचना प्रमुख
गणाधिपति तुलसी

सम्पादक/विवेचक
आचार्य महाप्रज्ञ

निगंथं पावयणं

नंदी

[मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, तुलनात्मक टिप्पण तथा विविध परिशिष्टों से युक्त]

वाचना प्रमुख
गणाधिपति तुलसी

सम्पादक : विवेचक
आचार्य महाप्रज्ञ

प्रकाशक
जैन विश्व भारती संस्थान
[मान्य विश्वविद्यालय]
लाडनूं, राजस्थान-३४१३०६

प्रकाशक :

जैन विश्व भारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ, राजस्थान

सर्वाधिकार सुरक्षित

जैन विश्व भारती, लाडनूँ

प्रथम संस्करण : अक्टूबर, १९९७

मूल्य : ३०० रुपये

मुद्रक :

मित्र परिषद् कलकत्ता के आर्थिक सौजन्य से स्थापित

जैन विश्व भारती प्रेस, लाडनूँ (राजस्थान)

NANDI

(Prakrit Text, Sanskrit Rendering, Hindi Translation, Comparative Notes and
Various Appendixes)

Vachana-Pramukha
GANADHIPATI TULSI

Editor and Annotator
ACHARYA MAHAPRAJNA

Publishers
JAIN VISHVA-BHARATI INSTITUTE
LADNUN (Raj.)

Publishers :
Jain Vishva Bharati Institute
(Deemed University)
Ladnun

© Jain Vishva Bharati, Ladnun

First Edition : September, 1997

Price : Rs- 300/-

Printers :
Jain Vishva Bharati Press
Ladnun (Raj)

समर्पण

॥ १ ॥

पुट्टो वि पण्णा-पुरित्तो सुदक्खो,
आणा-पहाणो जणि जस्स निच्चं ।
सच्चप्पओगे पवरासयस्स,
भिक्षुस्स तस्स प्पणिहाणपुब्बं ॥

जिसका प्रज्ञा-पुरुष पुष्ट पट्ट,
होकर भी आगम-प्रधान था ।
सत्य-योग में प्रवर चित्त था,
उसी भिक्षु को विमल भाव से ॥

॥ २ ॥

विलोडियं आगमदुद्धमेव,
लद्धं सुलद्धं णवणीय मच्छं ।
सज्झायसज्झाणरयस्स निच्चं,
जयस्स तस्स प्पणिहाणपुब्बं ॥

जिससे आगम-दोहन कर कर,
पाया प्रवर प्रचुर नवनीत ।
श्रुत सद्ध्यान लीन चिर चित्तन,
जयाचार्य को विमल भाव से ॥

॥ ३ ॥

पवाहिया जेण सुयस्स घारा,
गणे समत्थे मम माणसे वि ।
जो हेजभूओ स्स पवायणस्स,
कालुस्स तस्स प्पणिहाणपुब्बं ॥

जिसने श्रुत की धार बहाई,
सकल संघ में मेरे मन में ।
हेतभूत श्रुत-सम्पादन में,
कालुगणी को विमल भाव से ॥

विनयावनत
गणाधिपति तुलसी

अन्तस्तोष

अन्तस्तोष अनिर्वचनीय होता है उस माली का जो अपने हाथों से उप्त और सिञ्चित द्रुम-निकुञ्ज को पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ देखता है, उस कलाकार का जो अपनी तूलिका से निराकार को साकार हुआ देखता है और उस कल्पनाकार का जो अपनी कल्पना को अपने प्रयत्नों से प्राणवान् बना देखता है। चिरकाल से मेरा मन इस कल्पना से भरा था कि जैन-आगमों का शोध-पूर्ण सम्पादन हो और मेरे जीवन के बहुश्रमी क्षण उसमें लगे। संकल्प फलवान बना और वैसा ही हुआ। मुझे केन्द्र मान मेरा धर्म-परिवार उस कार्य में संलग्न हो गया। अतः मेरे इस अन्तस्तोष में मैं उन सबको समभागी बनाना चाहता हूँ, जो इस प्रवृत्ति में संविभागी रहे हैं। संक्षेप में वह संविभाग इस प्रकार है—

सम्पादक : विवेचक सहयोगी	आचार्य महाप्रज्ञ
अनुवाद, संस्कृत छाया, टिप्पण, परिशिष्ट आदि व सम्पादन	साध्वी श्रुतयशा साध्वी मुदितयशा साध्वी शुभ्रयशा साध्वी विश्रुतविभा
वीक्षा और समीक्षा	मुनि हीरालाल

संविभाग हमारा धर्म है। जिन-जिनने इस गुह्यतर प्रवृत्ति में उन्मुक्त भाव से अपना संविभाग समर्पित किया है, उन सबको मैं आशीर्वाद देता हूँ और कामना करता हूँ कि उनका भविष्य इस महान् कार्य का भविष्य बने।

गणाधिपति तुलसी

प्रकाशकीय

हैं—

सानुवाद आगम-ग्रन्थों की प्रकाशन योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रकाशित आगम विद्वानों द्वारा समादृत हो चुके

- | | |
|---------------------------------|----------------|
| १. दसवेआलियं | ४. ठाणं |
| २. सूयगडो (भाग १, भाग २) | ५. समवाओ |
| ३. उत्तरज्झयणाणि (भाग १, भाग २) | ६. अणुओगदाराइं |

इसी शृंखला में 'नन्दी' का प्रस्तुत प्रकाशन पाठकों के हाथों में पहुंच रहा है।

मूल संशोधित पाठ, उसकी संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद, प्रत्येक प्रकरण के विषय-प्रवेश की दृष्टि से आमुख और विस्तृत टिप्पणियों से अलंकृत 'नन्दी' का यह प्रकाशन आगम प्रकाशन के क्षेत्र में अभिनव स्थान प्राप्त करेगा, ऐसा लिखने में संकोच नहीं होता।

प्रस्तुत आगम में वैसे तो कोई विभाग नहीं है लेकिन अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इसे पांच प्रकरणों में विभक्त किया गया है। इस तरह प्रकरणों में विभाजित इस आगम के अन्त में आठ परिशिष्ट हैं जो ज्ञान वृद्धि की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी हैं। वे परिशिष्ट इस प्रकार हैं—

- | | |
|------------------------------|------------------------|
| १. अणुणानंदी (सानुवाद) | ५. पदानुक्रम |
| २. जोगनंदी (सानुवाद) | ६. टिप्पण : अनुक्रम |
| ३. कथा | ७. ज्ञानमीमांसा |
| ४. विशेषनामानुक्रम-देशी शब्द | ८. प्रयुक्त ग्रंथ-सूची |

प्रस्तुत प्रकाशन के पूर्व सानुवाद आगम-प्रकाशन की योजना के अन्तर्गत आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा रचित 'आचारांग-भाष्यम्' सन् १९९४ में प्रकाशित हो चुका है। उक्त प्रकाशन के बाद भगवई विआहपण्णत्ती, (खण्ड १), (शतक १, २) मूलपाठ संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, भाष्य तथा परिशिष्ट, शब्दानुक्रम आदि जिनदासमहत्तर कृत चूर्ण एवं अभयदेवसूरिकृत वृत्ति सहित प्रकाशित हुआ। पूर्व प्रकाशनों की तरह ही वाचना-प्रमुख गणाधिपति तुलसी के तत्त्वावधान में प्रस्तुत एवं आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा सम्पादित ये प्रकाशन विद्वानों द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसित हुए हैं।

प्रस्तुत आगम के प्रस्तुतीकरण में इन साध्वियों का प्रचुर योगदान रहा है—साध्वी श्रुतयशाजी, साध्वी मुदितयशाजी, साध्वी शुभ्रयशाजी और साध्वी विश्रुतविभाजी।

मुनिश्री हीरालालजी के अत्यधिक श्रमसाध्य बहुमूल्य योगदान की किन शब्दों में प्रशंसा की जाए। वे धूरी की तरह कार्यशील रहे हैं।

प्रस्तुत प्रकाशन को पाठकों के सम्मुख रखते हुए जो प्रसन्नता हो रही है, वह शब्दों में व्यक्त नहीं की जा सकती। विश्वास है, यह प्रकाशन अनुसंधित्सु विद्वानों को अत्यन्त लाभप्रद प्रतीत होगा।

जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं
दिनांक १६ अक्टूबर, १९९७

श्रीचन्द रामपुरिया
कुलाधिपति

सम्पादकीय

नन्दी का मूल पाठ नवमुत्ताणि में प्रकाशित है। प्रस्तुत संस्करण अर्थबोध कराने वाला है। इसमें संस्कृत छाया के अतिरिक्त अनुवाद, टिप्पण, परिशिष्ट आदि की समायोजना है। आचाराङ्ग आदि में जैसे अध्ययन आदि का विभाग है वैसे प्रस्तुत आगम में कोई विभाग नहीं है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हमने इसे पांच प्रकरणों में विभक्त किया है। प्रत्येक प्रकरण के पूर्व एक आमुख है। इसके आठ परिशिष्ट हैं।

नन्दी का विषय है—ज्ञानमीमांसा। ग्रंथ के प्रारंभ में तीर्थकरावलि, गणधरावलि और वाचनाचार्य पट्टावलि आदि का उल्लेख है। इसमें पञ्चविध ज्ञान का विस्तृत विवेचन है।

सहयोगानुभूति—

जैन परम्परा में वाचना का इतिहास बहुत प्राचीन है। आज से १५०० वर्ष पूर्व तक आगम की पांच वाचनाएं हो चुकी हैं। देवधिगणि के बाद कोई सुनियोजित वाचना नहीं हुई। उनके वाचनाकाल में जो आगम लिखे गए थे, वे इस लम्बी अवधि में बहुत ही अव्यवस्थित हो गए। उनकी पुनर्व्यवस्था के लिए फिर एक सुनियोजित वाचना की अपेक्षा थी। गणाधिपति पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी ने सुनियोजित सामूहिक वाचना के लिए प्रयत्न भी किया था, परन्तु वह पूर्ण नहीं हो सका। अन्ततः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि हमारी वाचना अनुसन्धानपूर्ण, तटस्थ दृष्टि से समन्वित तथा सपरिश्रम होगी तो वह अपने आप सामूहिक हो जाएगी। इसी निर्णय के आधार पर हमारा यह आगम वाचना का कार्य प्रारम्भ हुआ।

हमारी इस व्यवस्था के प्रमुख गणाधिपति श्री तुलसी हैं। वाचना का अर्थ अध्यापन है। हमारी इस प्रवृत्ति में अध्यापन कर्म के अनेक अंग हैं—पाठ का अनुसन्धान, भाषान्तर, समीक्षात्मक अध्ययन आदि आदि। इन सभी प्रवृत्तियों में गुरुदेव का हमें सक्रिय योग, मार्गदर्शन और प्रोत्साहन प्राप्त है। यही हमारा इस गुरुतर कार्य में प्रवृत्त होने का शक्तिबीज है। विक्रम संवत् २०५२ में हमने नन्दी सूत्र का वाचन शुरू करवाया। अनुयोगद्वार के संपादन का कार्य संपन्न होने के बाद हमने नन्दी के संपादन का कार्य शुरू किया। इस कार्य में साध्वी श्रुतयशा, साध्वी मुदितयशा, साध्वी शुभ्रयशा और साध्वी विश्रुतविभा ने काफी श्रम किया। मुनि हीरालालजी की संलग्नता भी बहुत उपयोगी रही। समणी मंगलप्रज्ञा आदि समणियों की भी समय-समय पर संभागीता रही।

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ में अनेक साधुओं और साध्वियों का योग रहा है। मैं उन सब साधु-साध्वियों के प्रति सद्भावना व्यक्त करता हूँ जिनका इस कार्य में योग है। आशा करता हूँ कि वे इस महान कार्य में और अधिक दक्षता प्राप्त करेंगे।

२८ अगस्त १९९६

जैन विश्व भारती,

लाडनू

आचार्य महाप्रज्ञ

भूमिका

ज्ञान मीमांसा जैन दर्शन का एक स्वतंत्र विषय है। बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक आदि दर्शनों में प्रमाण मीमांसा का महत्वपूर्ण स्थान है। उनमें ज्ञान मीमांसा का स्वतंत्र स्थान नहीं है। जैन दर्शन में दार्शनिक युग से पूर्व ज्ञान मीमांसा का प्राधान्य रहा। प्रमाण मीमांसा का विकास दार्शनिक युग में हुआ।

नाम बोध

प्रस्तुत आगम का नाम नन्दी है। नन्दी शब्द का अर्थ है आनन्द। चूर्णिकार ने इसके तीन अर्थ किए हैं—प्रमोद, हर्ष और कन्दर्प।^१ ज्ञान सबसे बड़ा आनन्द है। प्रस्तुत आगम में ज्ञान का वर्णन है, इसलिए इसका नाम नन्दी रखा गया है। विशेषावश्यक भाष्य में वाच्य समुदय को द्रव्य मंगल या द्रव्य नन्दी तथा ज्ञान पंचक को भाव मंगल या भाव नन्दी कहा गया है।^२ ज्ञान सबसे बड़ा मंगल है, इस अवधारणा के आधार पर किया गया नामकरण ज्ञान के मूल्यांकन का वास्तविक दृष्टिकोण है।

आकार

प्रस्तुत आगम का आकार बहुत छोटा है। यह एक अध्ययन है।^३ अध्ययन के समूह को स्कन्ध, वर्ग आदि कहा जाता है। आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, ज्ञातधर्मकथा, प्रश्नव्याकरण और विपाक इनके श्रुतस्कन्ध हैं। अन्तकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा और ज्ञातधर्मकथा के दूसरे श्रुतस्कन्ध में वर्ग हैं। दश अध्ययनों के समूह को दशा कहा जाता है, जैसे—उपासकदशा, अन्तकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा। अध्ययन के स्थान में शतक, स्थान, समवाय, प्राभूत, पद, प्रतिपत्ति, वक्षस्कार आदि शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

अध्ययन के उपभाग को उद्देशक कहा जाता है। नन्दी में उद्देशक आदि नहीं है अतः वह एक अध्ययन है।

चूलिका सूत्र

प्रस्तुत सूत्र की आगम सूची में नन्दी और अनुयोगद्वार उत्कालिक आगमों की सूची में है।^४ वहां मूल, और चूलिका सूत्र जैसा कोई वर्गीकरण नहीं है। आचार्य जिनप्रभ ने ई० १३०६ में 'विधिमार्गप्रपा' ग्रंथ लिखा, उसमें आगम स्वाध्याय की उपधान विधि का वर्णन है, वहां नन्दी और अनुयोगद्वार का प्रकीर्णक के रूप में उल्लेख है, उन्होंने 'संपयं पङ्णगा' इस वाक्य के साथ सतरह प्रकीर्णक ग्रंथों का उल्लेख किया है—

१. नन्दी	१०. भक्तपरिण्णा
२. अनुयोगदाराइं	११. चउसरण
३. देविदत्थव	१२. वीरत्थय
४. तंदुलवेयालिय	१३. गणिविज्जा
५. मरणसमाहि	१४. दीवसागरपण्णत्ति
६. महापच्चक्खाण	१५. संगहणी
७. आउरपच्चक्खाण	१६. गच्छायार
८. संधारय	१७. इसिभासियाइं
९. चन्दाविज्जभय	

श्रुतपुरुष की परिकल्पना का प्राचीन उल्लेख नन्दीसूत्र की चूर्णि में मिलता है। चूर्णिकार ने इस प्रसंग में एक प्राचीन गाथा उद्धृत की है—

पायदुगं जंधोरू गात दुगद्धं तु दो य बाहूयो ।
गीवा सिरं च पुरिसो बारसअंगो सुतविसिट्ठो ॥^५

१. नन्दी चूर्णि, पृ. १ : णंदणं णंदी, णंदंति वा अणयेति णंदी, णंदंति वा णंदी, पमोदो हरिसो कंदप्पो इन्धर्थः ।	३. नन्दी चूर्णि, पृ. १
२. विशेषावश्यकभाष्य, गा. ७८ :	४. नवमुत्तारिण, नन्दी, सू. ७७
मंगलमधवा णन्दी चतुव्विधा मंगलं व सा णेया ।	५. विधिमार्गप्रपा, पृ. ५७, ५८
दब्बे तूरसमुदयो भावम्मि य पंच णाणाइं ॥	६. नन्दी चूर्णि, पृ. ५७

इस श्रुतपुरुष की स्थापना में चूलिका सूत्रों का कोई उल्लेख नहीं है। अंग, उपांग, मूल और छेद इस वर्गीकरण के बहुत समय पश्चात् नंदी और अनुयोगद्वार का चूलिका सूत्र के रूप में उल्लेख किया गया।

चूलिका का एक अर्थ परिशिष्ट है। नंदी और अनुयोगद्वार ये आगम अंग और उपांग श्रुत के लिए परिशिष्ट का काम करते हैं। प्रत्येक आगम के साथ ज्ञान मीमांसा और व्याख्या का संबंध जुड़ा हुआ है। नंदी ज्ञान मीमांसा का सूत्र है और अनुयोगद्वार व्याख्या सूत्र। इसीलिए दोनों आगमों को प्रकरण ग्रंथों, उत्कालिक सूत्रों तथा प्रकीर्ण ग्रंथों की सूची से पृथक् कर चूलिका सूत्र के रूप में स्थापित किया गया। यह स्थापना कब और किसने की यह अभी अन्वेषणीय है। इतना निर्विवाद है कि आगम का प्राचीन विभाग अंग प्रविष्ट और अंगवाह्य ही है। प्रस्तुत आगम इसका स्वयंभू साक्ष्य है, मूल, छेद और चूलिका सूत्र इन सबका इन्हीं दो विभागों में समावेश होता है। मूल, छेद और चूलिका सूत्र यह अर्वाचीन वर्गीकरण है। चूलिका सूत्र यह वर्गीकरण सबसे अर्वाचीन है।

रचनाकाल और रचनाकार

प्रस्तुत सूत्र की रचना के साथ वाचनाओं का इतिहास जुड़ा हुआ है। नंदी की चूर्ण में स्कन्दिलाचार्य की वाचना या माथुरी वाचना का उल्लेख मिलता है। स्कन्दिलाचार्य का अनुयोग अर्ध भारत में प्रचलित है।^१ चूर्णकार ने प्रश्न उपस्थित किया—स्कन्दिलाचार्य का अनुयोग क्यों प्रचलित है? और उसका समाधान वाचना के उल्लेख पूर्वक किया कि बारह वर्षीय भयंकर दुर्भिक्ष हुआ। उस अवधि में आहार की सम्यग् उपलब्धि न होने के कारण मुनिजन श्रुत का ग्रहण, गुणन और अनुप्रेक्षा नहीं कर सके। फलस्वरूप श्रुत नष्ट हो गया। बारह वर्षों के बाद सुभिक्ष होने पर मथुरा में साधु संघ का बड़ा सम्मेलन हुआ, उसमें स्कन्दिलाचार्य प्रमुख थे। सम्मेलन में भाग लेने वाले साधुओं में जो श्रुतधर साधु बचे थे और उनकी स्मृति में जितना श्रुत बचा था उसे संकलित कर कालिक श्रुत (अंगप्रविष्ट श्रुत) का संकलन किया गया, उस संकलन को वाचना कहा जाता है। यह वाचना मथुरा में हुई इसीलिए इसका नाम माथुरी वाचना है और यह वाचना स्कन्दिलाचार्य के नेतृत्व में हुई इसलिए उस वाचना में संकलित श्रुत को स्कन्दिलाचार्य का अनुयोग कहा गया।

दूसरा अभिमत यह है कि उस समय श्रुत नष्ट नहीं हुआ था किन्तु अनुयोगधर दिवंगत हो गए, केवल स्कन्दिलाचार्य बचे थे। उन्होंने मथुरा में साधु परिषद में अनुयोग का प्रवर्तन किया इसलिए उनका अनुयोग माथुरी वाचना कहलाता है और वह अनुयोग स्कन्दिलाचार्य का अनुयोग कहा जाता है।^२

प्रस्तुत स्थविरावलि की चूर्ण में केवल स्कन्दिलाचार्य की वाचना का उल्लेख है। पांचवीं वाचना देवद्विगणी ने की थी। वे प्रस्तुत ग्रंथ के कर्ता हैं। स्थविरावलि में उनका और उनके द्वारा कृत वाचना का उल्लेख न होना स्वाभाविक है।

देवद्विगणी ने वीर निर्वाण की दसवीं शताब्दी (९८० या ९९३) में आगम की वाचना की थी। उस वाचना में जो आगम व्यवस्थित किए तथा जिन आगमों के बारे में जानकारी उपलब्ध थी, उनकी तालिका नंदी सूत्र में दी गई। इससे सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि प्रस्तुत आगम की रचना वीर निर्वाण की दसवीं शताब्दी के दसवें दशक के आसपास हुई थी।

चूर्णकार के अनुसार प्रस्तुत आगम के कर्ता दूष्यगणि के शिष्य देववाचक हैं।^३ उनका अस्तित्वकाल वीर निर्वाण की दसवीं शताब्दी है। आगम का रचनाकाल विक्रम की छठी शताब्दी का दूसरा दशक है। आवश्यक निर्युक्ति में नंदीसूत्र का उल्लेख मिलता है।^४

१. नवसुत्ताणि, नंदी, गा. ३३ :

जेसि इमो अणुओगो, पयरइ अज्जावि अड्ढभरहम्मि ।

बहुनयर-निग्गयजसे, ते वंदे खंदिलायरिए ॥

२. (क) नंदी चूर्ण, पृ. ९ : कह पुण तेसि अणुओगो ?
उच्यते—बारससंवच्छरिए महंते दुडिभक्खकाले सत्तट्ठा
अण्णण्णतो फिडिताणं गहण-गुणणाऽणुप्पेहाभावातो सुते
विप्पणट्ठे पुणो सुभक्खकाले जाते मधुराए महंते साहु-
समुदए खंदिलायरियप्पमुहसंघेण 'जो जं संभरति' त्ति एवं
संघडितं कालियसुतं । जम्हा य एतं मधुराए कतं तम्हा
माधुरा वायणा भण्णति । सा य खंदिलायरियसम्मय त्ति
कातुं तस्संतियो अणुओगो भण्णति ।

अण्णे भणति जहा—सुतं ण णट्ठं, तम्मि दुडिभक्ख-
काले जे अण्णे पहाणा अणुओगधरा ते विणट्ठा, एगे
खंदिलायरिए संघरे, तेण मधुराए अणुओगो पुणो साधुणं
पवत्तितो त्ति माधुरा वायणा भण्णति तस्संतियो अणि-
योगो भण्णति ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. १७, १८

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ५१

३. नंदी चूर्ण, पृ. १३ : एवं कतमंगलोवयारो थेरावलिकमे
य दंमिए अरिहेसु य दसितेसु दुस्सगणिसीसो देववायगो
साहुजणहितट्ठाए इणमाह ।

४. आवश्यकनिर्युक्ति, गा. १, २

देवद्विगणी की आगम वाचना से पूर्व प्रस्तुत सूत्र की रचना हो चुकी थी। भगवती आदि में उपलब्ध नंदी के उल्लेखों के आधार पर यह कल्पना की जा सकती है, फिर भी एक प्रश्न असमाहित रह जाता है कि भगवती आदि में नंदी सूत्र के उल्लेख स्वयं देवद्विगणी ने किए अथवा वे उनके उत्तरकाल में किए गए। आगमों के संक्षेपीकरण का उपक्रम कई बार हुआ था। पं० बेचरदास दोशी के अनुसार पाठ संक्षेपीकरण देवद्विगणी क्षमाश्रमण ने किया था। उन्होंने लिखा है—देवद्विगणी क्षमाश्रमण ने आगमों को ग्रंथ बद्ध करते समय कुछ महत्वपूर्ण बातें ध्यान में रखीं। जहां-जहां शास्त्रों में समान पाठ आए, वहां-वहां उनकी पुनरावृत्ति न करते हुए उनके लिए एक विशेष ग्रंथ अथवा स्थान का निर्देश कर दिया, जैसे—‘जहा उववाइए’, ‘जहा पणवणाए’ इत्यादि। एक ग्रंथ-में वही बात बार-बार आने पर उसे पुनः न लिखते हुए ‘जाव’ शब्द का प्रयोग करते हुए उसका अन्तिम शब्द लिख दिया, जैसे—‘णामकुमारा जाव विहरन्ति’, ‘तेण कालेण जाव परिसा णिग्गया’ इत्यादि। इस परम्परा का प्रारंभ भले ही देवद्विगणी ने किया हो, किन्तु इसका विकास उनके उत्तरवर्ती काल में भी होता रहा है। वर्तमान में उपलब्ध आदर्शों में संक्षेपीकृत पाठ की एकरूपता नहीं है।

एक आदर्श में कोई सूत्र संक्षिप्त है तो दूसरे में वह समग्र रूप से लिखित है। टीकाकारों ने स्थान स्थान पर इसका उल्लेख भी किया है। उदाहरण के लिए औपपातिक सूत्र में ‘अयपायाणि वा जाव अण्यराइं वा’ तथा ‘अयबंधणाणि वा जाव अण्यराइं वा’—ये दो पाठांश मिलते हैं। वृत्तिकार के सामने जो मुख्य आदर्श थे, उनमें ये दोनों संक्षिप्त रूप में थे किन्तु दूसरे आदर्शों में ये समग्र रूप में भी प्राप्त थे। वृत्तिकार ने इसका उल्लेख किया है। लिपिकर्त्ता अनेक स्थलों में अपनी सुविधानुसार पूर्वागत पाठ को दूसरी बार नहीं लिखते और उत्तरवर्ती आदर्शों में उनका अनुसरण होता चला जाता, उदाहरण स्वरूप—रायपसेणइय सूत्र में ‘सव्विड्डीए अकालपरिहीणं’ ऐसा पाठ मिलता है। इस पाठ में अपूर्णता सूचक संकेत भी नहीं है। सव्विड्डीए और अकालपरिहीणं के मध्यवर्ती पाठ की पूर्ति करने पर समग्र पाठ इस प्रकार बनता है—‘सव्विड्डीए सव्वजुतीए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वादारणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सव्वतुडियंसइसण्णिणाएणं महया इड्डीए महया जुईए महया बलेणं महया समुदएणं महया वरतुडियजमगसमग-पडुप्पवाइयरवेणं संख-पणव-पडह-भेरि-भल्लरि-खरमुहि-हुडुवक-मुरय-मुइंग-दुंदुहि-निग्घोस-णाइयरवेणं णियमपरिवालसद्धि संपरिवुडा साइं-साइं जाणाविमाणाइं दुरूढा समाणा अकालपरिहीणं।’ संक्षेपीकरण की प्रक्रिया में अन्य आगमों में नंदीसूत्र के उल्लेख उत्तरवर्ती आचार्यों द्वारा किए गए, इस संभावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु देवद्विगणी ने आगमों को लिपिबद्ध करते समय संक्षिप्त पाठ की प्रणाली न अपनाई हो यह नहीं कहा जा सकता, इसलिए प्रस्तुत आगम की रचना वाचना के पूर्व हुई, इस स्वीकृति में कोई बाधा प्रतीत नहीं होती।

प्रस्तुत आगम के रचनाकार देववाचक हैं। ये देवद्विगणी के नाम से अधिक विश्रुत हैं। चूर्णिकार ने नंदीसूत्र के कर्ता के रूप में दूष्यगणी के शिष्य देववाचक का उल्लेख किया है।¹

जगदीशचंद्र जैन ने नंदी के कर्त्ता दूष्यगणी के शिष्य देववाचक को माना है किन्तु उनके अनुसार देववाचक और देवद्विगणी क्षमाश्रमण एक व्यक्ति नहीं है।²

इस पक्ष में एक तर्क उपस्थित होता है कि देववाचक और देवद्विगणी क्षमाश्रमण एक होते तो चूर्णिकार ने देवद्विगणी क्षमाश्रमण का उल्लेख क्यों नहीं किया किन्तु यह तर्क बहुत बलवान् नहीं है। वाचक, क्षमाश्रमण, वादी और दिवाकर ये सब एकार्थक माने गए हैं। भद्रेश्वरसूरि की ‘कहावलि’ में इसका उल्लेख मिलता है—

वाईय खमासमणे दिवायरे वायगे ति एगट्टा ।

पुव्वगयं जस्सेसं जिणागमे तम्मिमे नामा ॥

जिनके पास पूर्वी के अंशों का पारम्परिक ज्ञान होता था उनके लिए क्षमाश्रमण, वाचक आदि का प्रयोग होता था। कर्मग्रंथकार देवेन्द्रसूरि ने स्वोपज्ञवृत्ति में नंदीसूत्र के पाठ उद्धृत किए हैं। वहां सूत्रकार ने देवद्विगणी व देववाचक का प्रयोग किया है।

प्रस्तुत आगम की स्थविरावली में क्षमाश्रमण का कहीं भी प्रयोग नहीं है। केवल वाचक और वाचक वंश का प्रयोग मिलता है। इसलिए देववाचक और देवद्विगणी क्षमाश्रमण दोनों एक व्यक्ति हैं या नहीं, यह संशय प्रस्तुत किया जा सकता है। इस पर विमर्श की संभावना भी है।

देववाचक सौराष्ट्र प्रदेश में जन्मे। उनका गोत्र काश्यप था। मुनि दीक्षा स्वीकार कर आचाराङ्ग आदि अङ्गों तथा दो पूर्वी

१. (क) नन्दी चूर्णि, पृ. १३

(ख) हारिभद्राया वृत्ति, पृ. १७

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. २

२. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. १८८

का ज्ञान किया। अध्ययन में दक्ष थे इसलिए इन्हें देववाचक पद से विभूषित किया गया। ये आध्यात्मिक ऋद्धि से संपन्न थे इसलिए इनका दूसरा नाम देवद्विगणी क्षमाश्रमण हो गया।¹

नंदीसूत्र और उसके व्याख्या ग्रंथों में रचनाकाल का उल्लेख नहीं है। देवद्विगणी का अस्तित्वकाल वीर निर्वाण की दशवीं शताब्दी और ईसा की पांचवीं शताब्दी है।

जैन आगमों की पांच वाचनाएं हुईं।² देवद्विगणी पांचवें वाचनाकार हैं। आचार्य मेरुतुङ्ग ने देवद्विगणी की अध्यक्षता में होने वाली वाचना का समय वीर निर्वाण ९८० वर्ष बतलाया है—

वलहिपुरम्मि नयरे देवडिढपमुहेण समणसंघेण ।

पुत्थइ आगमु लिहिओ नव सय आसीआओ वीराओ ॥

देवद्विगणी और प्रस्तुत आगम की रचना का काल वाचना से जुड़ा हुआ है।

वाचना का अर्थ है अध्यापन। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार जैसे-जैसे आगमों की विस्मृति होती गई वैसे-वैसे वाचना का प्रयोजन स्थापित हुआ। तत्कालीन युगप्रधान आचार्यों, वाचनाओं और स्थविरों ने आगमों का अध्यापन और संकलन किया।

प्रथम वाचना—

वीर निर्वाण की दूसरी शताब्दी में पाटलीपुत्र में भीषण दुष्काल पड़ा। उस समय श्रमण संघ के छिन्न-भिन्न हो जाने से आगम ज्ञान की शृंखला टूट-सी गई। दुर्भिक्ष मिटने पर पाटलीपुत्र में श्रमण संघ एकत्रित हुआ। वहां ग्यारह अंग एकत्रित कर लिए गए, पर बारहवें अंग के ज्ञाता केवल भद्रबाहु स्वामी ही थे। वे उस समय नेपाल में 'महाप्राण ध्यान' की साधना कर रहे थे। श्रमण संघ के विशेष अनुरोध करने पर उन्होंने स्थूलभद्र को बारहवें अंग की वाचना देना स्वीकार किया। दस पूर्वी की वाचना के बाद उन्होंने किसी कारण से वाचना देना बन्द कर दिया। संघ के विशेष आग्रह से शेष चार पूर्वी की वाचना तो दी पर उनका अर्थ नहीं समझाया।

दूसरी वाचना—

आगम संकलन का दूसरा प्रयास 'चक्रवर्ती सम्राट् खारवेल' ने किया। उनके सुप्रसिद्ध हाथी गुम्फा अभिलेख से यह जानकारी मिली है कि ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के मध्य में उड़ीसा के कुमारीपर्वत पर उन्होंने जैन श्रमणों को बुलाया और मौर्यकाल में उच्छिन्न हुए अंगों को उपस्थित किया।

तीसरी वाचना—

आगम संकलन का तीसरा प्रयास वीरनिर्वाण ८२७ और ८४० के बीच में हुआ। बारह वर्ष का भयंकर दुष्काल मिटने के बाद मथुरा में आर्य स्कंदिल की अध्यक्षता में श्रमण संघ एकत्रित हुआ। वहां कालिक सूत्र और पूर्वगत के कुछ अंशों का संकलन हुआ। यह वाचना मथुरा में हुई अतः इसका नाम माथुरी वाचना हुआ।³

चौथी वाचना—

जब माथुरी वाचना हो रही थी उसी समय वल्लभी में आचार्य नागार्जुन की अध्यक्षता में संघ एकत्रित हुआ और श्रुत की व्यवच्छिन्ति न हो इसलिए जो कुछ स्मृति में था उसका संकलन किया गया। यह वाचना 'वालभी वाचना' या 'नागार्जनीया वाचना' कहलाई।⁴

पांचवीं वाचना—

देवद्विगणी ने संयोजना करके आगमों को पुस्तकारूढ किया। वल्लभी नगर में होने से यह वाचना 'वल्लभी वाचना' कहलाई। वाचनाओं के इस उल्लेख से स्पष्ट है कि वीरनिर्वाण ९८० या ९९३ में देवद्विगणी ने वाचना दी थी। नंदी की रचना वाचना से पहले या उस समय के आसपास होनी चाहिए।

१. नवसुत्ताणि, पञ्जोसवणाकप्पो, सू. २२२ गा. ८ :

सुत्तत्थरयणभरिए, खमदममद्दवगुणेहि संपन्ने।

देवडिढखमासमणे कासवगोत्ते पणिवयामि ॥

२. दशवैकालिक भूमिका में चार वाचनाओं का निर्देश है।

३. नंदी चूर्ण, पृ. ९ : खंदिलायरियप्पमुहसंघेण 'जो जं

संभरति' ति एवं संघडितं कालियसुत्तं, जम्हा य एत्तं मधुराए कत्तं तम्हा मधुरा वायणा भण्णति। सा य खंदिलायरियसम्मय ति कात्तुं तस्संतियो अणुओगो भण्णइ।

४. नवसुत्ताणि, नंदी, गा. ३६

विषय वस्तु—

प्रस्तुत आगम की विषय-वस्तु ज्ञान मीमांसा है। प्रारम्भ में स्थविरावली की ४४ गाथाएँ हैं। उनमें महावीर स्तुति, संघ स्तुति, तीर्थंकरावली, गणधरावली, शासनस्तुति और स्थविरावली है। अन्तिम तीन गाथाओं में आगमकार ने अपने आचार्य दूष्यगणी तथा अन्य आगमधरों को नमस्कार किया है। भगवती और स्थानांग में ज्ञान के विषय में संक्षिप्त विवरण मिलता है, किंतु उसकी व्यवस्थित रूपरेखा प्रस्तुत आगम में ही उपलब्ध है। ज्ञान विषयक चर्चा के विषय में प्रस्तुत आगम को देखने के संकेत अनेक आगमों में मिलते हैं—

१. समवाओ (८८/२) जहा नंदीए
२. भगवती (८/१०२) जहा नंदीए
भगवती (८/१८६, १८७) जहा नंदीए
भगवती (२५/९७) जहा नंदीए
३. रायपसेणइयं (७४१-७४३) जहा नंदीए

ये संकेत आगम वाचना काल में स्वयं देववाचक ने किए अथवा उत्तरकाल में किसी संक्षिप्त लिपि करने वालों ने, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह तथ्य निश्चित है कि ज्ञान मीमांसा की दृष्टि से प्रस्तुत आगम सर्वाधिक व्यवस्थित है। इसकी विषय वस्तु अन्य आगमों से उद्धृत या संकलित है—इस स्थापना की पुष्टि के लिए कोई प्रामाणिक स्रोत उपलब्ध नहीं। नंदीसूत्र में ज्ञान के विषय में कुछ नए सिद्धांत हैं, वे उपलब्ध किसी भी आगम में नहीं हैं। भगवती में ज्ञान की मीमांसा के लिए 'रायपसेणइयं' सूत्र देखने का संकेत मिलता है और रायपसेणइयं में नंदीसूत्र को देखने का संकेत है। प्रज्ञापना में अवधिज्ञान के दो प्रकार उपलब्ध हैं—देशावधि और सर्वावधि।^१ प्रस्तुत आगम में देशावधि और सर्वावधि का उल्लेख नहीं है केवल परमावधि का उल्लेख मिलता है।^१ गोम्मटसार में अवधिज्ञान के तीन प्रकार मिलते हैं—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि।^१

प्रस्तुत आगम में अवधिज्ञान के छः प्रकार किए गए हैं,^१ उनमें पहला प्रकार आनुगामिक है, उसके दो प्रकार हैं—अन्तगत और मध्यगत।^१ यह विषय अन्य किसी भी उपलब्ध आगम में नहीं है। प्रतीत होता है देवद्विगणी ने यह पूरा प्रकरण ज्ञानप्रवाद पूर्व से लिया था। इस दृष्टि से नंदी सूत्र का मुख्य आधार ज्ञान प्रवाद पूर्व हो सकता है। स्थानांग, समवायांग, भगवती आदि इसके आधार नहीं। ज्ञान प्रवाद चौदह पूर्वों में पांचवां पूर्व है, उसकी विशाल ग्रंथ राशि में केवल ज्ञान का ही निरूपण है।^१

प्रस्तुत आगम के इस प्रकरण से एक चिर जिज्ञासित प्रश्न का समाधान होता है। कहा जाता है कि तंत्र शास्त्र और हठयोग में चक्रों का निरूपण है, किंतु जैन साहित्य में उनका कोई निरूपण नहीं है। ध्यान की पद्धति छूट जाने के कारण इस प्रश्न का उत्तर खोजा भी नहीं गया। हरिभद्रसूरी, शुभचन्द्र, हेमचन्द्र आदि आचार्यों ने अपने योग ग्रन्थों में हठयोग का समावेश किया, किंतु जैन साहित्य में उपलब्ध चक्रों की ओर ध्यान नहीं दिया। देशावधि ज्ञान चक्र सिद्धांत का मौलिक आधार है। नंदी सूत्र में देशावधि और सर्वावधि का उल्लेख नहीं है, किंतु उनकी व्याख्या बहुत विस्तार से मिलती है। अन्तगत देशावधि का सूचक है और मध्यगत सर्वावधि का सूचक है। अन्तगत अवधिज्ञान के तीन प्रकार हैं—

१. पुरतः अन्तगत
२. पृष्ठतः अन्तगत
३. पार्श्वतः अन्तगत।

चूर्णिकार और हरिभद्रसूरी ने अन्तगत शब्द के अनेक अर्थ किए हैं—

१. यह औदारिक शरीर के पर्यन्त भाग में स्थित होता है, इसलिए अन्तगत है।

१. उवंगसुत्ताणि, पणवणा, ३३।३३

२. नवसुत्ताणि, नंदी, सू. १८ गा. २

३. गोम्मटसार जीवकाण्ड, ३७३ :

भवपच्चइगो ओही, देसोही होदि परमसव्वोही।

गुणपच्चइगो णियमा, देसोही वि य गुणे होदि ॥

४. नवसुत्ताणि, नंदी, सू. ९

५. वही, सू. १०

६. नंदी चूर्ण, पृ. ७५ : पंचमं णाणप्पवादि तिमि णाणाइ-
पंचकस्स सप्रभेदं प्ररुवणा जम्हा कता तम्हा णाणप्पवादि,
तम्मि पदपरिमाणं एका पदकोडी एक पदूणा।

२. यह स्पर्धक^१ अवधि होने के कारण आत्मप्रदेशों के अन्तर्भाग में रहता है, इसलिए अन्तर्गत है ।

३. यह औदारिक शरीर के किसी देश से साक्षात् जानता है, इसलिए अन्तर्गत है ।^२

औदारिक शरीर के मध्यवर्ती स्पर्धकों की विशुद्धि, सब आत्मप्रदेशों की विशुद्धि अथवा सब दिशाओं का ज्ञान होने के कारण यह अवधिज्ञान मध्यगत कहलाता है ।^३

जब आगे के चक्र या चैतन्य केन्द्र जागृत होते हैं तब पुरतः अन्तर्गत अवधिज्ञान होता है, उससे अग्रवर्ती ज्ञेय जाना जाता है ।

जब पीछे के चैतन्य केन्द्र जागृत होते हैं तब पृष्ठतः अन्तर्गत अवधिज्ञान होता है, उससे पृष्ठवर्ती ज्ञेय जाना जाता है ।

जब पार्श्व के चैतन्य केन्द्र जागृत होते हैं, तब पार्श्ववर्ती अन्तर्गत अवधिज्ञान उत्पन्न होता है, उससे पार्श्ववर्ती ज्ञेय जाना जाता है ।

जब मध्यवर्ती चैतन्य केन्द्र जागृत होते हैं तब मध्यगत अवधिज्ञान उत्पन्न होता है, उससे सर्वतः समन्तात् (चारों ओर से) ज्ञेय जाना जाता है ।^४

इसका निष्कर्ष है कि हमारे समूचे शरीर में चैतन्य केन्द्र अवस्थित हैं । साधना के तारतम्य के अनुसार जो चैतन्य केन्द्र जागृत होता है उसी में से अतीन्द्रिय ज्ञान की रश्मियां बाहर निकलने लग जाती हैं । पूरे शरीर को जागृत कर लिया जाता है तो पूरे शरीर में से अतीन्द्रिय ज्ञान की रश्मियां फूट पड़ती हैं । किसी एक या अनेक चैतन्य केन्द्रों की सक्रियता से होने वाले अवधिज्ञान का नाम देशावधि है । पूरे शरीर की सक्रियता से होने वाला अवधिज्ञान सर्वावधि है ।

प्राणी के पास चार करण होते हैं—मन करण, वचन करण, काय करण और कर्म करण ।^५ अशुभ करण से असुख का और शुभ करण से सुख का संवेदन होता है ।^६

श्वेताम्बर साहित्य में करण के विषय में अर्थ की परम्परा विस्मृत हो गई । दिग्म्बर साहित्य में उसकी अर्थ परम्परा आज भी उपलब्ध है । उससे चक्र या चैतन्य केन्द्र के बारे में बहुत महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है ।

करण का एक अर्थ होता है निर्मल चित्त धारा । उसका दूसरा अर्थ है चित्त की निर्मलता से होने वाली शरीर, मन आदि की निर्मलता । शरीर के जिस देश में निर्मलता हो जाती है अर्थात् शरीर का जो भाग करण रूप में परिणत हो जाता है उस भाग से अतीन्द्रिय ज्ञान होने लग जाता है ।^७ इस दृष्टि से हमारे शरीर में अवधिज्ञान के अनेक क्षेत्र हैं, अनेक संस्थान हैं ।^८ ये संस्थान ही चक्र

१. आत्मगुण का आच्छादन करने वाली कर्म की शक्ति का नाम स्पर्धक है । वह दो प्रकार का होता है—देशघाति और सर्वघाति । आत्मा के किसी एक देश का आच्छादन करने वाली कर्म शक्ति को देशघाति स्पर्धक और सर्वदेश का आच्छादन करने वाली कर्म शक्ति को सर्वघाति स्पर्धक कहा जाता है ।

२. (क) नंदी चूर्ण, पृ. १६ : एवं ओरालियसरीरंते ठितं गतं ति एगट्ठं, तं च आतप्पदेसफडुगावहि, एगदिसोवलंभाओ य अंतगतमोधिण्णाणं भण्णति, अहवा सव्वातप्पदेसविमुद्धेसु वि ओरालियसरीरेगतेण एगदिसिपासणगतं ति अंतगतं भण्णति । अहवा फुडतरमत्थो भण्णति—एगदिसावधिउवलद्धखेत्तातो सो अवधिपुरिसो अंतगतो ति जम्हा तम्हा अंतगतं भण्णति ।

(ख) हारिभद्रोया वृत्ति, पृ. २३

३. नंदी चूर्ण, पृ. १६ : मज्झगतं पुण ओरालियसरीरमज्झे फडुगविसुद्धीतो सव्वातप्पदेसविमुद्धीतो वा सव्वदिसोवलंभत्तणतो मज्झगतो ति भण्णति ।

४. नवसुत्ताणि, नंदी, सू. १६ : अंतगयस्स मज्झगयस्स य को पइविसेसो ?

पुरओ अंतगएणं ओहिणाणेणं पुरओ चेव संखेज्जाणि वा

असंखेज्जाणि वा जोयणाणि जाणइ पासइ ।

मग्गओ अंतगएणं ओहिणाणेणं मग्गओ चेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाणि जाणइ पासइ ।

पासओ अंतगएणं ओहिणाणेणं पासओ चेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाणि जाणइ पासइ ।

मज्झगएणं ओहिणाणेणं सव्वओ समंता संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाणि जाणइ पासइ ।

५. भगवई, ६।५

६. भगवई, ६।१४

७. षट्खंडागम, पुस्तक १३, पृ. २९६ : ओहिणाणमणेयक्खेत्तं चेव, सव्वजीवपदेसेसु अक्कमेण खओवसमं गदेसु सरीरेगदेसेणं वज्झठावगमाणुववत्तीदो ? ण, अण्णत्थ करणाभावेणं करणसरूवेण परिणदसरीसेगदेसेण तदवगमस्स विरोहाभावादो ।

८. वही, पृ. २९६ :

खेत्तदो ताव अणेयसंठाणसंठिदा ॥५७॥

जहा कायानामिदियाणं च पडिणियदं संठाणं तहा ओहिणाणस्स ण होदि, किंतु ओहिणाणावरणीयखओवसमगदजीवपदेसाणं करणी भूदसरीरपदेसा अणेयसंठाणसंठिदा होति ।

या चैतन्य केन्द्र हैं। नंदी सूत्र में अवधिज्ञान के छः प्रकार बतलाए गए हैं—

१. आनुगामिक
२. अनानुगामिक
३. वर्धमानक

४. हीयमानक
५. प्रतिपाति
६. अप्रतिपाति^१

षट्खंडागम में अवधिज्ञान के तेरह प्रकार बतलाए गए हैं—

१. देशावधि
२. परमावधि
३. सर्वावधि
४. हायमान
५. वर्धमान
६. अवस्थित
७. अनवस्थित

८. अनुगामी
९. अननुगामी
१०. सप्रतिपाती
११. अप्रतिपाती
१२. एक क्षेत्र
१३. अनेक क्षेत्र^२

प्रस्तुत प्रसंग में एक क्षेत्र और अनेक क्षेत्र ये दो भेद बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जिसमें जीव के शरीर का एक देश (चैतन्य केन्द्र) करण बनता है, वह एक क्षेत्र अवधिज्ञान है।^३ जो प्रतिनियत क्षेत्र के माध्यम से नहीं होता, किंतु शरीर के सभी अवयवों के माध्यम से होता है—शरीर के सभी अवयव करण बन जाते हैं, वह अनेक क्षेत्र अवधिज्ञान है।^४

यद्यपि अवधिज्ञान की क्षमता सभी आत्म प्रदेशों में प्रकट होती है, फिर भी शरीर का जो देश करण बनता है उसी के माध्यम से अवधिज्ञान प्रकट होता है। शरीर का जो भाग करण रूप में परिणत हो जाता है वही अवधिज्ञान के प्राप्त होने का माध्यम बन सकता है। नंदी सूत्र में भी सब अवयवों से जानने और किसी एक अवयव से जानने की चर्चा मिलती है।^५

एक क्षेत्र अवधिज्ञान में शरीर का एक चैतन्य केन्द्र भी जागृत हो सकता है तथा दो, तीन, चार, पांच आदि चैतन्य केन्द्र भी एक साथ जागृत हो सकते हैं।^६

चैतन्य केन्द्र अनेक संस्थान वाले होते हैं, जैसे इन्द्रियों का संस्थान प्रतिनियत होता है वैसे चैतन्य केन्द्रों का संस्थान प्रतिनियत नहीं होता किंतु करण रूप में परिणत शरीर प्रदेश अनेक संस्थान वाले होते हैं।^७ कुछ संस्थानों के नाम निर्देश मिलते हैं, जैसे—श्रीवत्स, कलश, शंख, स्वस्तिक, नन्दावर्त आदि।^८ ध्वलाकार ने आदि शब्द के द्वारा अन्य अनेक शुभ संस्थानों का निर्देश किया है।^९ तंत्र शास्त्र और हठयोग में चक्रों के लिए कमल शब्द की प्रकल्पना मिलती है। यहां कमल शब्द का उल्लेख नहीं है, किंतु आदि शब्द के द्वारा उसका निर्देश स्वतः प्राप्त हो जाता है। आचार्य नेमिचंद्र ने गुण-प्रत्यय अवधिज्ञान को शंख आदि चिह्नों से उत्पन्न होने वाला बतलाया है।^{१०} टीकाकार ने आदि शब्द की व्याख्या में पद्म, वज्र, स्वस्तिक, मत्स्य, कलश शब्दों का निर्देश दिया है।^{११} जैन साहित्य में अष्ट मंगल की मान्यता प्रचलित है।^{१२} अनुमान किया जा सकता है कि अवधिज्ञान के शरीरगत चिह्नों और अष्ट मंगलों में कोई सामञ्जस्य का सूत्र रहा हो।

१. नवसुत्ताणि, नंदी, सू. ९

२. षट्खंडागम, पुस्तक १३, पृ. २९२

३. वही, पृ. २९५ : जस ओहिणाणस्स जीवसरिरस्स एगदेसो करणं होदि तमोहिणाणमेगक्खेत्तं णाम ।

४. वही, जमोहिणाणं पडिणियदखेत्तं वज्जिय सरिरसव्वावयवेसु वट्टदि तमणयक्खेत्तं णाम ।

५. नवसुत्ताणि, नंदी, सू. २२ गा. २ :

नेरइयदेवतित्थंकरा य, ओहिस्सवाहिरा हुंति ।

पासंति सब्बओ खलु, सेसा देसेण पासंति ॥

६. षट्खंडागम, पुस्तक १३, पृ. २९७ : ण च एकस्स जीवस्स एक्कमिह चेव पदेसे ओहिणाणकरणं होदि त्ति णियमो अत्थि, एग-दो-तिण्ण-चत्तारि-पंच-छ आदि खेत्ताणमेग-जीवमिह संखादिसुहसंठाणाणं क्मिह वि संभवादो ।

७. वही, पृ. २९६ : खेत्तदो ताव अणयसंठाणसंठिदा ॥५७॥

८. वही, पृ. २९७ : सिरिवच्छ-कलस-संख-सोत्थिय-णंदाव-त्तादीणि संठाणाणि णाणादव्वाणि भवंति ।

९. वही, एत्थ आदिसद्देण अण्णोसि पि सुहसंठाणाणं गहणं कायव्वं ।

१०. गोम्मटसार जीवकाण्ड, गा. ३७१ ।

भवपच्चइगो सुरणिरयाणं, तित्थेवि सब्ब अंगुत्थो ।

गुणपच्चइगो णरतिरियाणं संखादिचिह्णभवो ॥

११. गोम्मटसार टीका : नाभेरुपरि शङ्खपद्मवज्रस्वस्तिकझष-कलशादिशुभचिह्नलक्षितात्मप्रदेशस्थावधिज्ञानावरणवीर्यान्त-रायकर्मद्वयक्षयोपशमोत्पन्नमित्यर्थः ।

१२. उवंगसुत्ताणि १, ओवाडयं, सू. ६४ : इमे अट्टट्ट मंगलया पुरओ अहाणुपुब्बीए संपट्टिया, तं जहा—सोवत्थिय-सिरि-वच्छ-णंदियावत्त-वद्धमाणग-भद्दासण-कलस-मच्छ-दप्पणया ।

श्रीवत्स आदि शुभ संस्थान वाले चैतन्य केन्द्र मनुष्य और पशु के नाभि के ऊपर के भाग में होते हैं। वीरसेन आचार्य का मत है कि शुभ संस्थान वाले चैतन्य केन्द्र नीचे के भाग में नहीं होते।^१ नाभि से नीचे होने वाले चैतन्य केन्द्रों के संस्थान अशुभ होते हैं, गिरगिट आदि अशुभ आकार वाले होते हैं। आचार्य वीरसेन के अनुसार इस विषय का षट्खण्डागम में सूत्र नहीं है, किंतु यह विषय उन्हें गुरु परम्परा से उपलब्ध है।^२

चैतन्य केन्द्रों के संस्थानों में परिवर्तन भी हो सकता है। सम्यक्त्व उपलब्ध होने पर नाभि से नीचे के अशुभ संस्थान मिट जाते हैं, नाभि से ऊपर के शुभ संस्थान निर्मित हो जाते हैं। इसी प्रकार सम्यक्दृष्टि के मिथ्यात्व अवस्था में चले जाने पर नाभि से ऊपर के शुभ संस्थान मिट जाते हैं और नाभि के नीचे के अशुभ संस्थान निर्मित हो जाते हैं।^३

प्रस्तुत आगम में अज्ञान के तीन प्रकारों का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है। प्रकरणवश सम्यक्दृष्टि के बोध को ज्ञान, मिथ्यादृष्टि के बोध को अज्ञान कहा गया है।^४ मिथ्याश्रुत के प्रकार अनुयोगद्वार में निर्दिष्ट हैं।^५ प्रस्तुत आगम में उससे उद्धृत किए गए हैं। इस मिथ्याश्रुत की सूची में कुछ शब्द अपरिचित से हैं, जैसे—हंभीमासुरत्तं।

गोम्मटसार में इस शब्द के स्थानापन्न दो शब्द हैं—आभीय और आसुरक्ख।^६ जिनका क्रमशः अर्थ दिया गया है—चौरशास्त्र और हिसाशास्त्र।^७

व्यवहार भाष्य में भंभीय और मासुरक्ख ये दो शब्द आए हैं।^८ मूलाचार में एक मासुरक्ख शब्द का प्रयोग हुआ है।^९

इस प्रकार के प्रयोगों को देखने से लगता है कि इस नाम में बहुत विसंवाद है। अनुयोगद्वार की प्रतियों में भीमासुरक्क, हंभीमासुरक्क, भीमासुरक्क और भीमासुरत्त ये चार पाठ आए हैं।^{१०} प्रकरण को देखने से लगता है कि 'भीमासुरोक्त' नामक कोई ग्रंथ होना चाहिए जो महाभारत और रामायण से अर्वाचीन तथा कौटिल्य से प्राचीन है।

षष्टितंत्र के कर्ता आसुरि के शिष्य पंचशिख थे। षष्टितंत्र सांख्यदर्शन का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इस ग्रंथ के आधार पर ईश्वर-कृष्ण ने सांख्यकारिका नामक ग्रंथ लिखा जिसका दूसरा नाम कनकसप्तरी [कनकसप्तति] है।

माठर भाष्य षष्टितंत्र के उद्धाररूप में लिखा गया है। इसका समय विक्रम की तीसरी व चौथी शताब्दी माना गया है।

'वैशिक' ग्रंथ कामशास्त्र का वाचक है। सूत्रकृताङ्ग सूत्र की चूर्णि में 'वैशिक' का अर्थ स्त्रीवेद किया गया है।^{११} वहां लिखा है—दुविज्ञेयो हि भावः प्रमदानाम्।

जिस शास्त्र से स्त्रियों के चरित्र जाने जाते हैं, वह स्त्रीवेद है। इस संदर्भ में एक वैशिक पाठक का उदाहरण दिया गया है^{१२}—एक युवा 'वैशिक' (कामशास्त्र) पढ़ने के लिए घर से निकला। मार्ग में उसे एक स्त्री मिली, वैशिक शास्त्र से अनजान होने के कारण वह उस स्त्री से छला गया। स्त्रियों के छलनामय व्यवहारों से बच निकलने के लिए 'वैशिक शास्त्र' का अध्ययन किया जाता था।

सूत्रकृताङ्ग की वृत्ति में भी 'वैशिक' शब्द के इसी अर्थ की ओर संकेत किया गया है।^{१३} दत्तावैशिक का उदाहरण देते हुए

१. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २९७ : एदाणि संठाणाणि तिरिक्ख-मणुस्साणं णाहीए उवरिमभागे होंति णो हेट्ठा, सुह संठाणाणमधोभागेण सह विरोहादो।

२. वही, पृ. २९८ : तिरिक्ख-मणुस्सविहंगणाणीणं णाहीए हेट्ठा सरडादि असुहसंठाणाणि होंदि त्ति गुरुवेसो, ण सुत्तमत्थि।

३. वही, पृ. २९८ : विहंगणाणीणमोहिणाणे सम्मत्तादिफलेण समुप्पण्णे सरडादिअसुहसंठाणाणि फिट्ठिदूण णाहीए उवरि संखादिसुहसंठाणाणि होंति त्ति घेतव्वं। एवमोहिणाण-पच्छायदविहंगणाणीणं वि सुहसंठाणाणि फिट्ठिदूण असुह-संठाणाणि होंति त्ति घेतव्वं।

४. नवसुत्ताणि, नंदी, सू. ३७

५. अणुओगदाराई, सू. ४९

६. गोम्मटसार जीवकाण्ड, पृ. ३०३ :

आभीयमासुरक्खं भारहरामायणादि उवएसा।

तुच्छा असाहणीया सुय अण्णगाणं ति बेंति ॥

७. वही, पृ. ३५८ : आसमन्तात् भीताः आभीयाः चौराः तच्छास्त्रमप्याभीतं, असवः प्राणाः तेषां रक्षा येष्यः ते असुरक्षाः तलवराः तेषां शास्त्रं आसुरक्षम्।

८. व्यवहार भाष्य, भाग ३, पत्र १३३ :

भंभीयमासुरक्खे माठर कोडिण्णदंडनीतिसु।

आलं च पक्खगाही एरिसया रुव जक्खातो ॥

९. मूलाचार, पृ. २१७ :

कोडिल्लमासुरक्खा भारहा रामायणादि जे धम्मा।

होञ्जु व तेसु विसुत्ती लोइयमूढो हवदि एसो ॥

१०. नवसुत्ताणि, नंदी, सू. ६७ का पादटिप्पण।

११. सूयगडसुत्तं, णिञ्जुत्ति चूर्णिण समलंकियं, पृ. १११

१२. वही, पृ. ११०

१३. श्रीमत्सूत्रकृताङ्गम् निर्युक्तिवृत्तियुतं, प. ११२

वहां लिखा गया है कि 'दत्तावैशिक' एक वैश्या से प्रतारित होने पर भी उसे नहीं चाहता था। वैश्या ने कहा—तुम मुझे स्वीकार नहीं करोगे तो मैं अग्नि में जलकर मर जाऊंगी। दत्तावैशिक बोला—वैशिक शास्त्र में माया से यह भी बताया गया है।

वैश्या ने एक सुरङ्ग के मुंह पर अग्नि जलाई और उसमें प्रवेश करके सुरङ्गमार्ग से अपने घर आ गई। 'वैशिक शास्त्र' में यह सब बताया गया है, दत्तक के ऐसा कहने पर भी वातिकों ने उसे चिता में डाल दिया।

उक्त ग्रन्थों में घोटमुख, शकटभद्रिका, नागसूक्ष्म और कार्पासिक भी मीमांसनीय हैं, किंतु अभी तक इनके बारे में कोई विश्वस्त जानकारी प्राप्त नहीं हुई है।

अङ्गप्रविष्ट में द्वादशाङ्गी का समावेश होता है। यह श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं में समान है। अङ्गबाह्य की संख्या में दोनों परम्पराएं भिन्न हैं। दिगम्बर परम्परा में चौदह अङ्गबाह्य आगमों का उल्लेख मिलता है।^१

प्रस्तुत आगम में अङ्गबाह्य आगमों की सूची बहुत लम्बी है। उनमें से अनेक आगम वर्तमान में अनुपलब्ध हैं। कुछ आगम अध्ययनसिद्ध विद्या वाले हैं। दिगम्बर परम्परा में उनका उल्लेख क्यों नहीं हुआ? यह एक प्रश्न है। अरुणोपपात, गरुडोपपात आदि अध्ययनसिद्ध विद्या वाले ग्रन्थ प्राचीन हैं। उनकी प्राचीनता व्यवहार सूत्र से प्रमाणित है।^२ व्यवहार के रचनाकार प्रथम भद्रबाहु हैं। उस समय तक दिगम्बर और श्वेताम्बर जैसा जिन शासन में स्पष्ट भेद नहीं था। व्यवहार में स्वप्नभावना आदि आगमों का उल्लेख है उनका उल्लेख प्रस्तुत आगम में नहीं है।

नंदी

क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्ति
महतीविमानप्रविभक्ति
अंगचूलिका
वर्गचूलिका
व्याख्याचूलिका
अरुणोपपात
वरुणोपपात
गरुडोपपात
धरणोपपात
वैश्रवणोपपात
वेलंधरोपपात
देवेन्द्रोपपात
उत्थानश्रुत
समुत्थानश्रुत
नागपर्यापनिका

व्यवहार

क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्ति
महतीविमानप्रविभक्ति
अङ्गचूलिका
वर्गचूलिका
व्याख्याचूलिका
अरुणोपपात
वरुणोपपात
गरुडोपपात
धरणोपपात
वैश्रवणोपपात
वेलंधरोपपात
उत्थानश्रुत
समुत्थानश्रुत
देवेन्द्रोपपात
नागपर्यापनिका
स्वप्नभावना
चारणभावना
तेजनिर्गम
आशीविषभावना
दृष्टिविषभावना

व्याख्याग्रन्थ—

नंदीसूत्र पर मुख्यतः चार व्याख्या ग्रन्थ उपलब्ध हैं—

१. चूर्णि
२. हारिभद्रीया वृत्ति
३. मलयगिरीया वृत्ति
४. नंदीसूत्रवृत्ति टिप्पणकम्

१. चूर्णि—

इसके कर्त्ता जिनदासमहत्तर हैं। चूर्णि के अन्त में उन्होंने अपना नाम रहस्यात्मक ढंग से व्यक्त किया है।^१ इसका रचना-काल शक सम्वत् ५९८ है।^२ तदनुसार विक्रम सम्वत् ७३३ है। चूर्णि का ग्रन्थाग्र १५०० श्लोक प्रमाण है।^३

चूर्णि की भाषा प्राकृत है। इसमें केवलज्ञान-केवलदर्शन विषयक विभिन्न मतों की चर्चा है तथा स्थान-स्थान पर विशेषावश्यक भाष्य एवं विशेषणवती की गाथाओं का उल्लेख किया गया है। कालिक एवं उत्कालिक सूत्रों में परिगणित कई ग्रन्थ ऐसे हैं जो आज उपलब्ध नहीं हैं तथा जिनके इतिहास को जानने का एकमात्र प्रामाणिक आधार नंदी चूर्णि है। इसी तरह वीर-निर्वाण के पश्चात् होने वाले प्रभावक वाचनाचार्यों का क्रमबद्ध इतिहास जानने के लिए भी प्रस्तुत चूर्णि में महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध होती है।

२. हारिभद्राया वृत्ति—

नंदीसूत्र पर विरचित हारिभद्राया वृत्ति बहुत विस्तृत नहीं है। इसका ग्रन्थाग्र २३३६ श्लोक प्रमाण है।^४ इसमें हरिभद्रसूरि ने मुख्यतः चूर्णि का अनुसरण किया है। कहीं-कहीं यथावकाश कुछ विस्तार किया है। कहीं-कहीं चूर्णिकार के मत की 'अन्ये' कहते हुए समीक्षा भी की है।^५ इसकी भाषा संस्कृत है। विशेषणवती, विशेषावश्यकभाष्य, प्रमाणवातिक आदि के उद्धरण भी इसमें उपलब्ध होते हैं। हरिभद्रसूरि ने इसका नाम नन्धध्ययन विवरण कहा है।

३. मलयगिरीया वृत्ति—

मलयगिरि विरचित नंदी वृत्ति लगभग ७७३१ श्लोक प्रमाण है।^६ इसमें चूर्णिकार के अनंतर हरिभद्र का भी स्मरण किया गया है। विभिन्न जैन दार्शनिक मान्यताओं को जानने के लिए यह वृत्ति विशेष उपयोगी है। इसमें जीवत्वसिद्धि, सर्वज्ञत्वसिद्धि, अपौरुषेयत्वखण्डन, नैरात्म्यखण्डन, सांख्यमुक्तिनिरास, धर्मधर्मी का भेदाभेद आदि का सविस्तार विवेचन है। बुद्धिचतुष्टय के संदर्भ में प्राप्त लगभग सभी दृष्टांत सरल, सुन्दर एवं लालित्यपूर्ण शैली में उपलब्ध हैं।

४. नंदीसूत्रवृत्ति टिप्पनकम्—

प्रस्तुत टिप्पनक की रचना मलधारी श्रीचंद्रसूरि ने की। यह हारिभद्राया वृत्ति के परिशिष्ट में प्रकाशित है। इसका आधार मूलतः हारिभद्राया वृत्ति है। हरिभद्र ने अपनी वृत्ति में कथाओं के संदर्भ में आवश्यक वृत्ति का निर्देश किया है। श्रीचंद्रसूरि ने उनका विस्तार से निरूपण किया है।

२९ अगस्त, १९९६
जैन विश्व भारती
लाडनूं

गणाधिपति तुलसी
आचार्य महाप्रज्ञ

१. नंदी चूर्णि, पृ. ८३

२. वही

३. वही

४. हारिभद्राया वृत्ति, पृ. ९७

५. वही, पृ. २६, ४४

६. मलयगिरीया वृत्ति, प. २५०

विषयानुक्रम

प्रकरण	गाथा व सूत्र	पृष्ठ		पारिणामिकी बुद्धि के लक्षण एवं उदाहरण	३८।१०-१३	८३
प्रकरण पहला				श्रुतनिश्चित आभिनिबोधिक ज्ञान के भेद-प्रभेद	३९-४९	८४
श्रुतधर आचार्य	गाथा १-४४ सूत्र १	१-३२		अवग्रह आदि का कालमान	५०	८५
महावीर स्तुति	"	१-३	५	व्यञ्जनावग्रह का प्ररूपण प्रतिबोधक व मल्लक		
संघ स्तुति	"	४-१७	५	दृष्टांत से	५१-५३	८५
तीर्थंकरावलि	"	१८, १९	७	आभिनिबोधिक ज्ञान का विषय	५४	८६
गणधरावलि	"	२०, २१	७	टिप्पण	९०-१०६	
शासन स्तुति	"	२२	७			
स्थविरावलि	"	२३-४०	८	प्रकरण चौथा		
दूष्यगणी व अन्य आगमधरों को नमस्कार	"	४१-४३	१०	परोक्ष—श्रुतज्ञान	५५-७३	१०७-१३०
श्रोताओं के १४ प्रकार	"	४४	१०	श्रुतज्ञान का भेद	५५	१११
परिषद् के ३ प्रकार		१	१०	अक्षर श्रुत	५६-५९	१११
टिप्पण		११-३२		अनक्षर श्रुत	६०	११२
प्रकरण दूसरा				संज्ञिश्रुत के भेद	६१	११२
प्रत्यक्ष ज्ञान	२-३३	३३-७६		संज्ञि-असंज्ञि श्रुत का विवेचन	६२-६४	११२
ज्ञान के ५ प्रकार		२	३७	सम्यक्श्रुत	६५, ६६	११३
प्रमाण के २ प्रकार		३	३७	मिथ्याश्रुत—लौकिक ग्रंथ	६७	११३
प्रत्यक्ष ज्ञान के भेद-प्रभेद		४-६	३७	सादि, सपर्यवसित, अनादि, अपर्यवसित	६८-७१	११४
अवधि ज्ञान के प्रकार		७-९	३७	गमिक, अगमिक	७२, ७३	११५
आनुगामिक अवधि ज्ञान के भेद-प्रभेद		१०-१५	३८	टिप्पण	११६-१३०	
आनुगामिक अवधि ज्ञान का विषय		१६	३९	प्रकरण पांचवां		
अनानुगामिक अवधि ज्ञान का विषय		१७	३९	द्वादशांग विवरण	७४-१२७	१३१-१९०
वर्धमानक अवधि ज्ञान का विषय		१८	४०	अंग बाह्य	७४	१३५
हीयमानक अवधि ज्ञान		१९	४१	आवश्यक	७५	१३५
प्रतिपाति अवधि ज्ञान का विषय		२०	४१	आवश्यक व्यतिरिक्त	७६	१३५
अप्रतिपाति अवधि ज्ञान का विषय		२१	४२	उत्कालिक	७७	१३५
अवधि ज्ञान का जघन्य एवं उत्कृष्ट विषय		२२	४२	कालिक	७८, ७९	१३६
मनःपर्यव ज्ञान व भेद-प्रभेद		२३-२५	४३	अंगप्रविष्ट के भेद	८०-१२७	१३६
केवल ज्ञान व भेद-प्रभेद		२६-३३	४७	आयार	८१	१३७
टिप्पण		४९-७६		सूत्रकृत	८२	१३७
प्रकरण तीसरा				स्थान	८३	१३८
परोक्ष—आभिनिबोधिक ज्ञान	३४-५४	७७-१०६		समवाय	८४	१३९
परोक्ष ज्ञान		३४-३६	८१	व्याख्याप्रज्ञप्ति	८५	१४०
आभिनिबोधिक ज्ञान के प्रकार		३७	८१	ज्ञातधर्मकथा	८६	१४१
अश्रुतनिश्चित आभिनिबोधिक ज्ञान के प्रकार		३८	८१	उपासकदशा	८७	१४२
औत्पत्तिकी बुद्धि के लक्षण एवं उदाहरण		३८।२-४	८२	अन्तकृतदशा	८८	१४३
वैनयिकी बुद्धि के लक्षण एवं उदाहरण		३८।५-७	८२	अनुत्तरोपपातिकदशा	८९	१४४
कर्मजा बुद्धि के लक्षण एवं उदाहरण		३८।८-९	८३	प्रश्नव्याकरण	९०	१४५

विपाकश्रुत	९१	१४५
दृष्टिवाद के भेद	९२	१४६
परिकर्म	९३-१०१	१४७
सूत्र	१०२, १०३	१४९
पूर्वगत	१०४-११८	१५०
अनुयोग	११९	१५१
मूलप्रथमानुयोग	१२०	१५१
गण्डिकानुयोग	१२१	१५२
चूलिका	१२२	१५२
दृष्टिवाद का परिमाण	१२३	१५२
द्वादशाङ्ग गणपिटक विशेष विवेचन	१२४-१२७	१५३
टिप्पण	१५६-१९०	

परिशिष्ट	१९१-२५५
अणुणानंदी (सानुवाद)	१९३
जोगनंदी ;,	१९८
कथा	२०१
विशेषनामानुक्रम-देशी शब्द	२२८
पदानुक्रम	२३८
टिप्पण : अनुक्रम	२४०
ज्ञान सीमांसा	२४३
प्रयुक्त ग्रन्थ-सूची	२५१

पहला प्रकरण
(गाथा १-४४, सूत्र १)

आमुख

प्रस्तुत आगम का प्रतिपाद्य है ज्ञान । इससे पूर्व ४४ गाथाएं हैं । किसी भी आगम के प्रारंभ में स्थविरावलि का आलेख नहीं है । यदि जीवाजीवाभिगम आदि आगमों में इस प्रकार स्थविरावलि का विन्यास होता तो ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यवान सामग्री बन जाती । आगमकार ने अपने गुरु दूष्यगणी का उल्लेख किया है ।^१ अपना नाम निर्देश नहीं किया है । स्थविरावलि में केवल नामोल्लेख नहीं है । कुछ ऐतिहासिक उल्लेख भी हैं । उदाहरण के लिए 'तिसमुद्खायकित्ति'—यह आर्य समुद्र की विदेश यात्रा का सूचक है ।^२ २८वीं गाथा में आर्य मंगु और ३०वीं गाथा में आर्य नागहस्ति का उल्लेख है । इनका दिगम्बर परम्परा में भी उल्लेख मिलता है । नागहस्ति कर्मप्रकृति के ज्ञाता थे । (द्रष्टव्य नागहस्ति और मंगु का टिप्पण)

वाचकवंश—यह जैन परम्परा में पूर्वों के अध्ययन-अध्यापन में रत श्रेणी का सूचक है ।^३ ब्रह्माद्वीपक—ब्रह्माद्वीप से उत्पन्न शाखा का सूचक है ।^४ ३३वीं गाथा स्कन्दिलाचार्य के नेतृत्व में होनेवाली वाचना की सूचक है । आज भी वह वाचना चल रही है । इस वाक्यांश का स्पष्ट संकेत है कि अभी माथुरी वाचना ही प्रमुख रूप से प्रचलित है । ३६वीं गाथा में नागार्जुन की वाचना का स्पष्ट संकेत मिलता है जैसा ३५वीं गाथा में अनुयोग के प्रचलन का स्पष्ट उल्लेख है वैसे स्पष्ट उल्लेख प्रस्तुत गाथा (३६ वीं) में नहीं है ।

किन्तु 'ओहसुयसमायारे' इस पद से वाचना का संकेत मिलता है (द्रष्टव्य 'ओहसुयसमायारे' का टिप्पण) । सूत्रकार ने उस समय के विद्यमान सभी आनुयोगिकों को नमस्कार कर श्रुत के प्रति विशिष्ट भक्ति का निदर्शन किया है ।

स्थविरावलि की गाथाओं के अनेक रूप मिलते हैं—

१७वीं गाथा के पश्चात्—

गुणरयणुज्जलकडयं, सीलसुगंधितवमंडिउद्देसं ।
सुयचारसंगसिहरं, संघमहामंदरं वंदे ॥
नगररहचक्कपउमे, चंदे सूरे समुद्देरुम्मि ।
जो उवमिज्जइ सययं, तं संघगुणायरं वंदे ॥

२८वीं गाथा के पश्चात्—

वंदामि अज्जधम्मं, तत्तो वंदे य भद्दुत्तं च ।
तत्तो य अज्जवइरं, तवनियमगुणेहि वइरसमं ॥
वंदामि अज्जरक्खियखमणे रक्खियचरित्तसव्वस्से ।
रयणकरंडभूओ, अणुओगो रक्खओ जेहि ॥

३६वीं गाथा के पश्चात्—

गोविदाणं पि नमो, अणुओगे विउलधारणिदाणं ।
णिच्चं खंतिदयाणं, परूवणे दुल्लभिदाणं ॥
तत्तो य भूयदिन्नं, निच्चं तवसंजमे अनिव्विण्णं ।
पंडियजणसामण्णं, वंदामि संजमविहण्णू ॥

४१वीं गाथा के पश्चात्—

तवनियमसच्चसंजम, विणयज्जवखंतिमद्वरयाणं ।
सीलगुणगद्वियाणं, अणुओगजुगप्पहाणाणं ॥

१. नवसुत्ताणि, नंदी, गा० ४१,४२

२. वही, गा० २७

३. वही, गा० ३०, ३१, ३२

४. वही, गा० ३२

पहला प्रकरण श्रुतधर परम्परा

मूल पाठ

महावीर-त्थुई

१. जयइ जगजीवजोणी-
वियाणओ जगगुरू जगणंदो ।
जगणाहो जगबंधू जयइ
जगप्पियामहो भयवं ॥

२. जयइ सुयाणं पभवो
तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ ।
जयइ गुरू लोगाणं,
जयइ महप्पा महावीरो ॥

३. भद्दं सर्वजगदुद्योतकस्य
भद्दं जिनस्स वीरस्स ।
भद्दं सुरासुरणमंसियस्स
भद्दं धुरयस्स ॥

संघ-त्थुई

४. गुणभवण-गहण ! सुयरयणभरिय !
दंसण-विसुद्ध-रत्थागा !
संघणगर ! भद्दं ते,
अक्खंडचरित्त-पागारा !

५. संजम-तव-तुंबारयस्स
नमो सम्मत्त-पारियल्लस्स ।
अप्पडिचक्कस्स जओ,
होउ सया संघचक्कस्स ॥

६. भद्दं सीलपडागूसियस्स
तव-नियम-तुरय-जुत्तस्स ।
संघरहस्स भगवओ,
सज्जाय-सुनंदि-घोसस्स ॥

७. कम्मरथ-जलोह-विणिग्गयस्स
सुयरयण-दीहनालस्स ।
पंचमहव्वयथिरकणियस्स
गुणकेसरालस्स ।

संस्कृत छाया

महावीर-स्तुति

जयति जगज्जीवयोनि-
विज्ञायको जगद्गुरुर्जगदानन्दः ।
जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जयति
जगत्पितामहो भगवान् ॥

जयति श्रुतानां प्रभवः
तीर्थकराणामपश्चिमो जयति ।
जयति गुरुः लोकानां,
जयति महात्मा महावीरः ॥

भद्रं सर्वजगदुद्योतकस्य
भद्रं जिनस्य वीरस्य ।
भद्रं सुरासुरनमस्यितस्य
भद्रं धृतरजसः ॥

संघ-स्तुति

गुणभवन-गहन ! श्रुतरत्नभूत !
दर्शन-विशुद्ध-रथ्याक !
संघनगर ! भद्रं ते,
अखण्डचरित्र-प्राकार !

संयम-तपस्तुम्बारकाय
नमः सम्यक्त्व 'पारियल्लस्स' ।
अप्रतिचक्रस्य जयिनः,
भवतु सदा संघचक्रस्य ॥

भद्रं शीलपताकोच्छ्रितस्य,
तपो-नियम-तुरग-युक्तस्य ।
संघरथस्य भगवतः,
स्वाध्याय-सुनन्दि-घोषस्य ॥

कर्मरजो-जलोघ-विनिर्गतस्य
श्रुतरचन-दीर्घनालस्य ।
पञ्चमहाव्रतस्थिरकर्णिकस्य
गुणकेसरवतः ॥

हिन्दी अनुवाद

महावीर-स्तुति

१. जगत् के समस्त जीवों की उत्पत्ति के ज्ञाता^१,
जगत् के गुरु^२ और आनंद देने वाले,^३ जगत्
के स्वामी,^४ बन्धु^५ और पितामह^६ भगवान्
महावीर विजयी हों ।^७

२. सब शास्त्रों के उद्भावक^८, तीर्थकरों में
अंतिम,^९ लोक के गुरु, महात्मा^{१०} महावीर
विजयी हों ।

३. समूचे जगत् को प्रकाशित करने वाले, देव
और असुरों के द्वारा नमस्कृत, कर्म रज को
नष्ट करने वाले भगवान् महावीर का कुशल
हो ।

संघ-स्तुति

४. उत्तरगुण रूप भवनों से गहन, श्रुत-रूप
रत्नों से युक्त, विशुद्ध दर्शन-रूप मार्गों से
संकुल, चारित्र-रूप अखण्ड प्राकार वाले, संघ
रूप नगर ! तुम्हारा कुशल हो ।

५. जिस चक्र के संयम-रूप तुम्ह और तप-रूप
अर हैं, बाह्य पृष्ठ के लिए सम्यक्त्व रूप भ्रमि
है, तथा जिसके समान दूसरा चक्र नहीं है,
ऐसे विजयी संघ चक्र को सदा नमस्कार हो ।

६. जिसके शीलरूप ऊंची पताका है, तप नियम
रूप घोंडे जुते हुए हैं, स्वाध्याय रूप नंदी घोष
हैं, ऐसे संघरूप रथ का कुशल हो ।

७. जो श्रमणगण रूप सहस्र पत्रों से युक्त है ।
कर्म रज रूप समुद्र से बाहर निकला हुआ है,
श्रुत की रचना रूप दीर्घनालिका वाला है ।
पांच महाव्रत रूप स्थिर कर्णिका वाला है ।
उत्तरगुण रूप केसरों (पुष्प-पराग) वाला है ।

८. सावगजणमहुअरिपरिवुडस्स
जिणसूर-तेयबुद्धस्स ।
संघपउमस्स भद्दं,
समणगण-सहस्सपत्तस्स ॥ (जुम्मं)
९. तव-संजम-मय-लंछण !
अकरिय-राहुमुह-दुद्धरिस! निच्चं ।
जय संघचंद्र !
निम्मल-सम्मत्त-विमुद्धजुणहागा !
१०. परतित्थिय-गह-पह-नासगस्स
तवतेय-दित्तलेसस्स ।
नाणुज्जोयस्स जए,
भद्दं दमसंघसूरस्स ॥
११. भद्दं धिइ-वेला-परिगयस्स
सज्झायजोग-मगरस्स ।
अक्खोभस्स भगवओ,
संघसमुद्दस्स हंढस्स ॥
१२. सम्महंसण-वइर-दड-रूढ-
गाढावगाढ-पेढस्स ।
धम्मवर-रयण-मंडिय-
चामीयर-मेहलागस्स ॥
१३. नियमूसिय-कणय-सिलायलुज्जल-
जलंत-चित्तकूडस्स ।
नंदणवण-मणहर-सुरभि-
शील-गंधुद्धमायस्स ॥
१४. जीवदया-सुंदर-कंदरुद्धरिय-
मुणिवर-मइंद-इणस्स ।
हेउसय-धाउ-पगलंत-रयण
दित्तोसहि-गुहस्स ॥
१५. संवर-वरजल-पगलिय-उज्झर-
प्पविरायमाण-हारस्स ।
सावग-जण-पउर-रवंत-
मोर-णच्चंत-कुहरस्स ॥
- श्रावकजनमधुकरीपरिवृतस्य
जिनसूर-तेजोबुद्धस्य ।
संघपद्यस्य भद्रं,
श्रमणगण-सहस्रपत्रस्य ॥ (युग्मम्)
- तपः-संयम-मृग-लाञ्छन !
अक्रिय-राहुमुख-दुर्घृष्य ! नित्यम् ।
जय संघचन्द्र !
निर्मल-सम्यक्त्व-विशुद्धज्योत्स्नाक !
- परतीथिक-ग्रह-प्रभा-नाशकस्य,
तपस्तेजो-दीप्तरश्मेः ।
ज्ञानोद्योतस्य जगति,
भद्रं दमसंघसूरस्य ॥
- भद्रं धृति-वेला-परिगतस्य,
स्वाध्याययोग-मकरस्य ।
अक्षोभ्यस्य भगवतः,
संघसमुद्रस्य 'संदस्य' ॥
- सम्यग्दर्शन-वज्र-दृढ-रूढ-
गाढावगाढ-पीठस्य ।
धर्मवर-रत्न-मण्डित-
चामीकर-मेखलाकस्य ॥
- नियमकनकशिलातलोच्छ्रितोज्ज्वल-
ज्वलत्-चित्रकूटस्य ।
नन्दनवन-मनोहर-सुरभि-
शील-'गंधुद्धमायस्य' ॥
- जीवदया-सुन्दर-कन्दरोद्दृप्त-
मुनिवर-मृगेन्द्राकीर्णस्य ।
हेतुशत-धातु-प्रगल्भ-रत्न
दीप्तौषधि-गुहस्य ॥
- संवर-वरजल-प्रगलितोज्झर-
प्रविराजमान-हारस्य ।
श्रावक-जन-प्रचुर-रवन्-
नृत्यन्मयूर-कुहरस्य ॥
८. श्रावक रूप मधुकरों से घिरा हुआ है और
जिनेश्वर देवरूप सूर्य से विकसित है, ऐसे संघ
कमल का कुशल हो ।
९. तप-संयम रूप मृग लाञ्छन वाले, अक्रिया-
वादी, नास्तिक राहुओं के मुंह से अपराजित
हे निर्मल सम्यक्त्व रूप विशुद्ध ज्योत्सना
वाले संघचन्द्र ! तुम विजयी हो ।
१०. जो अन्यतीथिक ग्रहों की प्रभा क्षीण करने
वाले, तप तेज से दीप्त लेश्या वाले हैं और
ज्ञान से उद्योतवान् है, ऐसे उपशम प्रधान
सूर्य का शुभ हो ।
११. जो धैर्य रूप वेला से युक्त है, स्वाध्याय योग
रूप मकरों वाला है, अप्रकंपित है, विस्तीर्ण
है, वह संघ समुद्र शिव को प्राप्त करे ।
१२. जिसके दृढ रूढ़ [चिरकाल से समागत] गाढ़
[तीव्र तत्त्वशक्ति से युक्त] अवगाढ़ गहरी
[पदार्थों के यथार्थ ज्ञान से युक्त] सम्यक् दर्शन
रूप वज्रमय पीठ है । जो धर्म रूप श्रेष्ठ
रत्नों से जड़े हुए स्वर्ण के कन्दोरे वाला है ।
१३. जो नियमरूप कनक शिलातल से ऊंचा बना
हुआ है । जो उज्ज्वल ज्वलंत चित्त रूप
चोटियों वाला है । जो नन्दनवन की मनोहर
सुरभि रूप शील गंध से परिव्याप्त है ।
१४. जीवदया रूप सुन्दर कन्दरा वाला है ।
अहिंसा के प्रति दक्षिण मुनिवर रूपी मृगेन्द्रों
से आकीर्ण है । व्याख्यानशालाओं में सैकड़ों
हेतु रूप [अन्वयव्यतिरेक] धातुओं के द्वारा
निष्यंदमान श्रुतरत्न और दीप्त औषधिवाला
है ।
१५. संवर रूप निरन्तर भरने वाले श्रेष्ठ प्रवाह
रूप हार वाला है और जो विविध शब्द
करते हुए (स्तुति स्तोत्र आदि के द्वारा)
श्रावक रूप मयूरों के प्रचुर सशब्द नृत्यवाला
है, जहां शास्त्र मंडप आदि रूप कुहर है ।

१६. विणय-णय-पवर-मुणिवर-फुरंत-
विज्जु-ज्जलंत-सिहरस्स ।
विविहगुण-कप्परुक्खग-फलभर-
कुसुमाउल-वणस्स ॥

विनय-नत-प्रवर-मुनिवर-स्फुरद्-
विद्युज्ज्वलच्छिखरस्य ।
विविधगुण-कल्परक्षक-फलभर-
कुसुमाकुल-वनस्य ॥

१६. जो विनय से नमे हुए श्रेष्ठ मुनिवरों की स्फुरित विद्युत (तपस्या) से जाज्वल्यमान शिखरों वाला है, जो प्रावचनिक (आचार्य) के विविध गुणों रूप कल्पवृक्षों के फलों और पुष्पों से आकुल वनों वाला है ।

१७. नाण-वररयण-दिप्पंत-कांत-
वेरुलिय-विमल-चूलस्स ।
वंदामि विणयपणओ,
संघमहामंदरगिरिस्स ॥
(छहिं कुलयं)

ज्ञान-वररत्न-दीप्यमान-कान्त-
वैडूर्य-विमल-चूडस्य ।
वन्दे विनयप्रणतः,
संघमहामन्दरगिरेः ॥
(षडिभः कुलकम्)

१७. जिसके प्रधान ज्ञान रूपी वैडूर्य रत्न से दीप्यमान कांत, विमल चूला है उस संघ महामंदराचल को विनय-प्रणत होकर वंदना करता हूँ ।^{११}

तित्थगरावलिआ

१८. वंदे उसभं अजिअं,
संभवमभिनंदणं सुमइ-सुप्पभ-
सुपासं ।
ससि-पुप्फदंत-सीयल-
सिज्जंसं वासुपुज्जं च ॥

तीर्थकरावलिका

वन्दे ऋषभम् अजितं,
संभवम् अभिनन्दनं सुमति-सुप्रभ-
सुपाश्वम् ।
शशि-पुष्पदन्त-शीतल-
श्रेयांसं वासुपूज्यञ्च ॥

तीर्थकर-आवलिका

१८, १९. ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, सुप्रभ (पद्मप्रभु), सुपाश्वं, चन्द्र (शशि), पुष्पदंत (सुविधि), शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म, शांति, कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व और वर्धमान (महावीर) को वंदना करता हूँ ।^{१२}

१९. विमलमणंत य धम्मं,
संति कुंथुं अरं च मल्लि च ।
मुणिसुव्वय-नमि-नेमि
पासं तह वद्धमाणं च ॥ (जुम्मं)

विमलमनन्तं च धर्मं,
शान्तिं कुन्थुम् अरञ्च मल्लिञ्च ।
मुनिसुव्रत-नमि-नेमि,
पार्श्वं तथा वर्धमानञ्च ॥ (युग्मम्)

गणहरावलिआ

२०. पढमित्थ इंदभूई,
बीए पुण होइ अग्गिभूइ त्ति ।
तइए य वाउभूई,
तओ वियत्ते सुहम्मे य ॥

गणधरावलिका

प्रथमोऽत्र इन्द्रभूतिः,
द्वितीयः पुनर्भवति अग्निभूतिरिति ।
तृतीयश्च वायुभूतिः
ततो व्यक्तः सुधर्मा च ॥

गणधर-आवलिका

२०, २१. प्रथम इन्द्रभूति तथा अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मण्डित, मौर्यपुत्र, अकंपित, अचलभ्राता, मेतार्य और प्रभास—भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर हैं ।

२१. मंडिय-मोरियपुत्ते,
अकंपिए चेव अयलभाया य ।
मेयज्जे य पहासे य,
गणहरा हुंति वीरस्स ॥ (जुम्मं)

मण्डित-मौर्यपुत्रो,
अकम्पितश्चैव अचलभ्राता च ।
मेतार्यश्च प्रभासश्च,
गणधराः सन्ति वीरस्य ॥ (युग्मम्)

सासण-त्थुई

२२. निव्वुइ-पह-सासणयं,
जयइ सया सव्वभावदेसणयं ।
कुसमय-मय-नासणयं,
जिणिंदवरवीरसासणयं ॥

शासन-स्तुति

निर्वृति-पथ-शासनकं,
जयति सदा सर्वभावदेशनकम् ।
कुसमय-मद-नाशनकं,
जिनेन्द्रवरवीरशासनकम् ॥

शासन-स्तुति

२२. मोक्ष के प्रतिपादक, सब पदार्थों के प्ररूपक, कुत्सित सिद्धांतों के मदनाशक जिनेन्द्रवर श्री महावीर का शासन विजयी हो ।

थेरावलिया

२३. सुहम्मं अग्निवेश्याणं,
जंबूनामं च कासवं ।
पभवं कच्चायणं वंदे,
वच्छं सिज्जंभवं तथा ॥

२४. जसभदं तुंगियं वंदे,
संभूयं चैव माढरं ।
भद्रबाहुं च पाङ्णं,
थूलभदं च गोयमं ॥

२५. एलावच्चसगोत्तं,
वंदामि महागिरिं सुहत्थि च ।
तत्तो कोसियगोत्तं,
बहुलस्स सरिव्वयं वंदे ॥

२६. हारियगुत्तं साइं,
च वंदिमो हारियं च सामज्जं ।
वंदे कोसियगोत्तं,
संडिल्लं अज्जजीयधरं ॥

२७. तिसमुद्द-खाय-किंत्ति,
दीवसमुद्देषु गहिय-पेयालं ।
वंदे अज्जसमुद्दं,
अक्खुभिय-समुद्द-गंभीरं ॥

२८. भणगं करगं भरगं,
पभावगं णाण-दंसण-गुणाणं ।
वंदामि अज्जमङ्गं,
सुय-सागर-पारगं धोरं ॥

२९. नाणम्मि दंसणम्मि य,
तव-विणए णिच्चकालमुज्जुत्तं ।
अज्जं नंदिलखमणं,
शिरसा वंदे पसणमणं ॥

३०. वड्डउ वायगवंसो,
जसवंसो अज्ज-नागहत्थीणं ।
वागरण-करण-भंगी-
कम्मपयडी-पहाणाणं ॥

स्थविरावलिका

सुधर्माणम् अग्निवेश्यायनं,
जम्बूनाम च काश्यपम् ।
प्रभवं कात्यायनं वन्दे,
वात्स्यं शय्यंभवं तथा ॥

यशोभद्रं तुङ्गिकं वन्दे,
सम्भूतञ्चैव माढरम् ।
भद्रबाहुञ्च प्राचीनं,
स्थूलभद्रञ्च गौतमम् ॥

एलापत्यसगोत्रं,
वन्दे महागिरिं सुहस्तिनञ्च ।
ततः कौशिकगोत्रं,
बहुलस्य सदृग्वयसं वन्दे ॥

हारीतगोत्रं स्वातिं,
च वन्दामहे हारीतञ्च श्यामार्यम् ।
वन्दे कौशिकगोत्रं,
शांडिल्यम् आर्यजीतधरम् ॥

त्रिसमुद्र-ख्यात-कीर्ति,
द्वीपसमुद्रेषु गृहीत-‘पेयालं’ ।
वन्दे आर्यसमुद्रम्,
अक्षुभित-समुद्र-गम्भीरम् ॥

भणकं कारकं क्षरकं,
प्रभावकं ज्ञान-दर्शन-गुणानाम् ।
वन्दे आर्यमङ्गं,
श्रुत-सागर-पारगं धीरम् ॥

ज्ञाने दर्शने च,
तपो-विनये नित्यकालमुद्युक्तम् ।
आर्यं नन्दिलक्षपणं,
शिरसा वन्दे प्रसन्नमनसम् ॥

वर्धतां वाचकवंशो,
यशोवंशो आर्य-नागहस्तिनाम् ।
व्याकरण-करण-भंगी,
कर्मप्रकृति-प्रधानानाम् ॥

स्थविर-आवलिका

२३. अग्निवेश्यायन गोत्रीय सुधर्मास्वामी, काश्यप
गोत्रीय जम्बू, कात्यायन गोत्रीय प्रभव और
वात्स्यगोत्रीय शय्यंभव को वंदना करता
हूँ ।^{११}

२४. तुंगिक गोत्रीय यशोभद्र, माढर गोत्रीय संभूत,
प्राचीन गोत्रीय भद्रबाहु और गौतम गोत्रीय
स्थूलभद्र को वंदना करता हूँ ।^{१२}

२५. एलापत्य सगोत्रीय महागिरि और सुहस्ति
अथवा वशिष्ठ सगोत्र सुहस्ति तथा कोशिक
गोत्रीय बहुल के यमल भ्राता बलिस्सह को
मैं वंदना करता हूँ ।^{१३}

२६. हारित गोत्रीय स्वाति और श्यामार्य, कोशिक
गोत्रीय आद्यजीतधर शाण्डिल्य को वंदना
करता हूँ ।^{१४}

२७. तीन समुद्रों तक जिनकी ख्याति फैली हुई
है, द्वीप और समुद्रों की प्रज्ञप्ति को जो
जानते हैं तथा सागर की भांति जो अक्षुभित
और गंभीर हैं। उन आर्य समुद्र को वंदना
करता हूँ ।^{१५}

२८. जो अध्ययनशील, सूत्र के अर्थ का ध्यान
करने वाले, ज्ञान के प्रवाह को आगे बढ़ाने
वाले, ज्ञान, दर्शन आदि गुणों की प्रभावना
करने वाले हैं। उन श्रुत सागर के पारगामी,
धीर आर्य मंगू को वंदना करता हूँ ।

२९. ज्ञान, दर्शन, तप और विनय में सदा उद्यत
रहने वाले, प्रसन्नमना नंदिल क्षपण को मैं
शिर भुकाकर वंदना करता हूँ ।

३०. व्याकरण, करण (गणित, ज्योतिष) भंग-
रचना और कर्म प्रकृति की रूपाणा में प्रधान
आर्य नागहस्ती का यशस्वी वाचक वंश वृद्धि
को प्राप्त हो ।^{१६}

३१. जच्चञ्जण-धाउसमप्पहाण
मुद्दीय-कुवललयनिहाणं ।
वड्डउ वायगवंसो,
रेवइनक्खत्तनामाणं ॥
- जात्याञ्जन-धातुसमप्रभाणां
मृद्धीका-कुवललयनिभानाम् ।
वर्धतां वाचकवंशो,
रेवतीनक्षत्रनाम्नाम् ॥
३१. जात्यञ्जन धातु के समान कान्तिवाला,
परिपक्व, द्राक्षा और नीलकमल की प्रभा
वाला रेवती नक्षत्र नामक वाचक वंश वृद्धि
को प्राप्त है ।^{१९}
३२. अचलपुरा निकखंते,
कालियसुय-आणुओगिए धीरे ।
बंभद्दीवग-सीहे,
वायगपयमुत्तमं पत्ते ॥
- अचलपुरात् निष्क्रान्तान्,
कालिकश्रुत-अनुयोगिकान् धीरान् ।
ब्रह्मदीपिक-सिंहान्
वाचकपदमुत्तमं प्राप्तान् ॥
३२. अचलपुर से अभिनिष्क्रमण कर, कालिक
श्रुत के अनुयोग को धारण करने वाले, धीर,
ब्रह्मदीपक शाखा में प्रव्रजित होने वाले सिंह
मुनि उत्तम वाचक पद को प्राप्त हुए ।^{२०}
३३. जेसि इमो अणुओगो,
पयरइ अज्जावि अड्डभरहम्मि ।
बहुनयर-निगगय-जसे,
ते वंदे खंदिलायरिए ॥
- येषाम् अयम् अनुयोगः,
प्रचरति अद्यापि अर्द्धभरते ।
बहुनगर-निगंत-यशसः,
तान् वन्दे स्कन्दिलाचार्यान् ॥
३३. जिनका अनुयोग आज भी अर्द्धभरत में
प्रचलित है और यश बहुत नगरों में फैला
हुआ है उन स्कन्दिलाचार्य को वंदना करता
हूँ ।
३४. तत्तो हिमवंतमहंत-विक्कमे
धिइ-परक्कममणते ।
सज्झायमणंतधरे,
हिमवंते वंदिमो सिरसा ॥
- ततो हिमवन्महा-विक्रमान्
अनन्तधृतिपराक्रमान् ।
अनन्तस्वाध्यायधरान्,
हिमवतो वन्दामहे शिरसा ॥
३४. हिमालय की तरह महान् विक्रम वाले,
व्यापक सामर्थ्य वाले, महान् धृति और
पराक्रम वाले, अनंत स्वाध्याय करने वाले
श्री हिमवंत आचार्य को नतमस्तक वंदना
करता हूँ ।^{२१}
३५. कालियसुयअणुओगस्स
धारए धारए य पुव्वाणं ।
हिमवंतखमासमणे,
वंदे नागज्जुणायरिए ॥
- कालिकश्रुतानुयोगस्य
धारकान् धारकान् च पूर्वाणाम् ।
हिमवतः क्षमाश्रमणान्,
वन्दे नागार्जुनाचार्यान् ॥
३५. कालिक श्रुत-अनुयोग के धारक तथा पूर्वो
के धारक श्री हिमवंत क्षमाश्रमण को और
उनके शिष्य नागार्जुनाचार्य को वंदना करता
हूँ ।^{२२}
३६. मिउ-मद्व-संपण्णे,
अणुपुव्वि वायगत्तणं पत्ते ।
ओह-सुय-समायारे,
नागज्जुणवायए वंदे ॥
- मृदु-मार्दव-सम्पन्नान्,
आनुपूर्व्या वाचकत्वं प्राप्तान् ।
ओघ-श्रुत-समाचारान्,
नागार्जुनवाचकान् वन्दे ॥
३६. जो मृदु मार्दव सम्पन्न क्रमशः वाचक पद को
प्राप्त हुए और जिन्होंने उत्सर्ग श्रुत
(कालिक-श्रुत) का समाचरण किया—इसकी
परम्परा को आगे बढ़ाया, संधान किया ।
उन वाचक नागार्जुनाचार्य को वंदना करता
हूँ ।
३७. वरत्तविय-कणग-चंपग-
विमउल-वरकमल-गब्भ-सरिवण्णे ।
भविय-जण-हियय-दइए,
दया-गुण-विसारए धीरे ॥
- वरत्त-कनक-‘चंपग’-
विमुकुल-वरकमल-गर्भ-सदृशवर्णान् ।
भविक-जन-हृदय-दयितान्,
दया-गुण-विशारदान् धीरान् ॥
- ३७-३९, जो श्रेष्ठ तपाए हुए स्वर्ण, चम्पा के
पुष्प और विकस्वर कमल के पराग के समान
वर्णवाले हैं । भव्यजन के लिए हृदयहारी हैं,
दया गुण में विशारद और धीर हैं, अर्द्धभरत
में युग प्रधान एवं बहुविध स्वाध्यायवेत्ताओं
में श्रेष्ठ हैं, अनुयोग में (वैयावृत्य आदि में)
जिन्होंने अपने साधुओं को नियोजित किया
है । नाइलकुलवंश को प्रभुदित करने वाले हैं,
जो प्राणियों का हित करने में प्रगल्भ हैं और
३८. अड्डभरह-प्पहाणे,
बहुविह-सज्झाय-सुमुणिय-पहाणे ।
अणुओगिय-वर-वसभे,
नाइल-कुलवंस-नंदिकरे ॥
- अर्द्धभरत-प्रधानान्,
बहुविध-स्वाध्याय-सुज्ञात-प्रधानान् ।
अनुयोजित-वर-वृषभान्,
नागिल-कुलवंश-नन्दिकरान् ॥

३९. भूयहिअ-प्पगब्भे,
वंदेहं भूयदिण्णमायरिए ।
भव-भय-वुच्छेयकरे,
सीसे नागज्जुणरिसीणं ॥
(विसेसयं)

भूतहित-प्रगल्भान्,
वन्देऽहं भूतदिज्ञाचार्यान् ।
भव-भय-व्युच्छेदकरान्
शिष्यान् नागार्जुनऋषीणाम् ॥
(विशेषकम्)

संसार के भय का विच्छेद करने वाले हैं, उन नागार्जुन ऋषि के शिष्य श्री भूतदिन्न आचार्य को मैं वंदना करता हूँ ।^{३९}

४०. सुमुणिय-णिच्चाणिच्चं,
सुमुणिय-सुत्तत्थ-धारयं निच्चं ।
वंदेहं लोहिच्चं,
सब्भावुब्भावणा-तच्चं ॥

सुज्ञात-नित्यानित्यं,
सुज्ञात-सूत्रार्थ-धारकं नित्यम् ।
वन्देऽहं लोहित्यं,
सद्भावनोद्भावना-तथ्यम् ॥

४०. जो नित्यानित्य पदार्थों को जानने वाले हैं, नित्य सुविदित सूत्र और अर्थ के धारक हैं तथा पारमार्थिक पदार्थ का तथ्य के रूप में उद्भावन करने वाले हैं, उन लोहित्य नामक आचार्य को वंदना करता हूँ ।^{४०}

४१. अत्थ-महत्थ-क्खाणि सुसमण-
वक्खाण-कहण-निव्वारिण ॥
पयईए महुरवारिण,
पयओ पणमाणि दूसर्गणि ॥

अर्थ-महार्थ-खानि सुश्रमण-
व्याख्यान-कथन-निर्वृतिम् ।
प्रकृत्या मधुरवाणीकं,
प्रयतः प्रणमामि दूष्यगणिनम् ॥

४१. जो अर्थ और महार्थ के आकर हैं, प्रकृति से ही मधुर वाणी वाले हैं, जिनकी व्याख्यान विधि श्रोतागण को शांति देने वाली है, उन श्री दूष्यगणि को संयत होकर प्रणाम करता हूँ ।

४२. सुकुमाल-कोमल-तले,
तेसि पणमामि लक्खण-पसत्थे ।
पाए पावयणीणं,
पाडिच्छगसएहं पणिवइए ॥

सुकुमार-कोमल-तलान्,
तेषां प्रणमामि लक्षण-प्रशस्तान् ।
पादान् प्रावचनिनां,
प्रातिच्छिक्कशतैः प्रणिपतितान् ॥

४२. मैं सैकड़ों उपसम्पन्न मुनियों से नमस्कृत, सुकुमार, कोमलतल तथा प्रशस्त लक्षण वाले उन प्रावचनिकों के चरणों में नमस्कार करता हूँ ।^{४२}

४३. जे अन्ने भगवन्ते,
कालिय-सुय-आणुओगिए धीरे ।
ते पणमिऊण सिरसा,
नाणस्स परूवणं वोच्छं ॥

ये अन्ये भगवन्तः,
कालिक-श्रुत-अनुयोगिकान् धीरान् ।
तान् प्रणम्य शिरसा,
ज्ञानस्य परूपणां वक्ष्ये ॥

४३. अन्य कालिक श्रुत अनुयोग को धारण करने वाले धीर भगवान् हैं, उनको शिरसा नमस्कार कर ज्ञान की परूपणा कर्हंगा ।^{४३}

परिसा-पदं

४४. १. सेल-घण २. कुडग ३. चालणि,
४. परिपूणग ५. हंस ६. महिस
७. मेसे य ।
८. मसग ९. जलूग १०. बिराली,
११. जाहग १२. गो १३. भेरि
१४. आभीरी ॥

परिषद्-पदम् —

१. शैल-घन २. कुटक ३. चालनी,
४. 'परिपूणग' ५. हंस ६. महिष
७. मेषश्च ।
८. मशक ९. जलौका १०. विडाली
११. जाहक १२. गो
१३, १४. भेर्याभीर्यः ॥

परिषद्-पद

४४. ^{३९}वाचना के योग्य और अयोग्य—
मुद्ग शैल-घन, घट, चालनी, बया का
घौसला, हंस, महिष, मेष, मशक, जलौका,
बिल्ली, जाहक, गौ, भेरी और आभीरी—इस
प्रकार श्रोता अनेक प्रकार के होते हैं ।^{४०}

१. सा समासओ त्रिविहा पणत्ता,
तं जहा—जाणिया, अजाणिया,
दुव्वियड्ढा ॥

१. सा समासतः त्रिविधा प्रज्ञप्ता,
तद्यथा—ज्ञा, अज्ञा, दुर्विदग्धा ।

१. श्रोता की परिषद् संक्षेपतः तीन प्रकार की
प्रज्ञप्त हैं—१. ज्ञा २. अज्ञा ३. दुर्विदग्धा ।

टिप्पण

गाथा १

१. जगत् के समस्त जीवों की उत्पत्ति के ज्ञाता (जगजीवजोणी-वियाणओ)

जीव और उसके उत्पत्ति स्थानों पर जितना विचार जैन दर्शन ने किया है उतना विश्व दर्शन में किसी ने नहीं किया है। 'जीवों के छः निकाय हैं' यह जैन दर्शन की मौलिक स्थापना है। चूर्णिकार ने 'जीवजोणी-वियाणओ' के तीन अर्थ किए हैं—

१. जीवों की सच्चित्त-अचित्त आदि नौ तथा चौरासी लाख योनियों की उत्पत्ति स्थान के ज्ञाता।

२. कौन जीव किस कर्म के द्वारा किस योनि में उत्पन्न होता है, इसका विज्ञाता—कर्म और कर्मानुसारी उत्पत्ति स्थान का विज्ञाता।

३. जगत् (अजीव द्रव्य) और जीव दोनों के उत्पत्ति स्थानों का ज्ञाता—जैसे जीव और अजीव उत्पन्न होते हैं, नष्ट होते हैं और स्थिर रहते हैं उसका ज्ञाता।

हरिभद्र और मलयगिरि ने केवल प्रथम अर्थ का उल्लेख किया है।^१

'जगजीवजोणी-वियाणओ' इसके तात्पर्यार्थ में तीनों व्याख्याकार एकमत हैं। उसका आशय यह है कि भगवान् केवलज्ञान के सामर्थ्य से सर्वथा सब भावों को जानते हैं।^१

२. जगत् के गुरु (जगगुरु)

चूर्णिकार ने जगत् का अर्थ समनस्क जगत् किया है।^२ भगवान् उसके लिए अर्थ का प्रतिपादन करते थे इसलिए उन्हें जगत् गुरु कहा गया है।

चूर्णिकार का यह अर्थ रहस्यपूर्ण है। अर्थ को समझने के लिए केवल भाषा पर्याप्त नहीं है उसके लिए ईहा, अपोह, विमर्श और मार्गणा—ये सब आवश्यक होते हैं। ये सब मन के कार्य हैं।^३ इसका तात्पर्यार्थ यह है कि भाषा और मन दोनों का योग होने पर ही अर्थ का बोध हो सकता है। इसलिए चूर्णिकार ने जगत् का अर्थ समनस्क लोक किया है वह समीक्षापूर्वक किया गया है।^४

हरिभद्र और मलयगिरि की व्याख्या में जगत् का अर्थ संज्ञी-लोक विवक्षित नहीं है।

३. जगत् को आनन्द देने वाले (जगाणंदो)

चूर्णिकार ने जगत् के तीन अर्थ किए हैं—

१. किसी भी प्राणी का वध मत करो—यह उपदेश जगत् को आनन्द देने वाला है। इसलिए भगवान् जगदानन्द—प्राणी

१. नन्दी चूर्ण, पृ. १ : जगं ति—खेत्तलोगो तम्मि जे जीवा तेसि जाओ जोणीओ—सच्चित्त-सोत-संबुडादियाओ चउरासीतिलभखविहाणा वा विविहपगारेहि जाणमाणो वियाणओ। अहवा जो जहा जेहि कम्मैहि जाए जोणीए उववज्जति तं तथा जाणति त्ति विसिट्ठो जाणगो वियाणगो। अहवा जगगहणातो धम्मा-धम्मो-सगास-पुगगलगहणं, जीव त्ति सब्बजीवगहणं, जोणि त्ति—जीवाऽजीवुप्पत्ति-ठाणं, जहा य जं उप्पज्जति विगव्छति धुवं वा तं तथा सब्बं जाणइ त्ति वियाणगो।

२. (क) हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ३

(ख) मलयगिरिया वृत्ति, पृ. ३

३. नन्दी चूर्ण, पृ. १ : केवलणाणसामत्थतो सब्बभावे सब्बहा

जाणति।

४. नन्दी चूर्ण, पृ. २ : 'जगगुरु' त्ति जगं ति—सब्बसण्णिलोगो, तस्स भगवानेव गुरुः।

५. नवसुत्ताणि, नन्दी सू. ६२

६. नन्दी चूर्ण, पृ. २ : जगं त्ति—सब्बसण्णिलोगो।

७. वही, पृ. २ : जगा—सत्ता ताण आणंदकारी जगाणंदो। कहां? उच्यते—सर्वेसि सत्ताणं अब्बावादणोव-देसकरणत्तातो। जतो भणितं—'सब्बे सत्ता ण हंतव्वा ण परियावेतव्वा ण परिघेतव्वा ण अज्जावेतव्व' त्ति। विसेसतो सण्णीणं धम्मकहणत्तातो आणंदकारी, ततो वि विसेसतो भव्वसत्ताणं त्ति। अनेन वचनेन हितोपदेशकर्तृत्वं दर्शितं भवति।

मात्र के लिए आनन्दकारक है ।

२. समनस्क जीव उनके धर्मोपदेश को ग्रहण करते हैं इसलिए भगवान् जगदानन्द हैं ।

३. समनस्क जीवों में भी भव्य जीव उनके धर्मोपदेश को ग्रहण करते हैं इसलिए भगवान् जगदानन्द हैं ।

इससे भगवान् का हितोपदेशकर्तृत्व परिलक्षित होता है । हरिभद्र एवं मलयगिरि ने प्रस्तुत शब्द की व्याख्या में जगत् का अर्थ समनस्क पञ्चेन्द्रिय किया है ।^१ उन्होंने चूर्णिकार के शेष दो विकल्पों को अपनी व्याख्या में स्थान नहीं दिया । इसका हेतु व्याख्या का संक्षेपीकरण हो सकता है ।

चूर्णिकार ने 'जगगुरु' की व्याख्या में जग का अर्थ 'समनस्क लोक' किया है और 'जगानंद' की व्याख्या में जगत् का मुख्य अर्थ 'सत्त्व' किया है । इसे एक नए सत्य की उद्भावना होती है । शास्त्रार्थ का ग्रहण करने में समनस्क जीव समर्थ हैं । आनन्द का अनुभव अमनस्क व समनस्क सभी जीव कर सकते हैं । आनन्द या सुख संवेदनात्मक है इसलिए यह प्रत्येक प्राणी के लिए संभव है । टीकाकारद्वय की व्याख्या से ज्ञानात्मक और संवेदनात्मक इन दो स्थितियों की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट नहीं होता ।

४. जगत् के स्वामी (जगणाहो)

मलयगिरि ने नाथ का अर्थ 'योगक्षेम' किया है ।^२ चूर्णिकार ने योगक्षेम की व्याख्या अहिंसात्मक दृष्टि से की है । भगवान् दूसरे जीवों के द्वारा सताये जाने वाले, मारे जाने वाले जीवों की रक्षा करते हैं इसलिए वे जगन्नाथ हैं । तात्पर्य की भाषा में मनसा, वाचा और कर्मणा कृत, कारित और अनुमत से किसी का परिताप और वध नहीं करते इसलिए वे जगन्नाथ हैं ।^३

हरिभद्र ने योगक्षेम के दो हेतु बतलाए हैं—

१. यथावस्थित तत्त्व का प्ररूपण करते हैं ।

२. जीव हिंसा में कोई दोष नहीं है इस प्रकार की मिथ्या प्ररूपणा से उत्पन्न भ्रम को दूर करते हैं ।

मलयगिरि ने भी हरिभद्र का अनुसरण किया है ।

५. जगत्बन्धु (जगबंधु)

भगवान् प्राणिमात्र के बन्धु हैं । जो आपत् काल में साथ नहीं छोड़ता वह बन्धु होता है । भगवान् परीषह और उपसर्ग की स्थिति आने पर भी न किसी जीव की हिंसा करते, न किसी के प्रति अनिष्ट चिन्तन करते ।^४ जयाचार्य ने महावीर की उपसर्गकालीन मनोदशा का चित्रण किया है । संगमदेव महावीर को मरणान्त कष्ट दे रहा है । उस समय महावीर सोच रहे हैं—

संगम दुःख दिया आकरा पिण सुप्रसन्न निजर दयाल ।

जग उद्धार हुवै मो थकी रे, ए डूबै इण काल ॥

६. जगत्पितामह (जगत्पियामहो)

अहिंसा लक्षणवाला धर्म सब सत्त्वों का रक्षक होने के कारण पिता कहलाता है । भगवान् धर्म का प्रणयन करते हैं इसलिए वे धर्म के पिता हैं । इस प्रकार वे प्राणिमात्र के पितामह हो जाते हैं । भगवान् पितामह है इससे यह सूचित होता है कि वे धर्म की अपेक्षा आदिपुरुष हैं ।^५

१. (क) हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ३

(ख) मलयगिराया वृत्ति, प. १२

२. मलयगिराया वृत्ति, प. १३

३. नन्दी चूर्ण, पृ. २ : जगा—सत्ता ते अण्णेहि परिभविज्ज-
माणे रक्खइ त्ति जगणाहो । कंहं ? उच्चते—मणो-वयण-
कार्णहि कत-कारिताण्णुमतेहि रक्खंतो जगणाहो भवति ।
अनेन वचनेन सव्वपाणीणं सणाहता दंसिता भवति ।

४. हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ३ : 'जगन्नाथः' इह जगच्छब्देन
सकलचराचरपरिग्रहः, तस्य यथावस्थितस्वरूपप्ररूपणद्वारेण
वितथप्ररूपणापायेभ्यः पालनाद् नाथवद् नाथ इति ।

५. नन्दी चूर्ण, पृ. २ : 'जगबंधु' त्ति जगा—सत्ता तेसि बंधु

जगबंधु । कंहं ? उच्चते—जो अण्णो परस्स वा आवतीए
वि ण परिच्चयति सो बंधू, भगवं च सुट्ठु वि परीसहो-
वसग्गादिसु बाहिज्जमाणो वि सत्तेसु बंधुत्तं अपरिच्चयंतो ण
विराहेति त्ति । अतो जगबंधू, अनेन वचनेन सव्वसत्तेसु
संबंधुता दंसिता भवति ।

६. चौबीसी, २४ ।

७. नन्दी चूर्ण, पृ. २ : सव्वसत्ताणं अहिंसादिलक्खणो धम्मो
पिता रक्खणत्तातो, सो य धम्मो भगवता पणीतो अतो
भगवं धम्मपिता, एवं च सव्वसत्ताणं भगवं पितामहो त्ति ।
अनेन वचनेन धम्मं पडुच्च आदिपुरिसत्तं ख्यापितं भवति ।

७. विजयी हो (जयइ)

यह क्रियापद है। इसका अर्थ है जीतना। इस क्रियापद का प्रयोग महावीर की स्तुति में हुआ है। वे मुनि हैं। राजा के संदर्भ में 'जयइ' शब्द का प्रयोग शत्रु जीतने के अर्थ में होगा। इस आशंका को ध्यान में रखकर चूर्णिकार ने छः जेय वस्तुओं का निर्देश किया है—

१. इन्द्रिय-विषय
२. कषाय
३. परीषह
४. उपसर्ग
५. घाति कर्म अथवा अष्टविध कर्म
६. परप्रावादुक।

हरिभद्र और मलयगिरि की व्याख्या में जेय वस्तुओं का क्रम भिन्न है।

१. इन्द्रिय-विषय २. कषाय ३. घातिकर्म अथवा भवोपग्राही कर्म।^१

मलयगिरि ने हरिभद्र से अतिरिक्त परीषह और उपसर्ग का भी उल्लेख किया है।^१

'जयइ' इस क्रियापद का निर्देश वर्तमान और अतीत दोनों अर्थों में किया गया है। इन्द्रिय-विषय और कषाय—इन्हें महावीर केवली बनने से पूर्व जीत चुके थे। परीषह और उपसर्ग को भी जीत रहे थे। इसलिए प्रस्तुत क्रियापद अतीत और वर्तमान दोनों का गमक है।

सूत्रकार महावीर की स्तुति में उनका साक्षात्कार कर रहे हैं इसलिए अतीत के अर्थ में वे वर्तमान क्रियापद का प्रयोग करते हैं।

गाथा २

द. शास्त्रों के उद्भावक (सुयाणं पभवो)

प्रस्तुत प्रकरण में श्रुत का अर्थ है आगम। अनुयोगद्वार में श्रुत और आगम एकार्थक बतलाए गए हैं।^१ श्रुत के मूल स्रोत तीर्थङ्कर होते हैं इसलिए उन्हें श्रुत का प्रभव कहा गया है। जिनभद्रगणि ने लिखा है कि श्रुत तीर्थङ्कर से प्रवृत्त होता है।^१

६. तीर्थङ्करों में अन्तिम (अपच्छिमो)

महावीर चरम तीर्थङ्कर थे फिर भी उन्हें अपश्चिम कहा गया। चूर्णिकार ने इसके दो हेतु बतलाए हैं—

१. पश्चिम शब्द इष्ट नहीं है अतः अनिष्ट का परिहार करने के लिए अपश्चिम शब्द का प्रयोग किया गया है।

२. पश्चानुपूर्वी के अनुसार महावीर प्रथम और ऋषभ अन्तिम तीर्थङ्कर होते हैं।

मलयगिरि ने व्याकरण की दृष्टि से इसका तीसरा अर्थ किया है। इस अवसर्पिणी कालखण्ड में महावीर के पश्चात् कोई तीर्थङ्कर नहीं होगा इसलिए वे अपश्चिम हैं।^१

१०. महात्मा (महप्पा)

चूर्णिकार ने महात्मा कहने के दो कारण बताए हैं—

१. नन्दी चूर्ण, पृ. १ : सोतिदियादिविसय-कसाय-परीसहो-
वसग-चउघातिकम्म-ऽटुपगारं वा परप्पवादिणो य जिणमाणो
जित्तं सु वा जयति त्ति भण्णति ।

२. हरिभद्राया वृत्ति, पृ. २

३. मलयगिरीया वृत्ति, प. ३

४. अणुओगदाराइं, सू. ५१

५. विशेषावश्यकभाष्य, गा. १११९ :

अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं ।

सासणस्स हियट्ठाए तओ सुत्तं पवत्तइ ॥

६. नन्दी चूर्ण, पृ. २ : अणिट्ठवयणपरिहारतो पच्छिमो वि
अपच्छिमो भण्णति, अह्वा पच्छाणुपुव्वीए अपच्छिमो,
रिसभो पच्छिमो ।

७. मलयगिरीया वृत्ति, प. २१

द. नन्दी चूर्ण, पृ. २ : महं आता जस्स सो य अकम्मवीरिय-
सामत्थतो महात्मा, केवलादिविसिट्ठलद्धिसामत्थतो वा
महात्मा ।

१. अकर्मवीर्य सामर्थ्य ।

२. कैवल्य आदि विशिष्ट लब्धि का सामर्थ्य ।

अकर्मवीर्य श्रमण परम्परा का उल्लेखनीय अवदान है । वीर्य दो प्रकार का होता है—

१. सकर्म वीर्य

२. अकर्म वीर्य ।

सूत्रकृताङ्ग में वीर्य के इन दोनों प्रकारों का सुन्दर विवेचन मिलता है । व्रती मनुष्य के अकर्मवीर्य होता है ।^१ भगवान् महावीर में अकर्मवीर्य का सामर्थ्य था इसलिए उन्हें महात्मा कहा गया है ।

गाथा ४-१७

११. (गाथा ४-१७)

जैन शासन में संघबद्ध साधना की पद्धति प्रारम्भ से रही है । तीर्थङ्कर का अर्थ ही है संघबद्ध साधना का प्रवर्तक । साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका—यह चतुर्विध संघ है ।^२ तीर्थङ्कर इस चतुर्विध संघ का प्रवर्तन करते हैं । इतिहासविदों का मत है कि संघबद्ध साधना का क्रम भगवान् पार्श्व ने शुरू किया था ।

प्रस्तुत आगम में संघ आठ उपमाओं के द्वारा वर्णित है—

१. संघ एक रथ है ।

२. संघ एक चक्र है ।

३. संघ एक नगर है ।

४. संघ एक पद्म है ।

५. संघ चन्द्रमा है ।

६. संघ सूर्य है ।

७. संघ समुद्र है ।

८. संघ मेरु है ।

१. संघ गतिशील और मार्गानुगामी होता है इसलिए उसकी रथ से तुलना की गई है । कहा भी है^३—

आसासो वीसासो, सीतघरसमो य होति मा भाहि ।

अम्मापितीसमाणो, संघो सरणं तु सब्वेसि ॥

२. संघ विजयी होता है इसलिए उसकी विजयक्षम चक्र के साथ तुलना की गई है ।

३. नगर प्राकारयुक्त होने के कारण सुरक्षा देता है संघ भी साधक के लिए सुरक्षा देता है, इसलिए संघ की नगर के साथ तुलना की गई है ।

४. जैसे पद्म जल में रहता हुआ भी उससे लिप्त नहीं होता वैसे संघ राग-द्वेषात्मक लोक में रहता हुआ भी उससे लिप्त नहीं होता । इस आधार पर संघ की पद्म के साथ तुलना की गई है ।

५. सौम्यता और निर्मलता की दृष्टि से संघ की चन्द्रमा के साथ तुलना की गई है ।

६. प्रकाशकता और तेजस्विता की दृष्टि से संघ की सूर्य के साथ तुलना की गई है ।

७. अक्षुब्धता, विशालता और मर्यादा की दृष्टि से संघ की समुद्र के साथ तुलना की गई है ।

८. स्थिरता और अप्रकम्पता की दृष्टि से संघ की मेरु पर्वत के साथ तुलना की गई है ।

शब्द विमर्श—

गाथा ५

पारियल्ल—भ्रमिं^४

१. सूयगडो, १।८।१

२. भगवई, २०।७४ : तित्थं पुण चाउवण्णं समणसंघे, तं जहा—समणा, समणीओ, सावया, सावियाओ ।

३. व्यवहारभाष्य, गा. १६८१

४. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ३ : जा बाहिरपुट्टयस्स बाहिरब्भमी ।

(ख) हारिभद्रीय वृत्ति, पृ. ६

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ४३

अप्पडिचवक—अप्रतिद्वन्दी^१

गाथा ६

शील—आचार—व्याख्याकारों ने अठारह हजार शीलाङ्गों का निर्देश किया है। द्रष्टव्य—दशवैकालिक ८।४० का टिप्पण।

तप—अनशन आदि^२

नियम—इन्द्रिय और मन का संयम^३

गाथा ७

रयण—चूर्णिकार, हरिभद्र और मलयगिरि ने 'सुयरयण' का अर्थ श्रुतरत्न किया है, किन्तु नाल के प्रसंग में रयण का रत्न अर्थ संगत नहीं लगता। इसलिए यहां 'सुयरयण' का अर्थ श्रुतरचना होना चाहिए। हमारे इस अनुमान की पुष्टि 'पुव्वगत' की व्याख्या में प्रयुक्त 'सुत्तरयण' शब्द से होती है। चूर्णिकार के अनुसार तीर्थङ्कर तीर्थ-प्रवर्तन काल में पहले पूर्वगत सूत्र का निरूपण करते हैं फिर गणधर आचारादि के क्रम से सूत्र की रचना करते हैं। इस प्रसंग में रयण का अर्थ रचना संगत लगता है।^४

कण्ण्य—कर्णिका—कमलगट्टा का कोष peracarif of a lotus चूर्णिकार ने कर्णिका का अर्थ बाह्यपत्र किया है।^५ हरिभद्र और मलयगिरि ने मध्यगण्डिका किया है।^६

केसराल—पुष्प का पक्षम Filament of a flower—चूर्णिकार ने 'केसराल' शब्द का संधिच्छेद केसर+आल कर आल का अर्थ 'अधिक योग युक्त' किया है।^७ वास्तव में यह मत्वर्थीय प्रत्यय होना चाहिए। मलयगिरि ने मत्वर्थीय प्रत्यय का उल्लेख किया है।^८

गाथा ९

अकिरिय—नास्तिकवादी

गाथा १०

परतिस्थिय—चूर्णिकार ने इस प्रसंग में हरि, हर, हिरण्य, शाक्य, वैशेषिक, चरक, तापस आदि का उल्लेख किया है।^९ हरिभद्र ने सांख्य, वैशेषिक और नैयायिक का उल्लेख किया है।^{१०} मलयगिरि ने इनके अतिरिक्त सुगत का भी उल्लेख किया है।^{११}

लेस्स—रश्मि—चूर्णिकार ने 'लेस्स' का अर्थ 'रस्सी' किया है।^{१२} इस आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि लेस्स शब्द का संबंध लेश्या से नहीं, किन्तु रश्मि से है। 'श्लिष्यते सा लेश्या' यह व्युत्पत्ति उत्तरकालीन है। चूर्णिकार ने लेश्या का अर्थ रश्मि, हरिभद्र ने दीधिति (रश्मि)^{१३} और मलयगिरि ने भास्वरता किया है।^{१४}

गाथा ११

धिइ—मन को नियन्त्रित करने वाली बुद्धि।

रुंद—विशाल।

अक्खोभस्स—अविचलनीय।

१. मलयगिरीया वृत्ति, प. ४३ : न विद्यते प्रति अनुरूपं समानं चक्रं यस्य तदप्रतिचक्रं।
२. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ३ : बारसविहो तवो।
(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. ४३
३. नन्दी चूर्ण, पृ. ३ : इंदिय-णोइंदियो य णियमो।
४. वही, पृ. ७५ : जम्हा तित्थकरो तित्थपवत्तणकाले गणधराण सव्वसुताधारत्तणतो पुव्वं पुव्वगतसुतत्थं भासति तम्हा पुव्व त्ति भणिता, गणधरा पुण सुत्तरयणं करेन्ता आयाराइकमेण रयति दुवेति य।
५. वही पृ. ४ : कण्ण्य त्ति बाहिरपत्ता।
६. (क) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ६ : मध्यगण्डिका।
(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. ४४

७. नन्दी चूर्ण, पृ. ४ : आलस्स त्ति—अधिकयोगयुक्तस्य गुणकेसरालस्स मूलादि गुणकेसरयुक्तस्य।
८. मलयगिरीया वृत्ति, प. ४४
९. नन्दी चूर्ण, पृ. ४ : हरि-हर-हिरण्य-सक्कोलूक-चरग-तावसादयो परतिस्थिया गहा।
१०. हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ७ : परतीथिका—कपिल-कणभक्षा-क्षपादादिमतावलम्बिनः।
११. मलयगिरीया वृत्ति, प. ४५ : कपिलकणभक्षाक्षपादसुगता-दिमतावलम्बिनः।
१२. नन्दी चूर्ण, पृ. ४ : लेस्सत्ति—रस्सीयो।
१३. हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ७
१४. मलयगिरीया वृत्ति, प. ४५

चूर्णिकार ने क्षुब्धता के दो हेतु बतलाए हैं—

१. परप्रवाद—अन्य दार्शनिकों का विचार ।
२. उपसर्ग ।

गाथा १२

रूढ—बद्धमूल ।

गाढ—तीव्र तत्त्वचिसम्पन्न ।

अवगाढ—जीव आदि पदार्थों में अत्यन्त निमज्जन करनेवाला ।

मेखला—पर्वत का मध्यभाग ।

गाथा १३

उज्ज्वल—उज्ज्वल—उज्ज्वलता का कारण है कर्ममल की विशुद्धचिन्तमानता ।

उसिय—उच्छ्रुत—ऊँचाई का कारण है अशुभ अध्यवसाय का परित्याग ।

जलन्त—ज्वलन्त—ज्वलन्त होने का कारण है सूत्र और अर्थ का निरन्तर अनुस्मरण ।

चित्त—जिससे जाना जाता है, चिन्तन किया जाता है वह चित्त है ।^१

उद्धमाय—व्याप्त ।

गाथा १४

कन्दरा—दर्रा [दो चट्टानों अथवा पहाड़ों के बीच का मार्ग]^१ ।

दीप्त—ज्ञान आदि रत्नों से दीप्त, क्ष्वेलौषधि आदि लब्धि रूपी औषधियों से दीप्त ।

गाथा १५

संवर—प्रत्याख्यान^२—संवर के साथ नियमतः निर्जरा होती है इस अपेक्षा से संवर की जल से तुलना की गई है । हरिभद्रसूरि का यह मत है । मलयगिरि ने संवर की जल के साथ तुलना के तीन हेतु बतलाए हैं—

१. कर्ममल का प्रक्षालन ।
२. सांसारिक प्यास को बुझानेवाला ।
३. परिणाम सुन्दर ।

उज्जर—पर्वत के अग्रभाग से भरनेवाला जलप्रवाह ।

चूर्णिकार ने बतलाया है कि क्षायोपशमिक जल की निर्मल धारा संघ में निरन्तर प्रवहमान होती है ।^३

पउर-रवंत—प्रचुर रव का उल्लेख स्तोत्र, स्तुति, गीत आदि की अपेक्षा से किया गया है ।^४

कुहर—पर्वत की तलहटी का वृक्षों से आकुल समतल प्रदेश । मण्डप की तुलना कुहर से की गई है ।

गाथा १६

चूर्णिकार ने 'विणयमय' पाठ की व्याख्या की है^५ तथा 'कुसुमाउलवणस्स' पाठ की व्याख्या स्वीकार की है ।^६

१. नन्दी चूर्ण, पृ. ४ : परप्रवादोपसर्गादिभिर्न क्षुभ्यते ।

२. (क) वही, पृ. ५ : चित्तिज्जइ जेण तं चित्तं ।

(ख) हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ८

३. अभिधानचिन्तामणि, ४।९९ : दरा स्यात्कन्दरो ।

४. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ६ : संवरो त्ति पच्चक्खाणं ।

(ख) हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ९

५. मलयगिरीया वृत्ति, प. ४७ : कर्ममलप्रक्षालनात् सांसारिक-
तृडपनोदकारित्वात् परिणामसुन्दरत्वाच्च वरजलमिव
संवरवरजलम् ।

६. नन्दी चूर्ण, पृ. ६ : खाइगभावातो खयोवसमियं उज्जरं,
ततो पल्लविता खतोवसमितसंवरदगधारा ।

७. (क) वही, पृ. ६ : पउरो त्ति—बहू प्रचुरः सो य गीत-
द्वणीए रवति त्ति—रडती ।

(ख) हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ९

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ४७

८. नन्दी चूर्ण, पृ. ६ : विणयकरणत्तातो विणयमतो मुणी ।

९. वही, पृ. ६

इस गाथा का तात्पर्यार्थ यह है—प्रावचनिक पुरुष संघ के शिखर हैं। विविध कुलों में उत्पन्न साधु कल्पवृक्ष हैं। वे क्षीरा-स्रव आदि लब्धि रूपी फलों से भुके हुए हैं। लब्धि के हेतु कुसुम हैं। वह संघ-शिखर विनय रूपी तप से ज्योतिर्मय प्रतीत हो रहा है।

हरिभद्र^१ और मलयगिरि^२ ने धर्म को फल स्थानीय और कुसुम को लब्धि स्थानीय बतलाया है।

गाथा १७

कंत—कान्तियुक्त।

दिप्यंत—मति, श्रुत आदि प्रधान ज्ञान के द्वारा जीव आदि पदार्थों की उपलब्धि होने के कारण दीप्यमान।^१

यहां विशिष्ट ज्ञानयुक्त युगप्रधान पुरुष चूड़ा के रूप में विवक्षित हैं।^२

गाथा १८, १९

१२. (गाथा १८, १९)

पूर्ववर्ती गाथाओं में चरम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर और संघ को प्रणाम किया गया है। अग्रिम गाथाओं में आवली का निरूपण है। आवली तीन प्रकार की होती है—१. तीर्थकरावली २. गणधरावली ३. स्थविरावली।

प्रस्तुत दो गाथाओं में तीर्थकरावली का निर्देश है।

गाथा २३

१३. (गाथा २३)

आगम साहित्य में भगवान् महावीर के उत्तरवर्ती आचार्यों की दो आवलियां मिलती हैं। नन्दी में अनुयोगधर अथवा युगप्रधान स्थविरों की आवली है।^१ कल्पसूत्र में स्थविरों की आवली है, वह विस्तृत है। उसमें अनेक शाखाओं का उल्लेख है।^२ भूमिका में दोनों आवलियों का निदर्शन है।^३

सुधर्मा—

महावीर की परम्परा में प्रथम युगप्रधान है सुधर्मा। विदेह प्रदेश (उत्तर बिहार) की राजधानी वैशाली के समीप कोल्लाग सन्निवेश में ब्राह्मण परिवार में सुधर्मा का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम धम्मिल और माता का नाम भद्रिला था। अग्नि-वैश्यायन उनका गोत्र था।^४

ब्राह्मण सुधर्मा ने श्रमण दीक्षा ग्रहण कर गणधर का स्थान प्राप्त किया। जैन शासन में तीर्थङ्कर के बाद सर्वोच्च पद गणधर का होता है। गणधर अतुल बल सम्पन्न एवं उत्कृष्ट ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के धनी होते हैं।^५

गणधर की रूप सम्पदा तीर्थङ्कर से किञ्चिन्मून एवं आहारक शरीर, चक्रवर्ती आदि अन्य सबसे विशिष्ट होती है।^६

आचार्य सुधर्मा पचास वर्ष तक गृहस्थ जीवन में रहे। उन्हें तीस वर्ष तक भगवान् महावीर की सन्निधि प्राप्त हुई। वीर निर्वाण के बाद बारह वर्ष का छद्मस्थकाल और आठ वर्ष का केवलज्ञान का काल है। उनकी कुल आयु सौ वर्ष की थी।^७

वर्तमान में उपलब्ध द्वादशाङ्गी आचार्य सुधर्मा की देन है। सुधर्मा का दूसरा नाम लोहार्य है।

१. हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ९ : इह च फलभरो धर्मफलभरो

गृह्यते, कुसुमानि ऋद्धयः, वनानि गच्छाः।

२. मलयगिरीया वृत्ति, प. ४७

३. नंदी चूर्ण, पृ. ६ : जीवादिपदत्थसरूवोलंभतो दिप्यंति।

४. वही, पृ. ६ : जुगप्पहाणो पुरिसो चूला।

५. (क) वही, पृ. ६ : एवं चरमतित्थगरस्स संघस्स य पणामे कते इमा अवसरप्पत्ता आवली भण्णति—सा तिविहा तित्थकर १ गणहर २ थेरावली ३ य।

(ख) हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ९

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ४७

६. नवसुत्ताणि, नंदी, गा. २३ से ४३

७. नवसुत्ताणि, पज्जोसवणाकण्णो, सू. १८६ से २२२

८. द्रष्टव्य, भूमिका।

९. आवश्यक निर्युक्ति, गा. ६४७ से ६४९

१०. वही, गा. १०६२

११. विविध तीर्थकल्प, पृ. ७६

१२. आवश्यक निर्युक्ति, गा. ६५०, ६५३, ६५४, ६५५

जम्बू—

महावीर की परम्परा में दूसरे युगप्रधान हैं—जम्बू। सुधर्मा के प्रधान शिष्य जम्बू अंतिम केवलज्ञानी के रूप में प्रसिद्ध हैं। जम्बू का जन्म वी०नि०पू० १६ (वि० पू० ४८६) में राजगृह निवासी वैश्य परिवार में हुआ। जम्बू के पिता का नाम ऋषभदत्त और माता का नाम धारिणी था।

आचार्य सुधर्मा के द्वारा श्रेष्ठीकुमार जम्बू ने ५२७ व्यक्तियों के साथ वी० नि० १ वि० पू० ४६९ में राजगृह के गुणशील चैत्य में मुनि दीक्षा ग्रहण की।^१

आचार्य सुधर्मा ने जम्बू को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। उस समय जम्बू की अवस्था ३६ वर्ष की थी।

आगम की अधिकांश रचना जम्बू के प्रिय संबोधन से प्रारम्भ हुई। “जम्बू! सर्वज्ञ श्री भगवान् महावीर से मैंने ऐसा सुना है।”^२ आचार्य सुधर्मा का यह वाक्य आगम साहित्य में विश्रुत है।

आचार्य जम्बू सोलह वर्ष तक गृहस्थ जीवन में रहे। मुनि पर्याय के कुल ६४ वर्ष में ४४ वर्ष तक उन्होंने युगप्रधान पद को अलंकृत किया। उनकी संपूर्ण आयु ८० वर्ष की थी। वी० नि० ६४ (वि० पू० ४०६) में उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।^३

दिगम्बर पट्टावली में जंबूस्वामी के उत्तराधिकारी के रूप में विष्णुनंदी को मानते हैं।^४

प्रभव—

महावीर की परम्परा में तीसरे युगप्रधान हैं—प्रभव। जंबू के शासन का उत्तराधिकार प्रभव को प्राप्त हुआ। कात्यायन उनका गोत्र था।

विन्ध्य नरेश के दो पुत्र थे। प्रभव उनमें ज्येष्ठ था। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण राज्य पाने का वह अधिकारी था। किसी कारणवश विन्ध्य नरेश द्वारा राज्य का उत्तराधिकारी कनिष्ठ पुत्र को बना दिया गया। इस घटना से प्रभव विद्रोही बन गया और चोरों की पल्ली में आ पहुंचा। वह ५०० चोरों का नेता बन गया। अवस्वापिनी और तालोद्घाटिनी नामक दो विद्याएं उसके पास थीं।

एक बार प्रभव का दल मगध की सीमा में पहुंच गया। जम्बू के विवाह में प्राप्त ९९ करोड़ के दहेज की जानकारी प्राप्त कर प्रभव ने सोचा—एक ही दिन में धनाढ्य बनने का यह सुन्दर अवसर है। अपनी विद्याओं का प्रयोग किया। स्तेनदल ने अत्यंत त्वरा से काम किया, धन की गांठें बांधी। गांठों को उठाने को तत्पर उनके हाथ गांठों पर और पैर धरती पर चिपक गए। सबके सब स्तम्भित रह गए।

प्रभव ने सोचा, किसी ने अवश्य मेरे स्तेनदल पर स्तम्भिनी विद्या का प्रयोग किया है। प्रभव ने जम्बू के शयन कक्ष की ओर देखा। वह तो अपनी पत्नियों को वैराग्य की ओर अग्रसर कर रहा था। जम्बू ने प्रभव को प्रतिबोधित किया।

प्रभव ने अपने पूरे दल सहित वी०नि० १ (वि०पू० ४६९) में सुधर्मा के पास दीक्षा ग्रहण की। आचार्य जंबू के बाद वी० नि० ६४ (वि०पू० ४०६) में प्रभव ने आचार्य पद का दायित्व संभाला।

आचार्य प्रभव ३० वर्ष तक गृहस्थ जीवन में रहे। संयमी जीवन के कुल ७५ वर्ष के काल में ११ वर्ष तक आचार्य पद का दायित्व वहन किया। चारित्र्यधर्म की आराधना करते हुए १०५ वर्ष का आयुष्य पूर्ण कर वी०नि० ७५ (वि०पू० ३९५) में वे अनशनपूर्वक स्वर्गगामी बने।

आचार्य शय्यम्भव—

भगवान् महावीर की परम्परा में चतुर्थ युगप्रधान हैं—शय्यम्भव। आचार्य शय्यम्भव का जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ। उनका गोत्र वत्स था। राजगृह उनकी जन्मभूमि थी। आचार्य शय्यम्भव को प्रभव से ही जैन धर्म का बोध प्राप्त हुआ। तदनन्तर शय्यम्भव ने उनसे मुनि दीक्षा ग्रहण की। वे वैदिक दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् थे। आचार्य प्रभव के पास उन्होंने १४ पूर्वों का ज्ञान प्राप्त किया और श्रुतधर की परम्परा में वे द्वितीय श्रुतकेवली बने। आचार्य प्रभव ने वी० नि० ७५ में उन्हें आचार्य पद प्रदान किया।

१. जंबूचरियं, प. १८५

२. (क) आयारो, १११ : सुयं मे आउसं ! तेषं भगवया एवमक्खायं ।

(ख) आचारांगसूत्र चूर्ण, पृ. २९८ : अज्ज सुहम्मो जम्बु-स्वामिं पुच्छंतं भणति—अहासुतं वइस्सामि ।

३. पट्टावली समुच्चय (श्री गुरुपट्टावली), पृ. १६३ : तत्पट्टे श्रीजम्बूस्वामी.....षोडश वर्षाणि गृहे, विंशति वर्षाणि व्रते चतुश्चत्वारिंशत् वर्षाणि युगप्रधानभावे । सर्वाधुरशीति वर्षाणि प्रपाल्य श्री वीराच्चतुःषष्टि वर्षान्ते सिद्धः ।

४. वीर शासन के प्रभावक आचार्य, पृ. १३

शय्यम्भव जब दीक्षित हुए तब उनकी पत्नी गर्भवती थी। उसने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम था मनक। जब वह बड़ा हुआ तब अपने पिता के बारे में जानने के लिए उत्सुक हुआ। उसकी माता ने कहा— तुम्हारे पिता जैन मुनि बन गए हैं। उसमें पितृदर्शन की भावना जागी। घूमते-घूमते वह वहां पहुंच गया। शय्यम्भव ने उसे पहचान लिया। उन्होंने मनक के हाथ की रेखा देखी। उन्हें लगा, बालक का आयुष्य बहुत कम है। समग्र शास्त्रों का अध्ययन इसके लिए संभव नहीं है। उन्होंने अल्पायुष्क मुनि मनक के लिए पूर्वों से दशवैकालिक सूत्र का निर्यूहण किया। इसमें मुनि जीवन की आचारसंहिता का निरूपण है।

आचार्य शय्यम्भव २८ वर्ष की अवस्था में श्रमण दीक्षा ग्रहण कर ३९ वर्ष की अवस्था में आचार्य पद पर आरूढ हुए थे। संयमी जीवन के कुल ३४ वर्षों में २३ वर्ष तक युगप्रधान पद के दायित्व का निपुणता से संचालन किया। वे ६२ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवासी बने। उनका अस्तित्वकाल वी०नि० ३६ से ९८ तक है।

गाथा २४

१४. (गाथा २४)

यशोभद्र—

आचार्य यशोभद्र भगवान् महावीर की परम्परा के पांचवें पट्टधर थे। श्रुतकेवली आचार्यों की परम्परा में इनका स्थान तीसरा है। इनका जन्म वी०नि० ३६ (वि०पू० ४३४) में, ब्राह्मण परिवार में हुआ। वे तुङ्गीकायन गोत्रीय थे। देवार्धगणि ने “जसभद्रं तुंगियं वंदे” कहकर इनकी स्तुति की है।

यशोभद्र ब्राह्मण परम्परा के प्रभावशाली विद्वान् थे। बड़े-बड़े यज्ञों का संचालन इनका मुख्य कार्य था। आचार्य शय्यम्भव के प्रेरणादायी प्रवचन ने इनकी जीवनधारा को बदल दिया। बाईस वर्ष की अवस्था में इन्होंने शय्यम्भव के पास दीक्षा ग्रहण की। आगमों व पूर्वों की विशाल ज्ञानराशि इन्हें अपने दीक्षागुरु से ही प्राप्त हुई। अपनी संयम पर्याय के कुल ६४ वर्षों में से १४ वर्ष तक ये आचार्य शय्यम्भव की सन्निधि में रहे। लगभग ५० वर्षों तक इन्होंने युगप्रधान पद को अलंकृत किया। वी०नि० १४८ में इनका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य शय्यम्भव तक एक आचार्य की परम्परा थी। आचार्य यशोभद्र ने अपने बाद संभूतविजय और भद्रबाहु— इन दोनों की आचार्य पद पर नियुक्ति की। यह जैन शासन के इतिहास में एक नया अध्याय था।

संभूतविजय—

आचार्य संभूतविजय भगवान् महावीर की परंपरा के छठे पट्टधर थे। श्रुतधर आचार्यों की परम्परा में इनका स्थान चौथा है। ये श्रुतधर आचार्य भद्रबाहु के लघु भ्राता थे। इनका जन्म वी०नि० ६६ (वि०पू० ४०४) में हुआ। इनका गोत्र माठर था— इसका संकेत नंदी सूत्र के ‘संभूयं चैव माठरं’ पद से मिलता है।

आचार्य यशोभद्र की प्रेरणा से ये जैन संस्कारों में ढले। वी०नि० १०८ में आचार्य यशोभद्र ने इनको दीक्षा प्रदान की। दीक्षा के बाद श्रमणचर्या का प्रशिक्षण व पूर्वों का गहन ज्ञान प्राप्त कर ये श्रुतधर बन गए। आचार्य यशोभद्र के स्वर्गारोहण के पश्चात् इन्होंने श्रमण संघ का नेतृत्व किया।

आचार्य संभूतविजय का विशाल शिष्य परिवार था। कल्पसूत्र में इनके— नंदनभद्र, उपनंदनभद्र, तीसभद्र, मणिभद्र आदि १२ शिष्यों का उल्लेख मिलता है। महामात्य शकडाल की यक्षा, यक्षदत्ता आदि सातों पुत्रियों ने आचार्य संभूतविजय के पास ही दीक्षा ग्रहण की थी। ये ४२ वर्ष तक गृह-पर्याय में रहे। इन्होंने कुल ४८ वर्षों तक संयम पर्याय का पालन किया जिसमें आठ वर्ष तक आचार्य पद का दायित्व संभाला। जनजीवन को अध्यात्म के आलोक से आलोकित करते हुए आचार्य संभूतविजय ८२ वर्ष की अवस्था में वी०नि० १५६ में स्वर्गगामी बने। उनका अस्तित्वकाल वी०नि० ६६ से १५६ तक का है।

भद्रबाहु—

भद्रबाहु भगवान् महावीर की परंपरा के सप्तम पट्टधर और श्रुतकेवली आचार्यों की परंपरा में पांचवें श्रुतकेवली थे। इनका जन्म वी०नि० ९४ (वि०पू० ३७६) में हुआ। आचार्य यशोभद्र के पास वी०नि० १३० में इन्होंने दीक्षा ग्रहण की। आचार्य यशोभद्र से १४ पूर्वों की विशाल ज्ञानराशि प्राप्त कर ये श्रुतधर बन गए।

आचार्य यशोभद्र ने अपने पीछे संभूतविजय और भद्रबाहु दोनों की नियुक्ति एक साथ की। अवस्था में ज्येष्ठ संभूतविजय ने यह दायित्व पहले संभाला और उनके बाद भद्रबाहु ने संघ संचालन का कार्य किया। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परंपराओं

में भद्रबाहु से संबंधित कई प्रसंग मिलते हैं। ऐसी अनुश्रुति है कि अथपेक्षया भद्रबाहु अंतिम चतुर्दशपूर्वी थे। उन्होंने १२ वर्ष तक महाप्राण ध्वनि की साधना की। उस साधना काल के दौरान संघ के अनुरोध को स्वीकार कर उन्होंने स्थूलभद्र को वाचना प्रदान की।

भद्रबाहु श्रुतधर व आगम रचनाकार थे। छेद सूत्रों के रचनाकार भद्रबाहु ही माने जाते हैं। इस प्रकार भद्रबाहु का जीवन श्रुत, साधना और साहित्य की त्रिवेणी था। आचार्य भद्रबाहु संघ को श्रुत का अमूल्य अवदान देकर वी० नि० १७० में स्वर्गगामी बन गए। इनका अस्तित्वकाल वी० नि० ९४ से १७० तक का है।

स्थूलभद्र—

स्थूलभद्र श्वेताम्बर परम्परा के प्रभावी आचार्य थे। इनका जन्म ब्राह्मण परिवार में वी० नि० ११६ में हुआ। ये गोत्र से गोतम थे। श्रुतकेवली आचार्यों की परम्परा में इनका स्थान अंतिम है।

स्थूलभद्र ने भद्रबाहु की सन्निधि में प्रतिपूर्ण नौ पूर्व पढ़ लिए। दो वस्तुओं से किञ्चित् न्यून दसवां पूर्व भी पढ़ लिया। भद्रबाहु और स्थूलभद्र नेपाल से प्रस्थान कर पाटलिपुत्र आ गए। स्थूलभद्र की सात बहिनें प्रत्रजित हुयी थी। वे आचार्य भद्रबाहु और अपने भाई स्थूलभद्र को वंदन करने गईं। आचार्य भद्रबाहु उद्यान में ठहरे हुए थे। उन्होंने वंदन कर पूछा—भंते ! हमारा ज्येष्ठ भ्राता कहां है ? भद्रबाहु ने कहा—इसी देवकुल में परावर्तन—स्वाध्याय कर रहा है। बहिनें स्थूलभद्र को वंदना करने गईं। स्थूलभद्र ने आती हुई बहिनों को देखा। उन्होंने अपनी ज्ञानलब्धि का प्रदर्शन करने के लिए सिंह का रूप बना लिया। साध्वियों ने सिंह को देखा। वे डरकर लौट आईं और आचार्य से बोली—स्थूलभद्र को सिंह खा गया। भद्रबाहु बोले—वह सिंह नहीं, स्थूलभद्र है।

दूसरे दिन वाचना के समय स्थूलभद्र भद्रबाहु के सामने उपस्थित हुए। भद्रबाहु ने वाचना नहीं दी। स्थूलभद्र ने सोचा, क्या कारण है जिससे भद्रबाहु ने मुझे वाचना के योग्य नहीं माना। उन्होंने इस पर ध्यान केन्द्रित किया और जाना—इसका कारण कल की घटना है। वे बोले—‘मैं भविष्य में ऐसा नहीं करूंगा।’ भद्रबाहु बोले—तुम नहीं करोगे, पर दूसरे कर लेंगे। बहुत प्रार्थना करने पर बड़ी कठिनाई से वाचना देना स्वीकार किया। उन्होंने स्थूलभद्र से कहा—‘अवशिष्ट चार पूर्व तुम पढ़ो, पर दूसरों को अपनी वाचना नहीं दोगे।’

स्थूलभद्र के बाद अंतिम चार पूर्व विच्छिन्न हो गए। दसवें पूर्व की अंतिम दो वस्तुएं भी विच्छिन्न हो गईं। दस पूर्व की परम्परा उनके बाद भी चली।^१

गाथा २५

१५. (गाथा २५)

आर्य महागिरि—

आचार्य स्थूलभद्र के दो अंतेवासी स्थविर थे—आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती। आर्य महागिरि का गोत्र ऐलापत्य था।^१ आपका जन्म वी० नि० १४५ में हुआ। आपकी गृहस्थ पर्याय ३० वर्ष, सामान्य व्रत पर्याय ४० वर्ष तथा आचार्यकाल ३० वर्ष था। आप दो वस्तु कम १० पूर्वों के ज्ञाता थे। कल्पसूत्र स्थविरावलि, परिशिष्टपर्व तथा अन्य पट्टावलियों में आचार्य स्थूलभद्र के उत्तराधिकारी के रूप में महागिरि और सुहस्ती—दोनों नाम समान रूप से उपलब्ध होते हैं। परिशिष्ट पर्व के अनुसार आर्य महागिरि ने अपना गच्छ सुहस्ती को संभलाकर उच्छिन्न जिनकल्प का श्रमणाचार पालन करना प्रारम्भ किया।^१ आपने अनेक शिष्यों को आगम वाचना देकर बहुश्रुत बनाया। अंत में अनशनपूर्वक स्वर्गगमन किया। आपका अस्तित्व काल वी० नि० १४५ से २४५ है।

आर्य सुहस्ती—

आर्य स्थूलभद्र के अंतेवासी आर्य सुहस्ती जन्मना वाशिष्ठ गोत्रीय थे। आपका जन्म वी० नि० १९१ में हुआ। आपने २३ वर्ष की अवस्था में आर्य स्थूलभद्र के करकमलों से दीक्षा ग्रहण की। आप भी दो वस्तु कम १० पूर्वों के ज्ञाता थे। एक बार आर्य सुहस्ती को अपने राजप्रासाद के आंगन में देख मौर्य सम्राट सम्प्रति को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। अपने पूर्वभव को जानकर उसमें प्रगाढ धर्मानुराग का उदय हुआ। जैन इतिहास में सम्राट सम्प्रति का बड़ी स्थान है जो बौद्ध इतिहास में उसके दादा सम्राट अशोक

१. आवश्यक चूणि, २ पृ. १८७, १८८

३. परिशिष्ट पर्व, सर्ग ११

२. नवसुत्ताणि, पञ्जोसवणाकप्पो, सू. १८७, १९२

का है। आर्य सुहस्ती से संबोध प्राप्त कर सम्प्रति ने न केवल सम्पूर्ण भारतवर्ष की ही यात्रा की अपितु अनेक अनार्य क्षेत्रों में भी जैनधर्म का प्रचार-प्रसार किया। आर्य सुहस्ती का अस्तित्वकाल वी० नि० १९१ से २९१ है।

आर्य बलिस्सह—

आर्य महागिरि के प्रमुख अंतेवासी स्थविर आठ थे। उनमें आर्य बलिस्सह को गणाचार्य नियुक्त किया गया। वे कौशिक-गोत्रीय ब्राह्मण थे। बहुल और बलिस्सह यमल भ्राता थे। बलिस्सह प्रावचनिक थे अतः प्रस्तुत गाथा में उनको वंदना की गई है। उन्होंने आर्य महागिरि के पास श्रमण दीक्षा ग्रहण कर कुछ न्यून दस पूर्वों का अध्ययन किया। इनसे उत्तर बलिस्सह गण का प्रवर्तन हुआ।

हिमवंत स्थविरावलि के अनुसार कलिंग नरेश महामेघवाहन के शासनकाल में कुमारगिरि पर्वत पर एक वाचना हुई, जिसमें ११ अंगों तथा १० पूर्वों के पाठों को व्यवस्थित किया गया। उसमें आर्य बलिस्सह, बोधिलिंग, सुस्थित, सुप्रतिबुद्ध, उमास्वाति, श्यामार्य आदि ५०० साधु तथा पोइणी आदि ३०० साध्वियों सम्मिलित हुई। आर्य बलिस्सह का आचार्य काल वी० नि० २४५ से ३२७ या ३२९ तक माना जाता है।^१

गाथा २६

१६. (गाथा २६)

स्वाति—

स्वाति उमास्वाति है अथवा कोई स्थविर? इस प्रश्न पर कोई निर्णायक मत उपलब्ध नहीं है। इस विषय में एक मत तपागच्छ पट्टावली और तपागच्छ श्रमण वंशवृक्ष का है।^२ तपागच्छ पट्टावली में बलिस्सह के शिष्य स्वाति तत्त्वार्थसूत्र के कर्ता है। यह संभावना की गई है।^३

श्री तपागच्छ श्रमणवंश के अनुसार “आर्य महागिरि अने आर्य सुहस्तिस्वरिजीना समयमां बारावर्षीय भयंकर दुष्काल पड्यो हतो. ते बखते घणा त्यागी साधु-महात्माओं त्यां अनशन करी स्वर्गे सिधाव्या हता. ए दुष्कालना प्रभावथी आगमज्ञान क्षीण थतुं जतुं जोइ कलिंगाधिपति खारखेले प्रसिद्ध-प्रसिद्ध जैन स्थविरो ने कुमारी पर्वत ऊपर एकत्र कर्या, जेमां आर्य महागिरिजीनी परंपरानां आर्यबलिस्सह, बोधिलिंग, देवाचार्य, धर्मसेनाचार्य, नक्षत्राचार्य बगेरे बसो साधुओ, तेम ज आर्य सुस्थित अने सुप्रतिबुद्ध तथा उमास्वाति श्यामाचार्य बगेरे त्रण सो स्थविरकल्पी साधुओ एकत्र थया हता. आर्या पोइणी प्रमुख त्रणसो साधवीओ आवी हती. कलिंगराज, भिक्षुराज सीवंद, चूर्णक, सेलक बगेरे सातसो श्रमणोपासको अने कलिंगमहारानी पूर्णमित्रा आदि सातसो श्रमणोपासिका—श्राविकाओ एकत्र थयी हती.”

प्रस्तुत पुस्तक के पादटिप्पण में बतलाया गया है कि उमास्वाति का स्वर्गवास वी० नि० चौथी शताब्दी में हुआ है।

प्रज्ञाचक्षु पण्डित सुखलालजी ने इस अभिमत की समीक्षा की है। उनके अनुसार वाचक उमास्वाति का समय वि० की ५वीं शताब्दी से पूर्व है।

उनकी समीक्षा का मूल आधार तत्त्वार्थसूत्र की प्रशस्ति है।^४ उसका सार इस प्रकार है—“दीक्षा गुरु ग्यारह अङ्ग के धारक घोषनदी थे और गुरु वाचक मुख्य शिवश्री। वाचना की दृष्टि से मूल नामक वाचनाचार्य और प्रगुरु महावाचक मुण्डपाल थे। इनका गोत्र कौभीषणि, पिता का नाम स्वाति व माता का नाम वात्सी था। ये उच्चैर्नागर शाखा के वाचक थे। प्रशस्ति के विवरण में उमास्वाति का इतना ही इतिहास उपलब्ध है। प्रस्तुत वाचना में समय का कोई उल्लेख नहीं है।

कल्पसूत्र की स्थविरावलि में उच्चनागरी शाखा का उल्लेख मिलता है। स्थविर सुहस्ति के १२ प्रमुख शिष्य थे। उनमें पांचवें सुस्थित और छठे सुप्रतिबुद्ध थे।^५ सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध ने कोटिक गण की स्थापना की। उसकी चार शाखाएं हैं। उनमें प्रथम शाखा उच्चनागरी है।^६

१. जैन धर्म का मौलिक इतिहास, पृ. ४७७

२. श्रमण वंशवृक्ष, पृ. ४६

३. पट्टावली समुच्चय, पृ. ४६ : बलिस्सहस्य शिष्यस्वातिः तत्त्वार्थदियोग्रंथास्तु तत्कृता एव संभाव्यते।

४. तत्त्वार्थ भाष्यानुसारिणी, पृ. ३२७ :

वाचकमुख्यस्य शिव-श्रियः प्रकाशयशसः प्रशिष्येण।

शिष्येण घोषनन्दि-क्षमाश्रमणस्यैकादशाङ्गविदः ॥१॥

वाचनया च महावाचकक्षमणमुण्डपादशिष्यस्य।

शिष्येण वाचकाचार्यमूलनाम्नः प्रथितकीर्तः ॥२॥

न्यग्रोधिकप्रसूते न विहरता पुरवरे कुसुमनाम्नि।

कौभीषणिना स्वातितनयेनवात्सीसुतेनार्घ्यम् ॥३॥

५. नवसुत्ताणि, पञ्जोसवणाकण्पो, सू. १९६

६. वही, सू. २०२

सुस्थित और सुपंडित के पांच प्रमुख शिष्य थे। उनमें प्रथम आर्य इन्द्रदत्त है।^१ आर्य इन्द्रदत्त के प्रमुख शिष्य आर्यदत्त है। आर्यदत्त के प्रमुख दो शिष्य हैं—उनमें प्रथम आर्य शांतिश्रेणिक हैं। आर्य शांतिश्रेणिक ने उच्चनागरी शाखा की स्थापना की।^२

आर्य सुहस्ति का स्वर्गवास वी०नि० २९१ में हुआ था। प्रज्ञाचक्षु पण्डित सुखलालजी के अनुसार आर्य सुहस्ति का स्वर्गवास-काल वीरात् २९१ और वज्र का स्वर्गवास-काल वीरात् ५८४ उल्लिखित है। अर्थात् सुहस्ति के स्वर्गवास-काल से वज्र के स्वर्गवास-काल तक २९३ वर्ष के भीतर पांच पीढ़ियां उपलब्ध होती हैं। सरसरी तौर पर एक-एक पीढ़ी का काल साठ वर्ष का मान लेने पर सुहस्ति से चौथी पीढ़ी में होने वाले शांतिश्रेणिक का प्रारम्भ काल वीरात् ४७१ आता है। इस समय के मध्य में या कुछ आगे-पीछे शांतिश्रेणिक से उच्चनागरी शाखा निकली होगी। वाचक उमास्वाति शांतिश्रेणिक की ही उच्चनागर शाखा में हुए हैं, ऐसा मानकर और इस शाखा के निकलने का जो समय अनुमानित किया गया है उसे स्वीकार करके यदि आगे बढ़ा जाए तो भी यह कहना कठिन है कि वाचक उमास्वाति इस शाखा के निकलने के बाद कब हुए हैं। क्योंकि प्रशस्ति में अपने दीक्षागुरु और विद्यागुरु के जो नाम उन्होंने दिए हैं, उनमें से एक भी नाम कल्पसूत्र की स्थविरावलि में या वैसी किसी दूसरी पट्टावली में नहीं मिलता। अतः उमास्वाति के समय के संबंध में स्थविरावली के आधार पर अधिक से अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि वे वीरात् ४७१ अर्थात् विक्रम संवत् के प्रारम्भ के लगभग किसी समय हुए हैं, उससे पहले नहीं।^३

इस विषय में पण्डित सुखलालजी का मत सम्यक् प्रतीत होता है। तत्त्वार्थसूत्र की प्रशस्ति के आधार पर कहा जा सकता है कि तपागच्छ पट्टावली का मत सही नहीं है। प्रस्तुत गाथा में स्वाति का प्रयोग किसी अन्य स्थविर के लिए हुआ है उमास्वाति के लिए नहीं।

आर्य श्याम—

आचार्य श्याम युगप्रधान आचार्यों की परंपरा में बारहवें हैं। वाचनाचार्य के क्रम में आचार्य महागिरि के शिष्य वाचनाचार्य बलिस्सह के बाद स्वाति और स्वाति के बाद वाचनाचार्य श्याम हुए। श्यामाचार्य का जन्म वी० नि० २८०, हारित गोत्र में हुआ। संसार से विरक्त होकर श्यामाचार्य ने २० वर्ष की अवस्था में वी०नि० ३०० में श्रमण दीक्षा ग्रहण की। वाचनाचार्य स्वाति के स्वर्गवास के पश्चात् वी०नि० ३३५ में युगप्रधान और वाचनाचार्य दोनों पदों का दायित्व एक साथ संभाला।^४

श्यामाचार्य प्रज्ञापना के कर्ता और निगोद के व्याख्याता माने जाते हैं। आर्यरक्षित के साथ इन्द्र के आने और निगोद की व्याख्या सुनने की घटना है। वह घटना आर्य कालक के साथ जुड़ी हुई है। उत्तराध्ययन की निर्युक्ति में कालकाचार्य, श्रमण सागर और इन्द्र के आगमन की घटना एक साथ मिलती है।^५

प्रस्तुत गाथा में इन्द्र के आगमन की घटना का उल्लेख है। उसका संबंध आर्य श्याम के साथ नहीं बैठता। कालकाचार्य नाम से अनेक आचार्य हुए हैं। उनमें आर्य श्याम प्रथम कालकाचार्य हैं।

प्रज्ञापना की वृत्ति में दो गाथाएं उद्धृत हैं।^६ उनमें आर्यश्याम को वाचकवंश का २३वां पुरुष बतलाया गया है। प्रस्तुत सूत्र की स्थविरावलि के अनुसार ये तेरहवें वाचक हैं। आर्यश्याम, शाण्डिल्य और आर्यसमुद्र इन तीनों युगप्रधान वाचकों के क्रम पर विचार करें तो यह सिद्ध होता है कि सुवर्ण भूमि में अपने पौत्र शिष्य के पास जाने वाले आर्य कालक ही यहां आर्य श्याम के रूप में उल्लिखित है। विस्तृत जानकारी के लिए द्रष्टव्य सुवर्णभूमि में कालकाचार्य, पृ० ४०।

आर्य शाण्डिल्य—

आचार्य शाण्डिल्य युगप्रधान आचार्यों की परंपरा में तेरहवें आचार्य हैं। नंदी स्थविरावली के अनुसार वाचनाचार्य के क्रम में श्यामाचार्य के बाद इनका नाम है।^७ इनका जन्म वी०नि० ३०६ कौशिक गोत्र में हुआ। इन्होंने वी०नि० ३२८ में दीक्षा ग्रहण की एवं सत्तर वर्ष की अवस्था में आचार्य पद पर आसीन हुए। आचार्य श्याम के बाद वी०नि० ३७६ में वाचनाचार्य एवं प्रधानाचार्य दोनों पदों का दायित्व संभाला।

आचार्य देवद्विगणिक्षमाश्रमण ने नंदी सूत्र में इनके लिए “अज्जजीयधरं” विशेषण का प्रयोग किया है।

१. नक्सुत्ताणि, पज्जोसवणाकप्पो, सू. २०३

२. वही, सू. २०६ से २०८

३. तत्त्वार्थ सूत्र, भूमिका, पृ. ७

४. रत्नसंचयप्रकरण, पत्रांक ३२

५. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गा. १२०

६. प्रज्ञापना वृत्ति, प. ५

वायगवरवंसाओ तेवीसइमेण धीरपुरिसेणं ।

इद्धरधरेण मुणिणा पुव्वसुयसमिद्धबुद्धीण ॥१॥

सुयसागरा विणेऊण जेण सुययणमुत्तमं दिन्नं ।

सीसगणस्स भगवओ तस्स नमो अज्जसामस्स ॥२॥

७. नक्सुत्ताणि, नंदी, गा. २६

“अज्ज” शब्द के तीन संस्कृत रूप हो सकते हैं—अद्य, आर्य और आद्य । व्याख्या ग्रंथों में आर्य और आद्य ये दो रूप निदिष्ट हैं ।^१ चूणिकार ने जीत का अर्थ सूत्र किया है ।^२ टीकाकार हरिभद्र और मलयगिरि ने इसके अर्थ का विस्तार किया है । उनकी व्याख्या में जीत के पांच अर्थ उपलब्ध हैं—सूत्र, स्थिति, कल्प, मर्यादा और व्यवस्था ।^३

आगम साहित्य में गण की व्यवस्था और प्रायश्चित्त विधि के लिए व्यवहार के पांच प्रमाण स्थापित हैं—आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत । इनमें पांचवां व्यवहार जीत है । स्थविर शाण्डिल्य इस जीत व्यवहार के विशेषज्ञ थे । यह ‘जीतधर’ इस विशेषण से ज्ञात होता है । इससे दो निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

१. जीत व्यवहार की स्थापना आर्य शाण्डिल्य से पहले हो चुकी थी और वे उसके विशेषज्ञ थे ।

२. जीत व्यवहार की व्यवस्था आर्य शाण्डिल्य ने की थी ।

चूणिकार ने ‘जीवधर’ पाठान्तर का उल्लेख किया है । इसके साथ-साथ एक मतान्तर का भी उल्लेख किया है । उसके अनुसार शाण्डिल्य का अंतेवासी “जीवधर” नामक अनगर था । उसका गोत्र था आर्य ।^४ हरिभद्र और मलयगिरि ने ‘जीतधर’ इस नाम के मतान्तर का उल्लेख किया है ।^५ हिमवन्त स्थविरावली के अनुसार आर्य शाण्डिल्य के आर्य जीतधर व आर्य समुद्र नाम के दो शिष्य थे ।^६ अतः उनका ‘जीतधर’ विशेषण शिष्य जीतधर के नाम के आधार पर होना चाहिए किंतु कल्पसूत्र, पर्युषणाकल्प की स्थविरावली से आर्य जीतधर या जीवधर की पुष्टि नहीं होती है ।

आर्य शाण्डिल्य का गृहस्थ जीवन का काल वार्डस वर्ष का था । वे अड़चास वर्ष तक सामान्य मुनि पर्याय में रहे । संयम जीवन के कुल ७६ वर्ष के काल में अट्ठाईस वर्ष तक उन्होंने युगप्रधान पद को सुशोभित किया । आर्य शाण्डिल्य का १०८ वर्ष की उम्र में वी०नि० ४१४ में स्वर्गवास हो गया ।

पर्युषणाकल्प की स्थविरावली में स्वाति, श्यामार्य और शाण्डिल्य का उल्लेख नहीं है । यदि पर्युषणाकल्प की स्थविरावली देवद्विगणि से प्राचीन है तो नंदी की स्थविरावली और पर्युषणाकल्प की स्थविरावली में यह अंतर क्यों ? आगम के संकलन काल में देवद्विगणि ने पर्युषणाकल्प की स्थविरावली को नंदी की स्थविरावली से भिन्न क्यों रखा ? यदि पर्युषणाकल्प की स्थविरावली देवद्विगणि के उत्तरकाल की है तो यह अंतर हो सकता है । भिन्न-भिन्न स्थविरावलियों और पट्टावलियों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि अनेक शाखाएं और अनेक गुरु-परंपराएं रही हैं । जो लेखक जिस शाखा व गुरु-परंपरा का था, उसने अपनी गुरु-परंपरा के आधार पर स्थविरावलियां कर दी । अतः सब स्थविरावलियों में समानता खोजना प्रासंगिक नहीं है ।

गाथा २७

१७. (गाथा २७)

कालकाचार्य कथा के अनुसार सागरसूरि सुवर्णभूमि (वर्तमाना जावा, सुमात्रा इण्डोनेशिया) द्वीप में विहार कर रहे थे । कालकाचार्य स्वयं उनके पास गए थे । इस आधार पर सूत्रकार ने ‘तिसमुद्दुहायर्कित्त’ इस विशेषण का प्रयोग किया । इस तथ्य के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि समुद्रसूरि और सागरसूरि एक ही व्यक्ति हैं । पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग करने की परम्परा संस्कृत प्राकृत साहित्य में रही है इसलिए यह अनुमान करना अतिप्रसंग नहीं है ।

डॉ० उमाकांत शाह ने आर्य समुद्र और सागर को एक ही व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया है ।^७

चूणिकार के अनुसार आर्य समुद्र की ख्याति पूर्व, दक्षिण और पश्चिम तीनों समुद्रों तथा उत्तर में वैतादय (हिमालय) तक फैली हुई थी ।^८ प्रस्तुत आगम (नंदी) की स्थविरावलि में श्यामार्य (कालकाचार्य) के पश्चात् आर्य शाण्डिल्य और शाण्डिल्य के पश्चात् आर्य समुद्र का उल्लेख है । कालकाचार्य अनेक हुए हैं । श्यामार्य आर्य समुद्र के दादागुरु थे । इस विषय में उमाकांत शाह ने काफी समीक्षा की है फिर भी कौनसे कालकाचार्य स्वर्णभूमि में गए यह विषय पुनः अनुसंधेय है ।

१. नंदी चूणि, पृ. ८ : अज्जंति आर्य आद्यं वा ।

२. वही, पृ. ८ : जीतं ति सुत्तं ।

३. (क) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ११

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. ४९

४. ठाणं, ५।१२४

५. नंदी चूणि, पृ. ८ : पाडंतं वा ‘जीवधरं’ ति आर्यत्वात् जीवं धरेति—रक्षतीत्यर्थः । अण्णे पुण भणति—संडिल्लस्स अंतेवासी जीवधरो अणगारो, सो य अज्जसगोत्तो ।

६. (क) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ११ : अन्ये तु व्याचक्षते— किल शाण्डिल्यस्य शिष्यः आर्यसगोत्तो जीतधरनामा सूरिरासीदिति ।

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. ४९

७. जैनधर्म के प्रभावक आचार्य, पृ. १७७

८. स्वर्णभूमि में कालकाचार्य, पृ. ४०

९. नंदी चूणि, पृ. ८ : पुव्व-दक्खिणा-सपरा ततो समुद्दा, उत्तरतो वेतड्ढो, एतंतरे खातकित्ति ।

गाथा २८, २९, ३०

१८. गाथा (२८, २९, ३०)

प्रस्तुत स्थविरावलि के अनुसार आर्य मंगु के पश्चात् आर्य नन्दिल और आर्य नन्दिल के पश्चात् आर्य नागहस्ती का उल्लेख हुआ है। दिगम्बर स्थविरावलि में आर्य मंक्षु और नागहस्ती—इन दोनों का महावाचक के रूप में उल्लेख हुआ है। कषायपाहुड की प्रस्तावना में संपादक गण ने इस पर विमर्श किया है।

जयधवला में लिखा है कि गुणधराचार्य के द्वारा रची गई गाथाएं आचार्य परंपरा से आकर आर्य मंक्षु और नागहस्ती आचार्यों को प्राप्त हुईं। इन दोनों आचार्यों के मतों का उल्लेख जयधवला में अनेक जगह आता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जयधवलाकार के सामने इन दोनों आचार्यों की कोई कृति मौजूद थी या उन्हें गुरु-परंपरा से इन दोनों आचार्यों के मत प्राप्त हुए थे। क्योंकि ऐसा हुए बिना निश्चित रीति से अमुक-अमुक विषयों पर दोनों के जुड़े जुड़े मतों का इस प्रकार उल्लेख करना संभव प्रतीत नहीं होता। इन दोनों में आर्य मंक्षु जेठे मालुम होते हैं क्योंकि सब जगह उन्हीं का पहले उल्लेख किया गया है। किंतु जेठे होने पर भी आर्य मंक्षु के उपदेश को अपवाइज्जमाण और नागहस्ती के उपदेश को पवाइज्जमाण कहा है। जो उपदेश सर्वाचार्यसम्मत होता है और चिरकाल से अविच्छिन्न संप्रदाय के क्रम में चला आता हुआ शिष्यपरंपरा के द्वारा लाया जाता है वह पवाइज्जमाण कहा जाता है। अर्थात् आर्य मंक्षु का उपदेश सर्वाचार्यसम्मत और अविच्छिन्न संप्रदाय के क्रम से आया हुआ नहीं था। किंतु नागहस्ती आचार्य का उपदेश सर्वाचार्यसम्मत और अविच्छिन्न संप्रदाय के क्रम से चला आया हुआ था।

नंदीसूत्र में आर्य मंगु के पश्चात् आर्य नंदिल का स्मरण किया गया है और उसके पश्चात् नागहस्ती का। नंदीसूत्र की चूर्णि तथा हारिभद्रीया वृत्ति में भी यही क्रम पाया जाता है। दोनों में आर्य मंगु का शिष्य आर्य नंदिल और आर्य नंदिल का शिष्य नागहस्ती को बतलाया है। इससे आर्य मंगु के प्रशिष्य आर्य नागहस्ति थे ऐसा प्रमाणित होता है तथा नागहस्ति को कर्मप्रकृति में प्रधान बतलाया गया है और उनके वाचक वंश की वृद्धि की कामना की गई है। कुछ श्वेताम्बरीय ग्रंथों में आर्य मंगु की एक कथा भी मिलती है जिसमें लिखा है कि वे मथुरा में जाकर भ्रष्ट हो गये थे। नागहस्ती को वाचक वंश का प्रस्थापक भी बतलाया है इससे स्पष्ट है कि वे वाचक जरूर थे तभी तो उनकी शिष्य-परंपरा वाचक कहलाई। इन सब बातों पर दृष्टि देने से ऐसा प्रतीत होता है कि श्वेताम्बर परंपरा के आर्य मंगु और नागहस्ती तथा धवला और जयधवला के महावाचक आर्य मंक्षु और महावाचक नागहस्ती संभवतः एक ही हैं।^१

उस समय श्वेताम्बर और दिगंबर जैसा कोई स्पष्ट भेद नहीं था इसलिए नंदी की स्थविरावलि व जयधवला में उनका उल्लेख होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

इस संदर्भ में २८वीं और ३०वीं गाथा का अध्ययन करना समुचित होगा। भणग, करक, भरक, प्रभावक, श्रुतसागर के पारगामी—ये विशेषण आर्य मंगु के महावाचक होने का साक्ष्य दे रहे हैं। इसीलिए जयधवलाकार ने अनेक बार उनका उल्लेख किया है। जयधवला के अनुसार नागहस्ती को व्याकरण करण भङ्गरचना और कर्म प्रकृति प्रधान विशेषण से विशेषित किया गया है। चूर्णिसूत्र के कर्ता यतिवृषभ आर्य मंक्षु और नागहस्ती के शिष्य रहे हैं। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि नागहस्ती कर्म प्रकृति के मर्मज्ञ आचार्य थे। नागहस्ती से वाचक वंश की वृद्धि हुई अथवा वे वाचक वंश के प्रवर्तक थे यह अनुमान किया जा सकता है।

कुछ प्रतियों में आर्य मंगु के पश्चात् चार युगप्रधानों के नाम वाली दो गाथाएं मिलती हैं। उसके पश्चात् आर्य नन्दिल का नाम है। इस विषय में कल्याणविजयजी का अभिमत उल्लेखनीय है—आर्य मंगु और आर्य नन्दिल के बीच चार आचार्य और हो गए हैं। उनके मतानुसार नंदीसूत्र की पट्टावली में आर्य मंगु और आर्य नन्दिल के बीच में होने वाले उन चार आचार्यों से संबंधित दो गाथाएं छूट गई हैं जो अन्यत्र उपलब्ध होती हैं।^२

मुनि दर्शनविजयजी ने आर्यरक्षित के बाद नन्दिल क्षमण का उल्लेख किया है।

कल्पसूत्र की पट्टावली में 'नन्दिय' नाम मिलता है।^३

“आर्यमंगु का युगप्रधानत्व वीर निर्वाण सम्वत् ४५१ से ४७० तक था। परन्तु आर्य नन्दिल का समय आर्यमंगु से बहुत पीछे का है क्योंकि वे आर्यरक्षित के पश्चात्भावी स्थविर थे और आर्यरक्षित का स्वर्गवास वीर नि० सम्वत् ५९७ में हुआ था। इसलिए आर्यनन्दिल ५९७ के पीछे स्थविर हो सकते हैं। इस प्रकार मुनिजी की कालगणना के अनुसार आर्यमंगु और आर्यनन्दिल के बीच में १२७ वर्ष का अन्तर रहता है। और उसमें आर्य नन्दिल का समय और जोड़ देने पर आर्यमंगु और नागहस्ति के बीच में

१. कषाय पाहुड, पृ. ४३

२. आर्हत् आगमों नु अवलोकन, पृ. ४६

३. पट्टावली-समुच्चय, कल्पसूत्र की स्थविरावली गाथा १०

पृ० १०

१५० वर्ष के लगभग अन्तर बैठता है। अतः आर्य मंगु और नागहस्ति समकालीन व्यक्ति नहीं हो सकते।^{११}

शब्द विमर्श —

भणगं—कालिक श्रुत और पूर्वश्रुत का अध्येता^१

करगं—सूत्र के अर्थ का ध्यान करने वाला।

चूर्ण और टीका में इसका अर्थ भिन्न रूप में मिलता है। उसमें करक का अर्थ चरण-करण क्रिया करने वाला किया गया है।^{१२}

झरगं—ज्ञान के प्रवाह को आगे बढ़ाने वाला। चूर्ण के अनुसार इसका अर्थ है—सूत्र के अर्थ का मन से चिन्तन करने वाला।^{१३} टीकाद्वय में इसका अर्थ धर्मध्यान का प्रयोग करने वाला किया गया है।^{१४}

प्रभावक—चूर्ण में इसके दो अर्थ किए गए हैं—

१. परप्रवादियों को जीतकर जिन प्रवचन की प्रभावना करने वाला।

२. ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणों की प्रभावना करने वाला।

वृत्तिद्वय में केवल दूसरा अर्थ उपलब्ध है।

गाथा ३१

१६. (गाथा ३१)

रेवती नक्षत्र

कल्पसूत्र की स्थविरावलि में नक्षत्र नाम का उल्लेख मिलता है।^{१५} दिगम्बर साहित्य में भी नक्षत्र का उल्लेख उपलब्ध है।^{१६} यह नक्षत्र रेवती नक्षत्र का ही संक्षिप्त नाम जान पड़ता है। तपागच्छ पट्टावलि में रेवतीमित्र नाम मिलता है। दिगम्बर साहित्य के अनुसार नक्षत्र ग्यारह अंग के धारक और तपागच्छ पट्टावलि के अनुसार रेवतीमित्र आर्य सुहस्ति और वज्रस्वामी के अन्तराल में हुए हैं।^{१७} इसलिए उन्हें ग्यारह अंगधारी की कोटि में नहीं रखा जा सकता।

गाथा ३२

२०. (गाथा ३२)

ब्रह्मद्वीपक शाखा और आर्यसिंह

कृष्णा और वेणा नदी के संगम स्थल पर ब्रह्मद्वीप नाम का द्वीप था। उसमें ५०० तापस रहते थे। वे वज्रस्वामी के मामा आर्यसमित के पास दीक्षित हुए। वे ब्रह्मद्वीप में रहते थे इसलिए उनकी प्रसिद्धि ब्रह्मद्वीपक के रूप में हुई।^{१८}

पर्युषणाकल्प की स्थविरावलि में भी इसका उल्लेख मिलता है।^{१९}

गाथा ३४

२१. (गाथा ३४)

आर्य हिमवंत

आर्य हिमवंत के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

१. कषायपाहुड़, पृ. ४५

२. नदी चूर्ण, पृ. ८ : कालिप्रपुव्वसुत्तत्थं भणतीति भणको।

३. वही, पृ. ८ : चरण-करण-क्रियां करोतीति कारकः।

४. वही, पृ. ८ : सुत्तत्थे य मणसा ज्ञायंतो ज्ञारको।

५. (क) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. १२ : धर्मध्यानं ध्यायतीति।

(ख) मलयगिरिया वृत्ति, प. ५०

६. नदी चूर्ण, पृ. ८ : परपवादिजयेण पवयणपभावको।

नाण-दंसण-चरणगुणाणं च पभावको आधारी य।

७. पट्टावली समुच्चय, कल्पसूत्र की स्थविरावलि, पृ. ९

८. कषायपाहुड़, प्रस्तावना पृ. ४९

९. आहंत् आगमों नु अवलोकन, पृ. ५९

१०. (क) निशीथसूत्रम्, भाग ३, पृ. ४२५; निशीथभाष्य चूर्ण ४४७० से ४४७२ : ते य पंचतावससया समियायरि-यस्स समीवे पव्वतिता। ततो य बंभदीविया साहा निग्गया।

(ख) विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—जैन साहित्य मां गुजरात, पृ. १८४, १८५

११. नवसुत्ताणि, पज्जोसवणाकप्पो, सू. २१५ : थेरेहिंतो णं अज्ज समिएहिंतो, एत्थ णं बंभदीविया साहा निग्गया।

गाथा ३३, ३५

२२. (गाथा ३३, ३५)

आर्य स्कन्दिल और आर्य नागार्जुन

ये दोनों अनुयोग प्रवर्तक हैं। वी. नि. की ९ वीं शताब्दी में १२ वर्ष का भयंकर दुष्काल हुआ। उस दुष्काल में मुनियों की शक्ति भोजन जुटाने में ही खप जाती। फलतः ग्रहण, गुणन और अनुप्रेक्षा के अभाव में श्रुत विनष्ट हो गया। बहुत सारे अनुयोगधर मुनि दिवंगत हो गए। दुष्काल की समाप्ति होने पर मथुरा में एक बड़ा साधु सम्मेलन हुआ। उसका नेतृत्व आर्य स्कन्दिल ने किया। उस समय जैन शासन और शासन के आधारभूत आगम साहित्य के बारे में चिन्तन किया गया। उसका निष्कर्ष यह रहा कि जिस मुनि को जो कालिक श्रुत कण्ठस्थ था उसका संकलन किया जाय। चूर्णिकार ने मतान्तर का उल्लेख किया है। उसके अनुसार श्रुत विनष्ट नहीं हुआ था। जो प्रधान अनुयोगधर दिवंगत हुए थे केवल आर्य स्कन्दिल ही बच पाए थे। उन्होंने मथुरा में साधुसंघ को एकत्रित कर पुनः अनुयोग का प्रवर्तन किया। वह प्रवर्तन मथुरा में किया गया। इसलिए वह माथुरी वाचना के नाम से प्रसिद्ध है।^१

वी. नि. की ९ वीं शताब्दी (ईसा की ४ थी शताब्दी) में आर्य स्कन्दिल मथुरा में आगम वाचना का कार्य कर रहे थे उसी समय नागार्जुन वलभी में आगम वाचना का कार्य कर रहे थे। नागार्जुन की वाचना वलभी वाचना के रूप में प्रसिद्ध है। देवधिगणी ने माथुरी वाचना को प्रधान वाचना के रूप में स्वीकार किया और वलभी वाचना को वाचनान्तर अथवा पाठान्तर के रूप में स्वीकृति दी।

गाथा ३७, ३८, ३९

२३. (गाथा ३७, ३८, ३९)

भूतदिन्न

नंदी के मूल पाठ में इनके कुल और वंश का नाइल के रूप में परिचय दिया हुआ है। ये वाचक नागार्जुन के शिष्य हैं। अनुयोगधरों में ये प्रधान थे। नाइल शाखा का उल्लेख पर्युषणाकल्प की स्थविरावलि में मिलता है। इस शाखा का विकास आर्य वज्रश्रेणिक से हुआ था।^२

देवधिगणी ने भूतदिन्न के बारे में तीन गाथाएं लिखकर उनके उत्कर्ष का प्रदर्शन किया है किन्तु इतिहास की दृष्टि से उनके बारे में कोई विशिष्ट जानकारी उपलब्ध नहीं है।

गाथा ४०

२४. (गाथा ४०)

लौहित्य

लौहित्य के बारे में कोई जानकारी प्राप्त नहीं है। सूत्रकार ने उनके तीन विशेषण दिए हैं। उनसे ज्ञात होता है कि वे पदार्थ के नित्य व अनित्य अवस्था के विशेषज्ञ, सूत्र और अर्थ के धारक तथा द्रव्य के पारमार्थिक स्वरूप के व्याख्याता थे।

गाथा ४१, ४२

२५. (गाथा ४१, ४२)

दृष्यगणी का भी जीवनवृत्त उपलब्ध नहीं है। वे देवधिगणी के गुरु थे। सूत्रगत गाथाओं से ज्ञात होता है कि वे प्रसिद्ध प्रावचनिक, ग्यारह अङ्गों तथा बारहवें अङ्ग के कुछ अंशों के धारक थे। उनके पास सैकड़ों प्रातिच्छक—विभिन्न गणों के साधु श्रुताध्ययन के लिए आते थे। वे सूत्र के अर्थ और महार्थ—नाना नयों से नाना पर्यायों की व्याख्या—के विशेषज्ञ थे। उनका वाग् व्यापार बहुत मधुर था। उनके पास कोई क्रुद्ध व्यक्ति भी आता तो उनकी वाणी से शांत हो जाता।

गाथा ४३

२६. (गाथा ४३)

चूर्णिकार के अनुसार सूत्रकार ने २३ से ४२ गाथाओं में नामोल्लेखपूर्वक युगप्रधान स्थविरों को नमस्कार किया है।

१. नंदी चूर्ण, पृ. ९

२. नवसुत्ताणि, पज्जोसवणाकप्पो, सू. २१८ : थेरेहिंतो णं अज्जवइरसेणिर्हिंतो, एत्थ णं अज्जनाइली साहा निग्गया।

प्रस्तुत गाथा में नामोल्लेख के बिना जितने कालिक श्रुत के आनुयोगिक—एकादश अङ्गधर थे उन सबको नमस्कार किया है।^१

गाथा ४४

२७. (गाथा ४४)

१. मुद्गशैल दृष्टान्त—

एक ओर मुद्गशैल नामक पर्वत । दूसरी ओर पुष्करावर्त्त नामक महामेघ । नारद तुल्य कोई कलहप्रिय व्यक्ति उन दोनों में कलह कराने के उद्देश्य से सर्वप्रथम मुद्गशैल के पास गया । उसने कहा—हे मुद्गशैल ! महापुरुषों की परिषद् में बताया गया कि जल के द्वारा मुद्गशैल का भेदन नहीं किया जा सकता । तुम्हारा यह गुणानुवाद पुष्करावर्त्त सहन नहीं कर सका । वह बोला—मिथ्या प्रशंसा से क्या लाभ ? गगनचुम्बी पर्वत भी मेरी वेगपूर्ण धारा से खण्ड-खण्ड हो जाते हैं । फिर बेचारा मुद्गशैल कौन-सी हस्ति, वह मेरी एक धारा को भी सहन नहीं कर पाएगा ।

यह सुन मुद्गशैल क्रोधमिश्रित गर्व से बोला—हे महर्षि नारद ! परोक्ष में बहुत अधिक बोलने से क्या । मेरी एक बात सुनो । वह दुरात्मा पुष्करावर्त्त सात दिन-रात अनवरत बरसने के बाद भी यदि वह तिलतुष मात्र भी भेदन कर दे तो मैं अपने मुद्गशैल नाम को छोड़ दूंगा । मुद्गशैल की इस गर्वोक्ति को सुन वह पुष्करावर्त्त के पास पहुंचा । उसने सारी बात को बढ़ा-चढ़ा कर कहा । पुष्करावर्त्त ने कोपाविष्ट हो बरसना शुरू कर दिया । सात दिन-रात मुसलाधार बरसने से सारी पृथ्वी मानो जला-प्लावित हो गयी । पूरी पृथ्वी को जलाकार देखकर उसने सोचा उस बेचारे मुद्गशैल का अस्तित्व कहां बचा होगा ; थोड़ी देर बाद वर्षा रुक गई । जल का वेग कुछ कम होने पर पुष्करावर्त्त ने नारद से कहा—चलो देखें मुद्गशैल की क्या स्थिति है । दोनों चल पड़े । मुद्गशैल का धूलि धुसर शरीर अब और अधिक चमकने लगा । उन दोनों को आते हुए देखकर वह बोला आओ तुम्हारा स्वागत है । काञ्चन वृष्टि की तरह तुम्हारा अकल्पित आगमन देखकर मन प्रसन्नता से भर गया । उसे इस स्थिति में देख पुष्करावर्त्त के नयन लज्जा से झुक गए । वह बिना कुछ बोले लौट गया । उक्त कथा का निष्कर्ष यह है कि मुद्गशैल तुल्य शिष्य को गुरुप्रयत्नपूर्वक पढ़ाता है फिर भी वह एक पद का भी ग्रहण नहीं करता ।

२. कुट दृष्टान्त—

घट के चार प्रकार हैं—

१. छिद्र कुट—अधोभाग में छिद्र वाला घट
२. खण्ड कुट—एक पार्श्व से खण्डित घट
३. कण्ठीन कुट—ग्रीवा रहित घट
४. सम्पूर्ण कुट—परिपूर्ण घट ।

नीचे छिद्र वाले घट में जल भरा जाए तो वह जब तक भूमि में संलग्न रहता है तब तक उसमें से पानी अधिक मात्रा में नहीं निकलता । एक पार्श्व से खण्डित घट में से आधा, तिहाई अथवा चौथाई जल निकल जाता है । ग्रीवा रहित घट से थोड़ा सा जल बाहर निकलता है और परिपूर्ण घट सम्पूर्ण जल को धारण कर लेता है ।

इसी प्रकार शिष्य चार प्रकार के होते हैं—

१. व्याख्यान मण्डली में उपविष्ट होकर सब कुछ समझ जाता है, वहां से उठने के बाद कुछ भी याद नहीं रहता । वह छिद्रकुट के समान है ।
२. जो व्याख्या मण्डली में उपविष्ट होकर आधा, तिहाई और चौथाई सूत्र अर्थ को ग्रहण करता है । जितना सुना, अवधारित किया, उसे याद रखता है । वह खण्ड कुट के समान है ।
३. जो व्याख्यान मण्डली में उपविष्ट होकर प्रायः सूत्र और अर्थ को ग्रहण करता है और पश्चात् स्मृति में भी रखता है । वह कण्ठीन कुट के समान है ।
- ४ जो समग्र सूत्र और अर्थ को ग्रहण करता है और स्मृति में रखता है वह सम्पूर्ण घट के समान है ।

१. नंदीचूर्ण, पृ. १२ : एस णमोक्कारो आयरिययुगप्पहाण-
पुरिसाणं विसेसग्गहणतो कतो । इमा पुण सामण्णतो
सुतविसिट्ठाण कज्जइ ।

२. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा. १४६२ :

जे उण अभाविय ते चउव्विहा अह्विमो गमो अन्नो ।
छिड्ढुकुड-भिन्न-खंडे सगले य परूवणा तेसि ॥

(ख) बृहत्कल्प भाष्य, गा. ३४२

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प० १६, ५७

छिद्र कुट के समान शिष्य अध्ययन के लिए अयोग्य होता है। शेष तीन योग्य होते हैं वे क्रमशः योग्य, योग्यतर और योग्यतम होते हैं।

३. चालनी दृष्टान्त—

जो श्रोता चालनी के समान होता है उसके कान में सूत्रार्थ का प्रवेश होता है और वह तत्काल उसको भूल जाता है। ऐसा व्यक्ति सूत्रार्थ ग्रहण के योग्य नहीं होता।

एक बार शैल, छिद्रकुट और चालनी तुल्य तीनों शिष्य मिले। आपस में वार्त्तालाप शुरू किया। बोला—भाई! तुमने क्या अवधारित किया? छिद्रकुट बोला—मैं स्वाध्याय मण्डली में था तब मैंने सारा ग्रहण किया, उठा, सारा का सारा भूल गया। चालनी तुल्य शिष्य बोला—भाई! मेरी कथा क्या बताऊं! एक कान से आता है दूसरे से निकल जाता है। मुद्गशैल तुल्य शिष्य बोला—तुम दोनों धन्य हो। तुम्हारे कानों में सूत्रार्थ आता है, निकल जाता है किन्तु मैं तो ऐसा ही हूँ, मेरे कानों में तो सूत्रार्थ का प्रवेश ही नहीं होता।^१

४. 'परिपूणग' दृष्टान्त—

परिपूणग—बया का घोंसला। आभीरी उससे घी छानती है। कचरा उसमें रह जाता है और घी नीचे पात्र में चला जाता है। जो शिष्य व्याख्या अथवा वाचना में दोषों को ग्रहण कर लेता है, गुणों को छोड़ देता है, वह परिपूणग के समान होता है। वह अध्ययन के अयोग्य होता है।^२

५. हंस दृष्टान्त—

कुछ शिष्य हंस के समान गुणग्राही होते हैं। हंस के सामने दूध आता है तो वह दूध और पानी को अलग-अलग कर देता है। उसकी चोंच में अम्लता होती है इसलिए जल और दूध का पृथक्करण हो जाता है। इसी प्रकार योग्य शिष्य गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान का विवेचन और विश्लेषण कर सार को ग्रहण कर लेता है। गुरु ने अनुपयुक्त अवस्था में कुछ कहा, उसे छोड़कर यथार्थ को ग्रहण कर लेता है।^३

६. महिष दृष्टान्त —

भैंसा जल पीने के लिए तलैया—जल में प्रवेश करता है। वह उसमें बार-बार घूमता है अथवा करवट लेता है। इससे पानी कलुषित हो जाता है। वह स्वयं भी उस पानी को नहीं पी सकता और न उसका गूथ पी सकता है।

कुछ शिष्य महिष की तरह होते हैं। वे वाचना परिषद् में अप्रासंगिक प्रश्न पूछते हैं, कुतर्क करते हैं, कलह तथा विकथा के कारण स्वयं सूत्रार्थ का ग्रहण नहीं कर पाते और दूसरों के ग्रहण करने में व्यवधान पैदा करते हैं।^४

७. मेष दृष्टान्त—

मेष का मुंह पतला होता है। वह गोष्पद मात्र जल को भी कलुषित किए बिना शांत भाव से पी लेता है। जो शिष्य गुरु से एक पद भी पूछना हो तो उन्हें प्रसन्न कर विनयपूर्वक गुरु को पूछता है, वह मेष तुल्य होता है। वह अध्ययन के लिए सर्वथा योग्य

१. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा. १४६३, १४६४ :

सेले य छिद्रु-चालणि मिहो कहा सोउमुट्टियाणं तु ।
छिद्रुहा तत्थ विट्ठो सुमरिसु सरामि नेदाणि ॥
एगेण विसइ बीएण नीइ कन्नेण चालणी आह ।
धन्नत्थ आह सेलो जं पविसइ नीइ वा तुज्झं ॥

(ख) बृहत्कल्प भाष्य, गा. ३४३, ३४४ ।

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ५७

२. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा. १४६५ :

तावसखउरकठिणयं चालणिपडिवक्खो

न सवइ दवं पि ।

परिपूणगम्मि उ गुणा गलंति दोसा य चिट्ठंति ॥

(ख) बृहत्कल्प भाष्य, गा. ३४५

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ५७

३. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा. १४६७ :

अंबत्तणेण जीहाए कूचिया होइ खीरमुदगम्मि ।
हंसो मुत्तूण जलं आवियइ पयं तह सुसीसो ॥

(ख) बृहत्कल्प भाष्य, गा. ३४७ ।

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ५८ ।

४. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा. १४६८ :

सयमवि न पियइ महिसो न य

जूहं पियइ लोडियं उदगं ।

विग्गह-विग्गहाहि तहा अथक्कपुच्छाहि य कुसीसो ॥

(ख) बृहत्कल्प भाष्य, गा. ३४८

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ५८

होता है ।^१

८. मशक दृष्टान्त—

मच्छर काटकर व्यथा देता है । इसलिए मनुष्य वस्त्राञ्चल अथवा अन्य किसी साधन से उड़ा देता है । जो शिष्य व्याख्या परिषद् में बैठकर गुरु के जाति आदि का उद्घाटन कर व्यथा पैदा करता है । वह मच्छर के समान वाचना के अयोग्य होता है ।^१

९. जलौका दृष्टान्त—

जलौका शरीर से रक्त चूसती है पर मनुष्य को पीड़ा नहीं पहुंचाती । जो शिष्य गुरु को व्यथित किए बिना श्रुतज्ञान के रस का पान कर लेता है । वह अध्ययन के योग्य होता है ।^१

१०. बिडाली दृष्टान्त—

बिल्ली दूध को भूमि पर गिराकर पीती है । जो शिष्य वाचना परिषद् से आए हुए साधु से सूत्रार्थ की जिज्ञासा करता है । सीधा गुरु से ज्ञान नहीं लेता, वाचना परिषद् में उपस्थित नहीं होता । वह बिडाली तुल्य होता है । अध्ययन के अयोग्य होता है ।^१

११. जाहक दृष्टान्त—

जाहक—भाऊ चूहा—कांटों वाला चूहा दुग्धपात्र से थोड़ा दूध पीता है और पात्र के पार्श्व को चाट लेता है । फिर दूध पीता है और पात्र चाटता है । यह क्रम बराबर चलता है । बुद्धिमान शिष्य इसी प्रक्रिया से अध्ययन करता है । पहले जो पाठ पढ़ा उसे चिरपरिचित करता है । इस प्रकार गुरु से पूर्ण श्रुत का ग्रहण कर लेता है और गुरु को कभी खिन्न नहीं करता ।^१

१२. गौ दृष्टान्त—

चार व्यक्तियों को दक्षिणा में गाय मिली । उन्होंने सोचा—गाय एक है और हम चार हैं । इसका बंटवारा कैसे करेंगे ? एक ने सुभाव दिया हम सब एक-एक दिन बारी से इस गाय का दोहन करे । यह बात चारों को जच गई । पहले दिन जिस ब्राह्मण को गौ मिली, उसने सोचा—आज तो गाम्ना चारा-पानी लेकर आई है । कल इसका दूध मिलेगा दूसरे ब्राह्मण को अतः मैं इसे चारा क्यों डालूँ ?

उस ब्राह्मण ने गौ का दोहन किया, पर चारा नहीं डाला और न उसको सर्दी-गर्मी से बचाने की चिन्ता की । चारों ब्राह्मणों में ऐसे संक्रमण हो गया । उनके स्वार्थपरक और त्रुटिपूर्ण चिंतन के कारण गाय मर गई । जनता में उनका अवर्णवाद हुआ तथा उस गांव में उन्हें दक्षिणा मिलनी भी बंद हो गई । यह दृष्टान्त का नकारात्मक पहलू है ।

इसका दूसरा पहलू सकारात्मक है । चार व्यक्तियों को दक्षिणा में गाय मिली । उन्होंने चिंतन किया कि चारा डालने से गाय पुष्ट होगी, सबको अच्छा दूध मिलेगा और हम सबका एक-दूसरे पर अनुग्रह बरसेगा । उन्हें गाय का दूध मिला और गांव में भी उनकी कीर्ति हुई ।

१. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा. १४६९ :

अवि गोपयम्मि वि पिवे सुद्धिओ तणुयत्तणेण तुंडस्स ।
न करेइ कलुस तोयं मेसो एवं सुसीसो वि ॥

(ख) बृहत्कल्प भाष्य, गा. ३४९

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ५८

२. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा. १४७० :

मसउव्व तुदं जच्चाएहि निच्छुम्मए कुसीसो वि ।

(ख) बृहत्कल्प भाष्य, गा. ३५०

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ५८

३. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा. १४७० :

जलुगा व अहूमंतो पिवइ सुसीसो वि सुयनाणं ।

(ख) बृहत्कल्प भाष्य, गा. ३५०

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ५८

४. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा० १४७१ :

छड्डेउं भूमिए खीरं जह पियइ दुट्टमञ्जारी ।
परिसुद्धियाण पासे सिक्खइ एवं विणयभंसी ॥

(ख) बृहत्कल्प भाष्य, गा० ३५१

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ५८

५. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा० १४७२ :

पाउं थोवं थोवं खीरं पासाइं जाहगो लिहइ ।
एमेव जियं काउं पुच्छइ मइमं न खेएइ ॥

(ख) बृहत्कल्पभाष्य, गा. ३५२

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ५८

एक आचार्य के पास कुछ निजी शिष्य थे और कुछ प्रतीच्छक (विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए आनेवाले)। आचार्य बहुश्रुत थे। आचार्य उन सबको वाचना देते थे। वाचना सब लेते थे, पर आचार्य की सेवा करने का दायित्व एक दूसरे पर डालते। शिष्य सोचते वैयावृत्य प्रतीच्छक करेंगे और प्रतीच्छक सोचते सेवा शिष्य करेंगे। इस क्रम से आचार्य की उचित परिचर्या नहीं हुई। आचार्य अस्वस्थ हो गए। संघ में शिष्यों का अवर्णवाद हुआ। अन्य वाचक आचार्यों ने उन्हें वाचना नहीं दी। दूसरे संघों में भी उन्हें स्थान नहीं मिला। फलतः वे अगीतार्थ रह गए।

एक अन्य आचार्य के पास भी निजी शिष्य और प्रतीच्छक वाचना लेते थे। वे सब अपने आचार्य की अच्छी सेवा करते थे। आचार्य स्वस्थ रहे और शिष्य गीतार्थ बने।^१

१३. भेरी दृष्टान्त—

द्वारिका नगरी, वासुदेव कृष्ण का राज्य। उनके पास चार भेरियां थी। उनके नाम थे—कौमुदिकी, सांग्रामिकी और दुर्भूतिका। पहली भेरी उत्सव की सूचना देने के लिए बजाई जाती थी, दूसरी युद्ध के समय और तीसरी आकस्मिक प्रयोजन की सूचना देने के लिए।

अशिवोपशमिनी नामक एक चौथी भेरी थी, वह गोशीर्ष-चंदन निर्मित थी। जो छः महीनों से बजाई जाती थी। उसके शब्द बारह योजन तक सुनाई देते थे। उस शब्द को सुनने वाले रुग्ण व्यक्ति स्वस्थ हो जाते और भविष्य में छह मास तक उन्हें किसी प्रकार की व्याधि नहीं होती। वह भेरी देव से प्राप्त थी।

वह भेरी एक भेरीवादक के निरीक्षण में रहती थी। किसी समय वहां एक धनाढ्य परदेशी आया। वह शिर की वेदना से आक्रांत था। वैद्य ने बताया—गोशीर्षचन्दन लाओ, तुम्हारी बीमारी मिट जाएगी। गोशीर्षचन्दन कहीं मिला नहीं। वह खोज करते-करते भेरीवादक के पास पहुंचा। विपुल धन देकर उसने भेरी का खंड प्राप्त कर लिया। उसके स्थान पर साधारण चंदन काष्ठ का टुकड़ा लगा दिया।

घटना स्वयं बोलती है। धीरे-धीरे गोशीर्ष चंदन की बात फैल गई। रोगी वहां पहुंचने लगे। भेरीरक्षक प्रचुर धन लेकर उन्हें गोशीर्ष चंदन का एक-एक खंड देता रहा और साधारण चंदन उसके स्थान पर लगाता रहा। आखिर वह भेरी कंथा बन गई। उससे पहले जैसा शब्द नहीं हुआ और न ही रोग का उपशमन। तब श्रीकृष्ण ने भेरी की जांच के लिए एक आयोग नियुक्त किया। जांच से पता चला भेरी कंथा बन गई। वासुदेव कृष्ण ने भेरीपाल के कुल का उच्छेद कर दिया।

पुनः देव से भेरी प्राप्त की। योग्य व्यक्ति की भेरीपाल के रूप में नियुक्ति की। उसने जागरूकता के साथ भेरी की रक्षा की।

जो शिष्य आगम के आलापकों को प्राप्त कर लौकिक और लोकोत्तरिक—अन्य दर्शन से संबद्ध आलापकों को उनमें जोड़ देता है वह आगम को कंथा बना देता है। वह अध्ययन के अयोग्य है। जो शिष्य आलापक की सुरक्षा करता है वह अध्ययन के लिए योग्य है।^१

१४. आभीरी दृष्टान्त—

एक अहीर घी से घड़ों को भरकर बेचने के लिए अपनी पत्नी के साथ नगर में गया। घी बेचने वाले दूसरे अहीर भी उसके साथ थे। अहीर गाड़ी के ऊपर बैठ गया था और अहीरन नीचे खड़ी थी। बाजार में पहुंचकर अहीर ने अपनी पत्नी को घी

१. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा. १४७३ से १४७५ :

अन्नो दोज्जइ कल्ले निरत्थियं किं वहामि से चारिं ।
चउचरणगवी उ मया अवन्न-हाणी य बडुयाणं ॥
मा मे होज्ज अवण्णो गोवज्जा वा पुणो वि न दविज्जा ।
वयमवि दोज्जामो पुणो अणुग्गहो अन्नदुद्धे वि ।
सीसा पडिच्छगाणं भरो त्ति ते विय हू सीसगभरो त्ति ।
न करेत्ति सुत्तहाणी अन्नत्थ वि दुल्लहं तेसिं ॥

(ख) बृहत्कल्प भाष्य, गा. ३५३ से ३५५

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ५९, ६०

२. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा. १४७६ से १४७९

(ख) बृहत्कल्प भाष्य, गा. ३५६ से ३५९

कौमुडिया संगामिया य दुब्भुडिया य भेरीओ ।
कण्हस्स आसि तइया, असिवोवसमी चउत्थी उ ।
संकपसंसा गुणगाहि केसवा नेमिवंद सुणदंता ।
आसरयणस्स हरणं, कुमारभंगे य पुययुद्धं ॥
नेहि जितो मि त्ति अहं, असिवोवसमीए संपयाणं च ।
छम्मासिय घोसणया, पसमेत्ति न जायए अन्नो ॥
आगंतु वाहिखोभो, महिडिड मोल्लेण कंथ डंडणया ।
अट्टम आराहण अन्न भेरि अन्नस्स ठवणं च ।

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ५८

का घड़ा देने की चेष्टा की। उसने सोचा घड़ा पकड़ लिया। पत्नी ने सोचा घड़ा छोड़ा नहीं। चितन की दूरी रही, घड़ा नीचे गिरा और फूट गया। अहीरन बोली—मैंने घड़ा पकड़ा ही नहीं, तुमने पहले ही छोड़ दिया। अहीर बोला—तुमने ठीक से पकड़ा नहीं। पहले उनमें तू तू मैं मैं हुई, फिर कलह हो गया। अहीरन बोली—तुम्हारा ध्यान नगर की महिलाओं को देखने में लगा था, इसलिए तुमने घड़े को बीच में ही छोड़ दिया। अहीर बोला—तुम्हारा मन नगर के तरुण और रमणीय पुरुषों में लग गया इसलिए घड़ा छोड़ दिया। कलह आगे बढ़ा। अहीर गाड़ी से नीचे उतरकर उसको पीटने लगा। उस लड़ाई में कुछ घड़े भी गाड़ी से नीचे गिरे और फूट गए। दूसरे घी विक्रेताओं ने अपना घी बेच दिया। बचे हुए घड़ों को लेकर अहीर बाजार में गया। तब तक घी का मूल्य कम हो चुका था। सांभ भी हो गई। दूसरे घृत विक्रेता पहले ही गांव चले गये थे। वह अकेला चला। उसके पास पैसा, बैल और गाड़ी थी, वह चोरों ने ले ली।

एक अहीर अपनी पत्नी के साथ घी बेचने गया। अहीर गाड़ी के ऊपर और अहीरन नीचे खड़ी थी। घी का घड़ा उठाया, अहीरन को देने लगा। घड़ा गिरा और फूट गया। अहीरन बोली—इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं, मेरी गलती है, मैंने घड़ा ठीक से पकड़ा नहीं। अहीर बोला—दोष तुम्हारा नहीं, दोष मेरा है। दोनों ने योजना बनाई। जहां घी ढुल गया, उस सारी बालू को उठाया, उठाकर घर में ले गए। उसे गर्म जल में डाल तपाया। फिर नीचे उतार कर ठण्डा किया, जमा हुआ घी बर्तन से निकाल लिया। वे सारी समस्याओं से बच गए।

आचार्य पढा रहे हैं। शिष्य पढ रहा है।

आचार्य—इस आलापक का उच्चारण ठीक नहीं कर रहे हो।

शिष्य—आपने ऐसे ही बताया था।

आचार्य—मैंने ऐसा नहीं बताया। तुमने उसको अन्यथा कर दिया।

शिष्य—आपने ऐसा ही बताया था। सत्य का अपलाप करना अच्छा नहीं। अब भी आप सावधानी पूर्वक पढाएं।

इस प्रकार निष्ठुर वाणी में बोलने वाला, कलह करने वाला अध्ययन के लिए अयोग्य है।

आचार्य पढा रहे हैं। शिष्य पढ रहा है।

आचार्य—इस आलापक का उच्चारण ठीक नहीं कर रहे हो।

शिष्य—‘मिच्छामि दुक्कडं’, मेरी भूल हो गई, अब मैं सावधान रहूंगा।

आचार्य—हो सकता है, मैंने ही असावधानीवश ऐसा बता दिया हो। उन्होंने कहा—‘मिच्छामि दुक्कडं।’

दोनों ओर अपने प्रमाद की स्वीकृति, न निष्ठुर वाणी का प्रयोग और न कलह। इस प्रकार का मृदु व्यवहार करने वाला शिष्य अध्ययन के लिए योग्य है।

१. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा. १४८०, १४८२

(ख) बृहत्कल्प भाष्य, गा. ३६०, ३६१ :

मुक्कं तथा अगहिण, दुपरिगहिणं तथा कलहो ।

पिटृणय इयर विक्किय, गएसु चोरेहि ऊणग्घो ॥

मा निण्हव इय दाउं, उवजुंजिय देहि किं विचित्तेसि ।

विच्चाभेलणदाणे, किलिस्ससी तं च हं चेव ॥

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ६१ से ६३

दूसरा प्रकरण
(सूत्र २-३३)

आमुख

ज्ञान मीमांसा के संबंध में अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं—

१. ज्ञान क्या है ?
 २. ज्ञान की उत्पत्ति कैसे होती है ?
 ३. ज्ञान के स्रोत कितने हैं ?
 ४. ज्ञान की सीमा क्या है ?
 ५. मनुष्य जन्म के साथ ज्ञान लाता है अथवा जन्म के पश्चात् उत्पन्न होता है ?
 ६. क्या ज्ञान के द्वारा द्रव्य को जाना जा सकता है ?
 ७. क्या इन्द्रियातीत ज्ञान की वास्तविकता है ?
- प्रस्तुत प्रकरण में इन प्रश्नों का उत्तर खोजा जा सकता है—
१. जिससे जाना जाता है वह ज्ञान है।^१
 २. ज्ञान आत्मा का गुण है। ज्ञानावरण कर्म से वह गुण आवृत रहता है। ज्ञानावरण का जितना विलय होता है उतनी जानने की क्षमता प्रकट होती है। यह ज्ञान की उत्पत्ति है। इसे लब्धि कहा जाता है। किसी द्रव्य अथवा पर्याय को जानते समय ज्ञान का प्रयोग होता है।^२
 ३. ज्ञान ज्ञेय सापेक्ष है। ज्ञेय के साथ इन्द्रिय का सम्पर्क होने पर ज्ञान होता है। इन्द्रिय के साथ ज्ञेय वस्तु का उचित देश में अवस्थान और सन्निकर्ष के निमित्त होने पर ज्ञान उत्पन्न होता है। अतः ज्ञेय वस्तु के सामीप्य और सन्निकर्ष को ज्ञान का स्रोत माना जा सकता है। यह आभिनवोधिक है।
इसका दूसरा स्रोत है—शास्त्र, ग्रंथ अथवा आप्त पुष्प का उपदेश—यह श्रुत है।
 ४. ज्ञेय अनन्त हैं। इसलिए ज्ञान भी अनन्त है। आभिनवोधिक और श्रुतज्ञान की सीमा है। उनके द्वारा मूर्त द्रव्य जाना जा सकता है। अमूर्त द्रव्य नहीं जाना जा सकता।
मूर्त में भी स्थूल पर्याय को जाना जा सकता है सूक्ष्म पर्याय को नहीं जाना जा सकता।
अवधिज्ञान मूर्त द्रव्यों को जानता है, मनःपर्यवज्ञान मनोवर्गणा के पुद्गलों को जानता है, केवलज्ञान की कोई सीमा नहीं है।
 ५. प्राणी जन्म के साथ ज्ञान लाता है। लब्धि इन्द्रिय जन्म के साथ आती है। द्रव्येन्द्रिय का निर्माण जन्म के साथ होता है। अवधिज्ञान जन्म के साथ भी होता है और जन्म के उत्तरकाल में साधना के द्वारा भी उपलब्ध होता है।^३
 ६. मतिज्ञान के द्वारा पर्याय का ही ज्ञान होता है द्रव्य का ज्ञान नहीं होता। श्रुतज्ञान के द्वारा श्रुत ग्रंथों के आधार पर द्रव्य का ज्ञान होता है उसका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता। विशिष्ट अवधिज्ञान के द्वारा केवल मूर्त द्रव्य का विशिष्ट प्रत्यक्षीकरण किया जा सकता है। मनःपर्यवज्ञान मनोवर्गणा के पर्यायों को जान सकता है द्रव्यों को नहीं। केवलज्ञान के द्वारा मूर्त अमूर्त सभी द्रव्यों तथा पर्यायों का ज्ञान होता है।
 ७. इन्द्रियातीत ज्ञान के विषय में सब दार्शनिक एक मत नहीं है। उसका प्रारम्भिक विकास नाम भेद से स्वीकृत है किन्तु चरम विकास केवलज्ञान अथवा सर्वज्ञता अन्य दर्शनों में मान्य नहीं है। महर्षि पतञ्जलि ने पुरुष में सर्वज्ञ बीज का उल्लेख किया है। प्रस्तुत सूत्र में सर्वज्ञता का व्यापक स्वरूप निरूपित है।^४

१. नन्दी ब्रूणि, पृ. १३ : णज्जइ अणेण इति णाणं ।

२. वही, पृ. १३ : खयोवसमिय-खाइएण वा भावेण जीवादि-पदत्था णज्जति इति णाणं ।

३. नवसुत्ताणि, नन्दी, सू. ७

४. पातञ्जलयोगदर्शनम्, १।२५ : तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ-बीजम् ।

दूसरा प्रकरण प्रत्यक्ष ज्ञान

मूल पाठ

संस्कृत छाया

हिन्दी अनुवाद

नाण-पदं

२. नाणं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा—
आभिनिबोहियनाणं सुयनाणं
ओहिनाणं मणपज्जवनाणं
केवलनाणं ॥

३. तं समासओ दुविहं पण्णत्तं, तं
जहा—पच्चक्खं च परोक्खं च ॥

पच्चक्ख-पदं

४. से किं तं पच्चक्खं ? पच्चक्खं
दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—इंदिय-
पच्चक्खं च नोइंदियपच्चक्खं च ॥

५. से किं तं इंदियपच्चक्खं ? इंदिय-
पच्चक्खं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा
—सोइंदियपच्चक्खं चिक्खिदिय-
पच्चक्खं घाण्णिदियपच्चक्खं
जिह्भदियपच्चक्खं फांसिदिय-
पच्चक्खं । सेत्तं इंदियपच्चक्खं ॥

६. से किं तं नोइंदियपच्चक्खं ?
नोइंदियपच्चक्खं त्रिविहं पण्णत्तं,
तं जहा—ओहिनाणपच्चक्खं मण-
पज्जवनाणपच्चक्खं केवलनाण-
पच्चक्खं ॥

ओहिनाण-पदं

७. से किं तं ओहिनाणपच्चक्खं ?
ओहिनाणपच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं,
तं जहा—भवपच्चइयं च खओव-
समियं च ।

दुण्हं भवपच्चइयं, तं जहा—देवाण
य, नेरइयाण य ।

दुण्हं खओवसमियं, तं जहा—

ज्ञान-पदम्

ज्ञानं पञ्चविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—
आभिनिबोधिकज्ञानं श्रुतज्ञानं अवधि-
ज्ञानं मनःपर्यवज्ञानं केवलज्ञानम् ।

तत् समासतः द्विविधं प्रज्ञप्तं,
तद्यथा—प्रत्यक्षञ्च परोक्षञ्च ।

प्रत्यक्ष-पदम्

अथ किं तत् प्रत्यक्षम् ? प्रत्यक्षं
द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—इन्द्रिय-
प्रत्यक्षञ्च नोइन्द्रियप्रत्यक्षञ्च ।

अथ किं तद् इन्द्रियप्रत्यक्षम् ?
इन्द्रियप्रत्यक्षं पञ्चविधं प्रज्ञप्तं,
तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्षं, चक्षु-
रिन्द्रियप्रत्यक्षं, घ्राणेन्द्रियप्रत्यक्षं,
जिह्वेन्द्रियप्रत्यक्षं स्पर्शनेन्द्रियप्रत्यक्षम् ।
तदेतद् इन्द्रियप्रत्यक्षम् ।

अथ किं तद् नोइन्द्रियप्रत्यक्षम् ?
नोइन्द्रियप्रत्यक्षं त्रिविधं प्रज्ञप्तं,
तद्यथा—अवधिज्ञानप्रत्यक्षं, मनः-
पर्यवज्ञानप्रत्यक्षं, केवलज्ञानप्रत्यक्षम् ।

अवधिज्ञान-पदम्

अथ किं तद् अवधिज्ञानप्रत्यक्षम् ?
अवधिज्ञानप्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तं,
तद्यथा—भवप्रत्ययिकञ्च क्षायो-
पशमिकञ्च ।

द्वयोः भवप्रत्ययिकं, तद्यथा—
देवानां च, नैरयिकाणां च ।

द्वयोः क्षायोपशमिकं, तद्यथा—

ज्ञान-पद

२. ज्ञान पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—
१. आभिनिबोधिकज्ञान २. श्रुतज्ञान,
३. अवधिज्ञान ४. मनःपर्यवज्ञान ५. केवल-
ज्ञान ।^१

३. ज्ञान संक्षेप में दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—
१. प्रत्यक्ष २. परोक्ष ।^१

प्रत्यक्ष-पद

४. वह प्रत्यक्ष क्या है ?
प्रत्यक्ष दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—
१. इन्द्रिय प्रत्यक्ष २. नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष ।^१

५. वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष क्या है ?
इन्द्रिय प्रत्यक्ष पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है,
जैसे—१. श्रोत्र-इन्द्रिय प्रत्यक्ष २. चक्षु-
इन्द्रिय प्रत्यक्ष ३. घ्राण-इन्द्रिय प्रत्यक्ष
४. जिह्वा-इन्द्रिय प्रत्यक्ष ५. स्पर्श-इन्द्रिय
प्रत्यक्ष ।^१ वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष है ।

६. वह नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष क्या है ?
नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष तीन प्रकार का प्रज्ञप्त है,
जैसे—१. अवधिज्ञान प्रत्यक्ष २. मनःपर्यव-
ज्ञान प्रत्यक्ष ३. केवलज्ञान प्रत्यक्ष ।

अवधिज्ञान-पद

७. वह अवधिज्ञान प्रत्यक्ष क्या है ?
अवधिज्ञान प्रत्यक्ष दो प्रकार का प्रज्ञप्त है,
जैसे—१. भवप्रत्ययिक २. क्षायोपशमिक ।
भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान देव और नैरयिक
इन दो के होता है ।
क्षायोपशमिक अवधिज्ञान मनुष्य और
पंचेन्द्रिय-तिर्यक्योनिक इन दो के होता है ।^१

मणुस्साण य, पंचेदियतिरिक्ख-
जोणियाण य ॥

मनुष्याणां च, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्-
योनिकानां च ।

८. को हेऊ खओवसमियं ? खओव-
समियं—तयावरणिज्जाणं कम्मणं
उदिण्णाणं खएणं, अणुदिण्णाणं
उवसमेणं ओहिनाणं समुप्पज्जइ ।
अहवा—गुणपडिवण्णस्स अण-
गारस्स ओहिनाणं समुप्पज्जइ ॥

को हेतुः क्षायोपशमिकम् ?
क्षायोपशमिकम्—तदावरणीयानां
कर्मणां उदीर्णानां क्षयेण, अनुदीर्णा-
नाम् उपशमेन अवधिज्ञानं समुत्पद्यते ।
अथवा—गुणप्रतिपन्नस्य अनगारस्य
अवधिज्ञानं समुत्पद्यते ।

९. तं समासओ छ्विव्हं पण्णत्तं, तं
जहा—आणुगामियं अणाणुगामियं
वड्ढमाण्यं हायमाण्यं पडिवाइ
अप्पडिवाइ ॥

तत् समासतः षड्विधं प्रज्ञप्तं,
तद्यथा—आनुगामिकम् अनानुगामिकं
वर्धमानकं हायमानकं प्रतिपाति
अप्रतिपाति ।

१०. से किं तं आणुगामियं ओहिनाणं?
आणुगामियं ओहिनाणं डुविहं
पण्णत्तं, तं जहा—अंतगयं च
मज्झगयं च ॥

अथ किं तद् आनुगामिकम्
अवधिज्ञानम् ? आनुगामिकम् अवधि-
ज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—
अन्तगतञ्च मध्यगतञ्च ।

११. से किं तं अंतगयं ? अंतगयं
तिविहं पण्णत्तं, तं जहा—पुरओ
अंतगयं, मग्गओ अंतगयं, पासओ
अंतगयं ॥

अथ किं तद् अन्तगतम् ? अन्त-
गतं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—पुरतः
अन्तगतं, 'मग्गओ' अन्तगतं, पार्श्वतः
अन्तगतम् ।

१२. से किं तं पुरओ अंतगयं ? पुरओ
अंतगयं—से जहानामए केइ पुरिसे
उक्कं वा चुडलियं वा अलायं वा
मणिं वा जोइं वा पईवं वा पुरओ
काउं पणोल्लेमाणे-पणोल्लेमाणे
गच्छेज्जा । सेत्तं पुरओ अंतगयं ॥

अथ किं तत् पुरतः अन्तगतम् ?
पुरतः अन्तगतं—तद् यथानाम
कश्चित् पुरुषः उल्कां का 'चुडलियं'
वा अलातं वा मणिं वा ज्योतिः वा
प्रदीपं वा पुरतः कृत्वा प्रणुदन्-प्रणुदन्
गच्छेत् । तदेतत् पुरतः अन्तगतम् ।

१३. से किं तं मग्गओ अंतगयं ?
मग्गओ अंतगयं—से जहानामए
केइ पुरिसे उक्कं वा चुडलियं वा
अलायं वा मणिं वा जोइं वा पईवं
वा मग्गओ काउं अणुकड्ढेमाणे
-अणुकड्ढेमाणे गच्छेज्जा । सेत्तं
मग्गओ अंतगयं ॥

अथ किं तद् 'मग्गओ' अन्त-
गतम् ? 'मग्गओ' अन्तगतं—तद्
यथानाम कश्चित् पुरुषः उल्कां वा
'चुडलियं' वा अलातं वा मणिं वा
ज्योतिः वा प्रदीपं वा 'मग्गओ' कृत्वा
अनुकर्षन्-अनुकर्षन् गच्छेत् । तदेतद्
'मग्गओ' अन्तगतम् ।

८. क्षयोपशमिक अवधिज्ञान का हेतु क्या है ?
उदीर्ण अवधिज्ञानावरणीय कर्मों के क्षय तथा
अनुदीर्ण अवधिज्ञानावरणीय कर्मों के उपशम
से क्षायोपशमिक अवधिज्ञान उत्पन्न होता है ।
अथवा गुणप्रतिपन्न अनगार के अवधिज्ञान
उत्पन्न होता है ।^६

९. वह अवधिज्ञान संक्षेप में छ प्रकार का प्रज्ञप्त
है, जैसे—आनुगामिक १. अनानुगामिक
२. वर्द्धमान ३. हीयमान ४. प्रतिपाति
अप्रतिपाति ।^७

१०. वह आनुगामिक अवधिज्ञान क्या है ?
आनुगामिक अवधिज्ञान दो प्रकार का प्रज्ञप्त
है, जैसे—१. अन्तगत २. मध्यगत ।

११. वह अन्तगत क्या है ?
अन्तगत तीन प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—
१. पुरतः अन्तगत २. पृष्ठतः अन्तगत
३. पार्श्वतः अन्तगत ।

१२. वह पुरतः अन्तगत क्या है ?
पुरतः अन्तगत—जैसे कोई पुरुष दीपिका,
मशाल, अलातचक्र, मणि, ज्योति अथवा
प्रदीप को आगे कर उन्हें प्रेरित करता हुआ,
प्रेरित करता हुआ चलता है । दीपिका आदि
पुरोवर्ती भाग को प्रकाशित करते हैं । इसी
प्रकार जो ज्ञान पुरोवर्ती पदार्थों को प्रकाशित
करता है । वह पुरतः अन्तगत है ।

१३. वह पृष्ठतः अन्तगत क्या है ?
पृष्ठतः अन्तगत—जैसे कोई पुरुष दीपिका,
मशाल, अलातचक्र, मणि, ज्योति अथवा
प्रदीप को पीछे की ओर ले जाकर पृष्ठ भाग
में रखता हुआ, पृष्ठ भाग में रखता हुआ
चलता है । दीपिका आदि पृष्ठवर्ती भाग को
प्रकाशित करते हैं । इसी प्रकार जो
ज्ञान पृष्ठवर्ती पदार्थों को प्रकाशित करता
है । वह पृष्ठतः अन्तगत है ।

१४. से किं तं पासओ अंतगयं ?
पासओ अंतगयं—से जहानामए
केइ पुरिसे उक्कं वा चुडलियं वा
अलायं वा मणिं वा जोइं वा पईवं
वा पासओ काउं परिकड्ढेमाणे-
परिकड्ढेमाणे गच्छेज्जा । सेत्तं
पासओ अंतगयं । सेत्तं अंतगयं ॥

अथ किं तत् पार्श्वतः अन्तगतम् ?
पार्श्वतः अन्तगतं—तद् यथानाम
कश्चित् पुरुषः उल्कां वा 'चुडलियं'
वा अलातं वा मणिं वा ज्योतिः वा
प्रदीपं वा पार्श्वतः कृत्वा परिकर्षन्-
परिकर्षन् गच्छेत् । तदेतत् पार्श्वतः
अन्तगतम् । तदेतद् अन्तगतम् ।

१४. वह पार्श्वतः अंतगत क्या है ?
पार्श्वतः अंतगत—जैसे कोई पुरुष दीपिका,
मशाल, अलातचक्र, मणि, ज्योति अथवा
प्रदीप को पार्श्व भाग में कर दाईं ओर अथवा
बाईं ओर रखता हुआ चलता है । दीपिका
आदि पार्श्व भाग को प्रकाशित करते
हैं । इसी प्रकार जो ज्ञान पार्श्ववर्ती पदार्थों
को प्रकाशित करता है । वह पार्श्वतः अंतगत
है । वह अंतगत है ।

१५. से किं तं मज्जगयं ? मज्जगयं—
से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा
चुडलियं वा अलायं वा मणिं वा
जोइं वा पईवं वा मत्थए काउं
गच्छेज्जा । सेत्तं मज्जगयं ॥

अथ किं तद् मध्यगतम् ? मध्य-
गतं—तद् यथानाम कश्चित् पुरुषः
उल्कां वा 'चुडलियं' वा अलातं वा
मणिं वा ज्योतिः वा प्रदीपं वा मस्तके
कृत्वा गच्छेत् । तदेतद् मध्यगतम् ।

१५. वह मध्यगत क्या है ?
मध्यगत—जैसे कोई पुरुष दीपिका,
मशाल, अलातचक्र, मणि, ज्योति अथवा
प्रदीप को मस्तक पर रखकर चलता है ।
मस्तक पर रखी हुई दीपिका आदि चारों
ओर के भूभाग को प्रकाशित करते हैं । इसी
प्रकार जो ज्ञान चारों ओर के पदार्थों को
प्रकाशित करता है । वह मध्यगत है ।

१६. अंतगयस्स मज्जगयस्स य को
पइविसेसो ? पुरओ अंतगएणं
ओहिनाणेणं पुरओ चेव संखेज्जाणि
वा असंखेज्जाणि वा जोयणाइं
जाणइ पासइ । मग्गओ अंतगएणं
ओहिनाणेणं मग्गओ चेव संखे-
ज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोय-
णाइं जाणइ पासइ । पासओ अंत-
गएणं ओहिनाणेणं पासओ चेव
संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा
जोयणाइं जाणइ पासइ ।
मज्जगएणं ओहिनाणेणं सव्वओ
समंता संखेज्जाणि वा असंखे-
ज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ
पासइ । सेत्तं आणुगामियं
ओहिनाणं ॥

अन्तगत-मध्यगतयोः कः प्रति-
विशेषः ? पुरतः अन्तगतेन अवधिज्ञानेन
पुरतश्चैव संख्येयानि वा असंख्येयानि
वा योजनानि जानाति पश्यति ।
'मग्गओ' अन्तगतेन अवधिज्ञानेन
'मग्गओ' चैव संख्येयानि वा असंख्ये-
यानि वा योजनानि जानाति पश्यति ।
पार्श्वतः अन्तगतेन अवधिज्ञानेन
पार्श्वतः चैव संख्येयानि वा असंख्ये-
यानि वा योजनानि जानाति पश्यति ।

१६. अंतगत और मध्यगत में क्या भेद है ?
पुरतः अंतगत अवधिज्ञान पुरोवर्ती संख्येय
अथवा असंख्येय योजनों तक जानता देखता है ।
पृष्ठतः अंतगत अवधिज्ञान पृष्ठवर्ती संख्येय
अथवा असंख्येय योजनों तक जानता देखता है ।
पार्श्वतः अंतगत अवधिज्ञान पार्श्व भाग के
संख्येय अथवा असंख्येय योजनों तक जानता
देखता है ।

मध्यगतेन अवधिज्ञानेन सर्वतः
समन्तात् संख्येयानि वा असंख्येयानि
वा योजनानि जानाति पश्यति ।
तदेतद् आनुगामिकम् अवधिज्ञानम् ।

मध्यगत अवधिज्ञान चारों ओर के संख्येय
अथवा असंख्येय योजनों तक जानता देखता
है । वह आनुगामिक अवधिज्ञान है ।

१७. से किं तं अणानुगामियं ओहि-
नाणं ? अणानुगामियं ओहिनाणं
—से जहानामए केइ पुरिसे एगं
महंतं जोइट्ठाणं काउं तस्सेव
जोइट्ठाणस्स परिपेरंतेहिं-परिपेरं-
तेहिं परिघोलेमाणे-परिघोलेमाणे
तमेव जोइट्ठाणं पासइ, अणत्थ

अथ किं तद् अनानुगामिकम्
अवधिज्ञानम् ? अनानुगामिकम्
अवधिज्ञानम्—तद् यथानाम कश्चित्
पुरुषः एकं महत् ज्योतिःस्थानं कृत्वा
तस्यैव ज्योतिःस्थानस्य परिपर्यन्तेषु
—परिपर्यन्तेषु 'परिघोलेमाणे-परि-
घोलेमाणे' तदेव ज्योतिःस्थानं

१७. वह अनानुगामिक अवधिज्ञान क्या है ?
अनानुगामिक अवधिज्ञान—जैसे कोई एक
बहुत बड़ा ज्योति कुण्ड बनाकर उसके परि-
पर्यन्त आस-पास चारों ओर चक्कर लगाता
हुआ उस ज्योति स्थान को देखता है । अन्यत्र
चले जाने पर उसे नहीं देखता ।

इसी प्रकार अनानुगामिक अवधिज्ञान जिस

गए न पासइ । एवमेव अणाणु-
गामियं ओहिनाणं जत्थेव समुप्प-
ज्जइ तत्थेव संखेज्जाणि वा
असंखेज्जाणि वा संबद्धाणि वा
असंबद्धाणि वा जोयणाइं जाणइ
पासइ, अण्णत्थ गए ण पासइ ।
सेत्तं अणाणुगामियं ओहिनाणं ॥

१८. से किं तं वड्ढमाणयं ओहिनाणं ?
वड्ढमाणयं ओहिनाणं—पसत्थेसु
अज्झवसाणट्टाणेषु वट्टमाणस्स
वट्टमाणचरित्तस्स, विसुज्झमाणस्स
विसुज्झमाणचरित्तस्स सव्वओ
समता ओही वड्ढइ ।

जावइआ तिसमयाहारगस्स
सुहुमस्स पणगजीवस्स ।
ओगाहणा जहण्णा,
ओहीखेत्तं जहण्णं तु ॥१॥

सव्वबहु अगणिजीवा,
निरंतरं जत्तियं भरिज्जंसु ।
खेत्तं सव्वदिसागं,
परमोही खेत्त-निद्विट्ठो ॥२॥

अंगुलमावलियाणं,
भागमसंखेज्ज दोसु संखेज्जा ।
अंगुलमावलियांतो,
आवलिया अंगुल-पुहतं ॥३॥

हत्थम्मि मुहुत्तंतो,
दिवसंतो गाउयम्मि बोद्धव्वो ।
जोयणदिवसपुहुत्तं,
पक्खंतो पण्णवीसाओ ॥४॥

पश्यति, अन्यत्र गतः न पश्यति ।
एवमेव अनानुगामिकम् अवधिज्ञानं
यत्रैव समुत्पद्यते तत्रैव संख्येयानि वा
असंख्येयानि वा सम्बद्धानि वा
असम्बद्धानि वा योजनानि जानाति
पश्यति, अन्यत्र गतः न पश्यति ।
तदेतद् अनानुगामिकम् अवधिज्ञानम् ।

अथ किं तद् वर्धमानकम् अवधि-
ज्ञानम् ? वर्धमानकम् अवधिज्ञानम्—
प्रशस्तेषु अध्यवसायस्थानेषु वर्तमानस्य
वर्तमानचरित्रस्य, विशुद्धचमानस्य
विशुद्धचमानचरित्रस्य सर्वतः
समन्ताद् अवधिर्वर्धते ।

यावती त्रिसमयाऽऽहारकस्य
सूक्ष्मस्य पनकजीवस्य ।
अवगाहना जघन्या,
अवधिक्षेत्रं जघन्यं तु ॥

सर्वबह्वग्निजीवा,
निरन्तरं यावद् अभाषुः ।
क्षेत्रं सर्वदिवकं,
परमावधिः क्षेत्र-निद्विट्ठः ॥

अङ्गुलाऽऽवलिकयो,
भागमसंख्येयं द्वयोः संख्येयौ ।
अङ्गुलमावलिकान्तः,
आवलिकाऽङ्गुल-पृथक्त्वम् ॥

हस्ते मुहुत्तान्तः,
दिवसान्तर्गव्यूते बोद्धव्यः ।
योजने दिवसपृथक्त्वम्,
पक्षान्तः पञ्चविंशतिम् ॥

क्षेत्र में उत्पन्न होता है उसी क्षेत्र से सम्बद्ध
अथवा असम्बद्ध, संख्येय अथवा असंख्येय
योजन तक जानता देखता है, क्षेत्र का परि-
वर्तन होने पर नहीं देखता ।^९ वह अनानु-
गामिक अवधिज्ञान है ।

१८. वह वर्धमान अवधिज्ञान क्या है ?

वर्धमान अवधिज्ञान—जो प्रशस्त अध्य-
वसायों में वर्तमान और चरित्र में वर्तमान है,
जो विशुद्धचमान और विशुद्धचमान चरित्र
वाला है उसका अवधिज्ञान सब ओर से बढ़ता
है ।^{१०}

१. पनक का जीवन जो सूक्ष्म है तीन
समय का आहारक है उसके शरीर की जितनी
जघन्य अवगाहना होती है उतना अवधिज्ञान
का जघन्य क्षेत्र है ।

२. जिस समय अग्नि के सर्वाधिक जीवों
ने निरन्तर रूप से जितने क्षेत्र को व्याप्त
किया था, उतना सब दिशाओं में परमावधि
का क्षेत्र बतलाया है ।^{११}

३. अंगुल के असंख्येय भाग क्षेत्र को देखने
वाला काल की दृष्टि से आवलिका के
असंख्येय भाग तक देखता है । अंगुल के
संख्येय भाग क्षेत्र को देखने वाला आवलिका
के संख्येय भाग क्षेत्र को देखता है । अंगुल
जितने क्षेत्र को देखने वाला भिन्न (अपूर्ण)
आवलिका तक देखता है । काल की दृष्टि से
एक आवलिका तक देखने वाला क्षेत्र की
दृष्टि से अंगुल पृथक्त्व (दो से नौ अंगुल)
क्षेत्र को देखता है ।

४. एक हाथ जितने क्षेत्र को देखने वाला
अंतर्मुहुत्त जितने काल तक देखता है, एक
गव्यूत (गाऊ) क्षेत्र को देखने वाला अंत-
दिवसकाल (एक दिन से कुछ कम) तक
देखता है । एक योजन क्षेत्र को देखने वाला
दिवस पृथक्त्व (दो से नौ दिवस) काल तक
देखता है । पञ्चीस क्षेत्र योजन को देखने
वाला अंतः पक्ष काल (कुछ कम एक पक्ष)
तक देखता है ।

भरहम्मि अद्धमासो,
जंबूद्वीवम्मि साहिओ मासो ।
वासं च मणुयलोए,
वासपुहत्तं च ह्यगम्मि ॥५॥

भरतेऽद्धमासो,
जम्बूद्वीपे साधिको मासः ।
वर्षञ्च मनुजलोके,
वर्षपृथक्त्वञ्च रुचके ॥

संखेज्जम्मि उ काले,
दीवसमुद्दा वि हुंति संखेज्जा ।
कालम्मि असंखेज्जे,
दीवसमुद्दा उ भइयव्वा ॥६॥

संख्येये तु काले,
द्वीपसमुद्रा अपि भवन्ति संख्येयाः ।
कालेऽसंख्येये,
द्वीपसमुद्रास्तु भक्तव्याः ॥

काले चउण्ह वुड्ढी,
कालो भइयव्वु खेत्तवुड्ढीए ।
वुड्ढीए दव्वपज्जव,
भइयव्वा खेत्तकाला उ ॥७॥

काले चतुर्णा वृद्धिः,
कालो भक्तव्यः क्षेत्रवृद्धौ ।
वृद्धौ द्रव्यपर्याययोः,
भक्तव्यो क्षेत्रकालौ तु ॥

सुहुमो य होइ कालो,
तत्तो सुहुमयरयं हवइ खेत्तं ।
अंगुलसेढीमित्ते,
ओसपिणिओ असंखेज्जा ॥८॥
सेत्तं वड्ढमाणयं ओहिनाणं ॥

सूक्ष्मश्च भवति कालः,
ततः सूक्ष्मतरकं भवति क्षेत्रम् ।
अङ्गुलश्रेणिमात्रे,
अवसर्पिण्यः असंख्येयाः ॥
तदेतद् वर्धमानकम् अवधिज्ञानम् ।

१९. से किं तं हायमाणयं ओहिनाणं ?
हायमाणयं ओहिनाणं अप्पसत्थेहि
अज्भवसाणट्ठार्णेहि वट्टमाणस्स
वट्टमाणचरित्तस्स, संकिलिस्स-
माणस्स संकिलिस्समाणचरित्तस्स
सव्वओ समंता ओही परिहायइ ।
सेत्तं हायमाणयं ओहिनाणं ॥

अथ किं तद् हीयमानकम् अवधि-
ज्ञानम् ? हीयमानकम् अवधिज्ञानम्—
अप्रशस्तेषु अध्यवसायस्थानेषु वर्तमान-
स्य वर्तमानचरित्रस्य, संक्लिश्य-
मानस्य संक्लिश्यमानचरित्रस्य सर्वतः
समन्ताद् अवधिः परिहीयते । तदेतद्
हीयमानकम् अवधिज्ञानम् ।

१९. वह हीयमान अवधिज्ञान क्या है ?

हीयमान अवधिज्ञान—जो अप्रशस्त अध्य-
वसायों में वर्तमान और चरित्र में वर्तमान है,
जो संक्लिश्यमान और संक्लिश्यमान चरित्र
वाला है उसका अवधिज्ञान सब ओर से घटता
है ।^{१९} वह हीयमान अवधिज्ञान है ।

२०. से किं तं पडिवाइ ओहिनाणं ?
पडिवाइ ओहिनाणं—जण्णं
जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जयभागं
वा संखेज्जयभागं वा, बालगं वा
बालगपुहत्तं वा, लिक्खं वा
लिक्खपुहत्तं वा, जूयं वा जूयपुहत्तं
वा, जवं वा जवपुहत्तं वा, अंगुलं
वा अंगुलपुहत्तं वा, पायं वा पाय-
पुहत्तं वा विहत्थि वा विहत्थिपुहत्तं
वा, रयणि वा रयणिपुहत्तं वा,
कुच्चि वा कुच्चिपुहत्तं वा, धणुं
वा धणुपुहत्तं वा, गाउयं वा गाउय-

अथ किं तत् प्रतिपाति अवधि-
ज्ञानम् ? प्रतिपाति अवधिज्ञानम्—
यद् जघन्येन अङ्गुलस्य असंख्येयतम-
भागं वा, संख्येयतमभागं वा, बालाग्रं
वा, बालाग्रपृथक्त्वं वा, लिक्षां वा,
लिक्षापृथक्त्वं वा, यूकां वा, यूका-
पृथक्त्वं वा, यवं वा, यवपृथक्त्वं वा,
अङ्गुलं वा, अङ्गुलपृथक्त्वं वा,
पादं वा, पादपृथक्त्वं वा, वितस्तिं
वा, वितस्तिपृथक्त्वं वा, रत्तिं वा,
रत्तिपृथक्त्वं वा, कुक्षिं वा, कुक्षि-
पृथक्त्वं वा, धनुर्वा, धनुःपृथक्त्वं वा,

२०. वह प्रतिपाती अवधिज्ञान क्या है ?

प्रतिपाती अवधिज्ञान—जो जघन्य अंगुल के
असंख्येय भाग, संख्येय भाग, बालाग्र, बालाग्र-
पृथक्त्व, लिक्षा, लिक्षापृथक्त्व, यूका, यूका-
पृथक्त्व, यव, यवपृथक्त्व, अंगुल, अंगुल-
पृथक्त्व, पाद, पादपृथक्त्व, वितस्ति, वितस्ति-
पृथक्त्व, रत्ति, रत्तिपृथक्त्व, कुक्षि, कुक्षि-
पृथक्त्व, धनुष, धनुषपृथक्त्व, गव्यूति, गव्यूति-
पृथक्त्व, योजन, योजनपृथक्त्व, सौ योजन,
सौ योजनपृथक्त्व हजार योजन, हजार
योजनपृथक्त्व, लाख योजन, लाख योजन-
पृथक्त्व, करोड़ योजन, करोड़ योजनपृथक्त्व,

पुहत्तं वा, जोयणं वा जोयणपुहत्तं वा, जोयणसयं वा जोयणसयपुहत्तं वा, जोयणसहस्सं वा जोयणसहस्सपुहत्तं वा, जोयणलक्खं वा जोयणलक्खपुहत्तं वा जोयणकोडिं वा जोयणकोडिपुहत्तं वा, जोयणकोडाकोडिं वा जोयणकोडाकोडिपुहत्तं वा, उक्कोसेणं लोगं वा—पासित्ताणं पडिवाएज्जा । सेत्तं पडिवाइ ओहिनाणं ॥

गव्यूतिं वा, गव्यूतिपृथक्त्वं वा, योजनं वा, योजनपृथक्त्वं वा, योजनशतं वा, योजनशतपृथक्त्वं वा, योजनसहस्रं वा, योजनसहस्रपृथक्त्वं वा, योजनलक्षं वा, योजनलक्षपृथक्त्वं वा, योजनकोटिं वा, योजनकोटिपृथक्त्वं वा, योजनकोटिकोटिं वा योजनकोटिकोटिपृथक्त्वं वा, उत्कर्षेण लोकं वा—दृष्ट्वा प्रतिपतेत् । तदेतत् प्रतिपाति अवधिज्ञानम् ।

कोड़ाकोड़ योजन अथवा कोड़ाकोड़ योजन-पृथक्त्व तथा उत्कृष्ट सर्वलोक को देखकर प्रतिपतित हो जाता है, चला जाता है । वह प्रतिपाती अवधिज्ञान है ।

२१. से किं तं अपडिवाइ ओहिनाणं ? अपडिवाइ ओहिनाणं—जेणं अलोगस्स एगमवि आगासपएसं पासेज्जा, तेण परं अपडिवाइ ओहिनाणं । सेत्तं अपडिवाइ ओहिनाणं ॥

अथ किं तद् अप्रतिपाति अवधिज्ञानम् ? अप्रतिपाति अवधिज्ञानम्—येन अलोकस्य एकमपि आकाशप्रदेशं पश्येत्, तेन परम् अप्रतिपाति अवधिज्ञानम् । तदेतद् अप्रतिपाति अवधिज्ञानम् ।

२१. वह अप्रतिपाती अवधिज्ञान क्या है ?

अप्रतिपाती अवधिज्ञान—जो अवधिज्ञान अलोकाकाश के एक आकाश प्रदेश को अथवा उससे आगे देखने की क्षमता रखता है ।^{१९} वह अप्रतिपाति अवधिज्ञान है ।

२२. तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ ।

तत् समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः ।

२२. वह (अवधिज्ञान का विषय) संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः ।

तत्थ दव्वओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं अणंताइं रुविदव्वाइं जाणइ पासइ । उक्कोसेणं सव्वाइं रुविदव्वाइं जाणइ पासइ ।

तत्र द्रव्यतः अवधिज्ञानी जघन्यतः अनन्तानि रूपिद्रव्याणि जानाति पश्यति । उत्कर्षतः सर्वाणि रूपिद्रव्याणि जानाति पश्यति ।

द्रव्य की दृष्टि से अवधिज्ञानी जघन्यतः अनंत रूपी द्रव्यों को जानता देखता है । उत्कृष्टतः वह सब रूपी द्रव्यों को जानता देखता है ।

खेत्तओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं जाणइ पासइ । उक्कोसेणं असंखेज्जाइं अलोगे लोयमेत्ताइं खंडाइं जाणइ पासइ ।

क्षेत्रतः अवधिज्ञानी जघन्यतः अङ्गुलस्स असंख्येयतमभागं जानाति पश्यति । उत्कर्षतः असंख्येयानि अलोके लोकमात्राणि खण्डानि जानाति पश्यति ।

क्षेत्र की दृष्टि से अवधिज्ञानी जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग को जानता देखता है । उत्कृष्टतः वह अलोक में लोक-प्रमाण असंख्यात खंडों को जानता देखता है ।

कालओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं जाणइ पासइ । उक्कोसेणं असंखेज्जाओ ओसप्पिणीओ उत्सप्पिणीओ अईयमणागयं च कालं जाणइ पासइ ।

कालतः अवधिज्ञानी जघन्यतः आवलिकायाः असंख्येयतमं भागं जानाति पश्यति । उत्कर्षतः असंख्येयाः उत्सर्पिणीः अवसर्पिणीः अतीतमनागतञ्च कालं जानाति पश्यति ।

काल की दृष्टि से अवधिज्ञानी जघन्यतः आवलिका के असंख्यातवें भाग को जानता देखता है । उत्कृष्टतः वह असंख्येय अवसर्पिणी उत्सर्पिणी प्रमाण अतीत और भविष्य काल को जानता देखता है ।

भावओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं अणंते भावे जाणइ पासइ । उक्कोसेणं वि अणंते भावे जाणइ पासइ, सव्वभावाणमणंतभागं जाणइ पासइ ।

भावतः अवधिज्ञानी जघन्यतः अनन्तान् भावान् जानाति पश्यति । उत्कर्षतोऽपि अनन्तान् भावान् जानाति पश्यति, सर्वभावानामनन्तभागं जानाति पश्यति ।

भाव की दृष्टि से अवधिज्ञानी जघन्यतः अनन्त पर्यायों को जानता देखता है । उत्कृष्टतः भी वह अनन्त पर्यायों को जानता देखता है तथा समस्त पर्यायों के अनन्त भाग को जानता देखता है ।^{१९}

ओही भवपच्चइओ,
गुणपच्चइओ य वण्णिओ एसो ।
तस्स य बहू विगप्पा,
दव्वे खेत्ते य काले य ॥१॥
नेरइयदेवत्तिथंकरा य,
ओहिस्सबाहिरा हुंति ।
पासंति सव्वओ खलु,
सेसा देसेण पासंति ॥२॥
सेत्तं ओहिनाणं ॥

अवधिर्भवप्रत्ययिको,
गुणप्रत्ययिकश्च वर्णितः एषः ।
तस्य च बहवः विकल्पाः,
द्रव्ये क्षेत्रे च काले च ॥
नैरयिकदेवतीर्थकराश्च,
अवधेरबाह्या भवन्ति ।
पश्यन्ति सर्वतः खलु,
शेषा देशेन पश्यन्ति ॥

तदेतद् अवधिज्ञानम् ।

१. भवप्रत्ययिक और गुणप्रत्ययिक के भेद से अवधिज्ञान दो प्रकार का होता है । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से इसके बहुत विकल्प हो जाते हैं ।^{१८}

२. नैरयिक, देव और तीर्थकर अबाह्य अवधिज्ञान वाले होते हैं । वे सर्वतः देखते हैं । शेष (अन्तगत अवधिज्ञान वाले) मनुष्य और तिर्यंच एक देश से देखते हैं ।^{१९}

वह अवधिज्ञान है ।

मणपज्जवनाण-पदं

२३. से किं तं मणपज्जवनाणं ?
मणपज्जवनाणे णं भंते ! किं मणु-
स्साणं उप्पज्जइ ? अमणुस्साणं ?

गोयमा ! मणुस्साणं, नो अमणु-
स्साणं ।

जइ मणुस्साणं—किं संमुच्छिम-
मणुस्साणं ? गढभवक्कंतियमणु-
स्साणं ?

गोयमा ! नो संमुच्छिममणुस्साणं,
गढभवक्कंतियमणुस्साणं ।

जइ गढभवक्कंतियमणुस्साणं—किं
कम्मभूमिय-गढभवक्कंतियमणु-
स्साणं ? अकम्मभूमिय-गढभवक्कं-
तियमणुस्साणं ? अंतरदीवग-
गढभवक्कंतियमणुस्साणं ?

गोयमा ! कम्मभूमिय-गढभवक्कं-
तियमणुस्साणं, नो अकम्मभूमिय-
गढभवक्कंतियमणुस्साणं । नो
अंतरदीवग-गढभवक्कंतियमणु-
स्साणं ।

जइ कम्मभूमिय-गढभवक्कंतिय-
मणुस्साणं—किं संखेज्जवासाउय-
कम्मभूमिय-गढभवक्कंतियमणु-
स्साणं ? असंखेज्जवासाउय-कम्म-
भूमिय-गढभवक्कंतियमणुस्साणं ?
गोयमा ! संखेज्जवासाउय-कम्म-
भूमिय-गढभवक्कंतियमणुस्साणं,
नो असंखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-
गढभवक्कंतियमणुस्साणं ।

मनःपर्यवज्ञान-पदम्

अथ किं तद् मनःपर्यवज्ञानम् ?
मनःपर्यवज्ञानं भदन्त ! किं
मनुष्याणामुत्पद्यते ? अमनुष्याणाम् ?

गौतम ! मनुष्याणां, नो
अमनुष्याणाम् ।

यदि मनुष्याणां—किं सम्मुच्छिम-
मनुष्याणां ? गढभवक्कंतियमणु-
स्साणं ?

गौतम ! नो सम्मुच्छिममनुष्याणां
गढभवक्कंतियमणुस्साणं ।

यदि गढभवक्कंतियमणुस्साणां—
किं कर्मभूमिज-गढभवक्कंतियमणु-
स्साणं ? अकर्मभूमिज-गढभवक्कं-
तियमणुस्साणं ? अन्तर्द्वीपज-गढभव-
क्कंतियमणुस्साणं ?

गौतम ! कर्मभूमिज-गढभव-
क्कंतियमणुस्साणां, नो अकर्मभूमिज-
गढभवक्कंतियमणुस्साणं, नो अन्त-
र्द्वीपज-गढभवक्कंतियमणुस्साणं ।

यदि कर्मभूमिज-गढभवक्कंतिय-
मणुस्साणां—किं संखेयवर्षायुष्क-
कर्मभूमिज-गढभवक्कंतियमणु-
स्साणं ? असंखेयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-
गढभवक्कंतियमणुस्साणं ?

गौतम ! संखेयवर्षायुष्क-कर्म-
भूमिज-गढभवक्कंतियमणुस्साणां, नो
असंखेयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गढभव-
क्कंतियमणुस्साणं ।

मनःपर्यवज्ञान-पद

२३. वह मनःपर्यवज्ञान क्या है ?

भंते ! मनःपर्यवज्ञान मनुष्यों के होता है
अथवा अमनुष्यों के ?

गौतम ! मनुष्यों के होता है, अमनुष्यों के
नहीं होता ।

यदि मनुष्यों के होता है तो क्या संमुच्छिम
मनुष्यों के होता है अथवा गढभवक्कंतियमणु-
स्साणं के ?

गौतम ! संमुच्छिम मनुष्यों के नहीं गढभव-
क्कंतियमणुस्साणं के होता है ।

यदि गढभवक्कंतियमणुस्साणां के होता है तो क्या
कर्मभूमि में उत्पन्न गढभवक्कंतियमणुस्साणं के होता है
अथवा अकर्मभूमि में उत्पन्न गढभवक्कंतियमणुस्साणं के
अथवा अन्तर्द्वीप में उत्पन्न गढभवक्कंतियमणुस्साणं के ?

गौतम ! कर्मभूमि में उत्पन्न गढभव-
क्कंतियमणुस्साणं के होता है । अकर्मभूमि में उत्पन्न
गढभवक्कंतियमणुस्साणं के और अन्तर्द्वीप में उत्पन्न
गढभवक्कंतियमणुस्साणं के नहीं होता ।

यदि कर्मभूमि में उत्पन्न गढभवक्कंतियमणुस्साणं के
होता है तो क्या संखेयवर्षायुष्क वाले
कर्मभूमि में उत्पन्न गढभवक्कंतियमणुस्साणं के होता है
अथवा असंखेयवर्षायुष्क वाले कर्मभूमि
में उत्पन्न गढभवक्कंतियमणुस्साणं के ?

गौतम ! संखेयवर्षायुष्क वाले कर्म-
भूमि में उत्पन्न गढभवक्कंतियमणुस्साणं के होता है ।
असंखेयवर्षायुष्क वाले कर्मभूमि में
उत्पन्न गढभवक्कंतियमणुस्साणं के नहीं होता ।

२४. तं च दुविहं उप्पज्जइ, तं जहा—
उज्जुमई य विउलमई य ॥

२५. तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं,
तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ,
कालओ, भावओ ।

तत्थ दव्वओ णं उज्जुमई अणंते
अणंतपएसिंए खंधे जाणइ पासइ ।
ते चेव विउलमई अब्भहियतराए
विउलतराए विसुद्धतराए विति-
मिरतराए जाणइ पासइ ।

खेत्तओ णं उज्जुमई अहे जाव
इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरि-
महेट्टिल्ले खुड्ढागपयरे, उड्ढं जाव
जोइसस्स उवरिमतले, तिरियं
जाव अंतोमणुस्सखेत्ते अड्ढाइज्जेसु
दीवसमुद्देसु, पण्णरससु कम्म-
भूमीसु, तीसाए अकम्मभूमीसु,
छप्पण्णए अंतरदीवगेसु सण्णोणं
पंचेदियाणं पज्जत्तयाणं मणोगए
भावे जाणइ पासइ । तं चेव
विउलमई अड्ढाइज्जेहिमंगुलेहिं
अब्भहियतरं विउलतरं विसुद्धतरं
वितिमिरतरं खेत्तं जाणइ पासइ ।

कालओ णं उज्जुमई जहण्णेणं
पलिओवमस्स असंखिज्जयभागं,
उक्कोसेण वि पलिओवमस्स
असंखिज्जयभागं अतीयमणागयं
वा कालं जाणइ पासइ । तं चेव
विउलमई अब्भहियतरागं विउल-
तरागं विसुद्धतरागं वितिमिरत-
रागं जाणइ पासइ ।

भावओ णं उज्जुमई अणंते भावे
जाणइ पासइ, सव्वभावणं अणंत-
भागं जाणइ पासइ । तं चेव
विउलमई अब्भहियतरागं विउल-
तरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं
जाणइ पासइ ।

तच्च द्विविधमुत्पद्यते, तद्यथा —
ऋजुमतिश्च विपुलमतिश्च ।

तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तं,
तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः,
भावतः ।

तत्र द्रव्यतः ऋजुमतिः अनन्तान्
अनन्तप्रदेशिकान् स्कन्धान् जानाति
पश्यति । तान् चैव विपुलमतिः अभ्य-
धिकतरकान् विपुलतरकान् विशुद्धतर-
कान् वितिमिरतरकान् जानाति
पश्यति ।

क्षेत्रतः ऋजुमतिः अधो यावद-
स्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्या उपरि-
तनाधस्तने क्षुल्लकप्रतरे, ऊर्ध्वं याव-
ज्ज्योतिष्कस्य उपरितनतले, तिर्यग्
यावदन्तोमनुष्यक्षेत्रे अर्द्धतृतीयेषु
द्वीपसमुद्रेषु, पञ्चदशसु कर्मभूमिषु,
त्रिंशदकर्मभूमिषु, षट्पञ्चाशदन्त-
र्दीपकेषु संज्ञिनां पञ्चेन्द्रियाणां
पर्याप्तकानां मनोगतान् भावान्
जानाति पश्यति । तत् चैव विपुल-
मतिः अर्द्धतृतीयेः अङ्गुलैः अभ्यधिक-
तरकं विपुलतरकं विशुद्धतरकं
वितिमिरतरकं क्षेत्रं जानाति
पश्यति ।

कालतः ऋजुमतिः जघन्येन
पल्योपमस्य असंख्येयतमभागं,
उत्कर्षेण अपि पल्योपमस्य असंख्येय-
तमभागं अतीतमनागतं वा कालं
जानाति पश्यति । तच्चैव विपुलमतिः
अभ्यधिकतरकं विपुलतरकं विशुद्ध-
तरकं वितिमिरतरकं जानाति
पश्यति ।

भावतः ऋजुमतिः अनन्तान्
भावान् जानाति पश्यति, सर्वभावा-
नामनन्तभागं जानाति पश्यति ।
तान् चैव विपुलमतिः अभ्यधिकतर-
कान् विपुलतरकान् विशुद्धतरकान्
वितिमिरतरकान् जानाति पश्यति ।

२४. वह (मनःपर्यवज्ञान) दो प्रकार से उत्पन्न
होता है, जैसे—१. ऋजुमति २. विपुलमति ।

२५. वह (मनःपर्यवज्ञान का विषय) संक्षेप में चार
प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—द्रव्यतः, क्षेत्रतः,
कालतः, भावतः ।

द्रव्य की दृष्टि से ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानी
मनोवगणा के अनंत-अनंतप्रदेशी स्कन्धों को
जानता देखता है । विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी
उन स्कन्धों को अधिकतर विपुलतर विशुद्धतर
और उज्ज्वलतर रूप से जानता देखता है ।

क्षेत्र की दृष्टि से ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानी
नीचे की ओर इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊर्ध्व-
वर्ती क्षुल्लकप्रतर से अधस्तन क्षुल्लकप्रतर
तक ऊपर की ओर ज्योतिष्क के उपरितल
तक तिरछे भाग में मनुष्यक्षेत्र के भीतर
अढाई द्वीप समुद्र तक पन्द्रह कर्मभूमियों, तीस
अकर्मभूमियों और छप्पन अंतर्द्वीपों में वर्तमान
पर्याप्तक समनस्क पंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत
भावों को जानता देखता है । विपुलमति
मनःपर्यवज्ञानी उस क्षेत्र से अढाई अंगुल
अधिकतर विपुलतर विशुद्धतर और उज्ज्वल-
तर क्षेत्र को जानता देखता है ।

काल की दृष्टि से ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानी
जघन्यतः पल्योपम के असंख्यातवें भाग को,
उत्कृष्टतः पल्योपम के असंख्यातवें भाग अतीत
और भविष्य को जानता देखता है । विपुल-
मति मनःपर्यवज्ञानी उस कालखंड को अधिक-
तर विपुलतर विशुद्धतर और उज्ज्वलतर
जानता देखता है ।

भाव की दृष्टि से ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानी
अनंतभावों को जानता देखता है । सब भावों
के अनन्तवें भाग को ही जानता देखता है ।
विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी उन भावों को
अधिकतर विपुलतर विशुद्धतर और उज्ज्वल-
तर जानता देखता है ।^{११}

मणपञ्जवनाणं पुण,
जणमणपरिचिंतितयत्थपागडणं ।
माणुसखेत्तनिबद्धं,
गुणपच्चइयं चरित्तवओ ॥१॥
सेत्तं मणपञ्जवनाणं ॥

मनःपर्यवज्ञानं पुनः,
जनमनःपरिचिन्तितार्थप्रकटनम् ।
मानुषक्षेत्रनिबद्धं,
गुणप्रत्ययिकं चरित्रवतः ॥
तदेतद् मनःपर्यवज्ञानम् ।

१. मनःपर्यवज्ञान संज्ञीपंचेन्द्रिय के मन-
श्चिन्तित अर्थ को प्रकट करता है। इसका
संबंध मनुष्य क्षेत्र से है। यह गुणप्रत्ययिक
है। यह चरित्रवान् संयमी के ही होता है।
वह मनःपर्यवज्ञान है।

केवलनाण-पदं

२६. से किं तं केवलनाणं ? केवलनाणं
दुविहं पणत्तं, तं जहा—भवत्थ-
केवलनाणं च, सिद्धकेवलनाणं
च ॥

२७. से किं तं भवत्थकेवलनाणं ? भव-
त्थकेवलनाणं दुविहं पणत्तं, तं
जहा—सजोगिभवत्थकेवलनाणं च
अजोगिभवत्थकेवलनाणं च ॥

२८. से किं तं सजोगिभवत्थकेवल-
नाणं ? सजोगिभवत्थकेवलनाणं
दुविहं पणत्तं, तं जहा—पढम-
समयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च
अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवल-
नाणं च ।

अहवा—चरमसमयसजोगिभवत्थ-
केवलनाणं च अचरमसमयसजोगि-
भवत्थकेवलनाणं च । सेत्तं सजोगि-
भवत्थकेवलनाणं ॥

२९. से किं तं अजोगिभवत्थकेवलनाणं?
अजोगिभवत्थकेवलनाणं दुविहं
पणत्तं, तं जहा—पढमसमय-
अजोगिभवत्थकेवलनाणं च अपढम-
समयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च ।
अहवा—चरमसमयअजोगिभवत्थ-
केवलनाणं च अचरमसमयअजोगि-
भवत्थकेवलनाणं च । सेत्तं
अजोगिभवत्थकेवलनाणं ॥

३०. से किं तं सिद्धकेवलनाणं ? सिद्ध-
केवलनाणं दुविहं पणत्तं, तं जहा
—अणंतरसिद्धकेवलनाणं च
परंपरसिद्धकेवलनाणं च ॥

३१. से किं तं अणंतरसिद्धकेवलनाणं ?

केवलज्ञान-पदम्

अथ किं तत् केवलज्ञानम् ?
केवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—
भवत्थकेवलज्ञानञ्च, सिद्धकेवल-
ज्ञानञ्च ।

अथ किं तद् भवत्थकेवलज्ञानम्?
भवत्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं,
तद्यथा—सयोगिभवत्थकेवलज्ञानञ्च
अयोगिभवत्थकेवलज्ञानञ्च ।

अथ किं तत्सयोगिभवत्थकेवल-
ज्ञानम् ? सयोगिभवत्थकेवलज्ञानं
द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—प्रथमसमय-
सयोगिभवत्थकेवलज्ञानञ्च अप्रथम-
समयसयोगिभवत्थकेवलज्ञानञ्च ।

अथवा—चरमसमयसयोगि-
भवत्थकेवलज्ञानञ्च अचरमसमय-
सयोगिभवत्थकेवलज्ञानञ्च । तदेतद्
सयोगिभवत्थकेवलज्ञानम् ।

अथ किं तद् अयोगिभवत्थकेवल-
ज्ञानम् ? अयोगिभवत्थकेवलज्ञानं
द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—प्रथमसमया-
योगिभवत्थकेवलज्ञानञ्च अप्रथम-
समयायोगिभवत्थकेवलज्ञानञ्च ।

अथवा—चरमसमयायोगिभवत्थ-
केवलज्ञानञ्च अचरमसमयायोगि-
भवत्थकेवलज्ञानञ्च । तदेतद् अयोगि-
भवत्थकेवलज्ञानम् ।

अथ किं तत्सिद्धकेवलज्ञानम् ?
सिद्धकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा
—अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानञ्च परम्पर-
सिद्धकेवलज्ञानञ्च ।

अथ किं तद् अनन्तरसिद्धकेवल-

केवलज्ञान-पद

२६. वह केवलज्ञान क्या है ? केवलज्ञान दो प्रकार
का प्रज्ञप्त है, जैसे—

१. भवत्थकेवलज्ञान २. सिद्धकेवलज्ञान ।

२७. वह भवत्थकेवलज्ञान क्या है ? भवत्थकेवल-
ज्ञान दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—

१. सयोगीभवत्थकेवलज्ञान २. अयोगीभवत्थ-
केवलज्ञान ।

२८. वह सयोगीभवत्थकेवलज्ञान क्या है ? सयोगी
भवत्थ केवलज्ञान दो प्रकार का प्रज्ञप्त है,
जैसे—

१. प्रथम समय सयोगीभवत्थ केवलज्ञान ।
२. अप्रथम समय सयोगी भवत्थ केवल-
ज्ञान ।

अथवा—१. चरम समय सयोगी भवत्थ
केवलज्ञान । २. अचरम समय सयोगी भवत्थ
केवलज्ञान । वह सयोगी भवत्थ केवलज्ञान है ।

२९. वह अयोगी भवत्थकेवलज्ञान क्या है ?
अयोगीभवत्थकेवलज्ञान दो प्रकार का प्रज्ञप्त
है, जैसे—

१. प्रथम समय अयोगी भवत्थ केवलज्ञान
२. अप्रथम समय अयोगी भवत्थ केवलज्ञान ।
अथवा—१. चरम समय अयोगी भवत्थ
केवलज्ञान २. अचरम समय अयोगीभवत्थ-
केवलज्ञान । वह अयोगीभवत्थकेवलज्ञान है ।

३०. वह सिद्धकेवलज्ञान क्या है ? सिद्धकेवलज्ञान
दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—

१. अनन्तर सिद्धकेवलज्ञान २. परम्पर
सिद्धकेवलज्ञान ।

३१. वह अनन्तर सिद्धकेवलज्ञान क्या है ? अनन्तर

अणंतरसिद्धकेवलनाणं पण्णरसविहं पण्णत्तं, तं जहा—१. तित्थसिद्धा २. अतित्थसिद्धा ३. तित्थयरसिद्धा ४. अतित्थयरसिद्धा ५. सयंबुद्धसिद्धा ६. पत्तेयबुद्धसिद्धा ७. बुद्धबोहियसिद्धा ८. इत्थिलिगसिद्धा ९. पुरिसलिगसिद्धा १०. नपुंसगलिगसिद्धा ११. सलिगसिद्धा १२. अण्णलिगसिद्धा १३. गिर्हिलिगसिद्धा १४. एगसिद्धा १५. अणेगसिद्धा । सेत्तं अणंतरसिद्धकेवलनाणं ॥

३२. से किं तं परंपरसिद्धकेवलनाणं ? परंपरसिद्धकेवलनाणं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा—अपढमसमयसिद्धा, दुसमयसिद्धा, तिसमयसिद्धा, चउसमयसिद्धा जाव दससमयसिद्धा, संखेज्जसमयसिद्धा, असंखेज्जसमयसिद्धा, अणंतसमयसिद्धा । सेत्तं परंपरसिद्धकेवलनाणं । सेत्तं सिद्धकेवलनाणं ॥

३३. तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ । तत्थ दव्वओ णं केवलनाणी सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ । खेत्तओ णं केवलनाणी सव्वं खेत्तं जाणइ पासइ । कालओ णं केवलनाणी सव्वं कालं जाणइ पासइ । भावओ णं केवलनाणी सव्वे भावे जाणइ पासइ । अह सव्वदव्वपरिणाम-भाव-विण्णत्ति-कारणमणंतं । सासयमप्पडिवाइं, एगविहं केवलं नाणं ॥१॥ केवलनाणेणत्थे, नाउं जे तत्थ पण्णवणजोगे । ते भासइ तित्थयरो, वइजोग तयं हवइ सेसं ॥२॥ सेत्तं केवलनाणं । सेत्तं पच्चक्खं ॥

ज्ञानम् ? अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं पञ्चदशविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—१. तीर्थसिद्धाः २. अतीर्थसिद्धाः ३. तीर्थकरसिद्धाः ४. अतीर्थकरसिद्धाः ५. स्वयंबुद्धसिद्धाः ६. प्रत्येकबुद्धसिद्धाः ७. बुद्धबोधितसिद्धाः ८. स्त्रीलिङ्गसिद्धाः ९. पुरुषलिङ्गसिद्धाः १०. नपुंसकलिङ्गसिद्धाः ११. अन्यलिङ्गसिद्धाः १२. गृहिलिङ्गसिद्धाः १३. एकसिद्धाः १४. अनेकसिद्धाः । तदेतद् अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानम् ।

अथ किं तत्परम्परसिद्धकेवलज्ञानम् ? परम्परसिद्धकेवलज्ञानम् अनेकविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—अप्रथमसमयसिद्धाः, द्विसमयसिद्धाः, त्रिसमयसिद्धाः, चतुःसमयसिद्धाः, यावद् दशसमयसिद्धाः, संख्येयसमयसिद्धाः, असंख्येयसमयसिद्धाः, अनन्तसमयसिद्धाः । तदेतद् परम्परसिद्धकेवलज्ञानम् । तदेतद् सिद्धकेवलज्ञानम् ।

तत् समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः । तत्र द्रव्यतः केवलज्ञानी सर्वद्रव्याणि जानाति पश्यति । क्षेत्रतः केवलज्ञानी सर्वं क्षेत्रं जानाति पश्यति । कालतः केवलज्ञानी सर्वं कालं जानाति पश्यति । भावतः केवलज्ञानी सर्वान् भावान् जानाति पश्यति । अथ सर्वद्रव्यपरिणाम-भाव-विज्ञप्ति-कारणमनन्तम् । शाश्वतमप्रतिपाति, एकविधं केवलं ज्ञानम् ॥ केवलज्ञानेन अर्थान्, ज्ञात्वा ये तत्र प्रज्ञापनयोग्याः । तान् भाषते तीर्थकरो, वाग्योगः तर्कं भवति शेषम् ॥ तदेतद् केवलज्ञानम् । तदेतद् प्रत्यक्षम् ।

सिद्धकेवलज्ञानं पन्द्रह प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—१. तीर्थसिद्ध २. अतीर्थसिद्ध ३. तीर्थकरसिद्ध ४. अतीर्थकरसिद्ध ५. स्वयंबुद्धसिद्ध ६. प्रत्येकबुद्धसिद्ध ७. बुद्धबोधितसिद्ध ८. स्त्रीलिगसिद्ध ९. पुरुषलिगसिद्ध १०. नपुंसकलिगसिद्ध ११. स्वलिगसिद्ध १२. अन्यलिगसिद्ध १३. गृहलिगसिद्ध १४. एकसिद्ध १५. अनेकसिद्ध । वह अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान है ।

३२. वह परम्पर सिद्धकेवलज्ञान क्या है ? परम्पर सिद्ध केवलज्ञान अनेक प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—अप्रथमसमय सिद्ध, द्विसमय सिद्ध, त्रिसमय सिद्ध, चतुःसमय सिद्ध, पंचसमय सिद्ध यावत् दससमय सिद्ध, संख्येयसमय सिद्ध, असंख्येयसमय सिद्ध, अनन्तसमय सिद्ध ।^{१९} वह परम्परसिद्धकेवलज्ञान है । वह सिद्धकेवलज्ञान है ।

३३. वह केवलज्ञान संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—
द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः ।
द्रव्य की दृष्टि से केवलज्ञानी सब द्रव्यों को जानता देखता है ।
क्षेत्र की दृष्टि से केवलज्ञानी सब क्षेत्रों को जानता देखता है ।
काल की दृष्टि से केवलज्ञानी सब काल को जानता देखता है ।
भाव की दृष्टि से केवलज्ञानी सब भावों को जानता देखता है ।

१. जो सब द्रव्यों, उनके परिणामों, उनकी सत्ता की विज्ञप्ति का कारण, अनंत, शाश्वत, अप्रतिपाती और एक प्रकार का है, वह केवलज्ञान है ।

२. तीर्थकर केवलज्ञान के द्वारा अर्थों को जानते हैं, उनमें जो प्रज्ञापन योग्य हैं उनका निरूपण करते हैं । वह उनका वचनयोग है, शेष—द्रव्यश्रुत है—दूसरों के लिए द्रव्यश्रुत है ।^{१९} वह केवलज्ञान है । वह प्रत्यक्षज्ञान है ।

टिप्पण

सूत्र २

१. (सूत्र २)

दर्शन के चार प्रमुख विषय हैं—

१. ज्ञान मीमांसा
२. प्रमाण मीमांसा
३. तत्त्व मीमांसा
४. आचार मीमांसा ।

जैनदर्शन में ज्ञानमीमांसा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रस्तुत आगम (नंदी) ज्ञानमीमांसा का मौलिक ग्रंथ है। जैनशासन में चौदह पूर्वों को अमाप्य ज्ञान-राशि का आकर माना गया है। उनमें पांचवां पूर्व ज्ञानप्रवाद है। उसमें ज्ञान का विशद वर्णन था। वर्तमान में वह विलुप्त है। 'रायपसेणियं' सूत्र से पता चलता है कि अर्हत् पार्श्व की परम्परा में ज्ञान का स्वतंत्र निरूपण होता था।^१ वही ज्ञानप्रवाद अथवा पार्श्व की परम्परा महावीर के शासन में प्रचलित रही।

ज्ञान और प्रमाण—

आगम युग तक जैन साहित्य में ज्ञानमीमांसा का ही प्राधान्य रहा। प्रमाण का प्रवेश दर्शन युग में हुआ है। उसका प्रवेश करवाने वालों में दो प्रमुख हैं—आर्यरक्षित और उमास्वाति। आर्यरक्षित ने अनुयोग का प्रारम्भ पंचविध ज्ञान के सूत्र से किया है।^२ उन्होंने प्रमाण की चर्चा ज्ञान-गुणप्रमाण के अन्तर्गत की है।^३ इसका निष्कर्ष है कि प्रमाणमीमांसा का मौलिक आधार ज्ञान मीमांसा ही है। उमास्वाति ने पहले पांच ज्ञान की चर्चा की है फिर ज्ञान प्रमाण है इस सूत्र की रचना की है।^४

यह निर्विवाद सत्य है कि ज्ञान मीमांसा का जितना विशद निरूपण जैनदर्शन में हुआ है उतना अन्य दर्शनों में नहीं हुआ। प्रस्तुत आगम के अतिरिक्त इसका विशद विवरण विशेषावश्यक भाष्य,^५ आवश्यकनिर्युक्ति,^६ षट्खण्डागम,^७ कषायपाहुड़,^८ ज्ञानविन्दु आदि ग्रन्थों में उपलब्ध है।

चूर्णिकार ने ज्ञान शब्द की तीन व्युत्पत्तियों की हैं—

१. जानना ज्ञान है।
२. जिससे जाना जाता है वह ज्ञान है।
३. जिसमें जाना जाता है वह ज्ञान है।

हरिभद्र ने चूर्णिकार का अनुसरण किया है।^९ मलयगिरि ने प्रथम दो व्युत्पत्तियों का उल्लेख किया है। तीसरी व्युत्पत्ति मंदमति व्यक्तियों के लिए उलझन पैदा कर सकती है इसलिए उसकी उपेक्षा की है।^{१०}

जैन दर्शन में ज्ञान का स्वरूप अन्य दर्शनों से भिन्न है।

१. उवंगसुत्ताणि, रायपसेणियं, सू. ७३९ : अम्हं समणाणं निगंथाणं पंचविहे णाणे पण्णत्ते, तं जहा—आभिणिबोहिय-णाणे सुयणाणे ओहिणाणे मणपज्जवणाणे केवलणाणे ।
२. अणुओगदाराइं, सू. १ : नाणं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा—आभिणिबोहियनाणं सुयनाणं ओहिनाणं मणपज्जवणाणं केवलनाणं ।
३. वही, सू. ५१५
४. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्, १।९, १०
५. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ४९ से ३४१
६. आवश्यकनिर्युक्ति, गा. १ से ७८

७. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २०५-३५३

८. कषायपाहुड़, पृ. १२-५३

९. नन्दी चूर्ण, पृ. १३ : नाती णाणं—अवबोहमेत्तं, भाव-साधणो। अहवा णज्जइ अणेणेति नाणं, खयोवसमिय-खाइएण वा भावेण जीवादिपदत्था णज्जति इति णाणं, करणसाधणो। अहवा णज्जति एतम्हि त्ति णाणं, नाणभावे जीवो त्ति, अधिकरणसाहणो।

१०. हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. १८

११. मलयगिरीया वृत्ति, प. ६५

न्याय दर्शन में ज्ञान को आत्मा का लिङ्ग माना गया है।^१ वह अनित्य है। मुक्त अवस्था में ज्ञान तिरोहित हो जाता है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार बुद्धि ज्ञान का पर्यायवाची है।^२ वह आत्मा का विशेष गुण है। वह जीवात्मा की अपेक्षा अनित्य तथा परमात्मा की अपेक्षा नित्य है।

सांख्य दर्शन में चैतन्य और ज्ञान को भिन्न माना गया है। चैतन्य पुरुष का धर्म है और ज्ञान प्रकृति का धर्म है।^३ वेदान्त दर्शन चित् शक्ति को ब्रह्मनिष्ठ व ज्ञान को अन्तःकरणनिष्ठ मानता है।^४ न्याय और वैशेषिक दर्शन ईश्वरवादी हैं, वेदान्त दर्शन ब्रह्मवादी है इसलिए वे जीव के ज्ञान को नित्य नहीं मानते। सांख्य दर्शन चैतन्य को पुरुषनिष्ठ और ज्ञान को प्रकृतिनिष्ठ मानता है। जैन दर्शन के अनुसार ज्ञान आत्मा का स्वाभाविक गुण है वह औपाधिक गुण नहीं है और अनित्य भी नहीं है। मुक्तावस्था में भी ज्ञान आत्मा के साथ रहता है। इसलिए चैतन्य और ज्ञान में कोई भेदरेखा नहीं खींची जा सकती।

ज्ञान के पांच प्रकार बतलाए गए हैं। वास्तव में ज्ञान एक ही है। शेष चार उसके प्रकार हैं। स्वाभाविक ज्ञान केवलज्ञान है। वह आत्मा से कभी पृथक् नहीं होता, चाहे आवृत अवस्था में हो या अनावृत अवस्था में। वह नित्य है इसीलिए उसे अक्षर कहा गया है। उसका अनन्तवां भाग सदैव उद्घाटित (अनावृत) रहता है।^५ उस अनावृत अंश के आधार पर चार ज्ञान बनते हैं। केवलज्ञान और उसके परिवारभूत चार ज्ञान को तीन स्तरों पर विभक्त किया जा सकता है—

१. इन्द्रियजन्य ज्ञान—मति और श्रुतज्ञान
२. अतीन्द्रिय ज्ञान—अवधि और मनःपर्यवज्ञान
३. सर्वथा अनावृत [अतीन्द्रिय] ज्ञान—केवलज्ञान।

चार ज्ञान केवलज्ञान के अंशभूत हैं इसलिए उन्हें स्वाभाविक कहा जा सकता है।^६ ये परिवर्तित होते रहते हैं, एकरूप नहीं रहते इसलिए इन्हें अनित्य भी कहा जा सकता है।

१. आभिनिबोधिक ज्ञान—

आभिनिबोधिक ज्ञान की उत्पत्ति के दो नियम हैं—

१. अर्थ (इन्द्रिय विषय) की अभिमुखता—उसका उचित देश में होना।
२. नियत बोध—प्रत्येक इन्द्रिय अपने नियत विषय का बोध करती है।^७

इन दो नियमों के आधार पर होने वाला ज्ञान आभिनिबोधिक ज्ञान है। यह इन्द्रिय और मन दोनों के निमित्त से होता है।^८ इसका दूसरा नाम मतिज्ञान है।

आभिनिबोधिक ज्ञान और मतिज्ञान इन दो शब्दों के पौर्वापर्य के विषय में डा० नथमल टाटिया ने इस प्रकार लिखा है—

The term 'mati-jñāna' seems to be older than the terms 'ābhinibodhika'. The karma-theory speaks of mati-jñānāvāraṇa but never ābhinibodhika-jñānāvāraṇa. Had the term been as old as 'mati', the karma-theory which is one of the oldest tenets of Jainism must have mentioned it with reference to the āvaraṇa that veils it.^९

षट्खण्डागम में आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय शब्द का प्रयोग मिलता है।^{१०} रायपसेणियं में भी आभिनिबोधिक का प्रयोग मिलता है।^{११} प्रस्तुत आगम में आभिनिबोधिकज्ञान और मतिज्ञान दोनों का प्रयोग मिलता है।^{१२} इसलिए इन दोनों के पौर्वापर्य का अनुसंधान और अधिक अन्वेषण मांगता है।

२. श्रुतज्ञान—

शब्द, संकेत और शास्त्र आदि से जो ज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान है। इन्द्रियहेतुक आभिनिबोधिक ज्ञान के द्वारा जिस विषय

१. न्यायसूत्र, १।१।१० : इच्छा-द्वेष-प्रयत्नसुखदुःखज्ञानानि आत्मनो लिङ्गम् ।
२. वही, १।१।१५ : बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम् ।
३. अन्ययोगव्यवच्छेदिका, कारिका १५
४. ज्ञानबिंदुप्रकरणम्, परिचय, पृ. १३
५. नवसुत्ताणि, नंदी, सू. ७१ : सब्वजीवाणं पि य णं—
अवखरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ ।
६. ज्ञानबिंदुप्रकरणम्, पृ. १

७. नंदी चूणि, पृ. १३ : अत्याभिमुहो णियतो बोधो अभिनिबोधः, स एव स्वाथिकप्रत्ययोपादानादाभिनिबोधिकम् ।
८. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्, १।१४ : तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ।
९. Studies in Jaina Philosophy, p. 30
१०. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २०९ : णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडोयो—आभिणिबोहियणाणावरणीयं...।
११. उवंगसुत्ताणि, रायपसेणियं, सू. ७३९
१२. नवसुत्ताणि, नंदी, सू. ३५, ३६

का ग्रहण होता है उसका मानसिक संबोध करना श्रुतज्ञान का कार्य है।^१

मलयगिरि ने श्रुतज्ञान का अर्थ वाच्य-वाचक के संबंध से होने वाला ज्ञान किया है। जैसे घट (वस्तु) वाच्य है और घट शब्द वाचक है। अमुक आकार की वस्तु जो जलधारण करने में समर्थ है वह घट शब्द द्वारा वाच्य है। इस प्रकार का ज्ञान श्रुतज्ञान है।^२

प्राचीन काल में ज्ञान का प्रमुख स्रोत श्रवण था इसलिए श्रवण से होने वाले ज्ञान को श्रुत या श्रुति कहा गया। इस श्रवण के आधार पर ही चूर्णिकार^३ और टीकाकार^४ ने श्रुत की व्युत्पत्ति की है।

३. अवधिज्ञान—

जो प्रत्यक्ष ज्ञान अवधानपूर्वक होता है अथवा एक अवधि के साथ होता है वह अवधिज्ञान है।^५

४. मनःपर्यवज्ञान—

मनोवर्गणा के माध्यम से मानसिक भावना को जानने वाला ज्ञान मनःपर्यवज्ञान है।

५. केवलज्ञान—

जिनभद्रगणी ने केवल शब्द के पांच अर्थ किए हैं—

१. एक २. शुद्ध ३. सकल ४. असाधारण ५. अनन्त।

१. एक—केवलज्ञान मति, श्रुत आदि ज्ञानों से निरपेक्ष होता है।

२. शुद्ध—यह शुद्ध—सर्वथा निरावरण होता है।

३. सकल—यह विभाग रहित अखण्ड होता है। आवरण के कारण ज्ञान विकल होता है। आवरण के क्षीण होने पर स्वभाव से ही वह सकल है।

४. असाधारण—यह दूसरे ज्ञानों से विशिष्ट होता है।

५. अनन्त—ज्ञेय अनन्त हैं। केवलज्ञान में सब ज्ञेयों को जानने की क्षमता है इसलिए वह अनन्त है।^६ मलधारी हेमचन्द्र ने अनन्त का अर्थ अप्रतिपाति किया है। केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद कभी विलुप्त नहीं होता इसलिए वह अनन्त—अपर्यवसित है।^७

सूत्र ३

२. (सूत्र ३)

प्रस्तुत आगम में ज्ञान के प्रत्यक्ष और परोक्ष ये दो विभाग किए गए हैं। ये विभाग उत्तरकालीन हैं। प्राचीन काल में ज्ञान के पांच प्रकार ही किए गए। उनका प्रत्यक्ष परोक्ष जैसा कोई विभाग नहीं है। प्रमाण के साथ प्रत्यक्ष का प्रयोग प्रायः सभी भारतीय दर्शनों में मिलता है। परोक्ष शब्द का प्रयोग जैन ज्ञान मीमांसा अथवा जैन प्रमाण मीमांसा के अतिरिक्त किसी अन्य दर्शन में नहीं मिलता। इसका प्रयोग सबसे पहले किस आचार्य ने किया? यह एक प्रश्न है।

ज्ञान के ये दो विभाग आवश्यकनिर्युक्ति, तत्त्वार्थसूत्र, प्रवचनसार और नन्दी में मिलते हैं। प्रज्ञाचक्षु पण्डित सुखलालजी तथा दलसुखभाई मालवणिया ने ज्ञानबिन्दुपरिचय में लिखा है^८—

“दूसरी भूमिका वह है जो प्राचीन निर्युक्ति भाग में, करीब विक्रम की दूसरी शताब्दी तक में, सिद्ध हुई जान पड़ती है। इसमें दर्शनान्तर के अभ्यास का थोड़ा-सा असर अवश्य जान पड़ता है। क्योंकि प्राचीन निर्युक्ति में मतिज्ञान के वास्ते मति

१. द्रष्टव्य—अणुओगदाराइं, सूत्र २ का टिप्पण।

२. मलयगिरीया वृत्ति, प. ६५ : श्रवणं श्रुतं—वाच्यवाचक-भावपुरस्सरीकारेण शब्दसंस्पृष्टार्थग्रहणहेतुरुपलब्धिविशेषः, एवमाकारं वस्तु जलधारणाद्यर्थक्रियासमर्थं घटशब्दवाच्य-मित्यादिरूपतया प्रधानीकृतत्रिकालसाधारणसमानपरिणामः शब्दार्थपर्यालोचनानुसारी इन्द्रियमनोनिमित्तोऽवगमविशेषः।

३. नन्दी चूर्ण, पृ. १३ : तहा तच्छृणोति, तेण वा सुणेति, तम्हा वा सुणेति, तम्हि वा सुणेतीति सुतं।

४. हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. १८

५. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. १३ : अवधीयते इति अवधिः, तेण

वाऽवधीयते, तम्हि वाऽवधीयते, अवधानं वा अवधिः, मयदित्यर्थः।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. १८

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ६५

६. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ८४

७. (क) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. १९

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. ६६

८. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ८४ की वृत्ति।

९. ज्ञानबिन्दुप्रकरणम्, परिचय, पृ. ५

और अभिनिबोध शब्द के उपरांत संज्ञा, प्रज्ञा, स्मृति आदि अनेक पर्याय शब्दों की जो वृद्धि देखी जाती है और पञ्चविध ज्ञान का जो प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से विभाग देखा जाता है वह दर्शनान्तरीय अभ्यास का ही सूचक है ।”

उमास्वाति ने पञ्चविध ज्ञान को दो प्रमाणों में विभक्त किया है ।^१ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान को परोक्ष^२ तथा अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान को प्रत्यक्ष बतलाया है ।^३ सिद्धसेन ने प्रमाण के प्रत्यक्ष और परोक्ष ये दो विभाग किए हैं^४ किन्तु उनका ज्ञान पंचक के साथ कोई संबंध नहीं जोड़ा है । उमास्वाति का यह नया प्रस्थान है । उन्होंने प्रमाण के दो विभाग कर उनका संबंध ज्ञान पंचक के साथ स्थापित किया है । कुन्दकुन्द ने ज्ञान के प्रत्यक्ष और परोक्ष ये दो विभाग किए हैं उनके साथ प्रमाण की कोई चर्चा नहीं की ।^५ देववाचक ने ज्ञान के पांच प्रकारों का निर्देश कर फिर उनके प्रत्यक्ष और परोक्ष ये दो विभाग किए हैं किन्तु ज्ञान पंचक के साथ उनकी संबंध योजना नहीं की है ।

सूत्र ४

३. (सूत्र ४)

उमास्वाति ने इन्द्रिय जन्य ज्ञान को परोक्ष की कोटि में परिगणित किया है ।^१ सर्वप्रथम आर्यरक्षित ने प्रत्यक्ष को दो भागों में विभक्त किया—१. इन्द्रिय प्रत्यक्ष २. नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष ।^२ इसका कारण स्पष्ट है । वे जैन मुनि बनने से पहले न्याय दर्शन की परम्परा में प्रतिष्ठित थे । न्याय दर्शन में इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष को प्रत्यक्ष माना गया है ।^३ इन्द्रिय प्रत्यक्ष के स्वीकार में न्याय दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है । इस विषय में देववाचक ने अनुयोगद्वार का अनुसरण किया है । आर्यरक्षित ने अनुयोगद्वार में अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा की चर्चा नहीं की । देववाचक एक और इन्द्रिय प्रत्यक्ष को स्वीकार करते हैं, दूसरी ओर आभिनिबोधिक ज्ञान और अवग्रह-चतुष्क को परोक्ष की कोटि में मानते हैं ।^४ इन्द्रियजन्य ज्ञान की प्रक्रिया अवग्रह आदि हैं, वे परोक्ष हैं फिर प्रत्यक्ष ज्ञान कैसे होगा ? इस विरोधाभास का समाधान जिनभद्रगणी ने दिया है । उन्होंने लिखा है—हेतु से होने वाला अनुमान ज्ञान एकान्ततः परोक्ष है किन्तु इन्द्रिय और मन से होने वाला ज्ञान हेतु के बिना वस्तु का साक्षात्कार करता है इसलिए सांख्यव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा जा सकता है ।^५

चूर्णिकार ने इन्द्रियज्ञान के प्रत्यक्ष होने का हेतु यह बतलाया है कि भावेन्द्रिय की अपेक्षा इन्द्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष है । द्रव्येन्द्रिय के आयत्त होने के कारण वह परोक्ष है ।^६

दार्शनिक युग के ग्रंथों में सांख्यव्यवहारिक हेतु का उल्लेख किया गया है किन्तु चूर्णि सम्मत हेतु का उपयोग नहीं किया गया ।

नंदी सूत्र में इन्द्रिय प्रत्यक्ष का उल्लेख है वह वास्तविक प्रत्यक्ष नहीं है किन्तु सांख्यव्यवहारिक प्रत्यक्ष है । व्याख्याकार मलधारी हेमचन्द्र के अनुसार यह लोक व्यवहार की अपेक्षा प्रत्यक्ष है ।^७ उन्होंने इन्द्रियजन्य ज्ञान को वास्तविक दृष्टि से परोक्ष और व्यावहारिक दृष्टि से प्रत्यक्ष बतलाया है । इस अपेक्षाभेद के कारण दोनों निरूपणों में विरोधाभास नहीं है ।

‘नो’ पद का प्रयोग देश निषेध और सर्व निषेध दोनों में होता है । प्रस्तुत संदर्भ में इसका प्रयोग सर्व निषेध के अर्थ में किया

१. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्, १।९,१० : मतिश्रुतावधिमनःपर्याय-

केवलानि ज्ञानम्, तत् प्रमाणे ।

२. वही, १।११ : आद्ये परोक्षम् ।

३. वही, १।१२ : प्रत्यक्षमन्यत् ।

४. न्यायावतार, कारिका १ :

प्रमाणं स्वपराभासि, ज्ञानं बाधविर्वाजितम् ।

प्रत्यक्षं च परोक्षं च, द्विधा मेयविनिश्चयात् ॥

५. प्रवचनसार, १।५८

६. तत्त्वार्थाधिगम सूत्रम्, १।११ आद्ये परोक्षम् ।

७. अणुओगद्वाराई, सू. ५।१६—से किं तं पञ्चवस्त्रे ? पञ्चवस्त्रे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—इंदियपञ्चवस्त्रे नोइंदिय-पञ्चवस्त्रे य ॥

८. न्यायसूत्र, १।१।४ : इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नमव्यपदेश्यम-

व्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ।

९. नवमुत्ताणि, नंदी, सू. ३४, ३९

१०. विशेषावश्यकभाष्य, गा. ९५

एगंतेण परोक्खं लिंगियमोहाइयं च पञ्चवस्त्रं ।

इंदिय-मणोभवं जं तं संववहारपञ्चवस्त्रं ॥

११. नंदी चूर्ण, पृ. १५ : भाविदियोवयारपञ्चवस्त्रत्तणतो एतं पञ्चवस्त्रं, परमत्थओ पुण चित्तमाणं एतं परोक्खं । कम्हा ? जम्हा परा दंविदिया, भाविदियस्स य तदायत्तप्पणतो ।

१२. विशेषावश्यकभाष्य, गा. ९५ : की वृत्ति : यत्पुनरिन्द्रिय-मनोभवं ज्ञानं तत् संव्यवहारप्रत्यक्षम्, लिङ्गमन्तरेणैव यदिन्द्रिय-मनसां वस्तु-साक्षात्कारित्वेन ज्ञानमुपजायते तत् तेषां प्रत्यक्षत्वाल्लोकव्यवहारमात्रापेक्षया प्रत्यक्षमुच्यते, न परमार्थत इत्यर्थः ।

गया है।^१ मलवारी हेमचंद्र ने इस विषय पर विस्तार से चर्चा की है।^२

प्रत्यक्ष का नियामक तत्त्व—

प्रत्यक्ष के नियामक तत्त्व की चर्चा प्रायः सभी दर्शनों में की गयी है। बौद्ध दार्शनिक के अनुसार निर्विकल्प ज्ञान प्रत्यक्ष है।^३ जैन आगमों में प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ 'जाणइ पासइ'—इन दो पदों का उल्लेख मिलता है।^४ 'जानाति' सविकल्प ज्ञान का और 'पश्यति' निर्विकल्पक ज्ञान का द्योतक है इसलिए जैन दर्शन की दृष्टि में निर्विकल्प ज्ञान प्रत्यक्ष का नियामक तत्त्व नहीं है। वैशेषिक और न्याय दर्शनों के अनुसार प्रत्यक्ष का नियामक तत्त्व है—इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से होनेवाली अर्थोपलब्धि। जैन दर्शन में प्रत्यक्ष के नियामक की दो परम्पराएं प्रचलित हैं—आगमिक और दर्शन युगीन। आगमिक परम्परा के अनुसार प्रत्यक्ष का नियामक है—इन्द्रिय और मन से निरपेक्ष ज्ञान अर्थात् केवल आत्मिक विशुद्धि से होनेवाला ज्ञेय का साक्षात्कार। दार्शनिक परम्परा में इन्द्रिय मनोजन्य ज्ञान भी प्रत्यक्ष का नियामक माना गया है किन्तु उसे वास्तविक प्रत्यक्ष किसी भी जैन दार्शनिक ने नहीं माना है। उसे केवल सांख्यव्यवहारिक प्रत्यक्ष की कोटि में परिगणित किया है।

सिद्धसेन ने प्रत्यक्ष का नियामक तत्त्व अपरोक्षत्व को माना है^५ किन्तु उत्तरवर्ती जैन दार्शनिकों ने उसका अनुसरण नहीं किया। अकलंक ने प्रत्यक्ष को नियामक तत्त्व विशदता को माना है।^६ उत्तरवर्ती दार्शनिक ग्रंथों में उसी का अनुसरण किया गया है। वास्तव में इन्द्रिय एवं मन से निरपेक्ष ज्ञान—प्रत्यक्ष का यह लक्षण अधिक स्पष्ट है। वैशेष्य का यह अर्थ किया गया है कि प्रत्यक्ष अपनी उत्पत्ति में इन्द्रिय मनोजन्य ज्ञान की अपेक्षा नहीं रखता।

इदन्तया प्रतिभास को वैशेष्य कहा गया है। उसका आधार सांख्यव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। पारमार्थिक प्रत्यक्ष का नियामक तत्त्व एक ही है और वह है इन्द्रिय और मन से निरपेक्ष ज्ञान—किसी माध्यम के बिना केवल आत्मा से होने वाला ज्ञान।

सूत्र ५

४. (सूत्र ५)

चूर्णिकार ने इन्द्रिय के दो प्रकार बतलाए हैं—

१. द्रव्य-इन्द्रिय ।

२. भाव-इन्द्रिय ।

इन्द्रियों की संस्थान (आकृति) रचना द्रव्येन्द्रिय है। सब आत्मप्रदेशों में स्वावरण-क्षयोपशम के कारण जो जानने की शक्ति उत्पन्न होती है वह भावेन्द्रिय है।^७ हरिभद्र और मलयगिरि ने इन्द्रिय के चार भेदों का उल्लेख किया है—

१. द्रव्येन्द्रिय के दो प्रकार हैं—निर्वृत्ति और उपकरण ।

२. भावेन्द्रिय के दो प्रकार हैं—लब्धि और उपयोग ।

निर्वृत्ति—आकार रचना ।

उपकरण—विषय ग्रहण की पौद्गलिक शक्ति ।

लब्धि—जानने की शक्ति ।

उपयोग—जानने की प्रवृत्ति ।

इनमें प्रथम दो पौद्गलिक हैं, अन्तिम दो ज्ञानात्मक हैं। भावेन्द्रिय के द्वारा होने वाले ज्ञान को इन्द्रिय प्रत्यक्ष कहा गया है।^८ वास्तव में यह परोक्ष है। इसका हेतु यह है कि भावेन्द्रिय द्रव्येन्द्रिय (पौद्गलिक इन्द्रिय) के अधीन है। वे द्रव्येन्द्रियों के माध्यम

१. (क) हारिभद्रोया वृत्ति, पृ. २०

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. ७६

२. विशेषावश्यकभाष्य, गा. ९५ की वृत्ति ।

३. न्यायबिन्दु, १।४ : प्रत्यक्षं कल्पनापोढं नामजात्याद्यसंयुतम् ।

४. नवमुत्तानि, नंदी, सू. २२

५. न्यायसूत्र, १।१।४ : इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नमव्यपदेश्यम्

व्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ।

६. न्यायावतार, कारिका ४

७. सिद्धिविनिश्चय, १।१९ : प्रत्यक्षं विशदं ज्ञानम् ।

८. नंदी चूर्ण, पृ. १४ : पुग्गलेहिं सठाणणिव्वत्तिरुवं दंविदियं, सोइंदियमादिइंदियाणं सव्वातप्पदेसेहिं स्वावरणक्खतोव-समातो जा लद्धी तं भाविदियं ।

९. (क) हारिभद्रोया वृत्ति, पृ. २०

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. ७५, ७६

१०. नंदी चूर्ण, पृ. १४

के बिना नहीं जान सकती इसलिए इन्द्रियजन्य ज्ञान परोक्ष है।^१

जिनभद्रगणी ने इन्द्रियजन्य ज्ञान की परोक्षता पौद्गलिक इन्द्रियों के आधार पर बतलाई है।^१ चूणिकार ने उनका अनुसरण किया है।

चूणिकार ने इन्द्रियज्ञान के विषय में कर्मशास्त्रीय चर्चा की है। आत्मा शरीर में व्याप्त है, क्षयोपशम सब आत्मप्रदेशों में होता है। द्रव्येन्द्रिय का स्थान नियत है। इस अवस्था में द्रव्येन्द्रियों के नियत स्थान में अवस्थित आत्मप्रदेशों को छोड़कर शेष आत्मप्रदेशों से विषय की अर्थोपलब्धि नहीं होगी। क्षयोपशम की निरर्थकता हो जाएगी। आचार्य ने इसके समाधान में कहा—जैसे तलघर के एक भाग में रखा हुआ दीप पूरे तलघर को प्रकाशित करता है वैसे ही सब आत्मप्रदेशों में होनेवाला क्षयोपशम द्रव्येन्द्रिय के माध्यम से अर्थोपलब्धि करता है इसलिए क्षयोपशम की व्यर्थता नहीं है।^१

इन्द्रिय-प्रत्यक्ष के प्रकरण में मन का इन्द्रिय से पृथक् उल्लेख नहीं है।

सूत्र ७

५. (सूत्र ७)

नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय ज्ञान है।^१ इस कोटि का ज्ञान इन्द्रियों की सहायता के बिना सूक्ष्म, व्यवहित और विप्रकृष्ट पदार्थों का साक्षात्कार कर सकता है। पदार्थ मूर्त्त और अमूर्त्त दो प्रकार के होते हैं। अवधि और मनःपर्यव ये दो ज्ञान केवल मूर्त्त पदार्थों का साक्षात्कार कर सकते हैं। केवलज्ञान का विषय मूर्त्त और अमूर्त्त दोनों प्रकार के विषय हैं। अवधिज्ञान और मनःपर्यव-ज्ञान क्षायोपशमिक होते हैं इसलिए ये अपूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञान की कोटि के हैं। केवलज्ञान क्षायिक है, ज्ञानावरण के सर्वथा क्षीण होने से उत्पन्न होता है इसलिए वह परिपूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञान है।

अतीन्द्रिय ज्ञान का पहला प्रकार है—अवधिज्ञान। इसके विकास की अनेक कोटियां अथवा मर्यादाएं हैं। इसलिए इसकी संज्ञा अवधिज्ञान है। इसका संबंध अवधान अथवा प्रणिधान से है। इसलिए इसकी संज्ञा अन्वर्थक है। इसकी उत्पत्ति के दो हेतु हैं—

१. भव

२. क्षयोपशम।

सूत्र ८

६. (सूत्र ८)

अवधिज्ञान क्षायोपशमिक है। वह क्षयोपशम से उत्पन्न होता है। इस प्रसंग में क्षयोपशम की व्याख्या उपलब्ध है।

क्षय और उपशम की प्रक्रिया—उदयावलिका में प्रविष्ट ज्ञानावरण का क्षय और अनुदीर्ण ज्ञानावरण कर्म का उपशम—क्षयोपशम का हेतु है। उपशम का तात्पर्य है—

१. उदयावलिका में आने योग्य कर्मपुद्गलों को विपाक के अयोग्य बना देना, प्रदेशोदय में बदल देना।

२. विपाक को मंद कर देना, तीव्र रस का मंद रस में परिणमन।^२

हरिभद्रसूरि^३ ने उपशम का अर्थ उदय का निरोध और मलयगिरि^४ ने उसका अर्थ विपाकोदय का विष्कम्भ किया है।

सूत्रकार ने गुणप्रतिपन्न का उल्लेख कर अवधिज्ञान के विषय में नया संकेत दिया है। चूणिकार ने उस संकेत के आधार पर क्षयोपशम के दो प्रकारों का निरूपण किया है—

१. (क) नन्दी चूणि, पृ. १५ : भाविन्दियोवयारपच्चक्खत्तणतो एतं पच्चक्खं, परमत्थओ पुण चित्तमाणं एतं परोक्खं। कम्हा?

जम्हा पर दंविन्दिया, भाविन्दियस्स य तदायत्तप्पणतो।

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. ७१ : आत्मनो द्रव्येन्द्रियाणि द्रव्यमनश्च पुद्गलमयत्वात् पराणि वर्तन्ते।

२. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ९०

३. नन्दी चूणि, पृ. १४।१५ : ननु दंविन्दियावत्थियपदेसमेत्त-गहणतो सेसप्पदेसेसु अणुवलद्धी खयोवसमानिरत्थता वा भवति। आयरिया आह : ण एवं, पदीवदिट्ठंतसामत्थतो, जहा चतुसालभवणेगदेसजालितो पदीवो सव्वं भवणमुज्जो-

वेति तथा दंविन्दियेत्तपदेसविसयपडिबोधओ सब्वात्तप्पदेसो-वयोगत्थपरिच्छेययो खयोवसमसाफल्लया य भवति त्ति ण दोसो।

४. नन्दी चूणि, पृ. १५ : णोइन्दियपच्चक्खं त्ति इंदियातिरित्तं।

५. द्रष्टव्य—अणुओगदाराइं, सू. २८७ का टिप्पण।

६. हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २२ : 'उपशमेन' उदयनिरोधेन।

७. मलयगिरीया वृत्ति, प. ७७ : उपशमेन विपाकोदयविष्क-म्भलक्षणेन।

८. नन्दी चूणि, पृ. १५ : खयोवसमो गुणमंतरेण गुणपडिवत्तितो वा भवति।

१. गुण के बिना होनेवाला क्षयोपशम ।

२. गुण की प्रतिपत्ति से होनेवाला क्षयोपशम ।

गुण के बिना होने वाले अवधिज्ञान को समझाने के लिए चूर्णिकार ने रूपक का प्रयोग किया है ।^१ आकाश बादलों से आच्छन्न है । बीच में कोई छिद्र रह गया । उस छिद्र में से स्वाभाविक रूप से सूर्य की कोई किरण निकलती है और वह द्रव्य को प्रकाशित करती है, वैसे ही अवधि ज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर यथाप्रवृत्त अवधिज्ञान की प्राप्ति होती है, वह गुण के बिना होने वाला क्षयोपशम है ।

क्षयोपशम का दूसरा हेतु है—गुण की प्रतिपत्ति । यहां गुण शब्द से चारित्र्य विवक्षित है । चारित्र्य गुण की विशुद्धि से अवधिज्ञान की उत्पत्ति के योग्य क्षयोपशम होता है, वह गुण प्रतिपत्ति से होनेवाला क्षयोपशम है ।^२

मलयगिरि ने लिखा है कदाचित् विशिष्ट गुण की प्रतिपत्ति के बिना और कदाचित् विशिष्ट गुण की प्रतिपत्ति से अवधिज्ञान उत्पन्न होता है ।^३

सूत्र ९

७. (सूत्र ६)

षट्खण्डागम में अवधिज्ञान के तेरह प्रकार बतलाए गए हैं—

१. देशावधि	६. अवस्थित	११. अप्रतिपाति
२. परमावधि	७. अनवस्थित	१२. एकक्षेत्र
३. सर्वावधि	८. अनुगामी	१३. अनेक क्षेत्र
४. हायमान	९. अननुगामी	
५. वर्धमान	१०. सप्रतिपाति	

ठाण^४ में देशावधि का, प्रज्ञापना^५ में देशावधि व सर्वावधि दोनों का तथा विशेषावश्यक भाष्य^६ में परमावधि का उल्लेख मिलता है । एक क्षेत्र, अनेक क्षेत्र का समावेश अंतगत और मध्यगत में हो जाता है ।^७ विशेषावश्यक भाष्य में अवस्थित का उल्लेख मिलता है ।^८ तत्त्वार्थ भाष्य में प्रतिपाति और अप्रतिपाति के स्थान पर अवस्थित और अनवस्थित का प्रयोग किया गया है ।^९ प्रज्ञापना में प्रतिपाति, अप्रतिपाति, अवस्थित और अनवस्थित इन चारों का उल्लेख है ।^{१०}

प्रतीत होता कि अवधिज्ञान के विभिन्न वर्गीकरण सापेक्ष दृष्टि से किए गए हैं ।

तत्त्वार्थवार्तिक में प्रकारान्तर से अवधिज्ञान के तीन भेद किए गए हैं^{११}—

१. देशावधि २. परमावधि ३. सर्वावधि ।

१. वर्धमान २. हीयमान ३. अवस्थित ४. अनवस्थित ५. अनुगामी ६. अननुगामी ७. प्रतिपाति ८. अप्रतिपाति—इनका देशावधि में समवतार किया गया है । हीयमान और प्रतिपाति इन दो को छोड़कर शेष छः का परमावधि में समवतार किया गया है । अवस्थित, अनुगामी, अननुगामी और अप्रतिपाति—इनका सर्वावधि में समवतार किया गया है ।^{१२}

१. नन्दी चूर्ण, पृ. १५ : गुणमंतरेण जहा गगणभ्रच्छादिते अहापवत्तितो छिद्रेण दिणकरकिरणं व्व विणिस्सिता दब्ब-मुज्जोवंति तहाऽवधिआवरणखयोवसमे अवधिलंभो अधा-पवत्तितो विण्णेतो ।

२. वही, पृ. १५ : उत्तरुत्तरचरणगुणविसुज्जमाणमवेकखातो अवधिणाणदंसणावरणाण खयोवसमो भवति । तक्खयोवसमे य अवधी उप्पज्जति ।

३. मलयगिरीया वृत्ति, प. ८०, ८१ ।

४. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २९२

५. द्रष्टव्य—ठाण, २।१९३ सूत्र का टिप्पण ।

६. उवंगसुत्ताणि खण्ड २, पणवणा, पद ३३।३१

७. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ७१७

८. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २९५

९. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ७१७

१०. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम् १।२३ का भाष्य : अनवस्थितं हीयते वर्धते वर्धते हीयते च । प्रतिपत्ति चोत्पद्यते चेति । पुनः पुनरुभिवत् । अवस्थितं यावति क्षेत्रे उत्पन्नं भवति ततो न प्रतिपत्त्याकेवलप्राप्तेरवतिष्ठते ।

११. उवंगसुत्ताणि खण्ड २, पणवणा, पद ३३।३५

१२. तत्त्वार्थवार्तिक १।२२।४ : पुनरपरेऽवधेस्त्रयो भेदाः देशा-वधिः परमावधिः सर्वावधिश्चेति ।

१३. वही,

अकलंक ने देशावधि और परमावधि के तीन-तीन भेद किए हैं—

देशावधि	परमावधि	सर्वावधि
१. जघन्य—उत्सेधांगुल के असंख्येय भाग मात्र क्षेत्र को जाननेवाला ।	१. जघन्य—एक प्रदेश अधिक लोक प्रमाण विषय को जानने वाला ।	उत्कृष्ट परमावधि के क्षेत्र से बाहर असंख्यात लोक क्षेत्रों को जाननेवाला । इसके जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट कोई विकल्प नहीं होते ।
२. उत्कृष्ट—संपूर्णलोक को जानने वाला ।	२. उत्कृष्ट—असंख्यात लोकों को जानने वाला ।	
३. अजघन्योत्कृष्ट (मध्यम)—जघन्य और उत्कृष्ट का मध्यवर्ती । इसके असंख्येय विकल्प होते हैं ।	३. अजघन्योत्कृष्ट (मध्यम)—जघन्य और उत्कृष्ट के मध्यवर्ती क्षेत्र को जानने वाला ।	

अकलंक के अनुसार परमावधि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से सर्वावधि से न्यून है इसलिए परमावधि भी वास्तव में देशावधि ही है ।^१ फलितार्थ यह है कि अवधिज्ञान के मुख्य दो ही भेद हैं—सर्वावधि और देशावधि । देशावधि आदि के विशद विवरण हेतु द्रष्टव्य धवला पु. ९ पृ. २६-४१ ।

सूत्र १०-१६

द. (सूत्र १०-१६)

आनुगामिक—

आनुगामिक का शाब्दिक अर्थ है—अनुगमनशील । यह अवधिज्ञान जिस क्षेत्र में उत्पन्न होता है उस क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी विद्यमान रहता है । तत्त्वार्थभाष्य में इसे सूर्य के प्रकाश और घट की पाकजनित रक्तता से समझाया गया है ।^१ इस अवधिज्ञान में आत्मप्रदेशों की विशिष्ट विशुद्धि होती है । चूर्णिकार ने इसे नेत्र के दृष्टांत से समझाया है ।^२ जैसे नेत्र मनुष्य के हर क्षेत्र में साथ रहता है वैसे ही आनुगामिक अवधिज्ञान हर क्षेत्र में साथ रहता है ।

वीरसेन ने धवला में आनुगामिक अवधिज्ञान के तीन प्रकार किए हैं—

१. क्षेत्रानुगामी—एक क्षेत्र में उत्पन्न होकर अन्य क्षेत्र में विनष्ट नहीं होता ।
२. भवानुगामी—जो अवधिज्ञान वर्तमान भव में उत्पन्न होकर अन्य भव में जीव के साथ जाता है ।
३. क्षेत्रभवानुगामी—यह संयोगजनित विकल्प है ।

ज्ञान परभविक होता है^३ इसलिए आनुगामिक का भवानुगामी विकल्प बहुत सार्थक है ।

अंतगत और मध्यगत—

आत्मा शरीर के भीतर है और चेतना भी उसके भीतर है । इन्द्रिय चेतना की रश्मियां अपने-अपने नियत प्रदेशों के माध्यम

१. तत्त्वार्थवातिक, १।२२।४

२. वही, पृ. ८३ : सर्वशब्दस्य साकल्यवाचित्वात् द्रव्यक्षेत्र-कालभावैः सर्वाधिरेन्तःपाती परमावधिः, अतः परमावधिरपि देशावधिरेवेति द्विविध एवावधिः सर्वाधिदेशावधिश्च ।

३. तत्त्वार्थधिगमसूत्रम् १।२३ का भाष्य : आनुगामिकं यत्र क्वचिदुत्पन्नं क्षेत्रान्तरगतस्यापि न प्रतिपतति, भास्कर-प्रकाशवत् घटरक्तभाववच्च ।

४. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. १५ : अणुगमणसीलो अणुगामितो, तदावरणखयोवसमाऽऽतप्पदेसविसुद्धगमणत्तातो लोयणं च ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २३

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ८१

(ग) विशेषावश्यक भाष्य, गा. ७।१५

५. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २९४ : जमोहिणाणमुप्पणं संतं जीवेणं सह गच्छदि तमणुगामी णाम । तं च तिविहं खेत्ताणुगामी भवाणुगामी खेत्त-भवाणुगामी चेदि । तत्थ जमोहिणाणं एयम्मि खेत्ते उप्पणं संतं सग-परपयोगेहि सग-परखेत्तेसु हिडंतस्स जीवस्स ण विणस्सदि तं खेत्ताणुगामी णाम । जमोहिणाणमुप्पणं संतं तेण जीवेण सह अण्णभवं गच्छदि तं भवाणुगामी णाम । जं भरहेरावद-विदेहादि खेत्ताणि देव-णेरइय-माणुस-तिरिक्खभवं पि गच्छदि तं खेत्त-भवाणुगामि ति भणिदं होदि ।

६. भगवई, १।३९

से बाहर आती हैं। अवधिज्ञान के लिए कोई एक नियत प्रदेश या चैतन्य केन्द्र नहीं है। उसकी रश्मियों के बाहर आने के लिए शरीर के विभिन्न प्रदेश चैतन्यकेन्द्र या साधन बनते हैं। अंतगत अवधिज्ञान की रश्मियां शरीर के पर्यंतवर्ती (अग्र, पृष्ठ और पार्श्ववर्ती) चैतन्यकेन्द्रों के माध्यम से बाहर आती हैं। मध्यगत अवधिज्ञान की रश्मियां शरीर के मध्यवर्ती चैतन्य केन्द्रों—मस्तक आदि से बाहर निकलती हैं।

सूत्रकार ने अन्तगत और मध्यगत अवधिज्ञान का भेद स्वयं स्पष्ट किया है। उनके अनुसार एक दिशा में जानने वाला अवधिज्ञान अन्तगत अवधिज्ञान है और सब दिशाओं में जानने वाला अवधिज्ञान मध्यगत अवधिज्ञान है।

षट्खंडागम के एकक्षेत्र और अनेकक्षेत्र अवधिज्ञान की तुलना अंतगत और मध्यगत के साथ की जा सकती है। जिस अवधिज्ञान का करण जीव के शरीर का एक देश होता है वह एकक्षेत्र अवधिज्ञान है। जो अवधिज्ञान प्रतिनियत क्षेत्र की वर्जना कर शरीर के सब अवयवों में रहता है वह अनेकक्षेत्र अवधिज्ञान है।^१

चूर्णिकार तथा वृत्तिकारों ने अन्तगत और मध्यगत के बीच भेदरेखा खींचने के लिए दो आधार प्रस्तुत किए हैं^२—

अंतगत

मध्यगत

१. औदारिक शरीर के पर्यंतवर्ती आत्मप्रदेशों की विशुद्धि।
२. सब आत्मप्रदेशों की विशुद्धि होने पर भी एक पर्यंत से होने वाला तथा एक दिशा को प्रकाशित करने वाला।

१. औदारिक शरीर के मध्यवर्ती आत्मप्रदेशों की विशुद्धि।
२. सब आत्मप्रदेशों की विशुद्धि होने पर सब दिशाओं को प्रकाशित करने वाला।

दिगम्बर साहित्य में अवधिज्ञान के करणों का नामोल्लेख मिलता है। प्रस्तुत आगम या अन्य किसी आगम में उन करणों का नामोल्लेख नहीं है। इसी मान्यता के आधार पर पण्डित सुखलालजी ने एक समीक्षात्मक टिप्पणी लिखी है^३—

“अवधिज्ञान तथा मनःपर्यायज्ञान की उत्पत्ति के सम्बन्ध में गोमटसार का जो मन्तव्य है वह श्वेताम्बर-साहित्य में कहीं देखने में नहीं आया। वह मन्तव्य इस प्रकार है—

अवधिज्ञान की उत्पत्ति आत्मा के उन्हीं प्रदेशों से होती है, जो कि शंख आदि शुभ-चिह्न वाले अङ्गों में वर्तमान होते हैं तथा मनःपर्याय ज्ञान की उत्पत्ति आत्मा के उन प्रदेशों से होती है जिनका सम्बन्ध द्रव्य मन के साथ है अर्थात् द्रव्य मन का स्थान हृदय ही है, इसलिए हृदय-भाग में स्थित आत्मा के प्रदेशों ही में मनःपर्याय ज्ञान का क्षयोपशम है; परंतु शंख आदि शुभ चिह्नों का सम्भव सभी अंगों में हो सकता है, इस कारण अवधिज्ञान के क्षयोपशम की योग्यता किसी खास अङ्ग में वर्तमान आत्मप्रदेशों में ही नहीं मानी जा सकती; यथा (जी० गा० ४४१)

सर्व्वंग अंगसंभवविष्णादुप्पज्जदे जहा ओही ।
मणपज्जवं च दव्वमणादो उपज्जदे णियमा ॥”

प्रस्तुत आगम में अन्तगत और मध्यगत ये दोनों चैतन्य केन्द्रों के गमक हैं। इनमें शंख आदि नामों का उल्लेख नहीं है। भगवती (८।१०३) में विभंगज्ञान के संस्थानों का उल्लेख किया गया है। उसमें अनेक संस्थानों के नाम उपलब्ध हैं, जैसे—वृषभ का

१. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २९४ : जस्स ओहिणाणस्स जीवसरीरस्स एगदेसो करणं होदि तमोहिणाणमेगक्खेत्तं णाम । जमोहिणाणं पडिणियदक्खेत्तं वज्जिय सरीरसव्वावयवेषु वट्टदि तमणेषक्खेत्तं णाम ।

२. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. १६ : जहा जलंतं वणंतं पव्वतंतं, अविसिट्ठो अंतसद्दो । एवं ओरालियसरीरंते ठितं गतं ति एगट्ठं, तं च आतप्पदेसफड्डगावहि, एगदिसोवलंभाओ य अंतगतमोधिष्णाणं भण्णति । अहवा सव्वातप्पदेसविसुद्धेषु वि ओरालियसरीरेगंतेण एगदिसिपासणगतं ति अंतगतं भण्णति । अहवा

फुडतरमत्थो भण्णति—एगदिसावधिउवलद्वेत्तातो । सो अवधिपुरिसो अंतगतो ति जम्हा तम्हा अंतगतं भण्णति । मज्जगतं पुण ओरालियसरीरमज्जे फड्डगविसुद्धीतो सव्वातप्पदेसविसुद्धीतो वा सर्व्वदिसोवलंभत्तणतो मज्जगतो ति भण्णति । अहवाऽवधिउवलद्वेत्तस्स वा अवधिपुरिसो मज्जगतो ति अतो वा मज्जगतो भण्णति ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २३

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ८४, ८५

३. कर्मग्रन्थ, भाग १, पृ. १११

संस्थान, पशु का संस्थान, पक्षी का संस्थान आदि । धवला में विभंगज्ञान के क्षेत्र संस्थानों का उल्लेख मिलता है^१—

“ये संस्थान तिर्यञ्च और मनुष्यों के नाभि के उपरिम भाग में होते हैं, नीचे के भाग में नहीं होते; क्योंकि शुभ संस्थानों का अधोभाग के साथ विरोध है । तथा तिर्यञ्च और मनुष्य विभंगज्ञानियों के नाभि से नीचे गिरगिट आदि अशुभ संस्थान होते हैं । विभंगज्ञानियों के सम्यक्त्व आदि के फलस्वरूप अवधिज्ञान के उत्पन्न होने पर गिरगिट आदि अशुभ आकार मिटकर नाभि के ऊपर शंख आदि शुभ आकार हो जाते हैं । अवधिज्ञान से लौटकर प्राप्त हुए विभंगज्ञानियों के भी शुभ संस्थान मिटकर अशुभ संस्थान हो जाते हैं ।”

प्रतीत होता है कि श्वेताम्बर आचार्यों के सामने विभंगज्ञान के संस्थान की व्याख्या स्पष्ट नहीं रही । दिगम्बर आचार्यों के सामने वह स्पष्ट थी । अवधिज्ञान और विभंगज्ञान दोनों के शरीरगत संस्थान होते हैं । यह मत निर्विवाद है ।

षट्खण्डागम और धवला में करण या चैतन्य केन्द्र के बारे में विशद जानकारी मिलती है^२—

“खेत्तदो ताव अण्यसंठाणसंठिदा ।

सिरिवच्छ-कलस-संख-सोत्थिय-णंदावत्तादीणि संठाणाणि णादव्वाणि भवंति ।”

इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि जीव प्रदेशों के क्षायोपशमिक विकास के आधार पर चैतन्यकेन्द्रमय शरीर प्रदेशों के अनेक संस्थान बनते हैं । षट्खण्डागम और धवला में उनका उल्लेख किया गया है । प्रस्तुत आगम में उनके नामों का निर्देश नहीं है । अन्तगत और मध्यगत के रूप में उनका स्पष्ट निर्देश है । भगवती^३ में प्राप्त विभंगज्ञान के संस्थानों के उल्लेख से यह अनुमान करना सहज है कि अवधिज्ञान से संबद्ध चैतन्यकेन्द्रों का निर्देश भी आगम साहित्य में था किन्तु वह किसी कारणवश विलुप्त हो गया ।

शब्द विमर्श—

सूत्र १०

अन्तगत—शरीर के पर्यंतभागवर्ती चैतन्यकेन्द्रों से होनेवाला अवधिज्ञान ।

मध्यगत—शरीर के मध्यभागवर्ती चैतन्यकेन्द्रों से होनेवाला अवधिज्ञान ।

सूत्र १२

चुडलियं—आगे से जलता हुआ घास का पूला अथवा मशाल ।^४

पणोल्लेमाणे—आगे से आगे ले जाता हुआ ।^५

उल्का—दीपिका ।

अलात—जलता हुआ काष्ठ ।

मणि—पद्मरागादि प्रज्वलित मणि ।^६

ज्योति—पात्र विशेष में जलती हुई अग्नि ।^७

सूत्र १६

सव्वओ समंता—सर्वतः सब दिशाओं और विदिशाओं में सब आत्मप्रदेशों और सब विशुद्ध स्पर्धकों में होने वाला ।^८

१. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २९८

२. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २९६ से २९८ (हिन्दी अनुवाद सहित) ।

३. भगवई, ८।१०३

४. नन्दी चूर्ण, पृ. १६ : चुडलि त्ति—तर्णापिडी अग्गे पज्ज-लित्ता ।

५. (क) वही, पृ. १६, १७ : ‘पणोल्लणं’ त्ति “णुद प्रेरणे” हत्थगहितस्स दंडगहितस्स वा परंपरेण नयनमित्थर्यः ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २३

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ८४

६. हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २३ : मणिः—पद्मरागादिः ।

७. वही, पृ. २३ : प्रदीपशिखादि ज्योतिः, मल्लिकाराधा-रोजनिः ।

८. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. १७ : ‘सव्वतो’ त्ति सव्वासु विदिसि-विदिसासु ‘समंता’ इति सव्वातप्पदेसेसु सव्वेसु वा विसुद्धफड्डुगेसु । अहवा ‘सव्वतो’ त्ति सव्वासु दिसि-विदिसासु सव्वातप्पदेसफड्डुगेसु य ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २४

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ८५

सूत्र १७

६. (सूत्र १७)

सांकल से बंधा हुआ स्थित दीप अपने परिपार्श्व में प्रकाश करता है, अन्य क्षेत्र में उसका प्रकाश नहीं होता। वैसे ही अनानुगामिक अवधिज्ञान क्षेत्र प्रतिबद्ध होता है। वह जिस क्षेत्र में उत्पन्न होता है उसी में कार्यकारी होता है। उत्पत्ति क्षेत्र से भिन्न क्षेत्र में वह कार्यकारी नहीं रहता। चूर्णिकार ने बतलाया है कि अनानुगामिक अवधिज्ञान की उत्पत्ति क्षेत्र सापेक्ष क्षयोपशम से होती है।^१

तत्त्वार्थभाष्य में उमास्वाति ने प्रश्नादेशिक पुरुष के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है।^२ जैसे नैमित्तिक अथवा प्रश्नादेशिक पुरुष अपने नियत स्थान में प्रश्न का सम्यक् उत्तर दे सकता है वैसे ही क्षेत्र प्रतिबद्ध अवधिज्ञान अपने क्षेत्र में ही साक्षात् जान सकता है। अकलंक ने इसी का अनुसरण किया है।^३

षट्खण्डागम में अनानुगामिक अवधिज्ञान के तीन भेद बतलाए गए हैं—

१. क्षेत्र अननुगामी—जो क्षेत्रान्तर में नहीं जाता, भवान्तर में ही जाता है।

२. भव अननुगामी—जो भवान्तर में नहीं जाता, क्षेत्रान्तर में ही जाता है।

३. क्षेत्रभव अननुगामी—जो क्षेत्रान्तर और भवान्तर दोनों में ही नहीं जाता, उसी क्षेत्र और उसी भव से प्रतिबद्ध होता है।

शब्द विमर्श—

परिपेरंत—चारों ओर ज्योतिःस्थान के पास।

परिघोलेमाण—बार-बार ज्योतिःस्थान के आस-पास घूमता हुआ।

संबद्ध—अपने उत्पत्ति क्षेत्र से लेकर अन्तराल किए बिना पूर्ण संबद्ध क्षेत्र को जाननेवाला।

असंबद्ध—अपने उत्पत्ति क्षेत्र को तथा अन्तराल सहित विभिन्न क्षेत्रों को जाननेवाला।^४

सूत्र १८

१०. (सूत्र १८)

वर्धमान अवधिज्ञान के दो हेतु बतलाए गए हैं—

१. प्रशस्त अध्यवसाय में प्रवर्तन

२. चारित्र्य की विशुद्धि।

धवला के अनुसार वर्धमान अवधिज्ञान बढ़ता हुआ केवलज्ञान की उत्पत्ति के पूर्व क्षण तक चला जाता है। इसका देशावधि, परमावधि और सर्वावधि इन तीनों में अन्तर्भाव किया गया है।^५

१. नन्दी चूर्ण, पृ. १७ : संकलापडिबद्धद्वित्यदीवो ष्व, तस्स य खेत्तावेक्खखयोवसमलाभत्तणतो अणाणुगामित्तं।

२. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्, १।२३ का भाष्य : तत्रानानुगामिकं क्षेत्रे स्थितस्योत्पन्नं ततः प्रच्युतस्य प्रतिपत्ति, प्रश्नादेश-पुरुषज्ञानवत्।

३. तत्त्वार्थवार्तिक, १।२२।४

४. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. १९४ : जं तन्नणुगामी णाम ओहिणानं तं तिविहं खेत्ताणुगामी भवाणुगामी खेत्त-भवाणुगामी चेदि। खेत्तंतरं ण गच्छदि, भवंतरं चैव गच्छदि खेत्ताणुगामि त्ति भण्णदि। जं भवंतरं ण गच्छदि, खेत्तंतरं चैव गच्छदि दं भवाणुगामी णाम। जं खेत्तंतर-भवांतराणि ण गच्छदि एक्कमिह चैव खेत्ते भवे च पडिबद्धं तं खेत्त-भवाणुगामि त्ति भण्णदि।

५. मलयगिरीया वृत्ति, प. ८९ : यत्रैव क्षेत्रे व्यवस्थितस्य सतः समुत्पद्यते तत्रैव व्यवस्थितः सन् सङ्ख्येयानि असङ्ख्येयानि वा योजनानि स्वावगाढक्षेत्रेण सह सम्बद्धानि असम्बद्धानि वा, अवधिर्हि कोऽपि जायमानः स्वावगाढदेशादारभ्य निरन्तरं प्रकाशयति कोऽपि पुनरपान्तरालेऽन्तरं कृत्वा परतः प्रकाशयति तत उच्यते—सम्बद्धान्यसम्बद्धानि वेति।

६. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २९३, २९४ : जमोहिणान-मुप्पण्णं संतं सुक्कपक्खचंदमंडलं व समयं पडि अवट्टाणेण विणा वड्ढमाणं गच्छदि जाव अप्पणो उक्कस्सं पाविदूण उवरिमसमए केवलणणे समुप्पण्णे विणट्ठं ति तं वड्ढमाणं णाम। एवं देसोहिपरमोहिसव्वोहीणमंतो णिवददि, तिण्णि वि पाणाणि अवगाहिय अवट्टिदत्तादो।

सूत्रकार ने गाथा के माध्यम से अवधिज्ञान के जघन्य क्षेत्र का प्रमाण बतलाया है। एक पनक जीव जो सूक्ष्म नामकर्म के उदय से सूक्ष्म है, तीन समय का आहारक है, उसकी जितनी अवगाहना है वह अवधिज्ञान के क्षेत्र का जघन्य प्रमाण है। षट्खण्डागम के अनुसार लब्धि से अपर्याप्त सूक्ष्म निगोद जीव की अवगाहना अवधिज्ञान का जघन्य क्षेत्र है।^१

इस विषय में हरिभद्रसूरि और मलयगिरि ने सम्प्रदाय का उल्लेख किया है—एक मत्स्य जो हजार योजन लंबा है, जो अपने ही शरीर के बाह्य भाग के एक देश में उत्पन्न होने वाला है, वह पहले समय में अपने शरीर में व्याप्त सब आत्मप्रदेशों की मोटाई को संकुचित कर प्रतर बनाता है। उस प्रतर की मोटाई अंगुल के असंख्येय भाग प्रमाण तथा लम्बाई-चौड़ाई अपने देह प्रमाण से होती है। दूसरे समय में उस प्रतर को संकुचित कर वह मत्स्य देहप्रमाण लम्बाई-चौड़ाई वाले आत्म-प्रदेशों की सूची बनाता है। उस सूची की मोटाई चौड़ाई अंगुल के असंख्येय भाग प्रमाण होती है। तीसरे समय में उस सूची को संकुचित कर अंगुल के असंख्येय भाग प्रमाण अपने शरीर के बाहरी प्रदेश में सूक्ष्म परिणति वाले पनक के रूप में उत्पन्न होता है। उत्पत्ति के तीसरे समय में पनक के शरीर का जितना प्रमाण होता है, उतने प्रमाण वाला क्षेत्र अवधिज्ञान का जघन्य क्षेत्र है। इतने क्षेत्र में अवस्थित वस्तु जघन्य अवधिज्ञानी का विषय बनती है।

हरिभद्रसूरि और मलयगिरि ने विशेषावश्यक भाष्य में उल्लिखित प्रश्न और समाधान को उद्धृत किया है—

१. महान् मत्स्य का ग्रहण क्यों ?

२. तीसरे समय में अपने शरीर में उत्पाद होता है क्या वही त्रिसमयाहारकत्व है ?

जिनभद्रगणि ने इन प्रश्नों का समाधान इस प्रकार किया है—

१. महामत्स्य तीन समयों में आत्मप्रदेशों का संकुचन कर अपने प्रयत्न विशेष से सूक्ष्म अवगाहना वाला होता है। इसीलिए महामत्स्य का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

२. वह प्रथम और द्वितीय समय में अतिसूक्ष्म अवगाहना वाला होता है। चौथे समय में अतिस्थूल अवगाहना वाला होता है इसलिए त्रिसमय आहारक का ग्रहण किया गया है।

शब्द विमर्श—

पसत्थ ज्जवसाण—तेजस, पद्म और शुक्ल ये तीन प्रशस्त लेश्याएं हैं। प्रशस्त द्रव्य लेश्या से अनुरंजित चित्त का अर्थ है प्रशस्त अध्यवसान।^२

गाथा २

११. (गाथा २)

प्रस्तुत गाथा में परमावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र के परिमाण का निरूपण है। सूक्ष्म अग्निकायिक जीव जब उत्कृष्ट परिमाण में होते हैं तथा बादर अग्निकायिक जीव भी अधिक होते हैं। यहां सर्वबहुअग्नि जीवों का वह परिमाण विवक्षित है। सर्वबहुअग्नि के जीव सब दिशाओं में जितने क्षेत्र को व्याप्त करते हैं, वह परमावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र है। इसे आवश्यकनिर्युक्ति और विशेषावश्यक भाष्य में एक कल्पना द्वारा समझाया गया है।^३

अग्निजीवों के शरीर की अवगाहना असंख्येय प्रदेशात्मक होती है। उक्त अवगाहना वाले शरीरों की एक सूची बनाएं। अवधिज्ञानी की देह के पर्यन्तवर्ती भाग से उसे सब दिशाओं में घुमाएं। वह सूची अलोक में लोक प्रमाण असंख्येय खण्डों का स्पर्श

१. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. ३०१, ३०२ :

ओगाहणा जहण्णा णियमा डु सुहुमणिगोदजीवस्स ।

जहेही तद्देही जहण्णिया खेत्तवो ओही ॥

एगमुस्सेहघणंगुलं ठविय पलिदावमस्स असंखेज्जदिभागेण

खंडिद्दे तत्थ एयखंडपमाणं सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स

तदियसमय-आहार-तदियसमयतभवत्थस्स जहण्णिया

ओगाहणा होदि ।

२. (क) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २६

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. ९१

३. (क) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २६

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. ९१

४. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ५९२ से ५९५

५. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. १८ : पसत्थज्जवसाणट्टाणा
तेआदिपसत्थलेसाणुगता भवंति, पसत्थदव्वलेसाहि
अणुरंजितं चित्तं पसत्थज्जवसाणो भण्णति ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २६

६. (क) आवश्यकनिर्युक्ति, गा. ३१

(ख) विशेषावश्यक भाष्य, गा. ६०२ की वृत्ति

करे, तब परमावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र बनता है।^१ यह निरूपण परमावधि के सामर्थ्य की अपेक्षा से किया गया है।^२

सारे सूक्ष्म व बादर अग्निकायिक जीवों को तीन रचनाओं में स्थापित किया जा सकता है—घन, प्रतर और श्रेणी या सूची। प्रत्येक स्थापना के दो प्रकार हो सकते हैं^३—

१. एक प्रदेश पर एक जीव को स्थापित करके।
२. असंख्येय आकाश प्रदेशों पर एक-एक जीव को स्थापित करके।

इस प्रकार से ये छह स्थापनाएं हो जाती हैं। एक आकाश प्रदेश पर एक जीव का अवगाहन नहीं हो सकता। अतः प्रथम विधि से स्थापित घन, प्रतर एवं श्रेणी आगमानुमोदित नहीं है। घन एवं प्रतर की अपेक्षा सूची रचना में बहुत क्षेत्र का स्पर्श होता है अतः छठा विकल्प ही ग्राह्य है।^४

गाथा ३-६

१२. (गाथा ३ से ६)

प्रस्तुत चार गाथाओं में अवधिज्ञान के ज्ञेय का क्षेत्र और काल की तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है—

श्वेताम्बर परम्परा^५

दिगम्बर परम्परा^६

क्षेत्रपरिमाण	समय-अवधि	समय-अवधि	क्षेत्रपरिमाण
अंगुल का असंख्यातवां भाग	— आवलिका का असंख्यातवां भाग	आवलिका का असंख्यातवां भाग	— उत्सेधांगुल का असंख्यातवां भाग
,, ,, संख्यातवां भाग	— आवलिका का संख्यातवां भाग	आवलिका का संख्यातवां भाग	— ” का संख्यातवां भाग
एक अंगुल	— अन्तरावलिका	अन्तरावलिका	— अंगुलमात्र
अंगुल पृथक्त्व (२-९ अं.)	— आवलिका	आवलिका	— अंगुलपृथक्त्व
एक हाथ	— अन्तर्मुहूर्त्त	आवलिका पृथक्त्व	— हस्तप्रमाण
गव्यूत	— अन्तर्दिवस	साधिक उच्छ्वास	— १ गव्यूत
योजन	— दिवस पृथक्त्व	अन्तर्मुहूर्त्त	— १ योजन
२५ योजन	— अन्तःपक्ष	अन्तर्दिवस	— २५ योजन
भरतक्षेत्र	— अर्द्धमास	अर्द्धमास	— भरतक्षेत्र
जम्बूद्वीप	— साधिक मास	साधिक मास	— जम्बूद्वीप
मनुष्यलोक	— एक वर्ष	एक वर्ष	— मनुष्यक्षेत्र
रुचक द्वीप	— वर्षपृथक्त्व	वर्षपृथक्त्व	— रुचक द्वीप
संख्येय द्वीपसमुद्र	— संख्यात काल	संख्येय वर्ष	— संख्येय द्वीपसमुद्र
द्वीपसमुद्र असंख्यात या संख्यात	— असंख्यातकाल	असंख्येय वर्ष	— असंख्येय द्वीपसमुद्र

क्षेत्र और काल दोनों अमूर्त हैं और अवधिज्ञान का विषय मूर्त (द्रव्य) है। इसका ऐदम्पर्यार्थ यह है कि अवधिज्ञान क्षेत्र में व्यवस्थित दर्शनयोग्य द्रव्यों और विवक्षित कालांतरवर्ती पर्यायों को जानता-देखता है। वह क्षेत्र और काल को जानता है। यह उपचार कृत प्रतिपादन है।^७

१. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ६०३, ६०४

२. वही, गा. ६०५

३. वही, गा. ६०१

४. वही, गा. ६०१ की वृत्ति।

५. नवसुत्ताणि, नंदी, सू. १८।२-६

६. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. ३०१-३२८

७. (क) हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २७ : क्षेत्र-कालदर्शनमुपचारे-
पोच्यते, अन्यथा हि क्षेत्रव्यवस्थितानि दर्शनयोग्यानि
द्रव्याणि तत्पर्यायांश्च विवक्षितकालान्तर्वातनः
पश्यति।

(ख) आवश्यकनिर्युक्ति, पृ. २१

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ९३

गाथा ७

१३. (गाथा ७)

प्रस्तुत गाथा में अवधिज्ञान का द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से विचार किया गया है। जैसे-जैसे अवधिज्ञान के विषयभूत काल की सीमा बढ़ती है वैसे-वैसे उसके विषयभूत क्षेत्र, द्रव्य और पर्याय के बोध की भी सीमा बढ़ती है।

अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र की वृद्धि के साथ द्रव्य और पर्याय की वृद्धि होती है, उसके साथ काल की वृद्धि का नियम नहीं है, वह भाज्य है—कदाचित् होती है कदाचित् नहीं। हरिभद्र ने इसका हेतु बतलाया है—क्षेत्र सूक्ष्म होता है काल उससे स्थूल होता है।^१ वीरसेन ने काल की वृद्धि के विकल्प को स्वाभाविक बतलाया है।^२ काल की अपेक्षा क्षेत्र सूक्ष्म होता है यह स्वाभाविक है, इसलिए दोनों वक्तव्यों में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है।

द्रव्य और पर्याय की वृद्धि का नियम—

द्रव्य और पर्याय की वृद्धि होने पर क्षेत्र और काल की वृद्धि भाज्य है—कदाचित् होती है कदाचित् नहीं। इसका हेतु है—द्रव्य और पर्याय की अपेक्षा क्षेत्र और काल स्थूल है।

द्रव्य की वृद्धि होने पर पर्याय की वृद्धि अवश्य होती है। पर्याय की वृद्धि होने पर द्रव्य की वृद्धि भाज्य है—कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं। क्योंकि पर्याय द्रव्य से सूक्ष्म है।^३ वीरसेन ने द्रव्यवृद्धि के साथ पर्यायवृद्धि का नियम बतलाया है।^४

जिनभद्रगणी ने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की सूक्ष्मता का गणित की भाषा में प्रतिपादन किया है। काल सूक्ष्म है। क्षेत्र काल से असंख्येय गुण सूक्ष्म है। द्रव्य क्षेत्र से अनन्त गुण सूक्ष्म है। पर्याय द्रव्य से असंख्येय गुण अथवा संख्येय गुण सूक्ष्म है।^५

गाथा ८

१४. (गाथा ८)

काल सूक्ष्म होता है। इसका हेतु यह है कि कमल के सौ पत्तों का भेदन करने में प्रतिपत्र के भेदन में असंख्येय समय लगते हैं। इस दृष्टान्त के द्वारा हरिभद्र ने काल की सूक्ष्मता का निरूपण किया है। काल की अपेक्षा क्षेत्र सूक्ष्मतर है।^६ एक अंगुल की श्रेणी मात्र क्षेत्र में जो प्रदेश का परिमाण है उसके प्रति प्रदेश में समय गणना की दृष्टि से असंख्येय अवसर्पिणी हो जाती है। एक अंगुल की श्रेणी मात्र क्षेत्र के प्रदेशों का परिमाण असंख्येय अवसर्पिणी के समयों के परिमाण जितना है।^७

मलयगिरि ने यहां अंगुल के प्रसंग में प्रमाणांगुल का उल्लेख किया है। मतान्तर के अनुसार उत्सेधांगुल का भी उल्लेख है।^८

अकलंक ने देशावधि, परमावधि और सर्वावधि इन तीनों की वृद्धि और हानि का विचार द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के संदर्भ में प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत आगम की गाथाओं में संकेत मात्र है। विवरण की दृष्टि से तत्त्वार्थवार्तिक अवलोकनीय है।^९

१. हरिभद्राया वृत्ति, पृ. २५ : क्षेत्रस्य सूक्ष्मत्वात्, कालस्य च स्थूलत्वात् ।

२. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. ३०९ : साभावियादो ।

३. हरिभद्राया वृत्ति, पृ. २८ : द्रव्यवृद्धौ तु पर्याया वर्द्धन्त एव, पर्यायवृद्धौ च द्रव्यं भाज्यम्, द्रव्यात् पर्यायाणां सूक्ष्मत्वाद् ।

४. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. ३०९ : द्रव्यवृद्धौ पुण गणयमा पञ्जयवुद्धौ ।

५. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ६२३ :

कालो खेतं द्रवं भावो य जहुत्तरं सुहुमभेया ।
थोवा-संखा-गंता-संखा य जमोहिविसयस्मि ॥

६. (क) हरिभद्राया वृत्ति, पृ. २८ : सूक्ष्मश्च-श्लक्ष्णश्च भवति कालः, यस्मादुत्पलपत्रशतभेदे समयाः प्रतिपत्रमसंख्येयाः प्रतिपादिताः । तथापि ततः कालात् सूक्ष्मतरं भवति क्षेत्रम् ।

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. ९५

७. हरिभद्राया वृत्ति, पृ. २८ : अङ्गुलश्रेणिमात्रक्षेत्रप्रदेशा-ग्रमसमंङ्खेयावसर्पिणीसमयराशिपरिमाणमिति ।

८. मलयगिरीया वृत्ति, प. ९३

९. तत्त्वार्थवार्तिक, सू. १।२२

सूत्र १९

१५. (सूत्र १६)

चूर्ण, हारिभद्रीया वृत्ति और मलयगिरीया वृत्ति में हीयमानक अवधिज्ञान के विषय में कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। धवला में इसका कुछ विवरण उपलब्ध है—जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर कृष्ण पक्ष के चन्द्रमण्डल के समान विनष्ट होने तक घटता ही जाता है वह हीयमान अवधिज्ञान है। इसका अन्तर्भाव देशावधि में होता है। परमावधि और सर्वावधि में हानि नहीं होती इसलिए हीयमान का अन्तर्भाव उसमें नहीं होता।^१

शब्द विमर्श—

संकलिस्समाण—अप्रशस्त लेश्या से उपरंजित चित्त तथा अनेक अशुभ विषयों का चिन्तन करनेवाला चित्त संकलिष्ट कहलाता है।^२

सूत्र २०-२१

१६. (सूत्र २०, २१)

प्रस्तुत आगम में प्रतिपाति अवधिज्ञान की विषय-वस्तु स्पष्ट है। उसके अनुसार उसके प्रतिपात के हेतु का कोई उल्लेख नहीं है किन्तु हीयमान अवधिज्ञान के प्रसंग में हीन होने के दो कारण बतलाए गए हैं—अप्रशस्त अध्यवसान स्थान और संक्लेश। प्रतिपात के ये ही कारण हो सकते हैं।

विषय वस्तु के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रतिपाति अवधिज्ञान देशावधि है क्योंकि देशावधि का उत्कृष्ट विषय सम्पूर्ण लोक है।^३ जो अलोक के एक प्रदेश को भी देख लेता है वह प्रतिपाति नहीं होता। परमावधि अलोक में लोक जितने असंख्य खण्डों को जान सकता है।^४ सर्वावधि उससे भी अधिक जानता है इसलिए परमावधि और सर्वावधि दोनों अप्रतिपाति हैं।

धवला के अनुसार प्रतिपाति अवधिज्ञान उत्पन्न होकर निर्मूल नष्ट हो जाता है। अप्रतिपाति अवधिज्ञान केवलज्ञान उत्पन्न होने पर ही विनष्ट होता है।^५ अप्रतिपाति के विषय में हरिभद्रसूरि का भी यही मत है।^६

सूत्र २२

१७. (सूत्र २२)

प्रस्तुत सूत्र में अवधिज्ञान के विषय पर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से विचार किया गया है। अठारहवें सूत्र की गाथाओं में अवधिज्ञान के क्षेत्र, काल तथा द्रव्य और पर्याय की वृद्धि के क्रम पर विचार किया गया है। प्रस्तुत सूत्र में अवधिज्ञान के विषय का सामान्य निर्देश है।

सूत्र का पाठ है—अवधिज्ञानी जघन्यतः अनन्त रूपी द्रव्यों को जानता देखता है, उत्कृष्टतः सब रूपी द्रव्यों को जानता देखता है। अनन्त की व्याख्या आवश्यक निर्युक्ति में मिलती है। पुद्गल की आठ वर्गणाएं हैं—१. औदारिक वर्गणा २. वैक्रिय वर्गणा ३. आहारक वर्गणा ४. तैजस वर्गणा ५. भाषा वर्गणा ६. श्वासोच्छ्वास वर्गणा ७. मनो वर्गणा ८. कर्म वर्गणा। निर्युक्ति के अनुसार प्रारम्भिक अवस्थावाला अवधिज्ञानी तैजस और भाषा वर्गणा के मध्यवर्ती द्रव्यों को जानता है।^७ विशेषावश्यक भाष्य, नंदी

१. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २९३ : किण्हपक्खचंदमंडलं व जमोहिणाणमुप्पणं संतं वड्ढि-अवट्ठाणेहि विणा हायमाणं चैव होट्ठण गच्छदि जाव णिस्सेसं विणट्ठं ति तं हायमाणं नाम । एदं देसोहीए अंतो णिवददि, ण परमोहि-सव्वोहीसु, तत्थ हाणीए अभावादो ।

२. नन्दी चूर्ण, पृ. १९ : अप्पसत्थलेस्सोवरंजितं चित्तं अणेगामुभत्थचित्तणपरं चित्तं संकल्लिट्ठं भण्णति ।

३. तत्त्वार्थवार्त्तिक, सू. ८१ : उत्कृष्टतः सर्वलोकः ।

४. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ६८५

५. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २९५ : जमोहिणाणमुप्पणं संतं केवलणाणे समुप्पण्णे चैव विणस्सदि, अण्णहा ण विणस्सदि, तमप्पडिवादी नाम ।

६. हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २९

७. आवश्यक निर्युक्ति, गा० ३८

चूर्ण, नंदी की हारिभद्रीया वृत्ति और मलयगिरीया वृत्ति में इसी मत का अनुसरण है।^१

अवधिज्ञानी उत्कृष्टतः सब रूपी द्रव्यों को जानता है। यह वचन परमावधि व सर्वावधि की अपेक्षा से है।^२ देशावधि वाला सब रूपी द्रव्यों को नहीं जानता।

अवधिज्ञानी भाव की दृष्टि से जघन्य और उत्कृष्टतः अनन्त भावों को जानता है। यह सापेक्ष वचन है। चूर्ण के अनुसार जघन्य पद से उत्कृष्ट पद अनन्त गुणा अधिक है। उत्कृष्ट पद के भाव सब भावों की अपेक्षा अनन्तवें भाग जितने हैं।^३

हरिभद्रसूरि ने चूर्ण के विवरण को और अधिक स्पष्ट किया है। उनके अनुसार अवधिज्ञानी आधारभूत ज्ञेय द्रव्य की अनन्तता के कारण अनन्त पर्यायों को जानता है। प्रतिद्रव्य की अपेक्षा वह अनन्त पर्यायों का नहीं जानता।^४ मलयगिरी ने चूर्ण और हारिभद्रीया वृत्ति का अनुसरण किया है।^५

सब भावों को केवलज्ञान के द्वारा ही जाना जा सकता है इसलिए अवधिज्ञानी सब भावों के अनन्तवें भाग को जानता है। प्रस्तुत सूत्र में इसका निर्देश किया गया है।

ध्वला में भी अनन्त पर्यायों को जानने का निषेध किया गया है। उसके अनुसार अवधिज्ञानी असंख्येय पर्यायों को जानता है।^६ मलयगिरि के अनुसार अवधिज्ञानी संख्येय और असंख्येय दोनों प्रकार के पर्यायों को जानता है।^७ भाव—हरिभद्र और मलयगिरि ने भाव का अर्थ पर्याय किया है।^८ ध्वला में वर्तमान पर्याय से उपलक्षित द्रव्य को भाव कहा गया है।^९

गाथा १

१८. (गाथा १)

अवधिज्ञान के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से अनेक विकल्प होते हैं। प्रस्तुत गाथा में इसका इङ्गित किया गया है। चूर्ण के अनुसार वे इस प्रकार हैं।^{१०} द्रव्य की दृष्टि से परमाणु, द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी आदि विकल्पों का प्रत्यक्ष ज्ञान।

क्षेत्र की दृष्टि से अंगुल का असंख्येय भाग आदि विशिष्ट क्षेत्रों के विकल्पों का प्रत्यक्ष ज्ञान।

काल की दृष्टि से आवलिका का असंख्येय भाग आदि विशिष्ट कालखंड के विकल्पों का प्रत्यक्ष ज्ञान।

भाव की दृष्टि से वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के एक गुणात्मक, द्विगुणात्मक आदि विकल्पों का प्रत्यक्ष ज्ञान।

हरिभद्र और मलयगिरि दोनों ने चूर्ण का ही अनुसरण किया है।^{११} ध्वला में विकल्प का विस्तृत विवरण मिलता है।^{१२}

१. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा. ६७३

तेया-कम्मसरीरे तेयादब्बे य भासदब्बे य ।

(ख) नन्दी चूर्ण, पृ. २०

(ग) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ३०

(घ) मलयगिरीया वृत्ति, प. ९७

२. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ६८५

परमोहि असंखेज्जा लोगमित्ता समा असंखेज्जा ।

रुवगयं लहइ सव्वं खेत्तोवमियं अगणिजीवा ॥

३. नन्दी चूर्ण, पृ. २० : भावतो ओधिष्णाणी जहण्णेणं अणंते भावे उवलमति, उक्कोसतो वि अणंते, जहण्णपदातो उक्कोसपदं अणंतगुणं । उक्कोसपदे वि जे भावा ते सव्व-भावाण अणंतभागे वट्टंति ।

४, हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ३० : भावतोऽवधिज्ञानी जघन्येनानन्तानन्तान् 'भावान्' पर्यायान्, आधारद्रव्यानन्तत्वात्, न तु प्रतिद्रव्यमिति, उत्कृष्टतोऽप्यनन्तान् भावान् जानाति पश्यति, तेऽपि चोत्कृष्टपदिनः 'सर्वभावनां' सर्वपर्यायाणा-

मनन्तभाग इति ।

५. मलयगिरीया वृत्ति, प. ९८

६. षट्खण्डागम, पुस्तक, पृ. २८

७. मलयगिरीया वृत्ति, प. ९८ : प्रतिद्रव्यं संख्येयानाम-संख्येयान वा पर्यायाणां दर्शनात् ।

८. (क) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ३०

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. ९८

९. षट्खण्डागम पुस्तक ९, पृ. २६-५१

१०. नन्दी चूर्ण, पृ. २० : दव्वतो बहू विगप्पा परमाणुमादि-दव्वविसेसातो । खेततो वि अंगुल असंखेयभागविक-कप्पादिया । कालतो वि आवलिय अंखेज्जभागादिया । भावतो वि वण्णपज्जवादिया ॥

११. (क) हारिभद्रीया वृत्ति पृ. ३०, ३१

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. ९८

१२. षट्खण्डागमः, पुस्तक ९, पृ. २६ से १

गाथा २

१६. (गाथा २)

नैरयिक और देवों के अवधिज्ञान की दो विशेषताएं बतलाई गई हैं—१. अवधिज्ञान की अबाह्यता २. सर्वतः देखने की शक्ति का विकास ।

अवधिज्ञान की अबाह्यता के तीन अर्थ हो सकते हैं—

० नैरयिक और देव में अवधिज्ञान नियमतः होता है ।

० उनका अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक होता है ।

० उनका अवधिज्ञान मध्यगत होता है । मध्यगत अवधिज्ञान में ही सर्वतः देखने की शक्ति होती है ।^१

उक्त तीनों नियम तीर्थंकर के अवधिज्ञान में भी घटित होते हैं इसलिए प्रस्तुत गाथा में उनका भी ग्रहण किया गया है ।

सूत्र २३

२०. (सूत्र २३)

मनःपर्यवज्ञान से मन के पर्यायों को जाना जाता है । मन का निर्माण मनोद्रव्य की वर्गणा से होता है । मन पौद्गलिक है और मनःपर्यवज्ञानी मनोवर्गणा के पर्यायों को जानता है । अवधिज्ञान का विषय रूपी द्रव्य है और मनोवर्गणा के स्कन्ध भी रूपी द्रव्य हैं । इस प्रकार दोनों का विषय एक ही बन जाता है । मनःपर्यवज्ञान अवधिज्ञान का एक अवान्तर भेद जैसा प्रतीत होता है । इसीलिए सिद्धसेन ने अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान को एक माना है ।^१ उनकी परम्परा को सिद्धांतवादी आचार्यों ने मान्य नहीं किया है । उमास्वाति ने संभवतः पहली बार अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान के भेद-ज्ञापक हेतुओं का निर्देश किया है—विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषय ।^२ हो सकता है सिद्धसेन की अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान को एक मानने की विचारसरणि उनके सामने रही हो । उसे अमान्य करते हुए अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान की स्वतन्त्रता का समर्थन किया हो ।

अवधि और मनःपर्यव दोनों अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान हैं । न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, योगदर्शन, बौद्धदर्शन और जैनदर्शन में अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष का वर्णन मिलता है । किन्तु जैन आगमों में जितना विस्तार के साथ इन दोनों का निरूपण हुआ है उतना अन्य किसी दर्शन में उपलब्ध नहीं है ।

प्राचीन न्याय दर्शन में अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष का उल्लेख नहीं है । नव्य न्याय में गंगेश उपाध्याय ने योगज प्रत्यक्ष का उल्लेख किया है ।^३

वैशेषिक सूत्र के प्रशस्तपाद भाष्य में वियुक्तयोगिप्रत्यक्ष का साधारण वर्णन मिलता है ।^४ इससे ज्ञात होता है कि अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष के विषय में श्रमण दर्शनों ने ही अधिक ध्यान दिया है । पातञ्जलयोगदर्शन में तारा व्यूह ज्ञान आदि का उल्लेख है जो अतीन्द्रिय ज्ञान के सूचक हैं ।^५ परचित्त ज्ञान का उल्लेख योगसूत्र^६ व बौद्धदर्शन^७ दोनों में मिलता है ।

पण्डित मुखलालजी ने मनःपर्याय के दो मतों की चर्चा की है—“मनःपर्याय ज्ञान का विषय मन के द्वारा चिन्त्यमान वस्तु है या चिन्तनप्रवृत्त मनोद्रव्य की अवस्थाएं हैं— इस विषय में जैन परम्परा में ऐकमत्य नहीं है । निर्युक्ति और तत्त्वार्थसूत्र एवं

१. (क) नवसुत्ताणि, नंदी, सू. १६

(ख) हारिभद्राया वृत्ति, पृ. ३१

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. ९९

२. निश्चयनय द्वार्त्रिशिका, श्लोक १७ :

प्रार्थनाप्रतिघाताभ्यां चेष्टन्ते द्वीन्द्रियादयः ।

मनःपर्यायविज्ञानं युक्तं तेषु न चान्यथा ॥

३. (क) तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम् १।२६ : विशुद्धिक्षेत्रस्वामि-

विषयेभ्योऽवधिमनःपर्याययोः ।

(ख) तत्त्वार्थ भाष्यानुसारिणी, पृ. १०२, १०३

(ग) तत्त्वार्थवार्तिक, पृ. ८६, ८७

४. तत्त्वचिन्तामणि—प्रत्यक्ष खण्ड, प्रथम भाग,—प्रत्यक्ष-
लक्षणवाद पृष्ठ ५७१

५. कंदलीटीका सहित प्रशस्तपादभाष्य, पृ. ४६५ : वियुक्तानां
पुनश्चतुष्टयसन्निकर्षाद् योगजधर्मानुग्रहसामर्थ्यात् सूक्ष्म-
व्यवहितविप्रकृष्टेषु प्रत्यक्षमुत्पद्यते ।

६. पातञ्जलयोगदर्शनम्, ३।२७ : चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ।

७. वही ३।१९ : प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ।

८. अभिधम्मत्थसंगहो, ९.२४

९. ज्ञानबिन्दुप्रकरणम्, परिचय, पृ. ४१

तत्त्वार्थसूत्रीय व्याख्याओं में पहला पक्ष वर्णित है; जबकि विशेषावश्यक भाष्य में दूसरे पक्ष का समर्थन किया गया है। परंतु योगभाष्य तथा मज्झिमनिकाय में जो परचित्त ज्ञान का वर्णन है उसमें केवल दूसरा ही पक्ष है जिसका समर्थन जिनभद्रगणिकमाश्रमण ने किया है। योगभाष्यकार तथा मज्झिमनिकायकार स्पष्ट शब्दों में यही कहते हैं कि ऐसे प्रत्यक्ष के द्वारा दूसरों के चित्त का ही साक्षात्कार होता है, चित्त के आलम्बन का नहीं। योगभाष्य में तो चित्त के आलम्बन का ग्रहण हो न सकने के पक्ष में दलीलें भी दी गई हैं।^१

परचित्त का साक्षात्कार करनेवाला ज्ञान मनःपर्यवज्ञान है। यह व्याख्या स्पष्ट नहीं है। ज्ञानात्मक चित्त को जानने की क्षमता मनःपर्यवज्ञान में नहीं है। ज्ञानात्मक चित्त अमूर्त है जबकि मनःपर्यवज्ञान मूर्त वस्तु को ही जान सकता है। इस विषय में सभी जैन दार्शनिक एकमत हैं। मनःपर्यवज्ञान का विषय है मनोद्रव्य, मनोवर्गणा के पुद्गल स्कन्ध। ये पौद्गलिक मन का निर्माण करते हैं। मनःपर्यवज्ञानी उन पुद्गल स्कन्धों का साक्षात्कार करता है। मन के द्वारा चिन्त्यमान वस्तु मनःपर्यवज्ञान का विषय नहीं है। चिन्त्यमान वस्तुओं को मन के पौद्गलिक स्कन्धों के आधार पर अनुमान से जाना जाता है। मनःपर्यवज्ञान के द्वारा चिन्त्यमान वस्तु का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता।^२

मणपञ्जवनाणं पुण, जणमणपरिचित्तियत्थपागडणं ।

माणुसखेत्तनिबद्धं, गुणपच्चइयं चरित्तवओ ॥१॥

इस गाथा के आधार पर मनःपर्यवज्ञान का विषय चिन्त्यमान वस्तु बतलाया गया है। चूर्णिकार ने इस गाथा की व्याख्या में लिखा है कि मनःपर्यवज्ञान अनन्तप्रदेशी मन के स्कन्धों तथा तद्गत वर्ण आदि भावों को प्रत्यक्ष जानता है। चिन्त्यमान विषय वस्तु को साक्षात् नहीं जानता क्योंकि चिन्तन का विषय मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार के पदार्थ हो सकते हैं। छद्मस्थ मनुष्य अमूर्त का साक्षात्कार नहीं कर सकता इसलिए मनःपर्यवज्ञानी चिन्त्यमान वस्तु को अनुमान से जानता है। इसीलिए मनःपर्यवज्ञान की पश्यत्ता (पणवणा ३०।२) का निर्देश भी दिया गया है।^३

सिद्धसेनगणी ने चिन्त्यमान विषयवस्तु को और अधिक स्पष्ट किया है। उनका अभिमत है कि मनःपर्यवज्ञान से चिन्त्यमान अमूर्त वस्तु ही नहीं, स्तम्भ, कुम्भ आदि मूर्त वस्तु भी नहीं जानी जाती। उन्हें अनुमान से ही जाना जा सकता है।^४

मनःपर्यवज्ञान से मन के पर्यायों अथवा मनोगत भावों का साक्षात्कार किया जाता है। वे पर्याय अथवा भाव चिन्त्यमान विषयवस्तु के आधार पर बनते हैं।^५ मनःपर्यवज्ञान का मुख्य कार्य विषयवस्तु या अर्थ के निमित्त से होनेवाले मन के पर्यायों का साक्षात्कार करना है। अर्थ को जानना उसका गौण कार्य है। और वह अनुमान के सहयोग से होता है।

सिद्धसेनगणी ने मनःपर्याय का अर्थ भावमन (ज्ञानात्मक पर्याय) किया है। तात्पर्य की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। चिन्तन करना द्रव्य मन का कार्य नहीं है। चिन्तन के क्षण में मनोवर्गणा के पुद्गल स्कन्धों की आकृतियाँ अथवा पर्याय बनते हैं वे सब पौद्गलिक होते हैं। भाव मन ज्ञान है ज्ञान अमूर्त है। अकेवली (छद्मस्थ मनुष्य) अमूर्त को जान नहीं सकता। वह चिन्तन के क्षण में पौद्गलिक स्कन्ध की विभिन्न आकृतियों का साक्षात्कार करता है। इसलिए मन के पर्यायों को जानने का अर्थ भाव मन को जानना नहीं होता किन्तु भाव मन के कार्य में निमित्त बनने वाले मनोवर्गणा के पुद्गल स्कन्धों के पर्यायों को जानना होता है।^६

१. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ८१३ :

मुणइ मणोद्व्वाइं नरलोए सो मणिज्जमाणाइं ।
काले भूय-भविस्से पलियाऽसंखिज्जभागम्मि ॥

२. वही, गा. ८१४ :

द्व्वमणोपज्जाए जाणइ पासइ य तग्गएणंते ।
तेणावभासिए उण जाणइ बज्जेऽणुमाणेणं ॥

३. तत्त्वार्थ भाष्यानुसारिणी, पृ. १०१ : येन ज्ञानेन मनः-
पर्याप्तिभाजां प्राणिनां—पञ्चेन्द्रियाणां मनुष्यलोकवर्तिनां
मनसःपर्यायानालम्बते—जानाति मुख्यतः, ये तु चिन्त्यमानाः
स्तम्भ-कुम्भादयस्ताननुमानेनावगच्छन्ति । कथम् ? उच्यते—
अस्यैतानि मनोद्रव्याण्यनेनाकारेण परिणतानि लक्ष्यन्ते अतः
स्तम्भादिश्चिन्तितः, तस्य परिणामस्य स्तम्भाद्यविना-
भावात्, न पुनः साक्षाद् बहिर्द्रव्याणि जानीते ।

४. हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. १९ : अथवा मनसः पर्याया मनः-
पर्यायाः, धर्मा बाह्यवस्त्वालोचनादिप्रकारा इत्यनर्थान्तरम्
तेषु ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानम्, तेषां वा सम्बन्धि ज्ञानं मनः-
पर्यायज्ञानम् ।

५. तत्त्वार्थ भाष्यानुसारिणी, पृ. ७० : मनो द्विविधं—द्रव्य-
मनो भावमनश्च, तत्र द्रव्यमनो मनोवर्गणा, भावमनस्तु ता
एव वर्गणा जीवेन गृहीताः सत्यो मन्यमानाश्चिन्त्यमाना
भावमनोऽभिधीयते । तत्रेह भावमनः परिगृह्यते, तस्य
भावमनसः पर्यायास्ते चैवंविधाः—यदा कश्चिदेवं चिन्तयेत्
किंस्वभाव आत्मा ? ज्ञानस्वभावोऽमूर्तः कर्ता सुखादीना-
मनुभविता इत्यादयो ज्ञेयविषयाध्यवसायाः परगतास्तेषु
यज्ज्ञानं तेषां वा यज्ज्ञानं तन्मनःपर्यायज्ञानम् ।

मनःपर्यवज्ञानी मन का साक्षात्कार करता है। यह व्याख्या का एक पक्ष है। इसे सर्वांगीण नहीं माना जा सकता। वास्तव में वह मन के पर्यायों का साक्षात्कार करता है। इसीलिए मनःपर्यवज्ञान के द्वारा पत्योपम के असंख्येय भाग अतीत और अनागत काल को जाना जा सकता है, देखा जा सकता है।

प्रस्तुत सूत्र में मनःपर्यवज्ञान के स्वामी का प्रतिपादन किया गया है। भगवती में उल्लेख है कि मनःपर्यवज्ञान आहारक अवस्था में होता है। अनाहारक अवस्था में उसका वर्जन किया गया है।^१ प्रस्तुत आगम में मनःपर्यवज्ञानी के लिए नव अर्हताएं निर्धारित हैं—

१. ऋद्धि प्राप्त २. अप्रमत्त संयत ३. संयत ४. सम्यग्दृष्टि ५. पर्याप्तक ६. संख्येयवर्षायुष्क ७. कर्मभूमिज ८. गर्भावक्रांतिक मनुष्य ९. मनुष्य, देखें यंत्र—

अस्वामी	स्वामी
अमनुष्य	मनुष्य
संमूच्छिम मनुष्य	गर्भावक्रान्तिक मनुष्य
अकर्मभूमिज और अंतर्द्वीपक मनुष्य	कर्मभूमिज मनुष्य
असंख्येयवर्षायुष्क मनुष्य	संख्येयवर्षायुष्क मनुष्य
अपर्याप्तक मनुष्य	पर्याप्तक मनुष्य
मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि	सम्यग्दृष्टि मनुष्य
असंयत और संयतासंयत	संयत
प्रमत्त	अप्रमत्त
अनृद्धिप्राप्त	ऋद्धिप्राप्त

शब्द विमर्श—

सम्मुच्छिममणुस्स—मनुष्य के वमन, पित्त आदि में उत्पन्न मनुष्य।^१

कम्मभूमग—पांच भरत, पांच ऐरवत, पांच महाविदेह इन पन्द्रह कर्मभूमियों में उत्पन्न मनुष्य।^२

अकम्मभूमग—हेमवत आदि अकर्मभूमियों में उत्पन्न यौगलिक मनुष्य।^३

अंतरदीवग—छप्पन अन्तर्द्वीपों में उत्पन्न एकोरूक् [एक जङ्घावाले] आदि मनुष्य।^४

पज्जत्तग—पर्याप्त का अर्थ है—शक्ति या सामर्थ्य। वह पुद्गल द्रव्य के उपचय से होती है। विवक्षित भव में प्राप्त करने योग्य समस्त पर्याप्तियों को पूर्ण करने पर जीव पर्याप्तक कहलाता है।^५

अप्पमत्तसंयत—जिसका आत्मा के प्रति सतत उपयोग (अवधानता या स्मृति) रहता है। उस संयती को अप्रमत्त कहा जाता है।

चूर्णिकार ने अप्रमत्त संयत की चार श्रेणियों का निर्देश किया है—१. जिनकल्पिक २. यथालन्दक ३. परिहारविशुद्धिक ४. प्रतिमाप्रतिपन्नक।

ये चारों श्रेणियां गच्छमुक्त मुनि की हैं। मनःपर्यवज्ञान गच्छमुक्त मुनि को ही होता है, यह जरूरी नहीं है। इसलिए इस प्रश्न को ध्यान में रखकर चूर्णिकार ने विकल्प प्रस्तुत किया है। गच्छवासी और गच्छमुक्त दोनों श्रेणी के मुनि प्रमत्त और अप्रमत्त

१. भगवई, ८।१८३

२. नन्दी चूर्ण, पृ. २२ : सम्मुच्छिममणुस्सा गन्भवक्कंतियमणु-
स्साण चव वंत-पित्तादिसु संभवन्ति।

३. वही, पृ. २२ : कम्मभूमगा पंचसु भरहेसु पंचसु एरवदेसु
पंचसु महाविदेहेसु य।

४. वही, पृ. २२ : हेमवतादिसु मिधुणा ते अकर्मभूमगा।

५. वही, पृ. २२ : तिण्णि जोयणसते लवणजलमोगाहित्ता

चुल्लहिमवंतसिहरिपादपतिट्ठिता एगूरुगादि छप्पणं
अंतरदीवगा।

६. वही, पृ. २२ : पज्जत्ती णाम—सत्ती सामत्थं। सा य
पुगलदब्बोवचया उप्पज्जति।एताओ पज्जत्तीओ
पज्जत्तयणामकम्मोदएणं णिव्वत्तिज्जंति, ता जेसि अत्थि ते
पज्जत्तया।

दोनों हो सकते हैं इसलिए अप्रमत्त संयत के साथ गच्छमुक्त श्रेणी को जोड़ना आवश्यक नहीं है।^१

इडिढपत्त—आमर्षाधि आदि लब्धियों से सम्पन्न। इस विषय में चूर्णिकार ने मतान्तर का उल्लेख किया है। कुछ आचार्यों का मत है कि मनःपर्यवज्ञान उसे ही प्राप्त होता है जो नियमतः अवधिज्ञानी होता है।^१

सूत्र २४, २५

२१. (सूत्र २४, २५)

मनःपर्यवज्ञान के दो प्रकार बतलाए गए हैं—ऋजुमति और विपुलमति। इनका अन्तर सूत्रकार ने स्वयं स्पष्ट किया है। चूर्ण और वृत्तिद्वय में उनके अन्तर का विवरण प्रस्तुत किया गया है। चूर्ण के अनुसार ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान मन के पर्यायों को जानता है। किन्तु अत्यधिक विशेषण से विशिष्ट पर्यायों को नहीं जानता, जैसे अमुक व्यक्ति ने घट का चिन्तन किया, इतना जान लेता है, किन्तु घट से सम्बद्ध अन्य पर्यायों को नहीं जानता। विपुलमति मनःपर्यवज्ञान मन के पर्यायों को बहु विशेष रूपों से जानता है। जैसे अमुक ने घट का चिन्तन किया, वह घट अमुक देश, अमुक काल में बना है आदि विशिष्ट पर्यायों से युक्त घट को जान लेता है।^१

उमास्वाति ने ऋजुमति और विपुलमति का भेद बतलाने के लिए विशुद्धि और अप्रतिपात इन दो हेतुओं का निर्देश किया है—

ऋजुमति	विपुलमति
१. विशुद्ध	१. विशुद्धतर
२. प्रतिपात सहित	२. प्रतिपातरहित

षट्खण्डागम में ऋजुमति मनःपर्याय के तीन भेद तथा विपुलमति मनःपर्याय के छह भेद किए गए हैं।^१ ऋजु और विपुल शब्द की स्पष्टता के लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। ऋजुमति ऋजुमनोगत, ऋजुवचनगत और ऋजुकायगत व्यापार को जानता है। विपुलमति ऋजु और अनृजु दोनों प्रकार के व्यापार को जानता है। अकलंक ने इसे विस्तार से समझाया है।^१ धवला में भी इनका विशद विवरण उपलब्ध है। श्वेताम्बर साहित्य में यह विषय व्याख्यात नहीं है।

सिद्धसेनगणी ने ऋजुमति को सामान्यग्राही और विपुलमति को विशेषग्राही बतलाया है। उन्होंने सामान्य का प्रयोग स्तोक के अर्थ में और विशेष का प्रयोग अधिक के अर्थ में किया है। किसी व्यक्ति ने घट का चिन्तन किया, ऋजुमति उसको जान लेता है किन्तु घट के अनेक पर्यायों का चिन्तन किया उन सब पर्यायों को वह नहीं जानता। विपुलमति घट के विषय में चिन्त्यमान सैकड़ों पर्यायों को जान लेता है।^१ सिद्धसेनगणी के सामान्य-विशेष और षट्खण्डागम के ऋजु और वक्र में तात्पर्य की दृष्टि से भेद नहीं है।

मनोविज्ञान की भाषा में ऋजुमति को सरल मनोविज्ञान और विपुलमति को जटिल मनोविज्ञान कहा जा सकता है।

१. नन्दी चूर्ण, पृ. २२ : अप्पमत्तसंजता जिणकप्पिया परिहार-
विमुद्धिया अहालंदिद्या पडिमापडिवण्णगा य, एते सततोवयो-
गोवउत्तत्ततो अप्पमत्ता । गच्छवासिणो पुण पमत्ता, कण्हुइ
अणुवयोगसंभवतातो । अहवा गच्छवासी णिग्गता य पमत्ता
वि अप्पमत्ता वि भवंति परिणामवसओ ।

२. वही, पृ. २२ : 'इडिढपत्तस्से' ति आमोसहिमादि अण्ण-
तरइडिढपत्तस्स मणपज्जवनाणं उप्पज्जइ ति । अहवा
'ओहिनाणिणो मणपज्जवनाणं उप्पज्जति' ति अण्णे नियमं
भणति ।

३. वही, पृ. २२ : ओसण्णं विसेसविमुहं उवलभति,
णातीवबहुविसेसविसिट्ठं अत्थं उवलभइ ति, भणितं होति,
घडो णेण चित्तिओ ति जाणति । विपुला मती विपुलमती,

बहुविसेसग्गाहिणी ति भणितं भवति । मणोपज्जायविसेसे
जाणति, दिट्ठंतो जहा—णेण घडो चित्तितो, तं च देस-
कालादिअणेगपज्जायविसेसविसिट्ठं जाणति ।

४. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्, १।२५ : विशुद्धचप्रतिपाताभ्यां
तद्विशेषः ।

५. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. ३२८ से ३४४

६. तत्त्वार्थवार्तिक, १।२३

७. तत्त्वार्थ भाष्यानुसारिणी, पृ. १०१ : या मतिः सामान्यं
गृह्णाति सा ऋज्वीत्युपदिश्यते, या पुनर्विशेषग्राहिणी सा
विपुलेत्युपदिश्यते, ऋजु सामान्यमेकरूपत्वात् विशेषास्तु
विविक्ता बहवः ।

सूत्र २५

शब्द विमर्श—

अभ्यधिकतराए— ऋजुमति की अपेक्षा अभ्यधिक ज्ञान । यह एक दिशा की अपेक्षा से अभ्यधिक है ।^१

विउलतराए— सब दिशाओं में होनेवाले अभ्यधिक ज्ञान को विपुलतर कहा जाता है ।^२

चूर्णिकार ने अभ्यधिकतर और विपुलतर के तीन वैकल्पिक अर्थ किए हैं—

१. एक घड़े में दूसरे घड़े से अधिक जल समाता है इसलिए वह पहले से अभ्यधिक होता है और जो अभ्यधिक होता है उसका क्षेत्र सहज विपुल (विस्तीर्ण) हो जाता है ।

इसी प्रकार विपुलमति के विषयभूत मनोद्रव्य का आधार क्षेत्र विस्तृत होता है । इसलिए वह विपुलतर है ।^३

२. ऋजुमति आयाम विष्कम्भ की दृष्टि से अभ्यधिकतर क्षेत्र को जानता है । विपुलमति क्षेत्र के बाह्य (मोटाई) को जानता है इसलिए वह विपुलतर क्षेत्र को जानता है ।^४

३. तृतीय विकल्प में चूर्णिकार ने दोनों को एकार्थक बतलाया है ।^५

विसुद्धतराए, वितिमिरतराए— विशुद्धतर और वितिमिरतर को एकार्थक बतलाया गया है । इनमें भेदरेखा भी खींची गई है । ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानी की अपेक्षा विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी विशुद्धतर जानता है तथा ऋजुमति की अपेक्षा विपुलमति मनःपर्यवज्ञानावरण का क्षयोपशम विशिष्ट होता है इसलिए उसे वितिमिरतर कहा गया है ।

इसका वैकल्पिक अर्थ है— ऋजुमति की अपेक्षा विपुलमति के पूर्वबद्ध आवरण का क्षयोपशम विशिष्ट होता है इसलिए उसे विशुद्ध कहा गया है । विपुलमति में बध्यमान और उदय अवस्था का अभाव होता है इसलिए उसे वितिमिरतर कहा गया है ।^६

गाथा २६-३२

२२ (सूत्र २६ से ३२)

केवलज्ञान—

भवस्थ केवलज्ञान और सिद्ध केवलज्ञान—केवलज्ञान के ये दो भेद सापेक्ष हैं । मीमांसक दर्शन का अभिमत है कि मनुष्य सर्वज्ञ नहीं हो सकता ।^१ वैशेषिक दर्शन का अभिमत है कि मुक्त जीव में ज्ञान नहीं होता ।^२ ये दोनों अभिमत जैनदर्शन को स्वीकार्य नहीं हैं । भवस्थ केवलज्ञान इस स्वीकार का सूत्र है कि मनुष्य सर्वज्ञ हो सकता है । सिद्धकेवलज्ञान इस स्वीकृति का सूचक है कि मुक्त आत्मा में केवलज्ञान विद्यमान रहता है ।

भवस्थ केवलज्ञान के दो भेद किए गए हैं—

१. सयोगि भवस्थकेवलज्ञान २. अयोगि भवस्थकेवलज्ञान ।

केवलज्ञान शरीरधारी मनुष्य के होता है । शरीर की प्रवृत्ति और केवलज्ञान में कोई विरोध नहीं है । उपाध्याय

१. नन्दी चूर्ण, पृ. २४ : रिजुमतिखेत्तोवलंभप्पमाणातो विपुलमती अभतियतरागं खेत्तं उवलभइ त्ति । एगदिसि पि अभतियसंभवो भवति ।

२. वही, पृ. २४ : समंततो जम्हा अभइयं ति तम्हा विपुलतरागं भण्णति ।

३. वही, पृ. २४ : जहा घडो घडातो जलाहारत्तणतो अभतितो सो पुण नियमा घडागासखेत्तेण विउलतरो भवति एवं विउलमति अभतियतरागं मणोलद्धिजीवद्ववाधारं खेत्तं जाणति, तं च नियमा विपुलतरं इत्यर्थः ।

४. वही, पृ. २४, २५ : अहवा आयाम-विव्खंभेणं अभइतरागं बाह्ल्लेण विउलतरं खेत्तं उपलभत इत्यर्थः ।

५. वही, पृ. २५ : अहवा दो वि पदा एगद्धा ।

६. वही, पृ. २५ : जहा पगासगद्ववविसेसातो खेत्तविसुद्धि विसेसेणऽखिज्जति तहा मणपज्जवनाण-चरणविसेसातो रिजुमणपज्जवणाणिसमीवातो विपुलमणपज्जवणाणी विसुद्धतरागं जाणति, मणपज्जवनाणावरणखयोवसमुत्तमलंभत्तणतो वा वितिमिरतरागं ति भण्णति । अहवा पुव्वबद्धमणपज्जवनाणावरणखयोवसमुत्तमलंभत्तणतो विसुद्धं ति भणितं तस्सेवाऽऽवरणबज्जमाणस्सऽभावत्तणतो पुव्वबद्धस्स य अणुदयत्तणतो वितिमिरतरागं—ति भण्णति ।

७. मीमांसा दर्शनम्, श्लोक ११० से १४३

८. तर्कभाषा, पृ. १९४ : एकांविशतिभेदभिन्नस्य दुःखस्यात्यन्तिकी निवृत्तिः (मोक्षः) ।

यशोविजयजी ने वात, पित्त आदि शारीरिक दोष और सर्वज्ञत्व में विरोध बताने वाले तीन मतों का उल्लेख कर उनका निरसन किया है।^१ शरीर की प्रवृत्ति से मुक्त—अयोगि अवस्था में उसके विरोध का प्रश्न ही नहीं है।

सिद्ध केवलज्ञान के दो भेद किए गए हैं—अनन्तर सिद्धकेवलज्ञान और परम्पर सिद्धकेवलज्ञान। ये दो भेद काल सापेक्ष किए गए हैं। अनन्तर सिद्धकेवलज्ञान के पन्द्रह भेद सिद्ध होने की पूर्व अवस्था के आधार पर किए गए हैं। यह सूत्र जैनधर्म की विशुद्ध आध्यात्मिकता का प्रतिपादक है। इसमें लिंग, वेश आदि बाह्य परिस्थिति से मुक्त होकर केवल आत्मा के आन्तरिक विकास की स्वीकृति है।

१. तीर्थ सिद्ध—जो श्रमणसंघ में प्रव्रजित होकर मुक्त होता है।^२

२. अतीर्थसिद्ध—चातुर्वर्ण श्रमणसंघ के अनस्तित्व काल में जो मुक्त होता है। चूर्णिकार ने मरुदेवी आदि का उदाहरण प्रस्तुत किया है।^३ हरिभद्रसूरि ने बताया है—जो जातिस्मरण के द्वारा मोक्षमार्ग को प्राप्त कर सिद्ध होते हैं वे अतीर्थसिद्ध कहलाते हैं।^४ चूर्णिकार ने जातिस्मरण का उल्लेख स्वयंबुद्ध के प्रसंग में किया है। स्वयंबुद्ध दो प्रकार के होते हैं—तीर्थङ्कर और तीर्थङ्कर से इतर। प्रस्तुत प्रसंग में तीर्थङ्कर से इतर विवक्षित हैं।^५

३. तीर्थङ्कर सिद्ध—ऋषभ आदि—जो तीर्थंकर अवस्था में मुक्त होते हैं।^६

४. अतीर्थंकर सिद्ध—जो सामान्य केवली के रूप में मुक्त होते हैं।^७

स्वयंबुद्धसिद्ध—जो स्वयंबुद्ध होकर मुक्त होता है।

स्वयंबुद्ध के दो अर्थ किए गए हैं—

१. जिसे जातिस्मरण के कारण बोधि प्राप्त हुई है।

२. जिसे बाह्य निमित्त के बिना बोधि प्राप्त हुई है।

मलयगिरि ने भी इस प्रसंग में जातिस्मरण का उल्लेख किया है।^८

६. प्रत्येकबुद्ध सिद्ध—जो प्रत्येक बुद्ध होकर मुक्त होता है।

प्रत्येकबुद्ध का अर्थ है किसी बाह्य निमित्त से प्रतिबुद्ध होने वाला।^९

७. बुद्धबोहियसिद्ध—जो बुद्धबोधित होकर मुक्त होता है।

चूर्णिकार ने बुद्धबोधित के चार अर्थ किए हैं—

१. स्वयंबुद्ध तीर्थङ्कर आदि के द्वारा बोधि प्राप्त।

२. कपिल आदि प्रत्येक बुद्ध के द्वारा बोधि प्राप्त।

३. बुद्धबोधित के द्वारा बोधि प्राप्त।

४. आचार्य के द्वारा प्रतिबुद्ध से बोधि प्राप्त।

१. ज्ञानबिन्दुप्रकरणम्, पृ. २१ अनुच्छेद ६

२. नन्दी चूर्ण, पृ. २६ : जे तित्थे सिद्धा ते तित्थसिद्धा। तित्थं च—चातुवण्णे समणसंघो पढमादिगणधरा वा।

३. वही, पृ. २६ : चातुवण्णसंघस्स अभावो तित्थकालभावस्स वा अभावो। तम्मि अतित्थकालभावे अतित्थकालभावातो वा जे सिद्धा ते अतित्थसिद्धा। तं च अतित्थं तित्थंतरे तित्थे वा अणुप्पणो जहा मरुदेविसामिणिप्पभित्तयो।

४. हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ३९ : जातिस्मरणादिनावाप्तापवर्ग-मार्गाः सिध्यन्त्येव, मरुदेविप्रभृतयो वाऽतीर्थसिद्धाः, तदा तीर्थस्यानुत्पन्नत्वात्।

५. नन्दी चूर्ण, पृ. २६ : स्वयमेव बुद्धा स्वयंबुद्धा, सतं अप्प-णिज्जं वा जाइसरणादि कारणं पडुच्च बुद्धा सतंबुद्धा। स्फुटतरमुच्यते—बाह्यप्रत्ययमन्तरेण ये प्रतिबुद्धास्ते स्वयं-बुद्धा। ते य दुविहा तित्थगरा तित्थगरवतिरित्ता वा।

६. वही, पृ. २६ : रिसभादयो तित्थकरा, ते जम्हा तित्थ-करणामकम्मुदयभावे द्विता तित्थकरभावातो वा सिद्धा

तम्हा ते तित्थकरसिद्धा।

७. वही, पृ. २६ : अतित्थकरा सामण्णकेवलिणो गोतमादि, तम्मि अतित्थकरभावे द्विता अतित्थकरभावातो वा सिद्धा अतित्थकरसिद्धा।

८. वही, पृ. २६

९. मलयगिरीया वृत्ति, प. १३०

१०. नन्दी चूर्ण, पृ. २६ : पत्तेयं—बाह्यं वृषभादि कारणमभिसमीक्ष्य बुद्धाः प्रत्येकबुद्धाः। बहिःप्रत्ययप्रतिबुद्धानां च पत्तेयं नियमा विधारो जम्हा तम्हा य ते पत्तेयबुद्धता।

११. वही, पृ. २६, २७ : जे सतंबुद्धेहि तित्थकरादिएहि बोहिता, पत्तेयबुद्धेहि वा कविलादिएहि बोधिता ते बुद्धबोधिता। अहवा बुद्धबोधिएहि बोधिता बुद्धबोधिता, एवं सुहम्मादिएहि जंबुणामादयो भवन्ति। अहवा बुद्ध इति प्रतिबुद्धा, तेहि प्रतिबोधिता बुद्धबोधिता, प्रभवादिभिराचार्यैः। एतभावे द्विता एतातो वा सिद्धा बुद्धबोधितसिद्धा।

हरिभद्र और मलयगिरि ने बुद्धबोधित का अर्थ आचार्य के द्वारा बोधि प्राप्त किया है ।^१

८. स्त्रीलिङ्गसिद्ध—जो स्त्री की शरीर रचना में मुक्त होता है ।

लिङ्ग के तीन अर्थ हैं—१. वेद (कामविकार) २. शरीर रचना ३. नेपथ्य (वेशभूषा) । यहां लिङ्ग का अर्थ शरीर रचना है । स्त्री, पुरुष और नपुंसक संबंधी लिङ्ग के दो हेतु हैं—१. शरीर नाम कर्म का उदय २. वेद का उदय ।^२

९. पुरुषलिङ्गसिद्ध—जो पुरुष की शरीर रचना में मुक्त होता है ।

१०. नपुंसकलिङ्गसिद्ध—जो कृत्रिम नपुंसक के रूप में मुक्त होता है ।

चूर्ण और वृत्तिद्वय में नपुंसक की व्याख्या उपलब्ध नहीं है । भगवती के अनुसार नपुंसक 'चारित्र्य का अधिकारी नहीं होता, कृत नपुंसक ही चारित्र्य का अधिकारी होता है ।' अभयदेवसूरि ने पुरुष नपुंसक का अर्थ कृत नपुंसक किया है ।^३

११. स्वलिङ्गसिद्ध—जो मुनि के वेश में मुक्त होता है ।

१२. अन्यलिङ्गसिद्ध—जो अन्यतीर्थी के वेश में मुक्त होता है ।

१३. गृहलिङ्गसिद्ध—जो गृहस्थ के वेश में मुक्त होता है ।

१४. एकसिद्ध—जो एक समय में एक जीव सिद्ध होता है ।^४

१५. अनेकसिद्ध—जो एक समय में अनेक जीव सिद्ध होते हैं ।^५

सिद्ध के पन्द्रह भेद नन्दीसूत्रकार के स्वोपज्ञ हैं या इनका कोई प्राचीन आधार है ? प्रतीत होता है यह परम्परा प्राचीन है । उमास्वाति ने सिद्ध की व्याख्या में बारह अनुयोग द्वार बतलाए हैं ।^६ वे प्रस्तुत सूत्र में निर्दिष्ट पन्द्रह भेदों की अपेक्षा अधिक व्यापक हैं ।

स्थानाङ्ग में सिद्ध के पन्द्रह प्रकारों का उल्लेख मिलता है ।^७ प्रज्ञापना में भी इनका उल्लेख है ।^८ स्थानाङ्ग संकलन सूत्र है इसलिए इसकी प्राचीनता के बारे में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता । प्रज्ञापना नन्दी की अपेक्षा प्राचीन है । इसलिए प्रज्ञापना, उसके पश्चात् तत्त्वार्थ सूत्र और उसके पश्चात् नन्दी में इन पन्द्रह भेदों का कालक्रम का निर्धारण किया जा सकता है । हो सकता है श्यामार्य ने किसी प्राचीन आगम से उनका अवतरण किया है ।

अनेक सिद्ध—

एक समयमें जघन्यतः दो और उत्कृष्टतः एक सौ आठ सिद्ध हो सकते हैं । उत्तराध्ययन में उनकी संख्या इस प्रकार निर्दिष्ट है—

नपुंसक	स्त्री	पुरुष	गृहलिङ्ग	अन्यलिङ्ग	स्वलिङ्ग
१०	२०	१०८	४	१०	१०८
उत्कृष्ट अवगाहना		जघन्य अवगाहना		मध्यम अवगाहना	
२		४		१०८	
ऊर्ध्वलोक	समुद्र	अन्यजलाशय	नीचालोक	तिरछालोक	
४	२	३	२०	१०८	

सूत्र ३३

२३. (सूत्र ३३)

ज्ञान के दो विभाग हैं—क्षायोपशमिक और क्षायिक । मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यव—ये चार ज्ञानावरण के क्षयोपशम

१. (क) हारिभद्राया वृत्ति, पृ. ३९

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. १३१

२. नन्दी चूर्ण, पृ. २७ : तं तिविहं—वेदो सरीरनिव्वत्ती णेवच्छं च ।

३. वही, पृ. २७ : सरीराकारणिव्वत्ती पुण णियमा वेदुदयातो णामकम्मदयाओ य भवति तम्मि सरीरनिव्वत्तिलिङ्गे ठिता सिद्धा तातो वा सिद्धा इत्थिलिङ्गसिद्धा ।

४. अंगसुत्ताणि, भा. २, भगवई, २५।२८६ से २९२

५. भगवती वृत्ति प. ८९३ : पुरुषः सन् यो नपुंसकवेदको वद्वितकत्वादिभावेन भवत्यसौ पुरुषनपुंसकवेदकः न स्वरूपेण

नपुंसकवेदकः ।

६. नन्दी चूर्ण, पृ. २७ : एकम्मि समए एक्को चेव सिद्धो ।

७. वही, पृ. २७ : एकम्मि समए अणगे सिद्धा ।

८. सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रम्, १०।७ : क्षेत्र-काल-गति-लिङ्ग-तीर्थ-चारित्र्य-प्रत्येक-बुद्धबोधित-ज्ञाना-वगाहना-उन्तर-सङ्ख्या-उत्पबहुत्वतः साध्याः ।

९. ठाणं, १।२१४-२२८

१०. उवंगसुत्ताणि, पणवणा, १।१२

११. उत्तरज्जयणाणि, भाग २, ३६।५१ से ५६

से होते हैं इसलिए क्षायोपशमिक हैं। केवलज्ञान ज्ञानावरण के सर्वथा क्षय से उत्पन्न होता है इसलिए वह क्षायिक है।

क्षायोपशमिक ज्ञान का विषय है मूर्त द्रव्य, पुद्गलद्रव्य। क्षायिक ज्ञान का विषय मूर्त और अमूर्त—दोनों द्रव्य हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और जीव—ये अमूर्त द्रव्य हैं। क्षायोपशमिक ज्ञान के द्वारा इनका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता। अमूर्त का ज्ञान परोक्षात्मक शास्त्र ज्ञान से होता है।^१

दार्शनिक युग में केवलज्ञान की विषय वस्तु के आधार पर सर्वज्ञवाद की विशद चर्चा हुई है। पण्डित सुखलालजी ने उस चर्चा का समवतार इस प्रकार किया है—“न्याय वैशेषिक दर्शन जब सर्व विषयक साक्षात्कार का वर्णन करता है तब वह सर्व शब्द से अपनी परम्परा में प्रसिद्ध द्रव्य, गुण आदि सातों पदार्थों को संपूर्ण भाव से लेता है। सांख्य योग जब सर्व विषयक साक्षात्कार का चित्रण करता है तब वह अपनी परम्परा में प्रसिद्ध प्रकृति पुरुष आदि पच्चीस तत्त्वों के पूर्ण साक्षात्कार की बात कहता है। बौद्ध दर्शन पंच स्कन्धों को संपूर्ण भाव से लेता है। वेदांत दर्शन सर्व शब्द से अपनी परम्परा में पारमार्थिक रूप से प्रसिद्ध एकमात्र पूर्ण ब्रह्म को ही लेता है। जैन दर्शन भी सर्व शब्द से अपनी-अपनी परम्परा में प्रसिद्ध सपर्याय षड् द्रव्यों को पूर्ण रूपेण लेता है। इस तरह उपर्युक्त सभी दर्शन अपनी परम्परा के अनुसार माने जाने वाले सब पदार्थों को लेकर उनका पूर्ण साक्षात्कार मानते हैं और तदनुसारी लक्षण भी करते हैं।^२

पण्डित सुखलालजी की सर्वज्ञता विषयक मीमांसा का स्पष्ट फलित है कि ‘सर्व’ पद के विषय में सब दार्शनिक एक मत नहीं हैं। इसका मूल हेतु आत्मा और ज्ञान के संबंध की अवधारणा है। जैन दर्शन के अनुसार ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। वह एक है, अक्षर है, उसका नाम केवलज्ञान है।^३

आचार्य कुन्दकुन्द ने केवल ज्ञान का लक्षण व्यवहार और निश्चय—दो दृष्टियों से किया है—व्यवहार नय से केवली भगवान् सबको जानते हैं और देखते हैं। निश्चय से केवलज्ञानी अपनी आत्मा को जानते हैं और देखते हैं।^४

जैन दर्शन के अनुसार ज्ञान स्व-पर प्रकाशी है। वह स्वप्रकाशी है इस आधार पर केवलज्ञानी निश्चय नय से आत्मा को जानता-देखता है, यह लक्षण संगत है। वह पर-प्रकाशी है, इस आधार पर वह सबको जानता-देखता है, यह लक्षण संगत है।

केवलज्ञान आत्मा का स्वभाव है। वह स्वभाव है इसलिए मुक्त अवस्था में भी विद्यमान रहता है। प्रत्यक्ष अथवा साक्षात्कारित्व उसका स्वाभाविक गुण है। ज्ञानावरण कर्म से आच्छन्न होने के कारण उसके मति, श्रुत आदि भेद बनते हैं। संग्रह दृष्टि से चार भेद किए गए हैं—मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यव। तारतम्य के आधार पर असंख्य भेद बन सकते हैं। ज्ञानावरण का सर्वविलय होने पर ज्ञान के तारतम्य जनित भेद समाप्त हो जाते हैं और केवलज्ञान प्रकट हो जाता है।

केवलज्ञान का अधिकारी सर्वज्ञ होता है। सर्वज्ञ और सर्वज्ञता न्याय प्रधान दर्शन युग का एक महत्वपूर्ण चर्चनीय विषय रहा है। जैन दर्शन को केवलज्ञान मान्य है इसलिए सर्वज्ञवाद उसका सहज स्वीकृत पक्ष है। आगम युग में उसके स्वरूप और कार्य का वर्णन मिलता है किंतु उसकी सिद्धि के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया गया। दार्शनिक युग में मीमांसक, चार्वाक आदि ने सर्वज्ञत्व को अस्वीकार किया तब जैन दार्शनिकों ने सर्वज्ञत्व की सिद्धि के लिए कुछ तर्क प्रस्तुत किए। ज्ञान का तारतम्य होता है, उसका अन्तिम बिन्दु तारतम्य रहित होता है। ज्ञान का तारतम्य सर्वज्ञता में परिनिष्ठित होता है। इस युक्ति का उपयोग मल्लवादी, हेमचन्द्र, उपाध्याय यशोविजय आदि सभी दार्शनिकों ने किया है।^५ पण्डित सुखलालजी ने इस युक्ति का ऐतिहासिक विश्लेषण करते हुए लिखा है—‘यहां ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रश्न है कि प्रस्तुत युक्ति का मूल कहां तक पाया जाता है और वह जैन परम्परा में कब से आई देखी जाती है। अभी तक के हमारे वाचन-चितन से हमें यही जान पड़ता है कि इस युक्ति का पुराणतम उल्लेख योगसूत्र के सिवाय अन्यत्र नहीं है। हम पातंजल योगसूत्र के प्रथम पाद में ‘तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्’ (१.२५) ऐसा सूत्र पाते हैं,

१. द्रष्टव्य—भगवती, ८।१८५

२. दर्शन और चितन, पृ० ४२९, ४३०

३. नवसुत्ताणि, नंदी, सू० ७१—

सव्वजीवाणं पि य णं - अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घा-
डिओ, जइ पुण सो वि आवरिज्जा, तेणं जीवो अजीवत्तं
पाविज्जा।

सुद्धु वि मेहसमुदए होई पभा चंदसूराणं।

४. नियमसार, गा० १२।१।१५४, पृ. १४६

जाणदि पस्सदि सव्वं, ववहारणयेण केवली भगवं।

केवलणाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं ॥

५. (क) नयचक्र लिखित प्रति, पृ. १२३

(ख) प्रमाण मीमांसा, अध्ययन १, आह्निक १, सू. १८,

पृ. १५

(ग) ज्ञानबिन्दुप्रकरणम्, पृ. १९

६. ज्ञानबिन्दुप्रकरणम्, परिचय, पृ. ४३, ४४

जिसमें साफ तौर से यह बतलाया गया है कि ज्ञान का तारतम्य ही सर्वज्ञ के अस्तित्व का बीज है जो ईश्वर में पूर्णरूपेण विकसित है। इस सूत्र के ऊपर के भाष्य में व्यास ने तो मानो सूत्र के विधान का आशय हस्तामलकवत् प्रकट किया है। न्याय-वैशेषिक परम्परा जो सार्वज्ञवादी है उसके सूत्र-भाष्य आदि प्राचीन ग्रन्थों में इस सर्वज्ञास्तित्व की साधक युक्ति का उल्लेख नहीं है। हां, हम प्रशस्तपाद की टीका व्योमवती (पृ. ५६०) में उसका उल्लेख पाते हैं। पर ऐसा कहना निर्युक्तिक नहीं होगा कि व्योमवती का वह उल्लेख योगसूत्र तथा उसके भाष्य के बाद का ही है।^१ काम की किसी भी अच्छी दलील का प्रयोग जब एक बार किसी के द्वारा चर्चा क्षेत्र में आ जाता है तब फिर वह आगे सर्वसाधारण हो जाता है। प्रस्तुत युक्ति के बारे में भी यही हुआ जान पड़ता है। संभवतः सांख्य योग परम्परा ने उस युक्ति का आविष्कार किया फिर उसने न्याय, वैशेषिक तथा बौद्ध परम्परा के ग्रन्थ में भी प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया और इसी तरह वह जैन परम्परा में भी प्रतिष्ठित हुई।

जैन परम्परा के आगम, निर्युक्ति, भाष्य आदि प्राचीन अनेक ग्रन्थ सर्वज्ञत्व के वर्णन से भरे पड़े हैं, पर हमें उपर्युक्त ज्ञान-तारतम्य वाली सर्वज्ञत्व साधक युक्ति का सर्वप्रथम प्रयोग मल्लवादी की कृति में ही देखने को मिलता है।^२ अभी यह कहना संभव नहीं कि मल्लवादी ने किस परम्परा से वह युक्ति अपनाई! पर इतना तो निश्चित है कि मल्लवादी के बाद के सभी दिगंबर-श्वेतांबर तार्किकों ने इस युक्ति का उदारता से उपयोग किया है।

जैन दर्शन के अनुसार ज्ञान आत्मा का गुण है। वह अनावृत अवस्था में भेद या विभाग शून्य होता है। आवरण के कारण उसके विभाग होते हैं और तारतम्य होता है। ज्ञान के तारतम्य के आधार पर उसकी पराकाष्ठा को केवलज्ञान मानना एक पक्ष है किन्तु इससे अधिक संगत पक्ष यह है कि केवलज्ञान आत्मा का स्वभाव अथवा गुण है। ज्ञानावरण कर्म के कारण उसमें तारतम्य होता है। ज्ञानावरण के क्षय होने पर स्वभाव प्रगट हो जाता है।

किसी अन्य दर्शन में ज्ञान आत्मा का स्वभाव या गुण रूप में स्वीकृत नहीं है। इसलिए उनमें सर्वज्ञता का वह सिद्धांत मान्य नहीं है जो जैन दर्शन में है। पण्डित सुखलालजी ने सर्व शब्द को दर्शन के साथ जोड़ा है। उनके अनुसार जो दर्शन जितने तत्त्वों को मानता है, उन सबको जानने वाला सर्वज्ञ होता है। जैन दर्शन ने 'सर्व' शब्द को स्वाभिमत द्रव्य की सीमा में आबद्ध नहीं किया है। उसे द्रव्य के अतिरिक्त क्षेत्र, काल और भाव के साथ संयोजित किया है। केवलज्ञान का विषय है—

सर्व द्रव्य
सर्व क्षेत्र
सर्व काल
सर्व भाव।

द्रव्य का सिद्धांत प्रत्येक दर्शन का अपना-अपना होता है किन्तु क्षेत्र, काल और भाव ये सर्व सामान्य हैं। सर्वज्ञ सब द्रव्यों को सर्वथा, सर्वत्र और सर्व काल में जानता देखता है।^३

न्याय वैशेषिक आदि दर्शनों में ज्ञान आत्मा के गुण के रूप में सम्मत नहीं है इसलिए उन्हें मनुष्य की सर्वज्ञता का सिद्धांत मान्य नहीं हो सकता। बौद्ध दर्शन में अन्वयी आत्मा मान्य नहीं है इसलिए बौद्ध भी सर्वज्ञवाद को स्वीकार नहीं करते। वेदान्त के अनुसार केवल ब्रह्म ही सर्वज्ञ हो सकता है, कोई मनुष्य नहीं। सांख्य दर्शन में केवलज्ञान अथवा केवल्य की अवधारणा स्पष्ट है।^४

जैन दर्शन सम्मत सर्वज्ञता के विरोध में मीमांसकों ने प्रबल तर्क उपस्थित किए। उनके अनुसार प्रत्यक्ष, उपमान, अनुमान, आगम, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि किसी भी प्रमाण से सर्वज्ञत्व की सिद्धि नहीं हो सकती।

न्याय और वैशेषिक ईश्वरवादी दर्शन हैं। वे ईश्वर को सर्वज्ञ मानते हैं। कालक्रम से उनमें योगी-प्रत्यक्ष की अवधारणा प्रविष्ट हुई है पर जैन दर्शन में केवलज्ञान या सर्वज्ञत्व मोक्ष की अनिवार्य शर्त है। न्याय और वैशेषिक का मत है—मुक्त अवस्था में योगी-प्रत्यक्ष नहीं रहता। ईश्वर का ज्ञान नित्य है और योगी-प्रत्यक्ष अनित्य।^५

१. तत्त्वसंग्रह, पृ. ८२५

२. नयचक्र लिखित प्रति, प. १२३

३. नंदी चूणि, पृ. २८ : एते दव्वादिद्या सव्वे सव्वधा सव्वत्थ
सव्वकालं उवयुत्तो सागाराऽणगारलवखणोहि णाणदंसणोहि
जाणति पासति य।

४. सांख्यकारिका, ६४, ६८ :

एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि, न मे नाहमित्यपरिशेषम्।

अविपर्ययाद् विशुद्धं, केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्॥

प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वाद्, प्रधानविनिवृत्तौ।

ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं केवल्यमाप्नोति॥

५. न्यायमंजरी, पृ० ५०८ :

तदेवं धिषणादीनां नवानामपि मूलतः।

गुणानामात्मनो ध्वंसः सोपवर्गः प्रकीर्तितः॥

शान्तरक्षित ने कुमारिल के तर्कों का उत्तर दिया ।^१ किन्तु शान्तरक्षित के उत्तर सर्वज्ञत्व की सिद्धि में बहुत महत्वपूर्ण नहीं हो सकते । बौद्ध दर्शन सर्वज्ञत्व के विरोध में अग्रणी रहा है । उत्तरवर्ती बौद्धों ने सर्वज्ञत्व का जो स्वीकार किया है, वह अस्वीकार और स्वीकार के मध्य झूलता दिखाई देता है । सर्वज्ञत्व की सिद्धि में सर्वाधिक प्रयत्न जैन दार्शनिकों का है । इस प्रयत्न की पृष्ठभूमि में दो हेतु हैं—

१. सर्वज्ञता आत्मा का स्वभाव है ।
२. मोक्ष के लिए सर्वज्ञत्व अनिवार्य है ।

बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्ति ने सर्वज्ञता का खण्डन किया, उसका उत्तर आचार्य हरिभद्र ने दिया ।^२ कुमारिल के तर्कों का उत्तर समंतभद्र^३ अकलंक^४ विद्यानन्द^५ प्रभाचन्द्र^६ आदि ने दिया है । यदि तर्कजाल को सीमित करना चाहें तो प्रस्तुत आगम का यह सूत्र पर्याप्त है—ज्ञान आत्मा का स्वभाव है । ज्ञानावरण के क्षीण होने पर सकल ज्ञेय को जानने की उसमें क्षमता है ।^७

केवलज्ञान की परिभाषा

प्रस्तुत सूत्र के अनुसार जो ज्ञान सर्व द्रव्य, सर्व क्षेत्र, सर्व काल और सर्व भाव को जानता देखता है वह केवल ज्ञान है ।^८

आचारचूला से फलित होता है—केवलज्ञानी सब जीवों के सब भावों को जानता-देखता है । ज्ञेय-रूप सब भावों की सूची इस प्रकार है—१. आगति, २. गति, ३. स्थिति, ४. च्यवन, ५. उपपात, ६. भुक्त, ७. पीत, ८. कृत, ९. प्रतिसेवित, १०. आविष्कर्म—प्रगट में होने वाला कर्म, ११. रहस्य-कर्म, १२. लपित, १३. कथित, १४. मनो-मानसिक ।^९ षट्खण्डागम में भी इसी प्रकार का सूत्र उपलब्ध है ।^{१०}

जो मूर्त और अमूर्त सब द्रव्यों को सर्वथा, सर्वत्र और सर्व काल में जानता-देखता है, वह केवलज्ञान है ।^{११}

आचार्य कुन्दकुन्द ने निश्चय और व्यवहार नय के आधार पर केवलज्ञान की परिभाषा की है ।^{१२}

बृहत्कल्प भाष्य में केवलज्ञान के पांच लक्षण बतलाए गए हैं—

१. असहाय—इन्द्रिय मन निरपेक्ष ।
२. एक—ज्ञान के सभी प्रकारों से विलक्षण ।
३. अनिवारित व्यापार—अविरहित उपयोग वाला ।
४. अनंत—अनंत ज्ञेय का साक्षात्कार करने वाला ।
५. अविकल्पित—विकल्प अथवा विभाग रहित ।^{१३}

तत्त्वार्थभाष्य में केवलज्ञान का स्वरूप विस्तार से बतलाया गया है । वह सब भावों का ग्राहक, सम्पूर्ण लोक और अलोक

१. तत्त्वसंग्रह, पृ० ८४६

२. शास्त्रवार्तासमुच्चय, पृ० ६२७-६४३

३. आप्तमीमांसा, कारिका ५

४. न्यायविनिश्चय, कारिका ३६१, ३६२, ४१०, ४१४, ४६५

५. अष्टसहस्री, पृ० ५०

६. प्रमेयकमलमार्तण्ड, पृ० २५५

७. (क) नवसुत्ताणि, नंदी, सू० ७१

(ख) वही, सू. ३३१

अहं सव्वदव्वपरिणाम-भाव-विण्णत्ति-कारणमणंतं ।

सासयमप्पडिवाई, एगविहं केवलं नाणं ॥

८. नवसुत्ताणि, नंदी, सू. ३३

९. अंगमुत्ताणि, भा. १, आचारचूला, १५।३९ : से भगवं अरिहं जिणे जाए, केवली सव्वण्णू सव्वभावदरिसी, सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स पज्जाए जाणइ, तं जहा—

आगतिं गतिं ठितं चयणं उववायं भुत्तं पीयं कडं पडिसेवियं आवीकम्मं रहोकम्मं लवियं कहियं मणोमाणसियं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे, एवं च ण विहरइ ।

१०. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. ३४६ : सइं भयवं उप्पण्ण-णाणदरिसी सदेवासुरमणुसस्स लोणस्स आगदिं गदिं चयणोववादं बंधं मोवखं इडिडं ट्टिदिं नुदिं अणुभागं तवकं कलं माणे माणसियं भुत्तं कडं पडिसेविदं आदिकम्मं रहकम्मं सव्वलोए सव्वजीवे सव्वभावे सम्मं समं जाणदि पस्सदि विहरदि ।

११. नन्दी चूर्ण, पृ. २८

१२. द्रष्टव्य—नियमसार गा. १२.१।१५९, पृ. १४६

१३. बृहत्कल्प भाष्य, पीठिका, गा. ३८ :
दव्वादि कसिण विसयं केवलमेगं तु केवलज्ञाणं ।
अणिवारियवावारं, अणंतगविकप्पियं नियतं ॥

को जानने वाला है। इससे अतिशायी कोई ज्ञान नहीं है। ऐसा कोई ज्ञेय नहीं है जो केवलज्ञान का विषय न हो।^१

उक्त व्याख्याओं के संदर्भ में सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव की व्याख्या इस प्रकार फलित होती है—सर्व द्रव्य का अर्थ है—मूर्त और अमूर्त सब द्रव्यों को जानने वाला। केवलज्ञान के अतिरिक्त कोई भी ज्ञान अमूर्त का साक्षात्कार अथवा प्रत्यक्ष नहीं कर सकता।

सर्व क्षेत्र का अर्थ है—सम्पूर्ण आकाश (लोकाकाश और अलोकाकाश) को साक्षात् जानने वाला।

सर्व काल का अर्थ है—अनन्त सीमातीत अतीत और भविष्य को जानने वाला। शेष कोई ज्ञान असीम काल को नहीं जान सकता।

सर्व भाव का अर्थ है—गुरुलघु और अगुरुलघु सब पर्यायों को जानने वाला।

केवलज्ञान या सर्वज्ञता की इतनी विशाल अवधारणा किसी अन्य दर्शन में उपलब्ध नहीं है।

पण्डित सुखलालजी ने 'निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्' योग दर्शन के इस सूत्र को सर्वज्ञ-सिद्धि का प्रथम सूत्र माना है। जैन आचार्यों ने भी इस युक्ति का अनुसरण किया है किन्तु सर्वज्ञता की सिद्धि का मूल सूत्र भगवती सूत्र में विद्यमान है। वह प्राचीन है तथा योग दर्शन के सूत्र से सर्वथा भिन्न है। सर्वज्ञता की सिद्धि का हेतु है अनिन्द्रियता।^२ इन्द्रिय ज्ञान स्पष्ट है। उसका प्रतिपक्ष अवश्य है। इन्द्रिय ज्ञान का प्रतिपक्ष है अनिन्द्रिय ज्ञान। सर्वज्ञता इन्द्रिय और मन से सर्वथा निरपेक्ष है।

केवलज्ञानी जानता-देखता है—जाणइ पासइ—इन दो पदों का प्रयोग मिलता है। भगवती में केवलज्ञान को साकार-उपयोग और केवल दर्शन को अनाकार उपयोग बतलाया गया है।^३ केवलज्ञान और केवलदर्शन के उपयोग के बारे में तीन मत मिलते हैं—

१. क्रमवाद
२. युगपत्वाद
३. अभेदवाद।

क्रमवाद आगमानुसारी है। उसके मुख्य प्रवक्ता हैं—जिनभद्रगणि। युगपत्वाद के प्रवक्ता हैं—मल्लवादी। अभेदवाद के प्रवक्ता हैं—सिद्धसेन दिवाकर।

जिनभद्रगणि ने विशेषणवती में तीनों पक्षों की चर्चा की है किन्तु किसी प्रवक्ता का नामोल्लेख नहीं किया।^४ जिनदास महत्तर ने प्रस्तुत सूत्र की चूर्ण (विक्रम की आठवीं शताब्दी) में विशेषणवती को उद्धृत किया है। उन्होंने किसी वाद के पुरस्कर्ता का उल्लेख नहीं किया।^५

हरिभद्र सूरि(विक्रम की आठवीं शताब्दी) ने चूर्णगत विशेषणवती गाथाओं को उद्धृत किया है और पुरस्कर्ता आचार्यों का नामोल्लेख भी किया है। उनके अनुसार युगपत्वाद के प्रवक्ता हैं आचार्य सिद्धसेन आदि। क्रमवाद के प्रवक्ता हैं जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण आदि। अभेदवाद के प्रवक्ता के रूप में वृद्धाचार्य का उल्लेख किया है।^६

मलयगिरी (विक्रम की बारहवीं शताब्दी) ने हरिभद्र सूरि का ही अनुसरण किया है।^७

१. तत्त्वार्थाधिगम सूत्रम्, १।३० वृत्ति, पृ. १०६ : सर्वद्रव्येषु सर्वपर्यायेषु च केवलज्ञानस्य विषयनिबंधो भवति। तद्धि सर्वभावग्राहकं संभ्रल्लोकालोकविषयम्। नातः परं ज्ञानमस्ति। न च केवलज्ञानविषयात् किञ्चिदन्यज्ज्ञेयमस्ति। केवलं परिपूर्णं समग्रमसाधारणं निरपेक्षं विशुद्धं सर्वभावज्ञापकं लोकालोकविषयमनंतपर्यायमित्यर्थः।

२. भगवई, ८।११७

अणिदिया णं भंते ! जीवा कि णाणी ? जहा सिद्धा।

३. (क) भगवई, १६।१०८

(ख) उवंगसुत्ताणि, खण्ड २, पणवणा, २९।१-३

४. विशेषणवती, गा. १५३, १५४

केयी भणति जुगवं जाणइ पासति य केवली नियमा।

अण्णे एगंतरियं इच्छंति सुतोवदेसेणं ॥

अण्णे ण चेव वीसुं दंसणमिच्छंति जिणवरिदस्स।

जं चिय केवलनारणं तं चिय से दंसणं वेति।

५. नन्दी चूर्ण, पृ. २८-३०

६. हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ४० : केचन सिद्धसेनाचार्यादयः भणंति। किम्? 'युगपद्' एकस्मिन्नेव काले जानाति पश्यति च। कः? केवली, न त्वन्यः, 'नियमाद्' नियमेन। 'अन्ये' जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणप्रभृतयः एकान्तरितं जानाति पश्यति चेत्येवमिच्छन्ति 'श्रुतोपदेशेन' यथाश्रुतागमानुसारेणेत्यर्थः। 'अन्ये तु' वृद्धाचार्याः 'न' नैव 'विष्वक्' पृथक् तद्दर्शनमिच्छंति 'जिनवरेन्द्रस्य' केवलिनः इत्यर्थः। किं तर्हि? यदेव केवलज्ञानं तदेव 'से' तस्य केवलिनो दर्शनं ब्रुवते, क्षीणावरणस्य देशज्ञानाभावात्, केवलदर्शनाभावादिति भावना।

७. मलयगिरीया वृत्ति, प. १३४

सन्मति के टीकाकार अभयदेव सूरि (विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी) ने तीनों वादों के प्रवक्ताओं के नामों का उल्लेख किया है^१—

क्रमवाद के प्रवक्ता—जिनभद्र ।

युगपत्वाद के प्रवक्ता—मल्लवादी ।

अभेदवाद के प्रवक्ता—सिद्धसेन ।

क्रमवाद के विषय में हरिभद्र और अभयदेव एकमत हैं । युगपत्वाद और अभेदवाद के बारे में दोनों के मत भिन्न हैं । सिद्धसेन अभेदवाद के प्रवक्ता हैं, यह सन्मति तर्क से स्पष्ट है । उन्हें युगपत्वाद का प्रवक्ता नहीं माना जा सकता । इस स्थिति में युगपत्वाद के प्रवक्ता के रूप में मल्लवादी का नामोल्लेख संगत हो सकता है । उपलब्ध द्वादशार नयचक्र में इस विषय का कोई उल्लेख नहीं है । अभयदेव ने किस ग्रन्थ के आधार पर इसका उल्लेख किया, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता ।

उपाध्याय यशोविजयजी ने तीनों वादों की समीक्षा की है और नय दृष्टि से उनके समन्वय का प्रयत्न किया है ।^२

१. सन्मति प्रकरण टीका, पृ. ६०८

२. ज्ञानबिन्दुप्रकरणम्, पृ. ३३-४३

तीसरा प्रकरण
(सूत्र ३४-५४)

आमुख

प्रस्तुत प्रकरण में परोक्ष ज्ञान का प्रतिपादन है। ज्ञान मीमांसा के संदर्भ में 'परोक्ष' शब्द का प्रयोग जैन आगम युग की विशिष्ट देन है। आभिनवबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान ये दोनों ज्ञेय को साक्षात् नहीं जानते इसलिए इन्हें परोक्ष माना गया।^१ दार्शनिक युग अथवा प्रमाण मीमांसा के युग में परोक्ष शब्द का प्रयोग अस्पष्ट ज्ञान के अर्थ में हुआ है।

ज्ञान मीमांसा में प्रयुक्त परोक्ष के दो प्रकार हैं—

१. आभिनवबोधिक ज्ञान
२. श्रुतज्ञान।

प्रमाण मीमांसा में प्रयुक्त परोक्ष के पांच प्रकार हैं—

१. स्मृति
२. प्रत्यभिज्ञा
३. तर्क
४. अनुमान
५. आगम।

आगमकार ने मति और श्रुत अज्ञान की विभेदक रेखा प्रस्तुत की है—वह उनकी स्वोपज्ञ व्याख्या है या उसका कोई प्राचीन आगमिक आधार है यह अनुसंधेय है।

आभिनवबोधिक ज्ञान के दो विभाग हैं—

१. श्रुत निश्चित
२. अश्रुत निश्चित।

अश्रुतनिश्चित का सिद्धांत ज्ञान मीमांसा के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी प्रकल्प है। हमारे ज्ञान का माध्यम केवल इन्द्रियां या ग्रंथ ही नहीं है उनकी सहायता के बिना भी ज्ञान उत्पन्न होता है और सत्य की खोज में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अदृष्ट, अश्रुत और अज्ञात अर्थ का सहसा ज्ञान हो जाना एक विशिष्ट घटना है।

सूत्रकार ने बुद्धि चतुष्टय को स्पष्ट करने के लिए अनेक गाथाएं प्रस्तुत की हैं। उनमें कथाओं और ऐतिहासिक वृत्तों का विशाल संग्रह है। उनकी संख्या पचहत्तर है।

अश्रुतनिश्चित ज्ञान मीमांसा का एक गहन विषय है। उसे अनेक कोणों से समझाया गया है। श्रुत के अध्ययन के बिना भी मनुष्य की चेतना विकसित हो जाती है। इससे ज्ञात होता है कि मस्तिष्क के अनेक खंड हैं। एक खण्ड का विकास श्रुत ग्रन्थों के अध्ययन से होता है उसका नाम ग्रहण शिक्षा है। शिक्षा के क्षेत्र में उसी प्रणाली का उपयोग होता है। अश्रुतनिश्चित ज्ञान शिक्षा की कोई प्रणाली नहीं है। वह मस्तिष्क के उस खंड से विकसित होता है जिसमें ज्ञान पहले से संचित रहता है और जो अभिव्यक्त होने में किसी बाह्य निमित्त की अपेक्षा नहीं रखता। आगमकार के सामने वैज्ञानिक आविष्कारों की घटनाएं नहीं थी अन्यथा अश्रुत निश्चित ज्ञान के प्रसंग में आकस्मिक ढंग से होने वाली घटनाओं की एक लम्बी तालिका प्रस्तुत हो जाती। अनेक आविष्कार स्वप्न अवस्था अथवा चिंतनातीत अवस्था में हुए हैं उनकी व्याख्या अश्रुतनिश्चित ज्ञान के द्वारा ही की जा सकती है।

अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा का सर्वप्रथम उल्लेख निर्युक्ति में मिलता है।^१ इसके पश्चात् उमास्वाति ने तत्त्वार्थसूत्र में उनका उल्लेख किया है।^२ आगम साहित्य में इनका उल्लेख प्रस्तुत आगम में मिलता है। स्थानाङ्ग, भगवती आदि में प्रस्तुत आगम (नन्दी) का ही पाठ संकलित अथवा उद्धृत किया गया है। आचाराङ्ग आदि आगम ग्रन्थों में ज्ञान मीमांसा प्रतिपाद्य नहीं है। यह

१. नवसुत्ताणि, नन्दी, सू० ३४

२. आवश्यक निर्युक्ति, गा. २ : उग्रह इहाऽवाओ य धारणा एव हुंति चत्तारि ।

आभिनवबोधियनाणस्स भेयवत्थू समासेणं ॥

३. तत्त्वार्थसूत्र,, १११५

ज्ञानप्रवाद नामक पूर्व का प्रतिपाद्य विषय है इसलिए भगवती आदि आगम ग्रन्थों में अवग्रह आदि का स्वतन्त्र उल्लेख न होना आश्चर्य नहीं है।

पण्डित सुखलालजी ने ज्ञान विकास की सात भूमिकाओं का विन्यास किया है। उनके अनुसार दूसरी भूमिका प्राचीन निर्युक्तियों की है, जिनका निर्माण विक्रम की दूसरी शताब्दी का हुआ जान पड़ता है।^१

प्रस्तुत आगम में ज्ञानमीमांसा के कुछ नए सूत्र हैं, वह ज्ञान विकास की किसी अन्य परम्परा में नहीं हैं। इससे प्रतीत होता है कि देवर्धगणी ने ज्ञान मीमांसा की विषयवस्तु का समाकलन ज्ञानप्रवाद पूर्व से किया है।

तीसरा प्रकरण परोक्ष-आभिनिबोधिकज्ञान

मूल पाठ

संस्कृत छाया

हिन्दी अनुवाद

परोक्षनाण-पदं

३४. से किं तं परोक्षं ? परोक्षं
दुविहं पणत्तं, तं जहा—
आभिनिबोहियनाणपरोक्षं च
सुयनाणपरोक्षं च ॥

३५. जत्थाभिनिबोहियनाणं, तत्थ
सुयनाणं । जत्थ सुयनाणं, तत्था-
भिनिबोहियनाणं । दोवि एयाइं
अण्णमण्णमणुगयाइं, तह्वि पुण
इत्थ आयरिया नाणत्तं पण-
वयंति—अभिनिबुञ्ज्भइ त्ति
आभिनिबोहियं । सुणेइ त्ति सुयं ।
मइपुव्वं सुयं, न मई सुय-
पुव्विया ॥

३६. अविसेसिया मई—मई नाणं च,
मई अण्णाणं च । विसेसिया—
सम्मद्विट्ठिस्स मई मइनाणं, मिच्छ-
द्विट्ठिस्स मई मइअण्णाणं ॥

अविसेसियं सुयं—सुयनाणं च,
सुयअण्णाणं च । विसेसियं—सम्म-
द्विट्ठिस्स सुयं सुयनाणं, मिच्छ-
द्विट्ठिस्स सुयं सुयअण्णाणं ॥

आभिनिबोहियनाण-पदं

३७. से किं तं आभिनिबोहियनाणं
आभिनिबोहियनाणं दुविहं पणत्तं,
तं जहा—सुयनिस्सियं च असु-
यनिस्सियं च ॥

३८. से किं तं असुयनिस्सियं ? असुय-
निस्सियं चउव्विहं पणत्तं, तं
जहा—

परोक्षज्ञान-पदम्

अथ किं तत् परोक्षम् ? परोक्षं
द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—आभिनि-
बोधिकज्ञानपरोक्षञ्च श्रुतज्ञान-
परोक्षञ्च ।

यत्र आभिनिबोधिकज्ञानं, तत्र
श्रुतज्ञानम् । यत्र श्रुतज्ञानं, तत्र आभि-
निबोधिकज्ञानम् । द्वे अपि एते अन्यो-
न्यमनुयते, तथापि पुनरत्र आचार्याः
नानात्वं प्रज्ञापयन्ति—अभिनिबुध्यते
इति आभिनिबोधिकम् । श्रूयते इति
श्रुतम् । मतिपूर्वं श्रुतं, न मतिः श्रुत-
पूर्विका ।

अविशेषिता मतिः—मतिः
ज्ञानञ्च, मतिः अज्ञानञ्च ।
विशेषिता—सम्यग्दृष्टेः मतिः मति-
ज्ञानं, मिथ्यादृष्टेः मतिः मतिः-
अज्ञानम् ।

अविशेषितं श्रुतं—श्रुतज्ञानञ्च
श्रुताज्ञानञ्च । विशेषितं—सम्यग्-
दृष्टेः श्रुतं श्रुतज्ञानं, मिथ्यादृष्टेः
श्रुतं श्रुताज्ञानम् ।

आभिनिबोधिकज्ञान-पदम्

अथ किं तद् आभिनिबोधिक-
ज्ञानम् ? आभिनिबोधिकज्ञानं द्विविधं
प्रज्ञप्तं, तद्यथा—श्रुतनिश्चितञ्च
अश्रुतनिश्चितञ्च ।

अथ किं तद् अश्रुतनिश्चितम् ?
अश्रुतनिश्चितं चतुर्विधं प्रज्ञप्तं,
तद्यथा—

परोक्षज्ञान-पद

३४. वह परोक्षज्ञान क्या है ?

वह परोक्षज्ञान दो प्रकार का प्रज्ञप्त है,
जैसे—१. आभिनिबोधिकज्ञान परोक्ष २.
श्रुतज्ञान परोक्ष ।

३५. जहां आभिनिबोधिकज्ञान है, वहां श्रुतज्ञान
है । जहां श्रुतज्ञान है, वहां आभिनिबोधिक-
ज्ञान है । ये दोनों अन्योन्य—परस्पर अनुगत है,
फिर भी यहां आचार्यों ने उनके नानात्व का
प्रज्ञापन किया है । जो अभिनिबोध किया
जाता है, वह आभिनिबोधिक है । जो सुना
जाता है वह श्रुत है । श्रुत मतिपूर्वक होता है,
मति श्रुतपूर्वक नहीं होती ।^१

३६. विशेषण रहित मति—मतिज्ञान और मति-
अज्ञान है । विशेषण सहित मति—सम्यग्दृष्टि
की मति मतिज्ञान है, मिथ्यादृष्टि की मति
मतिअज्ञान है ।

विशेषण रहित श्रुत—श्रुतज्ञान और श्रुत-
अज्ञान है । विशेषण सहित श्रुत—सम्यग्दृष्टि
का श्रुत श्रुतज्ञान है, मिथ्यादृष्टि का श्रुत
श्रुतअज्ञान है ।^१

आभिनिबोधिकज्ञान-पद

३७. वह आभिनिबोधिकज्ञान क्या है ?

आभिनिबोधिकज्ञान दो प्रकार का प्रज्ञप्त है,
जैसे—१. श्रुतनिश्चित २. अश्रुतनिश्चित ।^१

३८. वह अश्रुतनिश्चित क्या है ?

वह अश्रुतनिश्चित चार प्रकार का प्रज्ञप्त है,
जैसे—

उत्पत्तिया वेणइया,
कम्मया पारिणामिया ।
बुद्धी चउव्विहा वुत्ता,
पंचमा नोवलब्भई ॥१॥

औत्पत्तिकी वैनयिकी,
कर्मजा पारिणामिकी ।
बुद्धिश्चतुर्विधोक्ता,
पञ्चमी नोपलभ्यते ॥

१. १. औत्पत्तिकी २. वैनयिकी
३. कर्मजा ४. पारिणामिकी ।
बुद्धि चार प्रकार की कही गई है । पांचवां
प्रकार उपलब्ध नहीं है ।

उत्पत्तिया बुद्धि—

पुव्वमदिट्ठमसुयमवेइय-
तक्खणविमुद्धगहियत्था ।
अव्वाहय-फलजोगा,
बुद्धी उत्पत्तिया नाम ॥२॥

औत्पत्तिकी बुद्धिः—

पूर्वमदृष्टाऽश्रुताऽवेदित-
तत्क्षणविशुद्धगृहीतार्था ।
अव्याहृत-फलयोगा,
बुद्धिरोत्पत्तिकी नाम ॥

औत्पत्तिकी बुद्धि—

२. पहले अदृष्ट, अश्रुत, अनालोचित अर्थ का
तत्क्षण यथार्थ रूप से ग्रहण करने वाली है, जो
प्रयोजन युक्त है और किसी दूसरे प्रयोजन से
अव्याहृत है उस बुद्धि का नाम औत्पत्तिकी
है ।

१. भरहसिल २. पणिय ३. रुक्खे,
४. खुड्डुग ५. पड ६. सरड
७. काय ८. उच्चारे ।

९. गय १०. घयण ११. गोल
१२. खंभे,
१३. खुड्डुग १४-१५. मग्गि-त्थि
१६. पइ १७. पुत्ते ॥३॥

(१. भरहसिल २. मिढ
३. कुक्कुड ४. तिल ५. बालुय
६. हत्थि ७. अगड ८. वणसंडे ।
९. पायस १०. अइया ११. पत्ते
१२. खाडहिला १३. पंचपिअरो ॥)

मधुसित्थ-मुद्दि-अंके,
य नाणए-भिक्षु-चेडगनिहाणे ।
सिक्खा त अत्थसत्थे,
इच्छा य महं सयसहस्से ॥४॥

१. भरतशिला २. पणित ३. रूक्षाः,
४. 'खुड्डुग' ५. पट ६. सरट
७, ८ काकोच्चाराः ।

९. गज १०. 'घयण' ११. गोलक
१२. स्तम्भाः,
१३. क्षुल्लक १४., १५. मार्ग-स्त्री
१६. पति १७. पुत्राः ॥

(१. भरतशिला २. 'मिढ' ३. कुक्कुट
४. तिल ५. बालुका ६, ७. 'हस्त्यगड'
८. वनषण्डाः ।
९. पायसा १०. अजिका ११. पत्राणि
१२. 'खाडहिला' १३. पञ्चपितरश्च ॥)

मधुसिक्ख-मुद्रिका-अङ्काः,
च 'नाणए'-भिक्षु-चेडग' निधानानि ।
शिक्षा च अर्थशास्त्रं,
इच्छा च मम शतसहस्रम् ॥

३. १. भरतशिला २. शर्त ३. वृक्ष ४.
मुद्रिका ५. वस्त्र-खंड ६. गिरगिट ७. काग
८. उत्सर्ग ९. हाथी १०. भांड ११. लाख
१२. खंभा १३. क्षुल्लक १४. मार्ग १५. स्त्री
१६. पति १७. पुत्र ।

(१. भरतशिला २. मेंढा ३. मुर्गा ४. तिल
५. बालुका ६. हाथी ७. कुआ ८. वनखण्ड
९. खीर १०. अजिका—बकरी की मिगनी
११. पत्र १२. गिलहरी १३. पांच पिता ।)

४. १ मधु मन्त्रियों का छाता २. मुद्रिका
३. अंक ४. रूपों की नोली ५. भिक्षु ६.
बालक निधान ७. शिक्षा ८. अर्थशास्त्र ९.
मेरी इच्छा १०. एक लाख—ये औत्पत्तिकी
बुद्धि के उदाहरण हैं ।

वेणइया बुद्धी—

भरनित्थरणसमत्था,
तिव्वगमुत्तत्थगहियपेयाला ।
उभओलोकफलवई,
विणयसमुत्था हवइ बुद्धी ॥५॥

निमित्ते अत्थसत्थे य,
लेहे गणिए य कूव-अस्से य ।
गद्वभ-लक्खण-गंठी,
अगए रहिए य गणिया य ॥६॥

वैनयिकी बुद्धिः—

भरनिस्तरणसमर्था,
त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीत 'पेयाला' ।
उभयलोकफलवती,
विनयसमुत्था भवति बुद्धिः ॥

निमित्तमर्थशास्त्रञ्च,
लेखं गणितञ्च कूपाश्वौ च ।
गद्वभ-लक्षण ग्रन्थिः,
अगदः रथिकश्च गणिका च ।

वैनयिकी बुद्धि—

५. भार के निर्वाह में समर्थ, त्रिवर्ग के
सूत्र और अर्थ का सार ग्रहण करने वाली,
उभयलोक फलवती, विनय से उत्पन्न बुद्धि
का नाम वैनयिकी है ।

६, ७. १. निमित्त २. अर्थशास्त्र ३. लेखन
४. गणित ५. कूप ६. अश्व ७. गधा ८.
लक्षण ९. गांठ १०, औषध ११. रथिक
गणिका १२. भीगी हुई साड़ी, दीर्घतृण,
उल्टा घूमता हुआ क्राँच पक्षी १३. नेवे का
पानी १४. बैल, अश्व, वृक्ष से गिरना ।

सीया साडी दीहं,
च तणं अवसव्वयं च कुंचस्स ।
निव्वोदए य गोणे,
घोडगपडणं च ह्वखाओ ॥७॥

कम्मया बुद्धी—

उवओगदिट्टुसारा,
कम्मपसंगपरिघोलन-विसाला ।
साहुक्कारफलवई,
कम्मसमुत्था हवइ बुद्धी ॥८॥
हेरणिए करिसए,
कोलिय डोए य मुत्ति-घय-पवए ।
तुण्णाग वड्डइ पूइए य,
घड-चित्तकारे य ॥९॥

परिणामिया बुद्धी

अणुमाण हेउ-दिट्ठंत-साहिया,
वयविवाग-परिणामा ।
हियनिस्सेयसफलवई,
बुद्धी परिणामिया नाम ॥१०॥
अभए सिट्ठि-कुमारे,
देवी उदितोदए हवइ राया ।
साहू य नंदिसेणे,
धणदत्ते सावग-अमच्चे ॥११॥
खमए अमच्चपुत्ते,
चाणकके चेव थूलभट्टे य ।
नासिकक-सुंदरीनंदे,
वइरे परिणामिया बुद्धी ॥१२॥
चलणाहण-आमंडे,
मणी य सप्पे य खगिग-थूभिंदे ।
परिणामियबुद्धीए,
एवमाई उदाहरणा ॥१३॥
सेत्तं असुयनिस्सियं ॥

शीता साटी दीर्घं,
च तृणमपसव्वयञ्च क्रौञ्चस्य ।
नीत्रोदकञ्च गौः,
घोटकः पतनञ्च रूक्षात् ॥

कर्मजा बुद्धिः—

उपयोगदृष्टसारा,
कर्मप्रसंगपरिघोलन-विशाला ।
साधुकारफलवती,
कर्मसमुत्था भवति बुद्धिः ॥
हैरणियकः कर्षकः,
'कोलिय डोए' च मौक्तिक-धृत-
प्लवकाः ।
तुण्णागः वर्धकि पूषिकश्च,
घट-चित्रकारौ च ॥

पारिणामिकी बुद्धिः—

अनुमान हेतु-दृष्टान्त-साधिका,
वयोविपाक-परिणामा ।
हितनिःश्रेयसफलवती,
बुद्धिः पारिणामिकी नाम ॥
अभयः श्रेष्ठि-कुमारौ,
देवी उदितोदयो भवति राजा ।
साधुश्च नन्दिषेणः,
धनदत्तः श्रावकोऽमात्यः ॥
क्षपकोऽमात्यपुत्रः,
चाणक्यश्चैव स्थूलभद्रश्च ।
नासिक्य-सुन्दरीनन्दः,
वज्रः पारिणामिकी बुद्धिः ॥
चलनाहत-‘आमंडे’,
मणिश्च सर्पश्च खड्गो-स्तूपभेदः ।
पारिणामिक्या बुद्ध्या,
एवमादीनि उदाहरणानि ॥
तदेतद् अश्रुतनिश्चितम् ।

कर्मजा बुद्धि—

८. उपयोग (दत्तचित्तता) के द्वारा कर्म के रहस्य को देखने वाली, साधुवाद है फल जिसका, उस कर्म से उत्पन्न होने वाली बुद्धि का नाम कर्मजा है ।

९. १. स्वर्णकार २. कृषक ३. जुलाहा ४. दर्वीकार ५. मौक्तिक ६. घृत-व्यापारी ७. तैराक ८. रफू करने वाला ९. बढई १०. रसोइया ११. कुंभकार १२. चित्रकार ।

पारिणामिकी बुद्धि—

१०. अनुमान हेतु और दृष्टान्त से साध्य को सिद्ध करने वाली, वय विपाक से परिपक्व होने वाली, अभ्युदय और निःश्रेयस फल वाली उस बुद्धि का नाम पारिणामिकी है ।

११, १२. १. अभयकुमार २. श्रेष्ठी ३. कुमार ४. देवी ५. उदितोदितराजा ६. साधु नन्दिषेण ७. धनदत्त ८. श्रावक ९. अमात्य १०. क्षपक ११. अमात्य पुत्र १२. चाणक्य १३. स्थूलभद्र १४. नासिक्य सुन्दरी नंद १५. वज्र—इनकी बुद्धि पारिणामिकी थी ।

१३. १. चरण से आहत २. कृत्रिम आंवाला ३. मणि ५. सर्प ६. स्तूप उखाड़ना—ये सब पारिणामिकी बुद्धि के उदाहरण हैं ।^१ वह अश्रुतनिश्चित है ।

३९. से किं तं सुयनिस्सियं ? सुयनि-
स्सियं चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—
उग्गहे ईहा अवाओ धारणा ॥

४०. से किं तं उग्गहे ? उग्गहे दुव्विहे
पण्णत्ते, तं जहा—अत्थुग्गहे य
वंजणुग्गहे य ॥

४१. से किं तं वंजणुग्गहे ? वंजणुग्गहे
चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—सोइं-

अथ किं तत् श्रुतनिश्चितम् ?
श्रुतनिश्चितं चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—
अवग्रहः ईहा अवायः धारणा ।

अथ कः स अवग्रहः ? अवग्रहः
द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अर्थाव-
ग्रहश्च व्यञ्जनावग्रहश्च ।

अथ कः स व्यञ्जनावग्रहः ?
व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः,

३९. वह श्रुतनिश्चित क्या है ?
श्रुतनिश्चित चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—
१. अवग्रह २. ईहा ३. अवाय ४. धारणा ।

४०. वह अवग्रह क्या है ?
अवग्रह दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—
१. अर्थावग्रह २. व्यञ्जनावग्रह ।

४१. वह व्यञ्जनावग्रह क्या है ?
व्यञ्जनावग्रह चार प्रकार का प्रज्ञप्त है,

दियवज गुग्गहे, घाणिदियवज-
णुग्गहे, जिम्भदियवजणुग्गहे,
फांसिदियवजणुग्गहे । सेत्तं वज-
णुग्गहे ॥

४२. से किं तं अत्थुग्गहे ? अत्थुग्गहे
छ्विवहे पणत्ते, तं जहा सोइं-
दियअत्थुग्गहे, चक्खिदियअत्थुग्गहे,
घाणिदियअत्थुग्गहे, जिम्भदिय-
अत्थुग्गहे, फांसिदियअत्थुग्गहे,
नोइंदियअत्थुग्गहे ॥

४३. तस्स णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा
नाणावज्जणा पंच नामधिज्जा
भवन्ति, तं जहा— १. ओगेण्हणया
२. उवधारणया ३. सवणया ४.
अवलंबणया ५. मेहा । सेत्तं उग्गहे ॥

४४. से किं तं ईहा ? ईहा छ्विवहा
पणत्ता, तं जहा—सोइंदियईहा
चक्खिदियईहा, घाणिदियईहा,
जिम्भदियईहा, फांसिदियईहा,
नोइंदियईहा ॥

४५. तीसे णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा
नाणावज्जणा पंच नामधिज्जा
भवन्ति, तं जहा—१. आभोगणया
२. मरगणया ३. गवेसणया ४.
चिन्ता ५. वीमंसा । सेत्तं ईहा ॥

४६. से किं तं अवाए ? अवाए छ्विवहे
पणत्ते, तं जहा—सोइंदियअवाए,
चक्खिदियअवाए, घाणिदियअ-
वाए, जिम्भदियअवाए, फांसिदि-
यअवाए, नोइंदियअवाए ॥

४७. तस्स णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा
नाणावज्जणा पंच नामधिज्जा
भवन्ति, तं जहा—१. आवट्टणया
२. पच्चावट्टणया ३. अवाए ४.
बुद्धी ५. विग्गणणे । सेत्तं अवाए ॥

४८. से किं तं धारणा । धारणा

तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः,
घ्राणेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, जिह्वेन्द्रिय-
व्यञ्जनावग्रहः, स्पर्शनेन्द्रियव्यञ्जना-
वग्रहः । स एष व्यञ्जनावग्रहः ।

अथ कः स अर्थावग्रहः ?
अर्थावग्रहः षड्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा
—श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः, चक्षुरि-
न्द्रियार्थावग्रहः, घ्राणेन्द्रियार्थावग्रहः,
जिह्वेन्द्रियार्थावग्रहः, स्पर्शनेन्द्रिय-
ार्थावग्रहः, नोइन्द्रियार्थावग्रहः ।

तस्य इमानि एकार्थिकानि नाना-
घोषाणि नानाव्यञ्जनानि पञ्च नामधे-
यानि भवन्ति, तद्यथा—१. अवग्रहणम्
२. उपधारणम् ३. श्रवणम् ४. अवल-
म्बनम् ५. मेधा । स एषोऽवग्रहः ।

अथ का सा ईहा ? ईहा षड्विधा
प्रज्ञप्ता, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियईहा,
चक्षुरिन्द्रियईहा, घ्राणेन्द्रियईहा,
जिह्वेन्द्रियईहा, स्पर्शनेन्द्रियईहा,
नोइन्द्रियईहा ।

तस्या इमानि एकार्थिकानि
नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि पञ्च
नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा—१.
आभोगनम् २. मार्गणा ३. गवेषणा ४.
चिन्ता ५. विमर्शः । सा एषा ईहा ।

अथ कः स अवायः ? अवायः
षड्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रिय-
अवायः, चक्षुरिन्द्रियअवायः, घ्राणे-
न्द्रियअवायः, जिह्वेन्द्रियअवायः,
स्पर्शनेन्द्रियअवायः, नोइन्द्रियअवायः ।

तस्य इमानि एकार्थिकानि नाना-
घोषाणि नानाव्यञ्जनानि पञ्च
नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा—
१. आवर्त्तनम् २. प्रत्यावर्त्तनम्
३. अपायः ४. बुद्धिः ५. विज्ञानम् ।
स एष अवायः ।

अथ का सा धारणा ? धारणा

जैसे—१. श्रोत्रेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह
२. घ्राणेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह ३. जिह्वेन्द्रिय
व्यञ्जनावग्रह ४. स्पर्शनेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह ।
वह व्यञ्जनावग्रह है ।

४२. वह अर्थावग्रह क्या है ?

अर्थावग्रह छः प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—
१. श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह २. चक्षुरिन्द्रिय
अर्थावग्रह ३. घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह ४.
जिह्वेन्द्रिय अर्थावग्रह ५. स्पर्शनेन्द्रिय अर्थाव-
ग्रह ६. नोइन्द्रिय अर्थावग्रह ।

४३. उसके नानाघोष और नानाव्यञ्जन वाले
पांच पर्यायवाची नाम हैं, जैसे—१. अवग्रहण
२. उपधारण ३. श्रवण ४. अवलम्बन
५. मेधा । वह अवग्रह है ।

४४. वह ईहा क्या है ?

ईहा के छः प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—१.
श्रोत्रेन्द्रिय ईहा २. चक्षुरिन्द्रिय ईहा ३.
घ्राणेन्द्रिय ईहा ४. जिह्वेन्द्रिय ईहा ५. स्पर्श-
नेन्द्रिय ईहा ६. नोइन्द्रिय ईहा ।

४५. उसके नानाघोष और नानाव्यञ्जन वाले पांच
पर्यायवाची नाम हैं, जैसे—१. आभोग २.
मार्गणा ३. गवेषणा ४. चिन्ता ५. विमर्श ।
वह ईहा है ।

४६. वह अवाय क्या है ?

अवाय छः प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—
१. श्रोत्रेन्द्रिय अवाय २. चक्षुरिन्द्रिय अवाय
३. घ्राणेन्द्रिय अवाय ४. जिह्वेन्द्रिय अवाय
५. स्पर्शनेन्द्रिय अवाय ६. नोइन्द्रिय अवाय ।

४७. उसके नानाघोष और नानाव्यञ्जन वाले
पांच पर्यायवाची नाम हैं, जैसे—१.
आवर्त्तनता २. प्रत्यावर्त्तनता ३. अवाय या
अपाय ४. बुद्धि ५. विज्ञान । वह अवाय है ।

४८. वह धारणा क्या है ?

छव्विहा पणत्ता, तं जहा—सोई-
दियधारणा, चक्खिदियधारणा,
घाणिदियधारणा, जिम्भिदिय-
धारणा, फांसिदियधारणा, नोई-
दियधारणा ॥

षड्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रिय-
धारणा, चक्षुरिन्द्रियधारणा, घ्राणे-
न्द्रियधारणा, जिह्वेन्द्रियधारणा,
स्पर्शनेन्द्रियधारणा, नोइन्द्रियधारणा ।

धारणा के छः प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—
१. श्रोत्रेन्द्रिय धारणा २. चक्षुरिन्द्रिय धारणा
३. घ्राणेन्द्रिय धारणा ४. जिह्वेन्द्रिय धारणा
५. स्पर्शनेन्द्रिय धारणा ६. नोइन्द्रिय धारणा ।

४६. तीसे णं इमे एगट्टिया नाणाघोसा
नाणावज्जणा पंच नामधिज्जा
भवन्ति, तं जहा—१. धरणा २.
धारणा ३. ठवणा ४. पइट्ठा ५.
कोट्ठे । सेत्तं धारणा ॥

तस्य इमानि एकार्थिकानि
नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि
पञ्च नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा—
१. धरणा २. धारणा ३. स्थापना
४. प्रतिष्ठा ५. कोष्ठः । सा एषा
धारणा ।

४९. उसके नानाघोष और नानाव्यञ्जन वाले
पांच पर्यायवाची नाम हैं, जैसे—१. धरणा
२. धारणा ३. स्थापना ४. प्रतिष्ठा ५.
कोष्ठ । वह धारणा है ।

५०. उग्गहे इक्कसामइए, अंतोमुहु-
त्तिया ईहा, अंतोमुहुत्तिए अवाए,
धारणा संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं
वा कालं ॥

अवग्रहः एकसामयिकः, आन्त-
मोहूर्तिकी ईहा, आन्तमोहूर्तिकः
अवायः, धारणा संख्येयं वा कालं
असंख्येयं वा कालम् ।

५०. अवग्रह का कालमान एक समय का है, ईहा
का अन्तर्मुहूर्त, अवाय का अन्तर्मुहूर्त तथा
धारणा का संख्येयकाल अथवा असंख्येय-
काल ।

५१. एवं अट्टावीसइविहस्स आभिणि-
बोहियनाणस्स वंजणुग्गहस्स परू-
वणं करिस्सामि—पडिबोहग-
दिट्ठतेण, मल्लगदिट्ठतेण य ॥

एकमष्टाविंशतिविधस्य आभि-
निबोधकज्ञानस्य व्यञ्जनावग्रहस्य
प्ररूपणं करिष्यामि—प्रतिबोधक-
दृष्टान्तेन, 'मल्लग' दृष्टान्तेन च ।

५१. इस अट्ठावीस प्रकार वाले अभिनिबोधकज्ञान
के व्यञ्जनावग्रह की प्ररूपणा प्रतिबोधक और
मल्लक दृष्टांत के द्वारा करूंगा ।

५२. से किं तं पडिबोहगदिट्ठतेणं ?
पडिबोहगदिट्ठतेणं—से जहा-
नामए केइ पुरिसे कंचि पुरिसं सुत्तं
पडिबोहेज्जा—अमुगा ! अमुग !
त्ति । तत्थ चोयगे पणवणं एवं
वयासी—कि एगसमयपविट्ठा
पुग्गला गहणमागच्छन्ति ? दुसमय-
पविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छन्ति ?
जाव दससमयपविट्ठा पुग्गला
गहणमागच्छन्ति ? संखेज्जसमय-
पविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छन्ति ?
असंखेज्जसमयपविट्ठा पुग्गला
गहणमागच्छन्ति ? एवं वदन्तं
चोयगं पणवए एवं वयासी—नो
एगसमयपविट्ठा पुग्गला गहण-
मागच्छन्ति, नो दुसमयपविट्ठा
पुग्गला गहणमागच्छन्ति जाव नो
दससमयपविट्ठा पुग्गला गहणमा-
गच्छन्ति, नो संखेज्जसमयपविट्ठा
पुग्गला गहणमागच्छन्ति, असंखेज्ज-

अथ किं तेन प्रतिबोधकदृष्टान्तेन ?
प्रतिबोधकदृष्टान्तेन—तद् यथानाम
कश्चित् पुरुषः कञ्चित् पुरुषं प्रति-
बोधयेत्—अमुक ! अमुक ! इति ।
तत्र चोदकः प्रज्ञापकं एवम् अवादीत्—
कि एकसमयप्रविष्टाः पुद्गलाः
ग्रहणमागच्छन्ति ? द्विसमयप्रविष्टाः
पुद्गलाः ग्रहणमागच्छन्ति ? यावद्
दशसमयप्रविष्टाः पुद्गलाः ग्रहणमा-
गच्छन्ति ? संख्येयसमयप्रविष्टाः
पुद्गलाः ग्रहणमागच्छन्ति ?
असंख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गलाः ग्रहण-
मागच्छन्ति ? एवं वदन्तं चोदकं प्रज्ञा-
पकः एवम् अवादीत्—नो एकसमय-
प्रविष्टाः पुद्गलाः ग्रहणमागच्छन्ति, नो
द्विसमयप्रविष्टाः पुद्गलाः ग्रहणमा-
गच्छन्ति यावद् नो दशसमयप्रविष्टाः
पुद्गलाः ग्रहणमागच्छन्ति, नो संख्येय-
समयप्रविष्टाः पुद्गलाः ग्रहणमागच्छन्ति,
असंख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गलाः

५२. वह प्रतिबोधक दृष्टांत क्या है ?
प्रतिबोधक दृष्टांत—जैसे कोई एक पुरुष
किसी सोए हुए दूसरे पुरुष को जगाए—अमुक,
अमुक !
तब कोई प्रेरक प्रज्ञापक को पूछे—
क्या एक समय में प्रविष्ट पुद्गल ज्ञान
उत्पन्न करते हैं ? दो समय में प्रविष्ट पुद्गल
ज्ञान उत्पन्न करते हैं ? यावत् दस समय में
प्रविष्ट पुद्गल ज्ञान उत्पन्न करते हैं ?
संख्येय समय में प्रविष्ट पुद्गल ज्ञान उत्पन्न
करते हैं ? असंख्येय समय में प्रविष्ट पुद्गल
ज्ञान उत्पन्न करते हैं ? ऐसा पूछने पर प्रेरक
से प्रज्ञापक ने इस प्रकार कहा—एक समय में
प्रविष्ट पुद्गल ज्ञान उत्पन्न नहीं करते, दो
समय में प्रविष्ट पुद्गल ज्ञान उत्पन्न नहीं
करते यावत् दस समय में प्रविष्ट पुद्गल ज्ञान
उत्पन्न नहीं करते, संख्येय समय में प्रविष्ट
पुद्गल ज्ञान उत्पन्न नहीं करते, असंख्येय
समय में प्रविष्ट पुद्गल ज्ञान उत्पन्न करते
हैं । वह प्रतिबोधक दृष्टांत है ।

समयपविट्टा पुग्गला गहणमाग-
गच्छंति । सेत्तं पडिबोहगदिट्ठं-
तेणं ॥

ग्रहणमागच्छन्ति । तदेतत् प्रतिबोधक-
दृष्टान्तेन ।

५३. से किं तं मल्लगदिट्ठतेणं? मल्ल-
गदिट्ठतेणं—से जहानामए केइ
पुरिसे आवागसीसाओ मल्लगं
गहाय तत्थेगं उदगांबिदुं पक्खि-
विज्जा से नट्ठे, अण्णे पक्खित्ते से
वि नट्ठे । एवं पक्खिप्पमाणेसु-
पक्खिप्पमाणेसु होही से उदगांबिदू
जे णं तं मल्लगं रावेहिंति, होही
से उदगांबिदू जे णं तंसि मल्लगंसि
ठाहिंति, होही से उदगांबिदू जे णं
तं मल्लगं भरेहिंति, होही से
उदगांबिदू जे णं तं मल्लगं पवा-
हेहिंति । एवामेव पक्खिप्पमाणोह-
पक्खिप्पमाणोह अणंतेहि पुग्गलोहि
जाहे तं वंजणं पूरियं होइ, ताहे
'हुं' ति करेइ, नो चैव णं जाणइ
के वेस सदाइ ? तओ ईहं पविसइ,
तओ जाणइ अमुगे एस सदाइ ।
तओ अवायं पविसइ, तओ से
उवगयं हवइ । तओ णं धारणं
पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं
वा कालं, असंखेज्जं वा कालं ।

से जहानामए केइ पुरिसे अब्वत्तं
सदं सुणिज्जा, तेणं सद्दे त्ति उग्ग-
हिए, नो चैव णं जाणइ के वेस
सदाइ ? तओ ईहं पविसइ, तओ
जाणइ अमुगे एस सद्दे । तओ णं
अवायं पविसइ, तओ से उवगयं
हवइ । तओ धारणं पविसइ, तओ
णं धारेइ संखेज्जं वा कालं,
असंखेज्जं वा कालं ।

से जहानामए केइ पुरिसे अब्वत्तं
रूवं पासिज्जा, तेणं रूवे त्ति
उग्गहिए, नो चैव णं जाणइ के
वेस रूवे त्ति ? तओ ईहं पविसइ,
तओ जाणइ अमुगे एस रूवे । तओ
अवायं पविसइ, तओ से उवगयं

अथ किं तेन 'मल्लग'दृष्टान्तेन?
'मल्लग' दृष्टान्तेन—तद् यथानाम
कश्चित् पुरुषः आपाकशीर्षात् 'मल्लगं'
गृहीत्वा तत्रैकं उदकबिन्दुं प्रक्षिपेत् स
नष्टः, अन्यः प्रक्षिप्तः सोऽपि नष्टः ।
एवं प्रक्षिप्यमाणेषु-प्रक्षिप्यमाणेषु
भविष्यति स उदकबिन्दुर्यः तं 'मल्लगं'
'रावेहिंति', भविष्यति स उदकबिन्दुर्यः
तस्मिन् 'मल्लगंसि' स्थास्यति,
भविष्यति स उदकबिन्दुर्यः तं 'मल्लगं'
भरिष्यति, भविष्यति स उदकबिन्दुर्यः
तं 'मल्लगं' प्रवाहयिष्यति । एवमेव
प्रक्षिप्यमानैः-प्रक्षिप्यमानैः अनन्तैः
पुद्गलैः यदा तद् व्यञ्जनं पूरितं
भवति, तदा 'हुं' इति करोति, नो
चैव जानाति को वा एष शब्दादिः ?
तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति
अमुक एष शब्दादिः । ततोऽवायं
प्रविशति, ततः स उपगतो भवति ।
ततो धारणं प्रविशति, ततो धारयति
संख्येयं वा कालं, असंख्येयं वा
कालम् ।

तद् यथानाम कश्चित् पुरुषो-
ऽव्यक्तं शब्दं श्रृणुयात् तेन शब्द
इत्यवगृहीतम्, नो चैव जानाति को
वा एष शब्दादिः ? तत ईहां
प्रविशति, ततो जानाति अमुक एष
शब्दः । ततः अवायं प्रविशति, ततः
स उपगतः भवति । ततो धारणं
प्रविशति, ततो धारयति संख्येयं वा
कालं असंख्येयं वा कालम् ।

तद् यथानाम कश्चित् पुरुषोऽव्यक्तं
रूपं पश्येत्, तेन रूपमित्यवगृहीतम्, नो
चैव जानाति किं वा एतद् रूपमिति ?
तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति
अमुकमेतद् रूपम् । ततः अवायं
प्रविशति, ततः तद् उपगतं भवति ।

५३. वह मल्लक दृष्टान्त क्या है ?

मल्लक दृष्टान्त—जैसे कोई एक पुरुष ने
आवा से शराव (सिकोरा) लेकर उस पर
पानी का एक बूंद डाला । वह सूख गया ।
दूसरा बिन्दु डाला वह भी सूख गया । इस
प्रकार डालते-डालते एक बूंद ऐसी है जो
शराव को गिला कर देगी । एक बूंद ऐसी है
जो शराव में ठहर जाएगी । एक बूंद ऐसी है
जो शराव को भर देगी । एक बूंद ऐसी है जो
शराव में से जल की धारा बहा देगी । इसी
प्रकार अनन्त पुद्गलों का प्रक्षेप होते-होते
जब वह व्यञ्जन पूर्ण हो जाता है । तब
व्यक्ति 'हुंकार' करता है । वह नहीं जानता
यह शब्द आदि क्या है ? उसके पश्चात् वह
ईहा में प्रवेश करता है, तब वह जानता है—
यह अमुक शब्द आदि है उसके पश्चात् अवाय
में प्रवेश करता है, तब शब्द आदि उपगत
हो जाता है—उसका निर्णय हो जाता है ।
उसके पश्चात् वह धारणा में प्रवेश करता है ।
निर्णीत विषय को संख्येय काल अथवा असंख्येय
काल तक धारण करता है ।

जैसे कोई पुरुष अव्यक्त शब्द को सुनता
है । उसने शब्द है ऐसा अवग्रह किया । वह
नहीं जानता यह कौनसा शब्द है ? उसके
पश्चात् वह ईहा में प्रवेश करता है तब वह
जानता है—यह अमुक शब्द है । उसके
पश्चात् अवाय में प्रवेश करता है, तब शब्द
उपगत हो जाता है—उसका निर्णय हो जाता
है । उसके पश्चात् वह धारणा में प्रवेश
करता है । निर्णीत विषय को संख्येय काल
अथवा असंख्येय काल तक धारण करता है ।

जैसे कोई पुरुष अव्यक्त रूप को देखता है ।
उसने रूप है ऐसा अवग्रह किया । वह नहीं
जानता यह कौनसा रूप है ? उसके पश्चात्
वह ईहा में प्रवेश करता है । तब वह जानता
है—यह अमुक रूप है । उसके पश्चात् अवाय
में प्रवेश करता है, तब रूप उपगत हो जाता

हवइ । तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं ।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं गंधं अग्घाइज्जा, तेणं गंधे त्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस गंधे त्ति ? तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस गंधे । तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ । तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं ।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं रसं आसाइज्जा, तेणं रसे त्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस रसे त्ति ? तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस रसे । तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ । तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं ।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं फासं पडिसंवेइज्जा, तेणं फासे त्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस फासे त्ति ? तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस फासे । तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ । तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं ।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सुमिणं पडिसंवेइज्जा, तेणं सुमिणं त्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस सुमिणे त्ति ? तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस सुमिणे । तओ अवायं पविसइ, तओ

ततो धारणां प्रविशति, ततो धारयति संख्येयं वा कालं असंख्येयं वा कालम् ।

तद् यथानाम कश्चित् पुरुषोऽव्यक्तं गन्धमाजिघ्रते, तेन गन्ध इत्यवगृहीतम् नो चैव जानाति को वा एष गन्धः इति । तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति अमुक एष गन्धः । ततः अवायं प्रविशति, ततः स उपगतः भवति । ततो धारणां प्रविशति, ततो धारयति संख्येयं वा कालं असंख्येयं वा कालम् ।

तद् यथानाम कश्चित् पुरुषोऽव्यक्तं रसमास्वादयेत्, तेन रस इत्यवगृहीतम् नो चैव जानाति को वा एष रसः इति । तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति अमुक एष रसः । ततः अवायं प्रविशति, ततः स उपगतः भवति । ततो धारणां प्रविशति, ततो धारयति संख्येयं वा कालं असंख्येयं वा कालम् ।

तद् यथानाम कश्चित् पुरुषोऽव्यक्तं स्पर्शं प्रतिसंवेदयेत्, तेन स्पर्श इत्यवगृहीतम् नो चैव जानाति को वा एष स्पर्श इति । ततः ईहां प्रविशति, ततो जानाति अमुक एष स्पर्शः । ततः अवायं प्रविशति, ततः स उपगतः भवति । ततो धारणां प्रविशति, ततो धारयति संख्येयं वा कालं असंख्येयं वा कालम् ।

तद् यथानाम कश्चित् पुरुषोऽव्यक्तं स्वप्नं प्रतिसंवेदयेत्, तेन स्वप्न इत्यवगृहीतं नो चैव जानाति को वा एष स्वप्न इति ? ततः ईहां प्रविशति, ततो जानाति अमुक एष स्वप्नः । ततः अवायं प्रविशति,

है—उसका निर्णय हो जाता है । उसके पश्चात् वह धारणा में प्रवेश करता है । निर्णीत विषय को संख्येय काल अथवा असंख्येय काल तक धारण करता है ।

जैसे कोई पुरुष अव्यक्त गंध को सूंघता है । उसने गंध है ऐसा अवग्रह किया । वह नहीं जानता यह कौनसा गंध है ? उसके पश्चात् वह ईहा में प्रवेश करता है । तब वह जानता है—यह अमुक गंध है । उसके पश्चात् अवाय में प्रवेश करता है, तब गंध उपगत हो जाता है—उसका निर्णय हो जाता है । उसके पश्चात् वह धारणा में प्रवेश करता है । निर्णीत विषय को संख्येय काल अथवा असंख्येय काल तक धारण करता है ।

जैसे कोई पुरुष अव्यक्त रस का आस्वादन करता है । उसने रस है ऐसा अवग्रह किया । वह नहीं जानता यह कौनसा रस है ? उसके पश्चात् वह ईहा में प्रवेश करता है । तब वह जानता है—यह अमुक रस है । उसके पश्चात् अवाय में प्रवेश करता है, तब रस उपगत हो जाता है—उसका निर्णय हो जाता है । उसके पश्चात् वह धारणा में प्रवेश करता है । निर्णीत विषय को संख्येय काल अथवा असंख्येय काल तक धारण करता है ।

जैसे कोई पुरुष अव्यक्त स्पर्श का प्रति-संवेदन करता है । उसने स्पर्श है ऐसा अवग्रह किया । वह नहीं जानता यह कौनसा स्पर्श है ? उसके पश्चात् वह ईहा में प्रवेश करता है । तब यह जानता है—यह अमुक स्पर्श है । उसके पश्चात् अवाय में प्रवेश करता है, तब स्पर्श उपगत हो जाता है—उसका निर्णय हो जाता है । उसके पश्चात् वह धारणा में प्रवेश करता है । निर्णीत विषय को संख्येय काल अथवा असंख्येय काल तक धारण करता है ।

जैसे कोई पुरुष अव्यक्त स्वप्न का प्रति-संवेदन करता है । उसने स्वप्न है ऐसा अवग्रह किया । वह नहीं जानता यह कौनसा स्वप्न है ? उसके पश्चात् वह ईहा में प्रवेश करता है । तब यह जानता है—यह अमुक स्वप्न है । उसके पश्चात् अवाय में प्रवेश

से उवगयं हवइ । तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं । सेतं मल्लगदिट्ठंतेणं ॥

५४. तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ । तत्थ दव्वओ णं आभिनिबोहियनाणी आएसेणं सव्वदव्वाइं जाणइ, न पासइ । खेत्तओ णं आभिनिबोहियनाणी आएसेणं सव्वं खेत्तं जाणइ, न पासइ । कालओ णं आभिनिबोहियनाणी आएसेणं सव्वं कालं जाणइ, न पासइ । भावओ णं आभिनिबोहियनाणी आएसेणं सव्वे भावे जाणइ, न पासइ ।

उग्गह ईहावाओ,
य धारणा एव हुंति चत्तारि ।
आभिनिबोहियनाणस्स,
भेयवत्थू समासेणं ॥१॥

अत्थाणं उग्गहणं,
च उग्गह तह विद्यालणं ईहं ।
ववसायं च अवायं,
धरणं पुण धारणं बिंति ॥२॥

उग्गह इक्कं समयं,
ईहावाया मुहुत्तमद्धं तु ।
कालमसंखं संखं,
च धारणा होइ नायव्वा ॥३॥

पुट्ठं सुणेइ सद्धं,
रूवं पुण पासइ अपुट्ठं तु ।
गंधं रसं च फासं च,
बद्धपुट्ठं वियागरे ॥४॥

भासासमसेढीओ,
सद्धं जं सुणइ मीसयं सुणइ ।
वीसेढी पुण सद्धं,
सुणेइ नियमा पराघाए ॥५॥

ततः स उपगतः भवति । ततो धारणां प्रविशति, ततो धारयति संख्येयं वा कालं असंख्येयं वा कालम् । तदेतद्-‘मल्लग’ दृष्टान्तेन ।

तत् समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः । द्रव्यतः आभिनिबोधकज्ञानी आदेशेन सर्वद्रव्याणि जानाति, न पश्यति । क्षेत्रतः आभिनिबोधकज्ञानी आदेशेन सर्वं क्षेत्रं जानाति, न पश्यति । कालतः आभिनिबोधकज्ञानी आदेशेन सर्वं कालं जानाति, न पश्यति । भावतः आभिनिबोधकज्ञानी आदेशेन सर्वान् भावान् जानाति, न पश्यति ।

अवग्रहः ईहा अवायः,
च धारणा एवं भवन्ति चत्वारि ।
आभिनिबोधकज्ञानस्य,
भेदवस्तूनि समासेन ॥

अर्थानामवग्रहणं,
च अवग्रहं तथा विचारणमीहाम् ।
व्यवसायञ्च अवायं,
धरणं पुनः धारणां ब्रुवते ॥

अवग्रहः एकं समयम्,
ईहावायौ मुहूर्त्तमद्धं तु ।
कालमसंख्यं संख्यं,
च धारणा भवति ज्ञातव्या ।

स्पृष्टं शृणोति शब्दं,
रूपं पुनः पश्यति अस्पृष्टन्तु ।
गन्धं रसञ्च स्पर्शञ्च,
बद्धस्पृष्टं व्यागृणीयात् ॥

भाषा समश्रेणीतः,
शब्दं यं शृणोति मिश्रकं शृणोति ।
विश्रेणिः पुनः शब्दं,
शृणोति नियमात् पराघाते ॥

करता है, तब स्वप्न उपगत हो जाता है—उसका निर्णय हो जाता है । उसके पश्चात् वह धारणा में प्रवेश करता है । निर्णीत विषय को संख्येय काल अथवा असंख्येय काल तक धारण करता है ।^१ वह मल्लक दृष्टान्त है ।

५४. वह (आभिनिबोधक ज्ञान का विषय) संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त है—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः ।

द्रव्य की दृष्टि से आभिनिबोधकज्ञानी आदेशतः सब द्रव्यों को जाना है, देखता नहीं ।

क्षेत्र की दृष्टि से आभिनिबोधकज्ञानी आदेशतः सर्व क्षेत्र को जानता है, देखता नहीं ।

काल की दृष्टि से आभिनिबोधकज्ञानी आदेशतः सर्व काल को जानता है, देखता नहीं ।

भाव की दृष्टि से आभिनिबोधकज्ञानी आदेशतः सब भावों को जानता है, देखता नहीं ।^१

१. अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चार संक्षेप में आभिनिबोधकज्ञान की भेद वस्तुएं हैं ।

२. अवग्रह—अर्थ का अवग्रहण, ईहा—विचारणा, अवाय—व्यवसाय अथवा निर्णय, धारणा—धारण करना ।

३. अवग्रह का कालमान एक समय, ईहा और अवाय का अर्द्ध मुहूर्त्त, धारणा का कालमान संख्यात और असंख्यात काल है ।^६

४. श्रोता कानों से स्पृष्ट शब्दों को सुनता है, द्रष्टा चक्षु से अस्पृष्ट रूप को देखता है । गंध, रस और स्पर्श का संवेदन बद्ध-स्पृष्ट अवस्था में होता है ।^६

५. भाषा की समश्रेणी में रहा हुआ श्रोता मिश्र शब्द को सुनता है । विषम श्रेणी में रहा हुआ श्रोता नियमतः पराघात से शब्द को सुनता है ।^{१०}

ईहा अपोह वीमंसा,
मार्गणा य गवेषणा ।
सण्णा सई मई पण्णा,
सव्वं आभिणिबोहियं ॥६॥
सेत्तं आभिणिबोहियणाण-
परोक्खं ॥

ईहा अपोहः विमर्शः,
मार्गणा च गवेषणा ।
संज्ञा स्मृतिः मतिः प्रज्ञा,
सर्वमाभिनिबोधिकम् ॥
तदेतद् आभिनिबोधिकज्ञानपरोक्षम् ।

६. ईहा, अपोह, विमर्शना, मार्गणा,
गवेषणा, संज्ञा, स्मृति, मति, प्रज्ञा ये सब
आभिनिबोधिकज्ञान के पर्यायवाची हैं ।^{११}
वह आभिनिबोधिक परोक्षज्ञान है ।

टिप्पण

सूत्र ३४, ३५

१. (सूत्र ३४, ३५)

प्रस्तुत आलापक में दो ज्ञान परोक्ष बतलाए गए हैं। इन्द्रिय और मन आत्मा से परे हैं उनके माध्यम से जो ज्ञान होता है वह परोक्ष है। अनुमान की भांति ये पर निमित्त से होते हैं इसलिए ये आत्मा के लिए परोक्ष हैं।^१

सूत्रकार ने इन्द्रिय प्रत्यक्ष को स्वीकार किया और आभिनिबोधिकज्ञान जो इन्द्रियजन्य ज्ञान है, को परोक्ष बतलाया है। इस विरोधाभास का चूर्णिकार ने समाधान किया है।^२ उसमें विशेषावश्यक भाष्य का अनुसरण किया गया है। (द्रष्टव्य, नंदी सू० ४ का टिप्पण)।

सूत्रकार ने आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान में अभेद और भेद का प्रतिपादन किया है। स्वामी, काल, कारण और क्षयोपशम की तुल्यता—इन चार दृष्टियों से दोनों समान हैं। इनमें व्याप्ति संबंध है इसलिए अन्योन्यानुगत बतलाया गया है।^३ यह चूर्णिकार का अभिमत है।

जिनभद्रगणि ने दोनों की समानता के पांच बिन्दु बतलाए हैं—स्वामी, काल, कारण, विषय और परोक्षत्व। उनके अनुसार श्रुतज्ञान मतिज्ञान का ही एक विशिष्ट भेद है।^४

सूत्रकार ने प्रश्न उपस्थित किया है कि मति और श्रुत में अभेद है तो फिर दो ज्ञान की परिकल्पना क्यों? इसका समाधान भी सूत्र में प्रस्तुत है। भेद के दो हेतु बतलाए गए हैं—निरुक्त और पौर्वापर्य।

चूर्णिकार ने बतलाया है कि धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय दोनों पूर्ण लोकाकाश में प्रतिष्ठित होने के कारण अन्योन्यानुगत है फिर भी लक्षण भेद से उनमें भेद किया जा सकता है। इसी प्रकार अन्योन्यानुगत मति और श्रुत में लक्षण और अभिधान के भेद से भेद किया गया है।^५ अभिनिबोध से होने वाला ज्ञान आभिनिबोधिक है और श्रुत से होनेवाला ज्ञान श्रुतज्ञान है।

आभिनिबोधिकज्ञान के दो हेतु हैं—इन्द्रिय और मन। श्रुतज्ञान के भी ये दो हेतु हैं। हेतुद्वय की समानता होने पर भी श्रुतज्ञान में विशेषता है। उसे समझे बिना श्रुतज्ञान के स्वरूप को नहीं समझा जा सकता। संकेत और श्रुत ग्रंथ के अनुसार किसी शब्द का अनुसरण होता है फिर वाच्यवाचक भाव रूप में उसकी संयोजना होती है, इस प्रकार आन्तरिक शब्दोच्चार के साथ इन्द्रिय और मन के निमित्त से जो ज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान है।^६

श्रुतज्ञान की दूसरी विशेषता है कि जो ज्ञान शब्दोल्लेख सहित उत्पन्न होता है वह अपने में प्रतिभासमान अर्थ के वाचक शब्द को उत्पन्न करता है। उससे दूसरे को विवक्षित अर्थ का प्रत्यय कराता है।^७

१. नन्दी चूर्ण, पृ. ३१ : अखस्स इन्द्रिय-मणा परा, तेसु जं णाणं तं परोक्खं । मतिश्रुते परोक्षमात्मनः, परनिमित्तत्वात्, अनुमानवत् ।

२. वही, पृ. ३१

३. वही, पृ. ३१ : मति-सुताणं अण्णोण्णाणुगतत्तणतो सामि-काल-कारण-खयोवसमतुल्लत्तणतो य एगत्तं पावति ।

४. विशेषावश्यक भाष्य, गा ८५, ८६ :

जं सामि-काल-कारण-विसय-परोक्खत्तर्णेहि तुल्लाईं ।

तब्भावे सेसाणि य तेणाईए मइ-सुयाईं ॥

मइपुव्वं जेण सुं तेणाईए मई, विसिद्धो वा ।

मइभओ चव सुयं तो मइसमणंतरं भणियं ॥

५. नन्दी चूर्ण, पृ. ३१ : आगासपइट्ठिताणं धम्मा-ऽधम्माण अण्णोण्णाणुगताणं लक्खणभेदा भेदो विट्ठो त्हा मति-सुताणं वि सामि-कालादि अभेदे वि भेदो भण्णति—अभिणिबुज्झती-त्यादि । एवं लक्खणाऽभिधानभेदा भेदो तेसि ।

६. विशेषावश्यक भाष्य, गा. १०० की वृत्ति—संकेतकाल-प्रवृत्तं श्रुतग्रंथसंबन्धिनं वा घटादिशब्दमनुसृत्य वाच्यवाचक-भावेन संयोज्य 'घटो घटः' इत्याद्यन्तर्जल्पाकारमन्तःशब्दो-ल्लेखान्वितमिन्द्रियादिनिमित्तं यज्जामुदेति तच्छ्रुतज्ञानम् ।

७. वही, गा. १०० की वृत्ति : शब्दोल्लेखसहितं विज्ञानमुत्पन्नं स्वप्रतिभासमानार्थप्रतिपादकं शब्दं जनयति, तेन च परः प्रत्याय्यते, इत्येवं निजकार्थोक्तिसमर्थमिदं भवति, अभिलाष्य-वस्तुविषयमिति यावत् ।

भेद का दूसरा हेतु पौर्वापर्य है, कार्यकारण भाव है। मति कारण है इसलिए मति के बिना श्रुतज्ञान नहीं होता। श्रुत मतिपूर्वक होता है किन्तु मति श्रुतपूर्वक नहीं होती।^१

जिनभद्रगणि ने मति और श्रुत के भेदसूचक अन्य पांच हेतुओं का निर्देश किया है।^२

मतिज्ञान	श्रुतज्ञान
१. मतिज्ञान के अवग्रह आदि अट्ठाईस भेद हैं।	१. श्रुतज्ञान के चौदह भेद हैं।
२. मतिज्ञान पञ्चेन्द्रिय विषयक है।	२. श्रुतज्ञान श्रोत्रेन्द्रिय विषयक है।
३. मतिज्ञान वल्क (छाल) के समान है।	३. श्रुतज्ञान डोरी के समान है।
४. मतिज्ञान अनक्षर है।	४. श्रुतज्ञान अक्षरात्मक है।
५. मतिज्ञान मूक है।	५. श्रुतज्ञान प्रतिपादनक्षम है।

जिनभद्रगणि ने वल्क और शुम्ब, अनक्षर और अक्षर तथा मूक और प्रतिपादनक्षम इन तीन भेदपरक हेतुओं की समीक्षा की है। वल्क और शुम्ब की समीक्षा का सारांश यह है—मतिज्ञान और द्रव्यश्रुत के लिए यह दृष्टान्त घटित नहीं होता। मतिज्ञान और भावश्रुत के लिए यह दृष्टान्त घटित हो सकता है।^३

अनक्षर और अक्षर की समीक्षा का सारांश इस प्रकार है—पुस्तक में लिखित अकारादि वर्ण तथा ताल्वादि करणजन्य शब्द की संज्ञा व्यञ्जनाक्षर है। अंतर में स्फुरित होने वाला अकारादि वर्ण का ज्ञान भावाक्षर है। मतिज्ञान व्यञ्जनाक्षर की अपेक्षा अनक्षर है। भावाक्षर की अपेक्षा वह साक्षर है। श्रुतज्ञान व्यञ्जनाक्षर और भावाक्षर दोनों की अपेक्षा साक्षर है।^४

मूक और प्रतिपादनक्षम की समीक्षा का सारांश इस प्रकार है—श्रुतज्ञान द्रव्यश्रुत के कारण परप्रत्यायन में सक्षम है। मतिज्ञान के लिए द्रव्य मति का कोई विकल्प नहीं है। इस प्रकार दोनों भिन्न हो जाते हैं।^५

चूर्णिकार ने विशेषावश्यक भाष्यगत अन्य मतों का उल्लेख किया है।^६

तत्त्वार्थभाष्य में मति और श्रुत का भेद विषयग्रहण की कालिक क्षमता के आधार पर किया गया है। मतिज्ञान का विषय ग्रहण का काल वर्तमान है। श्रुतज्ञान त्रैकालिक है।^७

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होता है कि तत्त्वार्थभाष्य में मति और श्रुत के भेद की चर्चा संक्षेप में की गई है। सिद्धसेन ने मति और श्रुत के एकत्व का प्रतिपादन कर एक नई परम्परा का सूत्रपात किया है।^८ नन्दी में वह परम्परा मान्य नहीं है। इसलिए जिनभद्रगणि ने मति और श्रुत के भेदक हेतुओं की विस्तार से प्रस्थापना की है। वह सिद्धान्तवाद की परंपरा ही उत्तरकाल में अनुस्यूत हुई है।

सूत्र ३६

२. (सूत्र ३६)

सामान्यतः मति का कोई विभाग नहीं होता। स्वामी की चिन्ता के समय उसके दो विभाग बनते हैं। श्रुत के लिए भी यही नियम है। सम्यग्दृष्टि की मति मतिज्ञान है और मिथ्यादृष्टि की मति मतिअज्ञान है। सम्यग्दृष्टि का श्रुत श्रुतज्ञान है और मिथ्यादृष्टि का श्रुत श्रुतअज्ञान है।

इस प्रतिपादन की समीक्षा में तीन प्रश्न उपस्थित होते हैं^९—

१. नन्दी चूर्ण, पृ. ३१ : मतीए सुतं पाविज्जति, ण मति-
मंतरेण प्रापयितुं शक्यते।

२. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ९७ :

लक्षणभेदा हेऊ फलभावओ भेयइंदियविभागा।

वागक्खर-मूए-यर भेयाभेओ मइ-सुयाणं ॥

३. वही, गा. १५४ से १६१

४. वही, गा. १६२ से १७०

५. वही, गा. १७१ से १७४

६. नन्दी चूर्ण, पृ. ३२

७. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्, पृ. ९१ : उत्पन्नाविनष्टार्थाहकं
साम्प्रतकालविषयं मतिज्ञानम्, श्रुतज्ञानं तु त्रिकालविषयम्,
उत्पन्नविनष्टानुत्पन्नार्थाहकमिति ॥

८. निश्चयद्वात्रिशिकाः, कारिका १९ : वैयर्थ्यातिप्रसङ्गाभ्यां
न मत्यभ्यधिकं श्रुतम्।

९. नन्दी चूर्ण, पृ. ३२ : पर आह—तुल्लखयोवसमत्तणतो घडा-
इवत्थूण य सम्मपरिच्छेदत्तणतो सहादिविसयाण य समुवल्लं-
भातो कहं मिच्छइद्विस्स मति-सुता अण्णाणं ति भणिता ?

१. ज्ञान और अज्ञान दोनों का कारण क्षयोपशम भाव है अतः दोनों में कारण की समानता है।
२. ज्ञान और अज्ञान दोनों ही घट आदि पदार्थों का ज्ञान करते हैं इसलिए दोनों में कार्य की समानता है।
३. शब्द आदि इन्द्रिय विषयों को उपलब्ध करने में दोनों की समानता है।

समानता की स्थिति में ज्ञान और अज्ञान के भेद का हेतु क्या है? इस प्रश्न का उत्तर सर्वप्रथम उमास्वाति ने दिया है— मिथ्यादर्शन के कारण अर्थ की उपलब्धि एक नय के आधार पर होती है इसलिए वह सत् और असत् का सम्यक् प्रकार से भेद नहीं कर सकता। उदाहरण स्वरूप द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यात्मक होता है। एकान्त नित्यवाद, एकान्त अनित्यवाद ये सब यदृच्छो-पलब्धि के कारण स्वीकृत हैं इसलिए एक नयाश्रयी ज्ञान अज्ञान कहलाता है।^१

जिनभद्रगणि ने 'ज्ञानफल का अभाव' इस हेतु की ओर निर्देश किया है। ज्ञान का फल है विरति। मिथ्यादृष्टि के विरति नहीं होती इसलिए उसका ज्ञान अज्ञान कहलाता है।^२

सूत्र ३७

३. (सूत्र ३७)

प्रस्तुत सूत्र में आभिनिबोधिकज्ञान के दो प्रकार बतलाए गए हैं— १. श्रुतनिश्चित २. अश्रुतनिश्चित।

१. श्रुतनिश्चित

चूर्णिकार ने श्रुत का अर्थ द्वादशाङ्ग किया है। द्वादशाङ्ग द्रव्यश्रुत है। इस द्रव्यश्रुत के आधार पर होने वाला मतिज्ञान श्रुतनिश्चित मतिज्ञान कहलाता है। उसके चार प्रकार हैं— १. अवग्रह २. ईहा ३. अवाय ४. धारणा।^१ हरिभद्र ने चूर्ण का अनुसरण किया है। उसमें कुछ नया जोड़ा है। उन्होंने श्रुत परिकर्मित मतिवाला यह विशेषण विशेषावश्यक भाष्य से लिया है। किन्तु उत्पत्ति काल में श्रुत सापेक्ष है यह विचार विशेषावश्यक भाष्य से भिन्न है।^२ जिनभद्रगणि के अनुसार श्रुतनिश्चित मतिज्ञान श्रुतपरिकर्मित मति वाले के होता है। किन्तु वर्तमान काल में वह श्रुतातीत होता है।^३ मलयगिरि ने विशेषावश्यक भाष्य का अनुसरण किया है।^४ हरिभद्र ने वर्तमानकाल में श्रुत सापेक्ष माना है। यदि इसका तात्पर्य संस्कार मात्र हो तो श्रुत सापेक्ष कहने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। श्रुतनिश्चित मति में श्रुत का संस्कार रहा है। श्रुत के परिकर्म से निरपेक्ष होना श्रुतनिश्चित मति में अनिवार्य है। इसलिए उत्पत्ति काल में श्रुतनिश्चित मति को श्रुत परिकर्म सापेक्ष नहीं माना जा सकता।

२. अश्रुतनिश्चित

जिस आभिनिबोधिकज्ञान की उत्पत्ति में द्रव्यश्रुत व भावश्रुत की अपेक्षा नहीं रहती, वह अश्रुतनिश्चित आभिनिबोधिकज्ञान है। उसके चार प्रकार हैं— १. औत्पत्तिकी २. वैनयिकी ३. कार्मिकी ४. पारिणामिकी।^५

हरिभद्र ने श्रुत निरपेक्ष तथाविध क्षयोपशम से उत्पन्न आभिनिबोधिकज्ञान को अश्रुतनिश्चित आभिनिबोधिकज्ञान कहा है।^६ मलयगिरि के अनुसार शास्त्र के संस्पर्श से मुक्त व्यक्ति के तथाविध क्षयोपशम से जो सहज ज्ञान होता है वह अश्रुतनिश्चित

१. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम् १।३३ : सदसतोरविशेषाद् यदृच्छो-
पलब्धेरुन्मत्तवत् ।

२. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ११५ :
सद-सदविसेसणाओभवहेउजदिच्छिओवलम्भाओ ।
नाणफलाभावाओ मिच्छद्विद्विस्स अण्णाणं ॥

३. नन्दी चूर्ण, पृ. ३२ : 'सुतनिस्सितं' ति सुतं ति—सुत्तं,
तं च सामादियादि बिदुसारपज्जवसाणं । एतं दव्वसुत्तं
गहितं । तं अणुसरतो जं मतिणाणमुप्पज्जति तं सुतणिस्साए
उप्पण्णं ति सुतातो वा णिसूतं तं सुतणिस्सितं भण्णति ।
तं च उग्गहेहाऽवाय-धारणाठितं चतुब्भेदं ।

४. हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ४६ : श्रुतमिह सामायिकादि लोक-
बिन्दुत्तारास्तं द्रव्यश्रुतं गृह्यते, तदनुसारेण श्रुतपरिकर्मित-

मतेस्तदपेक्षमेव चोत्पादकाले यदुत्पद्यते तत् श्रुतनिश्चितं
अवग्रहादि ।

५. विशेषावश्यक भाष्य, गा. १६८ :
पुत्वं सुधपरिकम्मियमइस्स जं संपयं सुयाईयं ।
तं निस्सियमियरं पुण अणिस्सियं भइच्चउक्कं तं ॥

६. मलयगिरीया वृत्ति, प. १४४

७. नन्दी चूर्ण, पृ. ३२ : 'अस्सुतनिस्सितं च' ति जं पुण
दव्व-भावसुतणिरवेक्खं आभिणिबोधिकमुप्पज्जति तं असुय-
भावातो समुप्पण्णं ति असुतनिस्सितं भण्णति । तं च
उप्पत्तियादि बुद्धिचउक्कं ।

८. हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ४६ : यत्पुनस्तदनपेक्षं तथाविधक्षयो-
पशमप्रभवमेव वर्त्तते तदश्रुतनिश्चितं औत्पत्तिक्यादि ।

आभिनबोधिकज्ञान है।^१

वस्तु का निर्विकल्प बोध अथवा दर्शन इन्द्रियजन्य होता है। वह सविकल्प या साकार परोपदेश से बनता है। एक शिशु आंख से पुस्तक को देखता है। उसके रंग और आकार को जान लेता है इसके अतिरिक्त उस पुस्तक के बारे में अन्य कुछ भी नहीं जानता। माता-पिता अथवा शिक्षक से उसके विषय में जानकारी मिलती है। वह मानस ज्ञान है। इस प्रक्रिया के आधार पर श्रुत को मतिपूर्वक कहा गया है। इन्द्रियजन्य बोध—यह इस रंग, रूप और आकार वाली कोई वस्तु है इतना ज्ञान मतिज्ञान है। इसके पश्चात् परोपदेश से होने वाला श्रुतज्ञान है।

श्रुतज्ञान से जिस वासना या संस्कार का निर्माण हुआ है वह भविष्य के ज्ञान का स्थायी आधार बनता है। भविष्य में वह उस पुस्तक को समग्रता से जान लेता है। उस समय किसी के उपदेश की अपेक्षा नहीं होती। इस प्रक्रिया के दो अंग हैं—

वह पुस्तक को देखकर समग्रता से जान लेता है यह मतिज्ञान है।

उसकी मति पहले श्रुत से परिकर्मित अथवा संस्कारित है इसलिए यह विशुद्ध मतिज्ञान नहीं है।

इन दोनों अंगों की संयोजना से एक तीसरे तत्त्व का निर्माण हुआ है वह है श्रुतनिश्चित मतिज्ञान अथवा श्रुतनिश्चित आभिनबोधिकज्ञान।

आभिनबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान दोनों अन्योन्यानुगत हैं और दोनों भिन्न भी हैं। भेद के हेतुओं का उल्लेख पहले किया जा चुका है। प्रस्तुत सूत्र उन दोनों के अभेद का निदर्शन है। यदि आभिनबोधिकज्ञान के अवग्रह आदि अट्टाईस प्रकारों का निर्देश करते हैं तो उनसे आभिनबोधिक ज्ञान की स्वतंत्रता प्रमाणित नहीं होती। औत्पत्तिकी आदि बुद्धि चतुष्टय को श्रुतज्ञान नहीं माना जा सकता। इस स्थिति में मतिज्ञान की स्वतंत्रता सिद्ध होती है। किंतु उक्त अट्टाईस भेदों से मति और श्रुत को विभक्त नहीं किया जा सकता और स्वतंत्र रूप से उन्हें न मतिज्ञान कहा जा सकता और न श्रुतज्ञान ही कहा जा सकता है। इस समस्या को सुलभाने के लिए आभिनबोधिक के दो भेद किए गए—१. श्रुतनिश्चित २. अश्रुतनिश्चित।

श्रुतनिश्चित आभिनबोधिक ज्ञान उभयात्मक है। इन्द्रियजन्य होने के कारण वह आभिनबोधिक है तथा श्रुतपरिकर्मित अथवा संस्कारित होने के कारण वह श्रुतज्ञान है। इस प्रक्रिया में न केवल आभिनबोधिक है और न केवल श्रुतज्ञान। इसलिए सूत्रकार ने इसका नाम श्रुतनिश्चित आभिनबोधिकज्ञान रखा है।

आभिनबोधिकज्ञान के ये दो भेद नदी से पूर्व किसी आगम में उपलब्ध नहीं हैं। स्थानाङ्ग में ये भेद मिलते हैं किन्तु यह संकलन सूत्र है। इसलिए उसे प्रमाण रूप में उद्धृत नहीं किया जा सकता। तत्त्वार्थसूत्र तथा दिगम्बर साहित्य में भी इन भेदों का उल्लेख नहीं है। पं. सुखलालजी ने भी इसकी ऐतिहासिक दृष्टि से विस्तृत चर्चा की है। द्रष्टव्य—ज्ञानबिन्दुप्रकरणम्, परिचय पृ. २४, २५।

सूत्र ३८

४. (सूत्र ३८)

प्रस्तुत सूत्र में चार बुद्धियों का वर्णन किया गया है।

१. औत्पत्तिकी बुद्धि—

औत्पत्तिकी बुद्धि इन्द्रियातीत और शब्दातीत चेतना का विकास है। इसलिए इसकी उत्पत्ति में किसी इन्द्रिय अथवा शब्द का योग नहीं होता। इस अर्थ की अभिव्यक्ति अदृष्ट, अश्रुत और अवेदित शब्द से हो रही है। जो स्वयं अदृष्ट है, दूसरे से अश्रुत है जिसके बारे में कभी चिन्तन नहीं किया। उस अर्थ का तत्काल यथार्थ रूप में ग्रहण करने की क्षमता होती है उस बुद्धि का नाम है औत्पत्तिकी। इससे होने वाला बोध अव्याहत फल वाला होता है—लौकिक और लोकात्तर प्रयोजन से बाधित नहीं है।^२

दिगम्बर साहित्य में इसकी व्याख्या का भिन्न प्रकार मिलता है। किसी पुरुष ने मुनि जीवन में बारह अंगों का अवधारण किया, मृत्यु के उपरान्त वह देव बना फिर मनुष्य जन्म में उत्पन्न हुआ। उसमें पूर्व अधीत ज्ञान के संस्कार विद्यमान हैं इसलिए वह

१. मलयगिरिया वृत्ति, प. १४४ : सर्वथा शास्त्रसंस्पर्शरहितस्य तथाविधक्षयोपशमभावत एवमेव यथावस्थितवस्तुसंस्पर्श मतिज्ञानमुपजायते तत् अश्रुतनिश्चितमौत्पत्तिक्यादि ॥

२. (क) हारिभद्रिया वृत्ति, पृ. ४८
(ख) आवश्यकनिर्युक्ति, गा. ८३९

किसी अध्ययन, श्रवण, प्रश्न आदि के बिना सम्मुखीन अर्थ को जान लेता है। जटिल से जटिल प्रश्न का भी उत्तर दे देता है।^१ यह औत्पत्तिकी बुद्धि का स्वरूप है।

धवला में उद्धृत गाथा के अनुसार विनय से अधीत श्रुतज्ञान प्रमाद से विस्मृत हो जाता है वह परभव में उपस्थित होकर औत्पत्तिकी बुद्धि का रूप ले लेता है।^२

आचार्य वीरसेन ने प्रज्ञाश्रवण की व्याख्या के प्रसंग में प्रज्ञा के औत्पत्तिकी आदि चार प्रकार बतलाए हैं।

पूर्वजन्म में अधीत चौदह पूर्वों की विस्मृति और उसका उत्तरवर्ती मनुष्य जन्म में प्रकटीकरण—इस विषय का उल्लेख श्वेताम्बर साहित्य में उपलब्ध नहीं है।

अकलंक के अनुसार श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय का उत्कृष्ट क्षयोपशम होने पर प्रज्ञाश्रवण ऋद्धि उपलब्ध होती है। इस ऋद्धि से सम्पन्न प्रज्ञाश्रवण चतुर्दशपूर्वी को भी समाधान दे सकता है।^३

२. वैनयिकी बुद्धि—

ज्ञान और ज्ञानी के प्रति जो प्रकृष्ट विनय होता है उससे उत्पन्न बुद्धि वैनयिकी बुद्धि है।

षट्खण्डागम के अनुसार विनयपूर्वक द्वादशाङ्गी को पढ़ते समय जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह वैनयिकी बुद्धि है। वैकल्पिक रूप से परोपदेश से उत्पन्न बुद्धि को भी वैनयिकी बुद्धि कहा गया है।^४

३. कर्मजा बुद्धि—

किसी एक कार्य में मन का अभिनिवेश हो जाता है। उस अभिनिवेश के कारण कार्य की सफलता हो जाती है। यह कार्य में गहरी एकग्रता और अभ्यास से उत्पन्न होती है। षट्खण्डागम के अनुसार गुरु के उपदेश से निरपेक्ष तपश्चरण के बल से उत्पन्न बुद्धि कर्मजा बुद्धि है। अथवा इसका वैकल्पिक अर्थ भी किया गया है—यह बुद्धि औषध सेवन से भी उत्पन्न होती है।^५

४. पारिणामिकी बुद्धि—

अवस्था के परिपाक से होनेवाली बुद्धि पारिणामिकी है। षट्खण्डागम के अनुसार अपनी-अपनी जाति विशेष से उत्पन्न बुद्धि पारिणामिकी बुद्धि है।^६

वीरसेन ने प्रज्ञा और ज्ञान का भेद बतलाया है। उनके अनुसार गुरु के उपदेश से निरपेक्ष ज्ञान के हेतुभूत जीव की शक्ति का नाम प्रज्ञा है। ज्ञान उसका कार्य है।^७ इस भेद के आधार पर विचार करने से हरिभद्र और वीरसेन दोनों के कुछ वाक्य विमर्शनीय बन जाते हैं।

वैनयिकी की व्याख्या के प्रसंग में एक प्रश्न उपस्थित हुआ है कि वैनयिकी बुद्धि वाला त्रिवर्ग के सूत्र और अर्थ का सार ग्रहण करता है। इससे अश्रुतनिश्चितत्व का विरोध है। इस प्रश्न के उत्तर में हरिभद्रसूरि ने लिखा है—अश्रुतनिश्चितत्व प्रायिक है, स्वल्पश्रुत का निश्चित होने में कोई दोष नहीं है।^८ वैनयिकी की व्याख्या में वीरसेन ने भी परोपदेश का उल्लेख किया है। षट्खण्डागम में अश्रुतनिश्चित का उल्लेख नहीं है इसलिए वैनयिकी के प्रसंग में परोपदेश का उपदेश हो सकता है। परन्तु नंदी सूत्र में बुद्धि चतुष्टय अश्रुतनिश्चित के अन्तर्गत है इसलिए हरिभद्र का उल्लेख विमर्शनीय है।

१. षट्खण्डागम, पुस्तक ९, पृ. ८२ : तत्थ जम्मंतरे चउब्बि-
हणिम्मलमदिबलेण विणएणावहारिदुवालसंगस्स देवे-
सुप्पज्जिय मणुस्सेमु अविणट्ठसंस्कारेणुप्पणस्स एत्थ भवम्मि
पढण-सुणण-पुच्छणवावारविरहियस्स पण्णा अउप्पत्तिया-
णाम ।

२. वही, पृ. ८२ :
विणएण सुदमधीदं किह वि पमादेण होदि विस्सरिदं ।
तमुवट्ठादि परभवे केवलणणं च आहवदि ॥

३. तत्त्वार्थवार्तिक, पृ. २०२ : प्रकृष्टश्रुतावरणवीर्यान्तराय-
क्षयोपशमाविर्भूताऽसाधारणप्रज्ञाशक्तिलाभान्निःसंशय-
निरूपणं प्रज्ञाश्रवणत्वम् ।

४. षट्खण्डागम, पुस्तक ९, पृ. ८२ : विणएण दुवालसंगादं
पढंतस्सुप्पण्णा वेणइया णाम, परोवदेसेण जादपण्णा वा ।

५. वही, पृ. ८२ : तवच्छरणबलेण गुरुवदेसणिरवेक्खेणुप्पण्णा
कम्मजा णाम, ओसहबलेणुप्पणपण्णा वा ।

६. षट्खण्डागम, पुस्तक ९, पृ. ८४ : सगसगजादिविसेसेण
समुप्पणपण्णा पारिणामिया नाम ।

७. वही, पृ. ८४ : णाणहेदुजीवसत्ती गुरुवएसणिरवेक्खा पण्णा
णाम, तक्कारियं णाणं ।

८. हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ४८ : त्रिवर्गः—त्रैलोक्यम् । आह—
त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतसारत्वे सति अश्रुतनिश्चितत्वं विरुध्यते ?
इति, न हि श्रुताभ्यासमन्तरेण त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतसारत्वं
सम्भवति, अत्रोच्यते—इह प्रायोवृत्तिमङ्गीकृत्याश्रुत-
निश्चितत्वमुक्तम्, अतः स्वल्पश्रुतनिश्चितत्वादेऽपि न कश्चिद्
दोष इति ।

शब्द विमर्श—

विसुद्ध—यथावस्थित ।

अव्वाहयफलजोगा—फल का अर्थ है प्रयोजन, अन्य प्रयोजनों से अव्याहृत ।

तिवग्ग—काम, अर्थ और धर्म अथवा त्रैलोक्य ।

पेयाला—प्रमाण, सार, परिमाण, प्रधान ।

उवओगदिट्टुसारा—विवक्षित कर्म में मन का अभिनिवेश, दत्तचित्तता ।

कम्मपसंग—कर्म का अभ्यास ।

परिघोलणा—विचार ।

साहुक्कारफलवई—साधुवाद देने से फलवती होनेवाली ।

सूत्र ३९-५०

५. (सूत्र ३९-५०)

प्रस्तुत आलापक में श्रुतनिश्चित के चार प्रकार बतलाए गए हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा । स्थानाङ्ग सूत्र में अश्रुतनिश्चित के अवग्रह—व्यञ्जनावग्रह व अर्थावग्रह का उल्लेख मिलता है।^१ जिनभद्रगणि ने अश्रुतनिश्चित मति के भी अवग्रह आदि चार भेदों का निर्देश किया है।^२

स्थानाङ्ग में केवल अवग्रह का उल्लेख है। ईहा आदि का उल्लेख जिनभद्रगणि का स्वोपज्ञ है अथवा किसी पूर्ववर्ती ग्रंथ का आधार लिया हुआ है यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। किन्तु इतना स्पष्ट है कि यह उल्लेख किसी अन्य ग्रंथ में उपलब्ध नहीं है। इसलिए अश्रुतनिश्चित के साथ ईहा आदि का प्रयोग उनका स्वोपज्ञ ही होना चाहिए। अश्रुतनिश्चित और उसके चार भेदों की परम्परा उत्तरकाल में सीमित रही।

मतिज्ञान के २८ भेदों की परम्परा श्वेताम्बर और दिग्म्बर दोनों के ग्रंथों में उपलब्ध है। यह प्राचीन प्रतीत होती है प्राचीन साहित्य में आवश्यक निर्युक्ति, तत्त्वार्थाधिगम सूत्र, षट्खण्डागम, कषाय पाहुड आदि ग्रंथों में उसका उल्लेख मिलता है। सर्वप्रथम इसका उल्लेख आवश्यक निर्युक्ति में मिलता है। आगम साहित्य में पंचविध ज्ञान की परम्परा मिलती है।^३ अवग्रह आदि का विकास विषय ग्रहण करने की प्रक्रिया के संदर्भ में हुआ है। इन्द्रियों के द्वारा विषय के ग्रहण से लेकर निर्णय तक की एक परम्परा है।

इन्द्रिय और अर्थ का उचित देश में अवस्थान होने पर अर्थ का ग्रहण होता है। ग्रहण की प्रक्रिया इस प्रकार है—

१. इन्द्रिय और अर्थ का उचित देश में अवस्थान ।

२. दर्शन—सत्ता मात्र का ग्रहण ।

३. व्यञ्जनावग्रह—इन्द्रिय और अर्थ के संबंध का ज्ञान ।

४. अर्थावग्रह—अर्थ का ग्रहण अथवा ज्ञान, जैसे—मैंने कुछ देखा है ।

५. ईहा—पर्यालोचनात्मक ज्ञान, जैसे—यह घट होना चाहिए ।

६. अवाय—निर्णय, यह घट ही है ।

७. धारणा—अविच्युति, घट के ज्ञान का संस्कार रूप में बदल जाना ।

न्याय और वैशेषिक दर्शन में प्रत्यक्ष ज्ञान की प्रक्रिया प्रायः समान रूप में मिलती है—

१. इन्द्रिय और विषय का सन्निकर्ष ।

२. निर्विकल्पक बोध ।

३. संशय तथा संभावना ।

१. द्रष्टव्य—ठाणं २।१०३ का टिप्पण ।

२. विशेषावश्यक भाष्य, गा० ३०४-३०६ :

किह पडिकुक्कुडहीणो जुज्जे विवेण वग्गहो, ईहा ।

किं सुसिलिट्टमवाओ दप्पणसंकंतांबिं ति ॥

जह उग्गहाइसामण्णउ वि सोइंदियाइणा भेओ ।

तह उग्गहाइसामण्णओ वि तमणिस्सिया भिन्नं ॥

अट्टावीसइभेयं सुगनिस्सियमेव केवलं तम्हा ।

जम्हा तम्मि समत्ते पुणरस्सुगनिस्सियं भणियं ॥

३. उवंगसुत्ताणि, रायपसेणियं, सू० ७३९

४ सविकल्पक निर्णय ।

५. धारावाही ज्ञान तथा संस्कार स्मरण ।

उपाध्याय यशोविजयजी ने व्यञ्जनावग्रह, अर्थावग्रह आदि को चार अंशों में विभक्त कर जैन न्याय में नई परम्परा का सूत्रपात किया है । पण्डित सुखलालजी ने इस विषय की विस्तार से चर्चा की है—

“न्याय आदि दर्शनों में प्रत्यक्ष ज्ञान की प्रक्रिया चार अंशों में विभक्त है । पहला कारणांश जो संनिष्ठ इन्द्रियरूप है । दूसरा व्यापारांश जो सन्निकर्ष एवं निर्विकल्प ज्ञानरूप है । तीसरा फलांश जो सविकल्पक ज्ञान या निश्चयरूप है और चौथा परिपाकांश जो धारावाही ज्ञानरूप तथा संस्कार, स्मरण आदि रूप है । उपाध्यायजी ने व्यञ्जनावग्रह, अर्थावग्रह आदि पुरातन जैन परिभाषाओं को उक्त चार अंशों में विभाजित करके स्पष्ट रूप से सूचना की है कि जैनतर दर्शनों में प्रत्यक्ष ज्ञान की जो प्रक्रिया है वही शब्दान्तर से जैनदर्शन में भी है । उपाध्यायजी व्यञ्जनावग्रह को कारणांश, अर्थावग्रह तथा ईहा को व्यापारांश, अवाय को फलांश और धारणा को परिपाकांश कहते हैं, जो बिलकुल उपयुक्त है ।”^१

प्रस्तुत सूत्र के व्याख्याकारों ने अवग्रह आदि की व्याख्या इस प्रकार की है—

व्यञ्जनावग्रह और अर्थावग्रह—१. व्यञ्जन का एक अर्थ है इन्द्रिय विषय । २. इसका दूसरा अर्थ है द्रव्येन्द्रिय—इन्द्रिय की विषय ग्रहण में साधनभूत पौद्गलिक शक्ति जिसकी संज्ञा उपकरणेन्द्रिय है । उपकरणेन्द्रिय के साथ अर्थ का संबंध और संसर्ग होने पर अर्थ व्यक्त होता है । इसलिए यह प्रथम ग्रहण व्यञ्जनावग्रह कहलाता है ।^२

विषय विषयी का सन्निपात और दर्शन के पश्चात् अर्थ के ज्ञान की धारा शुरू होती है । व्यञ्जनावग्रह में वह अव्यक्त रहती है । इसका कालमान है असंख्य समय । व्यञ्जनावग्रह के अन्तिम समय में वह व्यक्त हो जाता है । वह व्यक्त अवस्था अर्थावग्रह है ।^३ उसका कालमान एक समय है । व्यञ्जनावग्रह को प्रतिबोधक दृष्टांत (नंदी सू. ५२) व मल्लक दृष्टांत (नंदी सू. ५३) के द्वारा समझाया गया है ।

चक्षु और मन का व्यञ्जनावग्रह नहीं होता इसलिए उसके चार प्रकार हैं । अर्थावग्रह इन्द्रिय और मन सवका होता है इसलिए उसके छः प्रकार हैं । चूर्णिकार ने नोइन्द्रिय अर्थावग्रह इस पद में आए हुए नोइन्द्रिय का अर्थ मन किया है ।^४

वह दो प्रकार का होता है—द्रव्य मन और भाव मन । जीव मनःपर्याप्ति नामकर्म के उदय से मन के प्रायोग्य पुद्गलों का ग्रहण कर उन्हें मन के रूप में परिणत करता है वह द्रव्य मन है । मनन परिणाम की क्रिया करने वाला जीव भाव मन है । उसके उपकरणेन्द्रिय से निरपेक्ष अर्थ के चिंतन से होने वाला बोध नोइन्द्रिय अर्थावग्रह है ।^५

अर्थावग्रह के पांच एकार्थक नाम बतलाए गए हैं, वे नाना घोष और नाना व्यञ्जन वाले हैं । उदात्त आदि स्वरों को घोष तथा अभिलाप—अक्षरों को व्यञ्जन कहा जाता है । चूर्णिकार के अनुसार अवग्रह सामान्य की दृष्टि से चारों एकार्थक हैं और विभागांश की दृष्टि से ये भिन्न लक्षण वाले हैं । अवग्रह तीन प्रकार का होता है^६—

१. ज्ञानबिन्दुप्रकरणम्, परिचय, पृ. ३८

२. नन्दी चूर्ण, पृ. ३५ : वंजणग्गहणेण सहाइपरिणता दव्वा घेत्तव्वा । वंजणे अवग्गहो वंजणावग्गहो, एत्थ वंजणग्गहणेण दंस्विदियं घेत्तव्वं । ...जेण करणभूतेण अत्थो वंजिज्जइ तं वंजणं, जहा पदीवेण घडो एवं सहादिपरिणतेहिं दव्वेहिं उवकराणदियपत्तेहिं चित्तेहिं संबद्धेहिं संपसत्तेहिं जम्हा अत्थो वंजिज्जइ त्ति तम्हा ते दव्वा वंजणावग्गहो भण्णति ।

३. वही, पृ० ३५ : सो य वंजणावग्गहातो चरिमसमयाणंतरं एकसमयं अवसिद्धिदियविसयं गेण्हतो अत्थावग्गहो भवति ।

४. वही, पृ० ३५ : चंखिदियस्स मणसो य वंजणाभावे पढमं चेव जं अवसिद्धमत्थग्गहणं कालयो एगसमयं सो अत्थोग्गहो भाणितव्वो । सव्वो वेस विभागेण छव्विहो दंसिज्जति, ण पुण तस्सोग्गहस्स काले सहादिविसेसबुद्धी अत्थि । णोइंदियो त्ति-मणो ।

५. वही, पृ० ३५ : सो य दव्वमणो भावमणो य । तत्थ मणपज्जत्तिणामकम्ममुदयातो जोग्गो मणोदव्वे घेत्तुं मणजोग्ग (?ग) परिणामिता दव्वा दव्वमणो भण्णति । जीवो पुण मणपरिणामक्रियावणो भावमणो । एस उभय-रूवो मणदव्वालंबणो जीवस्स नाणवावारो भावमणो भण्णति । तस्स जो उवकराणदियदुवारनिरवेक्खो घडाइ-अत्थसरूवचित्तणपरो बोधो उप्पज्जति सो णोइंदियत्थाव-ग्गहो भवति ।

६. वही, पृ० ३५ : एते ओग्गहसामणतो पंच वि णियमा एगट्ठिता । उग्गहविभागे पुण कज्जमाणे उग्गहविभागसेण भिण्णत्था भवति । सो य उग्गहो तिविहो—वंजणोग्गहो सामणत्थावग्गहो विसेससामणत्थावग्गहो य ।

१. व्यञ्जनावग्रह
 २. सामान्य अर्थावग्रह
 ३. विशेष सामान्य अर्थावग्रह ।
- इंद्रिय ज्ञान की उत्पत्ति की प्रक्रिया—

अवग्रह आदि के एकार्थक पदों द्वारा इंद्रिय ज्ञान की उत्पत्ति की प्रक्रिया बतलाई गई है—

१. अवग्रह—

१. अवग्रहण—अवग्रह की पहली अवस्था है अवग्रहण । इस अवस्था में इंद्रिय और अर्थ का योग होने पर अर्थ का ज्ञान काल सापेक्ष होता है । एक साथ अर्थ का ग्रहण नहीं होता किंतु वह कालक्रम से होता है । इसे प्रतिबोधक दृष्टांत से समझाया गया है ।^१ अर्थ का ज्ञान असंख्य समय की कालावधि में होता है । प्रथम समय (काल का अविभाज्य अंश) में प्रविष्ट अथवा सन्निकृष्ट पुद्गलों का ज्ञान नहीं होता ।^१

२. उपधारण—अवग्रह की दूसरी अवस्था है उपधारण । इस अवस्था में दूसरे समय से लेकर असंख्यात समय तक अर्थ का प्रस्तुति रूप बनता है ।^१ इस अवस्था को उपधारण पद से सूचित किया गया है ।

३. श्रवण—अवग्रह की तीसरी अवस्था है श्रवण । इस अवस्था में एक समय की अवधि वाला सामान्य अर्थ का अवग्रहण होता है ।^१

४. अवलम्बन—अवग्रह की चौथी अवस्था है अवलम्बन । इस अवस्था में विशेष सामान्य अर्थ का अवग्रह होता है ।^१

५. मेधा—अवग्रह की पांचवीं अवस्था है मेधा । इस अवस्था में उत्तरोत्तर धर्म की जिज्ञासा के काल में विशेष सामान्य अर्थ का अवग्रहण होता है ।^१

चक्षु इंद्रिय का व्यञ्जनावग्रह नहीं होता । अतः अर्थावग्रह के श्रवण आदि तीन पद एकार्थक होते हैं ।^१

अवग्रहण आदि पांच पदों के भिन्न-भिन्न अर्थ बतलाए गए हैं, इस अवस्था में उन्हें एकार्थक कैसे कहा जा सकता है ? इस प्रश्न के समाधान में चूणिकार का वक्तव्य है कि सभी विकल्पों में अवग्रह के स्वरूप का ही निदर्शन है इसलिए इन्हें एकार्थक कहा गया है ।^१

२. ईहा —

अवग्रह के अनन्तर ईहा का प्रारम्भ होता है ।

१. आभोग—ईहा की पहली अवस्था है आभोग । इस अवस्था में विशेष अर्थाभिमुखी आलोचन प्रारम्भ हो जाता है ।^१

२. मार्गणा—ईहा की दूसरी अवस्था है मार्गणा । इस अवस्था में विशेष अर्थ के अन्वय और व्यतिरेक धर्म का समालोचन होता है ।^१

१. द्रष्टव्य—नवसुत्ताणि, नन्दी, सू. ५२

२. (क) नन्दी चूर्ण, पृ० ३५ : वंजणोग्गहस्स पडमसमयपविट्ठु-
पोग्गलाण गहणता ओगिण्हणता भण्णति ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ५०

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, पत्र १७५

३. (क) नन्दी चूर्ण, पृ० ३५ : वितियादिसमयादिसु जाव
वंजणोग्गहो ताव उवधारणता भण्णति ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ५०

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७५

४. (क) नन्दी चूर्ण, पृ० ३५ : एगसामइगसामण्णत्थावग्गह-
काले सवणता भण्णति ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ५०

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७५

५. (क) नन्दी चूर्ण, पृ० ३५-३६ : विसेससामण्णत्थावग्गह-
काले अवलंबणता भण्णति ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ५०

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७५

६. (क) नन्दी चूर्ण, पृ० ३६ : उत्तरुत्तरविसेससामण्णत्थाव-
ग्गहेसु जाव मेरया धावइ ताव मेधा भण्णइ ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ५०

७. नन्दी चूर्ण, पृ० ३६ : जत्थ वंजणावग्गहो नत्थि तत्थ
सवणादिया तिण्णि एगट्ठिता भवन्ति ।

८. वही, पृ० ३६ : जणु भिण्णत्थदंसणे एगट्ठित्ति विरुद्धं ?
उच्यते, ण विरुद्धं, जतो सव्वविकप्पेसु उग्गहस्सेव सरूवं
दंसिज्जदि ।

९. (क) नन्दी चूर्ण, पृ० ३६ - ओग्गहसमयाणंतरं सबभूत-
विसेसत्थाभिमुहमालोयणं आभोयणता भण्णति ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ५०

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७०

१०. (क) नन्दी चूर्ण, पृ० ३६ : तस्सेव विसेसत्थस्स अण्णय-
वइरेगधम्मसमालोयणं मग्गणा भण्णति ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ५०-५१

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७०

३. गवेषणा—ईहा की तीसरी अवस्था है गवेषणा । इस अवस्था में व्यतिरेक धर्म का परित्याग कर अन्वय धर्म का समालोचन होता है ।^१

४. चिंता—ईहा की चौथी अवस्था है चिंता । इस अवस्था में अन्वय धर्म से अनुगत अर्थ का बार-बार समालोचन किया जाता है ।^२

५. विमर्श—इसकी पांचवीं अवस्था है विमर्श । इस अवस्था में अर्थ के नित्य अनित्य आदि धर्मों का विमर्श होता है ।^३ हरिभद्रसूरि ने इसका मतांतर के रूप में उल्लेख किया है ।^४ उन्होंने तथा मलयगिरि ने विमर्श की व्याख्या भिन्न प्रकार से की है जो गवेषणा की व्याख्या से मिलती जुलती है । ईहा की सामान्य भूमिका की दृष्टि से पांचों पद एकार्थक है किंतु अर्थविकल्पना की दृष्टि से पांचों भिन्नार्थक हैं ।^५ ये ईहात्मक ज्ञान के उत्तरोत्तर विकास को परिलक्षित करते हैं ।

३. अवाय -

ईहा की भांति अवायात्मक ज्ञान के उत्तरोत्तर विकास की प्रक्रिया निम्न निर्दिष्ट पांच पदों में संलग्न है । अवाय की सामान्य भूमिका में ये सब एकार्थक हैं और प्रतिपाद्य की भिन्नता की दृष्टि से भिन्नार्थक हैं ।^६

१. आवर्त्तन—अवाय की पहली अवस्था है आवर्त्तन । इस अवस्था में ईहा का कार्य सम्पन्न होने पर अर्थ के स्वरूप का परिच्छेद होता है ।^७

२. प्रत्यावर्त्तन—अवाय की दूसरी अवस्था है प्रत्यावर्त्तन । इस अवस्था में निर्णयमान अर्थ के स्वरूप की बार-बार आलोचना होती है ।^८

३. अपाय—अवाय की तीसरी अवस्था है अपाय । इस अवस्था में ईहा की सर्वथा निवृत्ति हो जाती है और ज्ञेय वस्तु अवधारणा के योग्य बन जाती है ।^९

४. बुद्धि—अवाय की चौथी अवस्था है बुद्धि । इस अवस्था में अवधारित अर्थ का स्थिर रूप में स्पष्ट बोध होता है ।^{१०}

५. विज्ञान—अवाय की पांचवीं अवस्था है विज्ञान । इस अवस्था में अवधारित अर्थ की विशेष प्रेक्षा और अवधारणा होती है । धारणा तीव्रतर हो जाती है ।^{११}

१. (क) नन्दी चूर्ण, पृ० ३६ : तस्सेवऽत्थस्स वड्ढेगधम्म-परिच्चाओ अण्णयधम्मसमालोगणं च गवेसणता भण्णति ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ५१

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७०

२. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ३६ : तस्सेव तद्धम्माणुगतत्थस्स पुणो पुणो समालोयणतेण चिंता भण्णति ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ५१

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७०

३. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ३६ : तमेवत्थं णिच्चाऽणिच्चादिएहिं दव्वभावेहिं विमरिसतो वीमंसा भण्णति ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ५१

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७०

४. हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ५१ : नित्या-ऽनित्यादिद्रव्यभाव-लोचनमित्यन्ये ।

५. नन्दी चूर्ण, पृ. ३६ : ईहासामणतो एगट्ठिता चेव, अत्थ-विकप्पणातो पुण भिण्णत्था ।

६. वही, पृ. ३६ : ते य अवायसामणत्तणतो णियमा एगट्ठिता चेव, अभिधाणभिण्णत्तणतो पुण भिण्णत्था ।

७. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ३६ : ईहणभावनिद्यत्तस्स अत्थसरूव-पडिबोधबुद्धस्स य परिच्छेदमुप्पादंतस्स आउट्टणता भण्णति ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ५१

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७६

८. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ३६ : ईहणभावनिद्यट्ठस्स वि तमत्थआलोयंतस्स पुणो पुणो णियट्ठणं पच्चाउट्टणं भण्णति ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ५१

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७६

९. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ३६ : सव्वहा ईहाए अवणयणं कातुं अवधारणावधारितत्थस्स अवधारयतो अवातो त्ति भण्णति ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ५१

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७६

१०. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ३६ : पुणो पुणो तमत्थावधारणाव-धारितं बुज्जतो बुद्धी भवई ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ५१

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७६

११. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ३६ : तम्मि चेवावधारितमत्थे विसेसे पेक्खतो अवधारयतो य विण्णाणे त्ति भण्णति ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ५२

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७६

४. धारणा—

अवाय के साथ अवगृहीत विषय की बोधात्मक प्रक्रिया सम्पन्न हो जाती है। तदनन्तर उसकी धारणा का क्रम चालू होता है। उसके पांच रूप बनते हैं। एकार्थक पदों के द्वारा उनका निर्देश किया गया है।

१. धारणा—धारणा की पहली अवस्था है धारणा। इस अवस्था में अवधारित विषय की अविच्युति बनी रहती है। इसका न्यूनतम और अधिकतम कालमान अन्तर्मुहूर्त्त है।^१

२. धारणा—यह दूसरी अवस्था है। इस अवस्था में अवधारित विषय अनुपयोग के कारण विच्युत हो जाता है। जघन्यतः अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः एक दिन, दो दिन तथा असंख्येय काल तक स्मृति योग्य बना रहता है।^१

३. स्थापना—धारणा की तीसरी अवस्था है स्थापना। इस अवस्था में अवधारित अर्थ पूर्वापर होने पर भी आलोचनापूर्वक हृदय (मस्तिष्क) में स्थापित किया जाता है।^१ हरिभद्र और मलयगिरि ने इसका अर्थ वासना किया है।^१

४. प्रतिष्ठा—धारणा की चौथी अवस्था है प्रतिष्ठा। इस अवस्था में अवधारित अर्थ प्रभेदपूर्वक हृदय (मस्तिष्क) में प्रतिष्ठित किया जाता है। जैसे जल में पत्थर नीचे जाकर प्रतिष्ठित होता है।^१

५. कोष्ठ—धारणा की पांचवी अवस्था है कोष्ठ। जैसे—कोठे में प्रक्षिप्त धान्य विनष्ट नहीं होता वैसे ही अवाय के द्वारा अवधारित अर्थ विनष्ट नहीं होता।^१

जिनभद्रगणि ने धारणा के तीन प्रकार बतलाए हैं—१. अविच्युति २. वासना ३. स्मृति।

अविच्युति की तुलना धारणा से होती है। वासना की तुलना स्थापना से होती है।

जिनभद्रगणि ने धारणा का एक अर्थ अवाय की अविच्युति किया है।^१

आचार्य हेमचन्द्र ने अविच्युति को अवाय के अन्तर्भूत बतलाया है। स्मृति वासना रूप धारणा का कार्य है फिर भी उसका धारणा के प्रकार के रूप में निर्देश किया गया है।^१ उत्तरवर्ती दार्शनिकों के अनुसार धारणा प्रत्यक्ष ज्ञान के अन्तर्गत है और स्मृति परोक्ष प्रमाण का एक अङ्ग है। धारणा के अर्थ में संस्कार का भी प्रयोग किया गया है।^१

१. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ३७ : अवायाणंतरं तमत्थं अविच्यु-
तीए जहण्णुक्कोसेणं अंतमुहुत्तं धरेंतस्स धरणा
भण्णति ।

(ख) हारिभद्राया वृत्ति, पृ. ५१

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७७

२. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ३७ : तमेव अत्थं अणुवयोगत्तणतो
विच्युत्तं जहण्णेणं अंतमुहुत्तातो परतो दिवसादिकाल-
विभागेसु संभरतो य धारणा भण्णति ।

(ख) हारिभद्राया वृत्ति, पृ. ५१

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७७

३. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ३७ : सा य अवायावधारियमत्थं
पुव्वावरमालोइयं हियतम्मि ठावयंतस्स ठवणा भण्णति,
पूर्णघटस्थापनावत् ।

(ख) हारिभद्राया वृत्ति, पृ. ५१

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७७

४. (क) हारिभद्राया वृत्ति, पृ. ५१

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७७

५. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ३७ : 'पतिट्ठ' त्ति सो च्चित्त
अवधारितत्थो हित्तयम्मि प्रभेदेन पड्डातमाणो पतिट्ठा
भण्णति, जले उपलप्रक्षेपप्रतिष्ठावत् ।

(ख) हारिभद्राया वृत्ति, पृ. ५१

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७७

६. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ३७ : 'कोट्ठे' त्ति जहा कोट्ठगे
सालिमादिबीया पक्खित्ता अविणट्ठा धारिज्जंत्ति तहा
अवातावधारितमत्थं गुरुवदिट्ठं सुत्तमत्थं वा अविणट्ठं
धारयतो धारणा कोट्ठगसम त्ति कातुं कोट्ठे त्ति वत्तव्वा ।

(ख) हारिभद्राया वृत्ति, पृ. ५१

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७७

७. विशेषाशयक भाष्य, गा. २९१ की टीका : तदर्थादविच्य-
वनम् उपयोगमाश्रित्याऽभ्रंशः यश्च वासनाया जीवेन सह योगः
संबंधः, यच्च तस्याऽर्थस्य कालान्तरे पुनरिन्द्रियैरुपलब्धस्य,
अनुपलब्धस्य वा, एवमेव मानसाऽनुस्मरणं स्मृतिर्भवति, सेयं
पुनस्त्रिविधाऽप्यर्थस्याऽवधारणरूपा धारणा विज्ञेया ।

८. वही, गा. १८० :

सामण्णत्थावगहणमुग्गहो भेयमग्गमहेहा ।

तस्सावगमोऽवाओ अविच्युई धारणा तस्स ॥

९. प्रमाण मीमांसा, १।१।२९ : 'स्मृतेः' अतीतानुसन्धानरूपाया
'हेतुः' परिणामिकारणम्, संस्कार इति यावत्, सङ्ख्येयम्
सङ्ख्येयं वा कालं ज्ञानस्यावस्थानं 'धारणा' ।

१०. वही, १।१।२९ : यद्यपि स्मृतिरपि धारणाभेदत्वेन
सिद्धांतेऽभिहिता तथापि परोक्षप्रमाणभेदत्वात् ।

मनोविज्ञान में स्मृति की प्रक्रिया को तीन भागों में बांटा गया है --

१. कूट संकेतन (Encoding)
२. संकलन/भण्डारण (Storage)
३. पुनरुत्पादन (Retrieval)

कूट संकेतन की तुलना स्थापना और भण्डारण की तुलना कोष्ठ से की जा सकती है। मनोविज्ञान के अनुसार प्रत्यक्षीकरण की क्रिया तीन चरणों में सम्पन्न होती है—

१. ग्राहक प्रक्रियाएं (Receptor)
२. प्रतीपरूपवाली प्रक्रियाएं (Symbolic process)
३. एकात्मक प्रक्रिया (Unification process)

तत्त्वार्थभाष्य और षट्खण्डागम में अवग्रह, ईहा आदि के पर्यायवाची नामों में संज्ञा भेद और क्रम भेद हैं, देखें यंत्र—

नंदी	तत्त्वार्थ भाष्य	षट्खण्डागम
	अवग्रह	
अवग्रहण	अवग्रह	अवग्रह
उपधारण	ग्रह	अवदान या अवधान
श्रवण	ग्रहण	सान
अवलम्बन	आलोचन	अवलम्बन
मेधा	अवधारण	मेधा
	ईहा	
आभोग	ईहा	ईहा
मार्गणा	ऊहा	ऊहा
गवेषणा	तर्क	अपोहा
चिन्ता	परीक्षा	मार्गणा
विमर्श	विचारणा	गवेषणा
	जिज्ञासा	मोमांसा
	अवाय	
आवर्त्तन	अपाय	अवाय
प्रत्यावर्त्तन	अपगम	व्यवसाय
अपाय	अपनोद	बुद्धि
बुद्धि	अपव्याध	विज्ञप्ति
विज्ञान	अपेत	आमुंडा
	अपगत	प्रत्यामुंडा
	धारणा	
धरणा	प्रतिपत्ति	धरणी
धारणा	अवधारणा	धारणा
स्थापना	अवस्थान	स्थापना
प्रतिष्ठा	निश्चय	कोष्ठा
कोष्ठ	अवगम	प्रतिष्ठा
	अवबोध	

आभिनबोधिक ज्ञान के २८ प्रकारों का यंत्र—

स्पर्शनेन्द्रिय	रसनेन्द्रिय	घ्राणेन्द्रिय	चक्षुरिन्द्रिय	श्रोत्रेन्द्रिय	मन—नोइन्द्रिय	२८
व्यञ्जनावग्रह	व्यञ्जनावग्रह	व्यञ्जनावग्रह	०	व्यञ्जनावग्रह	०	४
अर्थावग्रह	अर्थावग्रह	अर्थावग्रह	अर्थावग्रह	अर्थावग्रह	अर्थावग्रह	६
ईहा	ईहा	ईहा	ईहा	ईहा	ईहा	६
अवाय	अवाय	अवाय	अवाय	अवाय	अवाय	६
धारणा	धारणा	धारणा	धारणा	धारणा	धारणा	६

सूत्र ५१-५३

६. (सूत्र ५१-५३)

सूत्रकार ने व्यञ्जनावग्रह को प्रतिबोधक और मल्लक इन दो दृष्टांतों द्वारा निरूपित किया है ।

१. प्रतिबोधक दृष्टांत—

सुप्त पुरुष को जगाने के लिए कोई व्यक्ति संबोधित करता है । संबोधित करने वाले व्यक्ति के शब्द के पुद्गल सुप्त पुरुष के कानों में प्रविष्ट होते हैं । असंख्येय समय से पूर्ववर्ती पुद्गलों को सुप्त व्यक्ति जान नहीं पाता । असंख्येय समय में प्रविष्ट पुद्गल उसके ज्ञान के जनक बनते हैं, वह जाग जाता है । इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि प्रथम समय से लेकर प्रतिसमय प्रविष्ट होने वाले पुद्गल असंख्यातवें समय में प्रविष्ट होते हैं तब वे शब्द आदि विज्ञान को उत्पन्न करते हैं ।^१

चूर्णिकार ने असंख्येय समय के प्रमाण का जघन्य और उत्कृष्ट काल इस प्रकार बतलाया है —

जघन्य काल—आवलिका के असंख्येय भाग प्रमाण ।

उत्कृष्ट काल—संख्येय आवलिका । वह आवलिका का काल आनापान पृथक्त्व के समान होता है ।^२ दोनों वृत्तिकारों ने भी उनका अनुसरण किया है ।^३

असंख्येय समय में प्रविष्ट पुद्गलों का ज्ञान होता है इसका तात्पर्य हरिभद्रसूरि ने स्पष्ट किया है । चरम समय में प्रविष्ट पुद्गल ही ज्ञान के उत्पादक बनते हैं और शेष प्रविष्ट पुद्गल इन्द्रिय क्षयोपशम के उपकारी हैं इसलिए सबके साथ ग्रहण शब्द का प्रयोग किया गया है ।^४

ग्रहण शब्द का प्रयोग ज्ञेय वस्तु और ज्ञान दोनों के अर्थ में होता है । यहां इसका प्रयोग ज्ञान के अर्थ में हुआ है ।

२. मल्लक दृष्टांत—

आवा से शराव निकाला । वह गरम शराव एक-एक बूंद डालते-डालते भीग गया और जल से भर गया । इसी प्रकार अनंत पुद्गलों का प्रक्षेप होते-होते जब व्यञ्जन पूर्ण हो जाता है तब श्रोता को शब्द का संबोध होता है । उसके पश्चात् ईहा, अवाय और धारणा की प्रक्रिया चलती है ।

व्यञ्जन के तीन अर्थ हैं—^५

१. शब्द आदि पुद्गल द्रव्य

२. द्रव्येन्द्रिय (उपकरणेन्द्रिय)

३. शब्द आदि पुद्गल द्रव्य और द्रव्येन्द्रिय का संबंध ।

१. नन्दी चूर्णि, पृ. ३८ : पढमसमयादारम्भ पतिसमयं पविस-
माणेषु असंख्येयसमये समए जे पविट्ठा ते गहणमागच्छंति, ते
य सहादिविण्णाजणम त्ति कात्तं, अतो तेसि गहण-
मुवदिट्ठं ।

(ख) द्रष्टव्य, विशेषावश्यक भाष्य, गा. २५०, २५१

२. नन्दी चूर्णि, पृ. ३८

३. (क) हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ५३ : असंख्येयमानं चात्र
जघन्यमावलिकाऽसंख्येयभागसमयतुल्यं, उत्कृष्टं तु
संख्येयावलिकासमयतुल्यम्, तच्च प्राणापानपृथक्त्वकाल-
समयमिति । उक्तं च—

वज्जणवगहकालो आवलियाऽसंख्यभागभेत्तो उ ।

थोवो, उक्कोसो पुण आणापाणूपुहुत्तं ति ॥

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. १७९

४. हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ५३ : इह च चरमसमयप्रविष्टा
एव ग्रहणमागच्छंति, तदन्ये त्विन्द्रियक्षयोपशमकारिण
इत्योघतो ग्रहणमुक्तमिति ।

५. नन्दी चूर्णि, पृ. ४० : एत्थ वज्जणगहणेण सहाइपुग्गलदब्बा
दंविदियं वा उभयसम्बन्धो वा घेतव्वं, तिधा वि ण
विरोधो । वज्जणं पूरियं ति कहं ? उच्यते — जदा पुग्गलदब्बा
वज्जणं तदा पूरियं ति पभूता ते पोग्गलदब्बा जाता, स्वं
प्रमाणमागता सविसयपडिबोधसमत्था जाता इत्यर्थः । जदा
पुण दंविदियं वज्जणं तदा पूरियं ति कहं ? उच्यते—
जाहे तेहिं पोग्गलेहिं तं दंविदियं आवतं भरितं वावितं
तदा पूरियं ति भण्णति । जदा तु उभयसम्बन्धो वज्जणं तथा
पूरियं ति कहं ? उच्यते—दंविदियस्स पुग्गला अंगीभाव-
मागता, पुग्गला य दंविदिए अनुषक्ताः, एस उभयभावो,
एतम्म उभयभावे पुग्गलेहिं इंदियं पूरितं, इंदिएण वि
सविसयपडिबोधकप्पमाणाः पुग्गला गहिता, एवं उभयसा-
मत्थतो विण्णाणभावो भवतीत्यर्थः ।

जब पुद्गल द्रव्य प्रमाणोपेत होकर अपने विषय के प्रतिबोध में समर्थ बन जाते हैं उस अवस्था का नाम है व्यञ्जन का पूर्ण होना ।

जब उन पुद्गलों से द्रव्येन्द्रिय परिपूर्ण हो जाता है यह व्यञ्जन के पूर्ण होने की दूसरी अवस्था है ।

जब पुद्गल द्रव्येन्द्रिय के अंगभूत बन जाते हैं और पुद्गल द्रव्येन्द्रिय से अनुसक्त हो जाते हैं—तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं । यह व्यञ्जन के पूर्ण होने की तीसरी अवस्था है । इस अवस्था में पुद्गल इन्द्रिय को पूर्ण कर देते हैं, इन्द्रिय अपने विषय के प्रतिबोध के लिए उन पुद्गलों को ग्रहण कर लेती है । इस प्रकार पुद्गल और इन्द्रिय दोनों के सामर्थ्य से विज्ञान उत्पन्न होता है ।

प्रतिबोध काल से पूर्व व्यञ्जनावग्रह होता है । प्रतिबोध के समय जब 'हुं' की ध्वनि करता है तब एक सामयिक अर्थावग्रह होता है ।^१

ज्ञान की प्रक्रिया व्यञ्जनावग्रह में प्रारम्भ हो जाती है । अर्थावग्रह व्यञ्जनावग्रह का अंतिम क्षण है । उसमें अर्थ बोध कुछ आगे बढ़ता है फिर भी बोध व्यक्त नहीं होता । सूत्रकार ने इसे शब्द के उदाहरण से समझाया है ।

'कोई अव्यक्त शब्द सुनता है' यह अर्थावग्रह है । 'अव्यक्तं सद् सुणेइ ।' अव्यक्त का अर्थ है—अनिर्देश्य, सामान्य, विकल्प-रहित ।^१ जिनभद्रगणि ने विकल्परहित का अर्थ स्वरूप, नाम आदि की कल्पना से रहित किया है ।^१ मलधारी हेमचन्द्र ने इसका विस्तृत अर्थ किया है । अनिर्देश्य का अर्थ किया है—जाति, क्रिया, गुण, द्रव्य आदि से रहित ।^१

अर्थावग्रह में अव्यक्त शब्द का बोध होता है । इसका तात्पर्य है कि शब्द है ऐसा अवाय अथवा निर्णय नहीं होता । किन्तु कुछ है ऐसा बोध होता है । यदि 'शब्द है' ऐसा निर्णय हो जाए तो वह अर्थावग्रह नहीं, अवाय हो जाएगा ।^१ अर्थावग्रह में ज्ञेय पर्याय का निर्णय नहीं होता । यह सूचित करने के लिए 'अव्यक्त' शब्द का प्रयोग किया गया है ।^१

चूणिकार ने 'अव्यक्त शब्द' के विषय में मतान्तर का उल्लेख किया है । कुछ आचार्यों का अभिमत है अवग्रह में 'यह शंख या शृंग किसका शब्द है' इसका बोध नहीं होता । चूणिकार ने इस अर्थ को भी अविरोध माना है । यह अविरोध अपेक्षा भेद से समझा जा सकता है ।^१ शब्द के प्रथम पर्याय का बोध होता है वहाँ अव्यक्त शब्द का अर्थावग्रह इस आकार में होगा—कुछ है । शब्द के उत्तरवर्ती पर्याय के बोध में अव्यक्त शब्द का अर्थावग्रह इस आकार में होगा—यह किसका शब्द है ।

सूत्रकार ने मन के अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा को स्वप्न के निदर्शन द्वारा स्पष्ट किया है । स्मृति मन की एक क्रिया है । किसी व्यक्ति ने निद्रा के समय स्वप्न देखा । जागने के प्रथम समय में यह स्मृति होती है—मैंने स्वप्न देखा—यह अर्थावग्रह है । उसकी प्रथम अवस्था में व्यञ्जनावग्रह होता है । जागृत अवस्था में भी मानसिक व्यापार में व्यञ्जनावग्रह होता है । इसका हेतु यह है कि उपयोग का कालमान असंख्येय समय है और अर्थावग्रह का कालमान एक समय । इसलिए व्यञ्जनावग्रह होना चाहिए । यह चूणिकार का अभिमत है ।^१ हरिभद्रसूरि ने इसका खण्डन किया है ।^१ मूल आगम में भी व्यञ्जनावग्रह चार प्रकार का बताया गया

१. नन्दी चूणि, पृ. ४० : 'हुं ति करेइ' त्ति वंजणे पूरिते तं अत्थं गेण्हइ त्ति वुत्तं भवति । एस एकसमयिओ अत्थावग्गहो ।

२. वही, पृ. ४० : जतो अव्वत्तमणिद्देसं सामण्णं विकप्परहियं ति भण्णति ।

३. विशेषावश्यक भाष्य, गा. २५२

सामन्नमणिद्देसं सरूव-नामाइकप्पणारहियं ।
जइ एवं जं तेणं गहिण्णं सद्दे त्ति तं किह णु ॥

४. वही, गा. २५२ की वृत्ति : स्वरूप—नामादिकल्पना-रहितम्, आदिशब्दाज्जाति-क्रिया-गुण द्रव्यपरिग्रहः ।

५. नन्दी चूणि, पृ. ४०, ४१ : जति वा "सद्दोऽय" मिति बुद्धी भवे तो अवातो चैव भवे, तच्च न कहं ?

उच्चते—णो जतो अत्थावग्गहसमयसेत्ते काले 'सद्' इति विसेसणामत्थि, अहं तम्मि वि समए सद्दोऽयमिति बुद्धी हवेज्ज तो फुडं अवाय एव भवेज्ज ।

६. (क) हारिभद्राया वृत्ति, पृ. ५४, ५५

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. १८०, १८१

(ग) ज्ञानबिन्दु प्रकरणम्, पृ. १०

७. नन्दी चूणि, पृ. ४१ : अण्णे पुण आयरिया एतं सुत्तं विसेसत्थावग्गहे भण्णति—'अव्वत्तं सद्दं सुणेज्ज' त्ति एस विसेसत्थावग्गहो, 'तेण सद्दे ति उग्गहिते' ति एतं सुत्तखंडं सामण्णसद्दत्थावग्गहदंसगं, कहं ? उच्चते—जतो भण्णति 'णो चैव णं जाणति के वि एस सद्दे' त्ति संख-संग-णालि-करयलादिको त्ति, एसो वि अविरोद्धो सुत्तत्थो ।

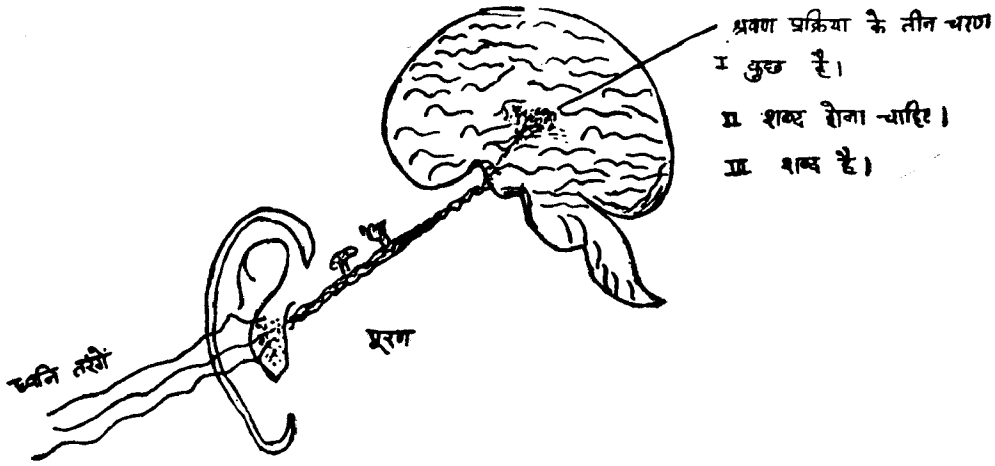
८. नन्दी चूणि, पृ. ४१, ४२ : सुविणो मे दिट्ठो त्ति सुविण-दिट्ठं अव्वत्तं सुमरइ । तच्च प्रतिबोधप्रथमसमये सुविण-मिति संभरतो अत्थावग्गहो, तस्य प्रथमावस्थायां व्यञ्जनावग्रहः, परतो ईहादि । सेसं पूर्ववत् । जग्गतो अण्णियत्थ-वावारे वि भणसो जुज्जते वंजणावग्गहो, उवयोगस्स असंखेज्जसमयत्तणयो, उवयोगद्वाए य प्रतिसमयमणोदव्वग्गह-णतो, मणोदव्वानं च वंजणववदेसतो समए य असंखेज्जतिमे मनसो नियमार्थग्रहणं भवेत् ।

९. हारिभद्राया वृत्ति, पृ. ५५ : अन्ये तु मनसोऽप्यर्थावग्रहात् पूर्व व्यञ्जनावग्रहं मनोद्रव्यव्यञ्जनग्रहणलक्षणं व्याचक्षते तत् पुनरप्युक्तम्, अनार्थत्वात् व्यञ्जनावग्रहस्य श्रोत्रादिभेदेन चतुर्विधत्वात् ।

है, मन का अर्थावग्रह निर्दिष्ट है।^१ चूर्णिकार ने किसी अन्य परम्परा का आश्रय लिया है। जिनभद्रगणि ने इस प्रकार की परम्परा का निरसन किया है।^२ व्यञ्जनावग्रह का संबंध ज्ञेय वस्तु से होता है। चूर्णिकार ने व्यञ्जनावग्रह का संबंध मनोद्रव्य वर्गणा के साथ स्थापित किया है। इसलिए यह व्यञ्जनावग्रह की एक नई अवधारणा है।

अवग्रह आदि के बहु-बहुविध आदि बारह प्रकार सर्वप्रथम तत्त्वार्थ सूत्र में उपलब्ध होते हैं।^३ स्थानांग में क्षिप्र आदि छः प्रकार हैं। उनके प्रतिपक्षी छः प्रकार का निर्देश नहीं है।^४ प्रस्तुत आगम में उसका उल्लेख नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि नन्दीकार ने ज्ञान मीमांसा की किसी भिन्न परम्परा का अनुसरण किया है।

चूर्णिकार ने क्रम के बारे में चर्चा की है। धारणा तक पहुँचने के लिए अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के क्रम का नियम है। अगृहीत की ईहा, अनीहित का अवाय, अवाय के बिना धारणा नहीं हो सकती। इसलिए आभिनवोधिकज्ञान में इस क्रम का नियम अनिवार्य है।



सूत्र ५४

७. (सूत्र ५४)

प्रस्तुत सूत्र में आभिनवोधिकज्ञान के चार प्रकार बतलाए गए हैं। ज्ञान के ये चार प्रकार ज्ञेय के आधार पर किए गए हैं। ज्ञेय चार हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। आभिनवोधिकज्ञानी सर्व द्रव्य, सर्व क्षेत्र, सर्व काल और सर्व भावों को जानता है। यहां 'सर्व' शब्द आदेश सापेक्ष है। आदेश का अर्थ प्रकार अथवा अपेक्षा है। आदेश के दो रूप बनते हैं—

१. सामान्य आदेश
२. विशेष आदेश।

आभिनवोधिकज्ञानी सब द्रव्यों को जानता है। यह वक्तव्य द्रव्य सामान्य की अपेक्षा से है। सूक्ष्म परिणत द्रव्यों को वह नहीं जानता, यह वक्तव्य विशेष आदेश की अपेक्षा से है। इसी प्रकार क्षेत्र, काल और भाव के साथ जुड़ा हुआ 'सर्व' शब्द भी आदेश सापेक्ष है।

१. नवासुत्ताणि, नन्दी, सूत्र ४१, ४२ :

२. विशेषावश्यक भाष्य, गा. २४०, २४१ :

गिज्जस्स वंजणणं जं गहणं वंजणोग्गहो स मओ ।

गहणं मणो न गिज्जं को भागो वंजणे तस्स ?

तद्देसच्चिन्तणे होज्ज वंजणं जइ तओ न समयम्मि ।

पढमे चेव तमत्थं गेण्हेज्ज न वंजणं तम्हा ॥

३. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्, १।१६ : बहुबहुविधक्षिप्रानिश्चिता-
सन्दिग्धध्रुवाणो सेतराणाम् ॥

४. ठाणं, ६।६१ से ६४

५. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ४२ : इहाऽऽदेसो नाम—प्रकारो । सो
य सामण्णतो विसेसतो य ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ५५

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १८४-१८५

देखें यंत्र—

ज्ञेय	सामान्य आदेश	विशेष आदेश
द्रव्य	द्रव्य जाति, धर्मास्तिकाय आदि	धर्मास्तिकाय का देश, प्रदेश आदि
क्षेत्र	आकाश	लोकाकाश, अलोकाकाश, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यक्लोक
काल	सर्वकाल	समय, आवलिका आदि, उत्सर्पिणी आदि
भाव	सर्वभावभाव--जाति	जीव भाव—ज्ञान, कषाय आदि अजीवभाव—वर्णपर्याय ^१

आभिनिबोधक ज्ञानी सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को नहीं देखता है। यह प्रतिपादन सापेक्ष दृष्टि से किया गया है। चूर्णिकार के अनुसार आभिनिबोधक ज्ञानी सब द्रव्यों को नहीं देखता। यह निषेध सामान्य आदेश के आधार पर किया गया है। विशेष आदेश के आधार पर वह देखता है जैसे चक्षु से रूप को देखता है।^२

द. (गाथा ३)

‘उग्रह इकं समयं’ इसकी व्याख्या में हरिभद्रसूरि ने नैश्चयिक और सांख्यवहारिक अवग्रह की चर्चा की है।^१ इसका मूल स्रोत विशेषावश्यक भाष्य है। अवग्रह के बारह प्रकार बतलाए गए हैं। उनकी एक समय की अवस्थिति वाले अवग्रह के साथ संगति नहीं बैठती है। इस समस्या को ध्यान में रखकर जिनभद्रगणि ने अवग्रह के नैश्चयिक और सांख्यवहारिक ये दो भेद किए हैं। अव्यक्त सामान्य मात्र ग्रहण करने वाला अवग्रह नैश्चयिक अवग्रह है। उसका कालमान एक समय है। अपाय के पश्चात् उत्तरोत्तर पर्याय का ज्ञान करने के लिए जो अवग्रह होता है वह सांख्यवहारिक अवग्रह है।^२

सूत्र ५० में ईहा, अवाय का कालमान अन्तर्मुहूर्त्त बताया गया है। प्रस्तुत गाथा में ईहा और अवाय का कालमान अर्द्धमुहूर्त्त बतलाया गया है। इसका हेतु परम्परा भेद है। यह गाथा षट्क आवश्यकनिर्युक्ति से उद्धृत है।^३ निर्युक्तिकार ने अर्द्धमुहूर्त्त की परम्परा का अनुसरण किया है। हरिभद्रसूरि ने निर्युक्ति तथा नंदी की टीका में अर्द्धमुहूर्त्त और अन्तर्मुहूर्त्त की परंपरा में सामञ्जस्य स्थापित किया है। व्यवहार की अपेक्षा ईहा और अवाय का कालमान अर्द्धमुहूर्त्त है।^४

उनके अनुसार नैश्चयिक अर्थावग्रह का कालमान एक समय और सांख्यवहारिक अर्थावग्रह का समय अन्तर्मुहूर्त्त है।

सिद्धसेनगणि के मत से भी इस सिद्धांत की पुष्टि होती है। उनके मतानुसार बहु का अवग्रहण औपचारिक अवग्रह है। इसका कालमान एक समय का नहीं होता।^५

१. नन्दी चूर्ण, पृ. ४२, ४३

२. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ४२ : ‘ण पस्सइ’ त्ति सव्वे सामण्ण-विसेसादेसद्वित्ते धम्मादिए, चवखु-अचखुदंसणेण रूव-सहाइते केणिय पासति त्ति वत्तव्वं ।

(ख) द्रष्टव्य—भगवई, सू. ८।१८४ का भाष्य ।

३. हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ५७ : इहाभिहितलक्षणोऽर्थावग्रहो यो जघन्यो नैश्चयिकः स खल्वेकं समयं भवतीति सम्बन्धः । तथा सांख्यवहारिकार्थावग्रह-व्यञ्जनावग्रहौ तु पृथक् पृथगन्त-र्महूर्त्तकालं भवत इति ज्ञातव्यौ ।

४. विशेषावश्यक भाष्य, गा. २८५ से २८८ :

सव्वत्थे-हा-वाया निच्छयओ मोत्तु माइसामण्णं ।

संववहारत्थं पुण सव्वत्थाऽवगहोऽवाओ ॥

तरतमजोगाभावेऽवाउच्चिय, धारणा तदंतम्मि ।

सव्वत्थ वासणा पुण भणिया कालंतरस्सई य ॥

सहो त्ति व सुय-भणियं विगप्पओ जइ विसेसविण्णाणं ।

घेप्पेज्ज तं पि जुज्जइ संववहारोग्गहे सव्वं ॥

खिप्पे-यराइभेओपुव्वोइयदोसजालपरिहारो ।

जुज्जई संताणेण य सामण्ण-विसेसव्ववहारो ॥

५. आवश्यकनिर्युक्ति, गा. २-६, १२ :

६. हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ५७ : तावीहा-ऽपायौ मुहूर्त्तार्द्धं ज्ञातव्यौ भवतः । तत्र मुहूर्त्तशब्देन घटिकाद्वयपरिमाणः कालोऽभिधीयते तस्यार्द्धं मुहूर्त्तार्द्धम् । ‘तु शब्दः’ विशेषणार्थः । किं विशिनष्टि ? व्यवहारापेक्षयैतन्मुहूर्त्तार्द्धमुक्तम्, तत्त्व-तस्त्वन्तमुहूर्त्तभवसेयम् ।

७. तत्त्वार्थभाष्यानुसारिणी वृत्ति, पृ. ८४ : य एष औपचारिकोऽवग्रहस्तमङ्गीकृत्य बहु अवगह्णातीत्येतदुच्यते, नत्वेक-समयवर्तनं नैश्चयिकमिति, एवं बहुविधादिषु सर्वत्रौप-चारिकाश्रयणाद् व्याख्येयम् ।

६. (गाथा ४)

इन्द्रियों के तीन वर्ग किए गए हैं—

१. स्पृष्ट विषय का ग्रहण करने वाली
२. बद्धस्पृष्ट विषय का ग्रहण करने वाली
३. अस्पृष्ट विषय का ग्रहण करने वाली ।

स्पर्शन, रसन और घ्राण—ये तीन इन्द्रियां पटु, श्रोत्र पटुतर और चक्षुरिन्द्रिय पटुतम होती है। विषय ग्रहण की पटुता के आधार पर ये तीन वर्ग किए गए हैं। चक्षुरिन्द्रिय की पटुता अधिक है इसलिए वह अस्पृष्ट, अप्राप्त अथवा असंबद्ध विषय का ग्रहण कर लेती है। श्रोत्रइन्द्रिय पटुतर होती है इसलिए वह स्पृष्ट अथवा प्राप्त मात्र विषय को ग्रहण करती है। जैसे धूल शरीर को छूती है वैसे ही शब्द कान को छूता है और उसका बोध हो जाता है। जिनभद्रगणि ने स्पृष्ट मात्र के ग्रहण के तीन हेतु बतलाए हैं।^१ शब्द के परमाणु स्कन्ध सूक्ष्म, प्रचुर द्रव्य वाले तथा भावुक—उत्तरोत्तर शब्द के परमाणु स्कन्धों को वासित करने वाले होते हैं। इसलिए उनका बोध स्पर्श मात्र से हो जाता है। स्पर्शन, रसन और घ्राण ये तीन इन्द्रियां स्पृष्ट व बद्ध विषय का ग्रहण करती है, इसका हेतु यह है कि इनके विषयभूत परमाणु स्कन्ध अल्पद्रव्य वाले और अभावुक होते हैं। और ये तीनों इन्द्रियां श्रोत्रेन्द्रिय के समान पटु नहीं होतीं। इसलिए इनका विषय पहले स्पृष्ट होता है, स्पर्श के अनन्तर वह बद्ध होता है—आत्म-प्रदेशों के द्वारा गृहीत होता है।^२

हरिभद्रसूरि ने बद्ध का तात्पर्य जल के उदाहरण द्वारा समझाया है जैसे पहले जल का शरीर से स्पर्श होता है फिर वह आत्मीकृत हो जाता है।^३

चक्षुरिन्द्रिय स्पृष्ट विषय का अवग्रहण नहीं करती। इसलिए वह अप्राप्यकारी है। स्पर्शनेन्द्रिय जैसे स्पृष्ट विषय को जानती है वैसे चक्षुरिन्द्रिय अंजन को नहीं जानती इसलिए वह मन की तरह अप्राप्यकारी है।^४ उत्तरवर्ती दार्शनिक साहित्य में प्राप्यकारी व अप्राप्यकारी की चर्चा विस्तार से हैं।

बौद्ध न्याय में श्रोत्रेन्द्रिय को भी अप्राप्यकारी माना गया है।^५ नैयायिक दर्शन में सभी इन्द्रियां प्राप्यकारी हैं।

१०. (गाथा ५)

पूर्ववर्ती गाथा की व्याख्या में 'भावुक' शब्द का प्रयोग हुआ है। उसकी स्पष्टता प्रस्तुत गाथा में की गई है। वक्ता बोलता है उसकी भाषा के पुद्गल स्कन्ध छहों दिशाओं में विद्यमान आकाश प्रदेश की श्रेणियों से गुजरते हुए प्रथम समय में ही लोकान्त तक पहुंच जाते हैं। भाषा की समश्रेणी में स्थित श्रोता मिश्र शब्द को सुनता है। वक्ता द्वारा उच्छृष्ट भाषा वर्गणा के पुद्गलों के साथ दूसरे भाषा वर्गणा के पुद्गल स्कन्ध मिल जाते हैं इसलिए श्रोता मूल शब्द को नहीं सुनता, मिश्र शब्द सुनता है। विश्रेणी में स्थित श्रोता वक्ता द्वारा उच्छृष्ट भाषा के पुद्गल स्कन्धों द्वारा वासित अथवा प्रकंपित शब्दों को सुनता है। इसमें वक्ता द्वारा उच्छृष्ट मूल शब्द का मिश्रण नहीं रहता।^६

इस प्रकार की गाथा धवला में भी उद्धृत है—

भासागदसमसेदिं सद्ं जदि सुणदि मिस्सयं सुणदि ।

उस्सेहिं पुण सद्ं सुणेदि णियमा पराघादे ॥

१. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ३३८ :

बहु-सहुम-भावुगाइं जं पडुपरं च सोत्तविष्णणं ।
गंधाईदब्बाइं विवरीयाइं जओ ताइं ॥

२. हारिभद्राया वृत्ति, पृ. ५७ : तस्य सूक्ष्मत्वाद् भावुकत्वात्
प्रचुरद्रव्याकुलत्वात् श्रोत्रेन्द्रियस्यान्वेन्द्रियगणात् प्रायः
पटुतरत्वात् ।

३. हारिभद्राया वृत्ति, पृ. ५७, ५८ : 'बद्धस्पृष्टमिति' बद्धम्—
आश्लिष्टं तोयवदात्मप्रदेशैरात्मीकृतमित्यर्थः, आलिङ्गित-
नन्तरमात्मप्रदेशैरागृहीतमित्यर्थः, गन्धादि स्तोकरद्रव्यत्वाद-
भावुकत्वाद् घ्राणादीनां चापटुत्वाद् विनिश्चिनोति ।

४. तत्त्वार्थवार्तिक, भाग १, पृ. ६७ : अप्राप्यकारि चक्षुः
स्पृष्टानवग्रहात् । यदि प्राप्यकारी स्यात् त्वगिन्द्रियवत्
स्पृष्टमञ्जनं गृह्णीयात् । न च गृह्णाति । अतो मनोवद-
प्राप्यकारीत्यवसेयम् ।

५. अभिधम्मकोश, १।४३

६. (क) हारिभद्राया वृत्ति, पृ. ५८

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. १८६

७. (क) षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २४४

(ख) द्रष्टव्य, विशेषावश्यक भाष्य, गा. ३५१

११. (गाथा ६)

प्रस्तुत गाथा में आभिनिबोधकज्ञान के पर्यायवाची नाम बतलाए गए हैं—

१. ईहा—अन्वयी और व्यतिरेकी दोनों धर्मों के पर्यालोचन की चेष्टा ।^१

२. अपोह—निश्चय ।

३. विमर्श—ईहा और अवाय का मध्यवर्ती प्रत्यय है, जैसे—सिर को खुजलाते हुए देखकर यह प्रत्यय होता है कि खुजलाना पुरुष में घटित होता है, खंभे में नहीं ।^२

४. मार्गणा—अन्वय धर्म की अन्वेषणा ।^३

५. गवेषणा—व्यतिरेक धर्म का आलोचन ।^४

६. संज्ञा—हरिभद्र ने संज्ञा का अर्थ व्यञ्जनावग्रह के उत्तरकाल में होने वाला मति का एक प्रकार किया है ।^५ मलयगिरि और मलधारी हेमचन्द्र ने भी इसका अनुसरण किया है ।^६ जिनभद्रगणि ने विमर्श, मार्गणा, गवेषणा और संज्ञा को ईहा की कोटि में परिगणित किया है ।^७

उमास्वाति ने आभिनिबोधक ज्ञान के पांच पर्यायवाची नाम बतलाए हैं—मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता, आभिनिबोधक । सिद्धसेनगणि ने संज्ञा का अर्थ प्रत्यभिज्ञा किया है ।^८

७. स्मृति—पूर्वानुभूत अर्थ के आलम्बन से होने वाला प्रत्यय ।

८. मति—अर्थ का परिच्छेद होने पर भी सूक्ष्म धर्म का आलोचन करने वाली बुद्धि ।

९. प्रज्ञा—वस्तु के अनेक यथार्थ धर्मों का आलोचन करने वाली संवित् । उसकी उपलब्धि मतिज्ञानावरण के विशिष्ट क्षयोपशम से होती है ।^९

१. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ३९६ :

ईहा अपोह वीमंसा मग्गणा य गवेसणा ।

सण्णा सई मई पण्णा सव्वं आभिणिबोहियं ॥

२. वही, वृत्ति ३९६ : विमर्शनं विमर्शः आपायात् पूर्व ईहा-याश्चोत्तरः 'प्रायः शिरः कण्डूयनादयः पुरुषधर्म इह घटन्ते' इति संप्रत्ययः ।

३. (क) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ५८ : अन्वयधर्मान्वेषणा ।
(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. १८७

४. (क) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ५८ : व्यतिरेकधर्मालोचना ।
(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. १८७

५. हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ५८ : व्यञ्जनावग्रहोत्तरकालभावी मतिविशेषः ।

६. मलयगिरीया वृत्ति, प. १८७

७. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ३९७ की वृत्ति : शेषाभिधानानि त्वीहा-विमर्श-मार्गणा-गवेषणा-संज्ञालक्षणानि सर्वाण्यपि ईहा ईहान्तर्भावीनि द्रष्टव्यानीत्यर्थः ।

८. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्, १।१३ : मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ता-ऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ।

९. तत्त्वार्थभाष्यानुसारिणी, पृ. ७८ : संज्ञाज्ञानं नाम यत्तैरे-वेन्द्रियैरनुभूतमर्थं प्राक्पुनर्विलोक्य स एवायं यमहमद्राक्षं पूर्वाह्न इति संज्ञाज्ञानमेतत् ।

१०. हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ५८ : तथा प्रज्ञानं प्रज्ञा, विशिष्ट-क्षयोपशमजन्या प्रभूतवस्तुगतयथावस्थितधर्मालोचनरूपा संवित् इति भावना ।

चौथा प्रकरण
(सूत्र ५५-७३)

आमुख

प्रस्तुत प्रकरण में श्रुतज्ञान परोक्ष का प्रतिपादन है। श्रुतज्ञान के प्रकारों के निरूपण में तीन परम्पराएं उपलब्ध हैं—

१. आवश्यक निर्युक्ति की
२. तत्त्वार्थ सूत्र की
३. कर्मग्रंथ की।

आवश्यक निर्युक्ति में श्रुतज्ञान के अक्षरश्रुत आदि चौदह प्रकारों का निर्देश है।^१

तत्त्वार्थ सूत्र में श्रुतज्ञान के दो, अनेक और बारह प्रकारों का निर्देश है।^२ श्रुतज्ञान के चौदह प्रकारों का उल्लेख वहां नहीं है। दो, अनेक और द्वादश प्रकारों का उल्लेख है उसका संबंध आगम ग्रन्थों से है^३—

१. दो—१. अङ्गबाह्य, २. अङ्गप्रविष्ट।
२. अनेक—अङ्गबाह्य के सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव आदि तेरह ग्रन्थ।
३. द्वादशविध—अङ्गप्रविष्ट के आचार आदि बारह ग्रन्थ।

तत्त्वार्थ सूत्र की परम्परा आवश्यक निर्युक्ति से भिन्न है। उमास्वाति के सामने अक्षरश्रुत आदि भेदों की परम्परा या तो नहीं रही अथवा उन्होंने उसकी अपेक्षा की। उन्होंने श्रुतज्ञान के प्राचीनतम अर्थ 'आगम ग्रन्थ' को ही मान्यता दी।^४

सम्यग्श्रुत में द्वादशाङ्ग का प्रतिपादन और मिथ्याश्रुत में भारत, रामायण आदि का उल्लेख है।^५ मिथ्याश्रुत के प्रकरण में अनुयोगद्वारा का अनुसरण है।^६ सम्यक्श्रुत और मिथ्याश्रुत के विकल्प नई शैली में प्रतिपादित हैं। चूर्णिकार ने उन विकल्पों की दृष्टांतपूर्वक व्याख्या की है।^७

पर्यवाग्र अक्षर का प्रतिपादन बहुत ही सूक्ष्म गणित के साथ हुआ है।^८ चूर्णिकार ने अक्षर पटल का विस्तार से निरूपण किया है।^९ सूक्ष्म सत्य की जानकारी के लिए वह बहुत मननीय है। इस प्रकार प्रस्तुत प्रकरण में अनेक महत्त्वपूर्ण सूत्रों का समाकलन प्राप्त होता है।

कर्मग्रन्थ की परम्परा आगम की परम्परा से भिन्न है। वह भिन्नता अनेक स्थलों पर परिलक्षित है। देवेन्द्रसूरि ने प्रस्तुत आगम में निर्दिष्ट श्रुतज्ञान के चौदह प्रकार तथा बीस प्रकार दोनों का उल्लेख किया है।^{१०} अनुमान किया जा सकता है कि चौदह भेदों की परम्परा का अनुसरण आवश्यक निर्युक्ति और नंदी के आधार पर तथा बीस भेदों की परंपरा का अनुसरण षट्खण्डागम और गोम्मटसार के आधार पर किया गया है।

अक्षर के तीन प्रकारों का प्रतिपादन प्रस्तुत आगम में ही उपलब्ध होता है।^{११} षट्खण्डागम में 'अक्षरावरणीय'

१. आवश्यक निर्युक्ति, गा. १९ :

अक्खर सण्णी सम्मं, साईयं खलु सपज्जवसिअं च ।
गमियं अंगपविट्ठं, सत्तवि एए सपडिवक्खा ॥

२. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्, १।२० : श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेक द्वादश-
भेदम् ।

३. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्, १।२० का भाष्य ।

४. वही, श्रुतमाप्तवचनं आगमः उपदेश ऐतिह्यमाभ्यायः
प्रवचनं प्रावचनं जिनवचनमित्यनर्थान्तरम् ।

५. नवसुत्ताणि, नंदी, सूत्र ६५, ६७

६. अणुओगदाराई, सू० ४९, ५०

७. नन्दी चूर्ण, पृ० ५०

८. नवसुत्ताणि, नंदी, सूत्र ७०

९. नन्दी चूर्ण, पृ० ५२ से ५६

१०. कर्मग्रन्थ, भाग १, गा० ६, ७ :

अक्खर सण्णी सम्मं साइअं खलु सपज्जवसिअं च ।

गमियं अंगपविट्ठं सत्तवि एए सपडिवक्खा ॥

पज्जय अक्खर पय संघायया पडिवत्ति तह्य अणुओगो ।

पाहुडपाहुड पाहुड वत्थू पुव्वा य ससमासा ॥

११. नवसुत्ताणि, नंदी, सूत्र ६९

‘अक्खरसमासावरणीय’ का उल्लेख है।^१ अक्षर के तीन प्रकार और उसकी व्याख्या धवला में मिलती है।^२ हो सकता है यह विषय ज्ञानप्रवाद पूर्व की परम्परा से आया हो। त्रिविध अक्षर की व्याख्या धवला में विस्तार से मिलती है उतनी नंदी सूत्र की व्याख्याओं में विस्तार से उपलब्ध नहीं है।

स्थानाङ्ग सूत्र में संज्ञा के चार प्रकार^३ तथा दस प्रकार^४ उपलब्ध है। किंतु उनमें समनस्क और अमनस्क की भेद करने वाली संज्ञा का उल्लेख नहीं है। प्रस्तुत आगम में कालिकी आदि तीन प्रकार की संज्ञाओं का निर्देश कर समनस्क और अमनस्क के बीच स्पष्ट भेद रेखा खींची गई है।

१. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २६१
२. वही, पु. १३, पृ. २६२

३. ठाणं, ४।५७८
४. वही, १०।१०५

चौथा प्रकरण परोक्ष-श्रुतज्ञान

मूल पाठ

संस्कृत छाया

हिन्दी अनुवाद

सुयनाण-पदं

५५. से किं तं सुयनाणपरोक्षं ? सुयनाणपरोक्षं चोद्दसविहं पणत्तं, तं जहा—१. अक्खरसुयं २. अणक्खरसुयं ३. सणिसुयं ४. असणिसुयं ५. सम्मसुयं ६. मिच्छसुयं ७. साइयं ८. अणाइयं ९. सपज्जवसियं १०. अपज्जवसियं ११. गमियं १२. अगमियं १३. अंगपविट्ठं १४. अणंगपविट्ठं ॥

५६. से किं तं अक्खरसुयं? अक्खरसुयं तिविहं पणत्तं, तं जहा—१. सणिकखरं २. वंजणकखरं ३. लद्धिअक्खरं ॥

५७. से किं तं सणिकखरं ? सणिकखरं—अक्खरस्स संठाणागिई । सेत्तं सणिकखरं ॥

५८. से किं तं वंजणकखरं ? वंजणकखरं—अक्खरस्स वंजणाभिलावो । सेत्तं वंजणकखरं ॥

५९. से किं तं लद्धिअक्खरं ? लद्धिअक्खरं—अक्खरलद्धियस्स लद्धिअक्खरं समुत्पज्जइ, तं जहा—सोइंदियलद्धिअक्खरं, चक्खिदियलद्धिअक्खरं, घाणिंदियलद्धिअक्खरं, रसणिंदियलद्धिअक्खरं, फांसिदियलद्धिअक्खरं, नोइंदियलद्धिअक्खरं । सेत्तं लद्धिअक्खरं । सेत्तं अक्खरसुयं ॥

श्रुतज्ञान-पदम्

अथ किं तच्छ्रुतज्ञानपरोक्षम् ? श्रुतज्ञानपरोक्षं चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—१. अक्षरश्रुतं २. अनक्षरश्रुतं ३. संज्ञिश्रुतं ४. असंज्ञिश्रुतं ५. सम्यक्श्रुतं ६. मिथ्याश्रुतं ७. सादिकं ८. अनादिकं ९. सपर्यवसितं १०. अपर्यवसितं ११. गमिकं १२. अगमिकं १३. अंगप्रविष्टं १४. अनंगप्रविष्टम् ।

अथ किं तद् अक्षरश्रुतम् ? अक्षरश्रुतं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—१. संज्ञाक्षरं २. व्यञ्जनाक्षरं ३. लब्धक्षरम् ।

अथ किं तत् संज्ञाक्षरम् ? संज्ञाक्षरम्—अक्षरस्य संस्थानाऽऽकृतिः । तदेतत् संज्ञाक्षरम् ।

अथ किं तद् व्यञ्जनाक्षरम् ? व्यञ्जनाक्षरम्—अक्षरस्य व्यञ्जनाभिलापः । तदेतत् व्यञ्जनाक्षरम् ।

अथ किं तद् लब्धक्षरम् ? लब्धक्षरम्—अक्षरलब्धिकस्य लब्धक्षरं समुत्पद्यते, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियलब्धक्षरं, चक्षुरिन्द्रियलब्धक्षरं, घ्राणेन्द्रियलब्धक्षरं, रसनेन्द्रियलब्धक्षरं, स्पर्शनेन्द्रियलब्धक्षरं, नोइन्द्रियलब्धक्षरम् । तदेतद् लब्धक्षरम् । तदेतद् अक्षरश्रुतम् ।

श्रुतज्ञान पद

५५. वह श्रुतज्ञान परोक्ष क्या है ?

श्रुतज्ञान चौदह प्रकार का प्रज्ञप्त है—१. अक्षरश्रुत २. अनक्षरश्रुत ३. संज्ञीश्रुत ४. असंज्ञीश्रुत ५. सम्यक्श्रुत ६. मिथ्याश्रुत ७. सादि ८. अनादि ९. सपर्यवसित १०. अपर्यवसित ११. गमिक १२. अगमिक १३. अंगप्रविष्ट १४. अनंगप्रविष्ट ।

५६ वह अक्षरश्रुत क्या है ?

अक्षरश्रुत तीन प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—१. संज्ञा अक्षर २. व्यञ्जन अक्षर ३. लब्धि अक्षर ।

५७ वह संज्ञा अक्षर क्या है ?

संज्ञा अक्षर—अक्षर का संस्थान, आकृति । वह संज्ञा अक्षर है ।

५८. वह व्यञ्जन अक्षर क्या है ?

व्यञ्जन अक्षर—अक्षर का व्यक्त उच्चारण । वह व्यञ्जन अक्षर है ।

५९. वह लब्धि अक्षर क्या है ?

लब्धि अक्षर—जिसे अक्षर ज्ञान की योग्यता प्राप्त होती है । उस जीव के लब्धि अक्षर का विकास होता है, जैसे—श्रोत्र इन्द्रिय लब्धि अक्षर, चक्षुरिन्द्रिय लब्धि अक्षर, घ्राण इन्द्रिय लब्धि अक्षर, रसन इन्द्रिय लब्धि अक्षर, स्पर्शन इन्द्रिय लब्धि अक्षर, नोइन्द्रिय लब्धि अक्षर । वह लब्धि अक्षर है । वह अक्षरश्रुत है ।

६०. से किं तं अणक्खरसुयं ? अण-
क्खरसुयं अणेगविहं पण्णत्तं, तं
जहा—

ऊससियं नीससियं,
निच्छूढं खासियं च छीयं च ।
निस्सिधियमणुसारं,
अणक्खरं छेलियाईयं ॥१॥
सेत्तं अणक्खरसुयं ॥

६१. से किं तं सण्णिसुयं ? सण्णिसुयं
तिविहं पण्णत्तं, तं जहा—कालि-
ओवएसेणं हेऊवएसेणं दिट्ठिवा-
ओवएसेणं ॥

६२. से किं तं कालिओवएसेणं ।
कालिओवएसेणं—जस्स णं अत्थि
ईहा, अपोहो, मग्गणा, गवेसणा,
चिन्ता, वीमंसा—से णं सण्णीति
लब्भइ । जस्स णं नत्थि ईहा,
अपोहो, मग्गणा, गवेसणा, चिन्ता,
वीमंसा—से णं असण्णीति
लब्भइ । सेत्तं कालिओवएसेणं ॥

६३. से किं तं हेऊवएसेणं ? हेऊवए-
सेणं—जस्स णं अत्थि अभि-
संधारणपुव्विया करणसत्ती—से
णं सण्णीति लब्भइ । जस्स णं
नत्थि अभिसंधारणपुव्विया
करणसत्ती—से णं असण्णीति
लब्भइ । सेत्तं हेऊवएसेणं ॥

६४. से किं तं दिट्ठिवाओवएसेणं ।
दिट्ठिवाओवएसेणं—सण्णिसुयस्स
खओवसमेणं सण्णी (ति ?)
लब्भइ, असण्णिसुयस्स खओव-
समेणं असण्णी (ति ?) लब्भइ ।
सेत्तं दिट्ठिवाओवएसेणं । सेत्तं
सण्णिसुयं । सेत्तं असण्णिसुयं ॥

६५. से किं तं सम्मसुयं । सम्मसुयं—
जं इमं अरहंतेहि भगवंतेहि
उत्पण्णनाणदंसणधरेहि तेलोक्क-
चहिय-महिय-पूइएहि तीय-
पडुप्पणमणागयजाणएहि

अथ किं तद् अनक्षरश्रुतम् ?
अनक्षरश्रुतम् अनेकविधं प्रज्ञप्तं,
तद्यथा—

उच्छ्वसितं निःश्वसितं,
निष्ठचूतं कासितञ्च क्षुतञ्च ।
निस्सिद्धिघतमनुस्वारम्
अनक्षरं सेंटितादिकम् ॥
तदेतद् अनक्षरश्रुतम् ।

अथ किं तत्संज्ञिश्रुतम् ? संज्ञि-
श्रुतं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—
कालिक्युपदेशेन, हेतूपदेशेन
दृष्टिवादोपदेशेन ।

अथ किं तत्कालिक्युपदेशेन ?
कालिक्युपदेशेन—यस्यास्ति ईहा,
अपोहः, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता,
विमर्शः—स संज्ञीति लभ्यते । यस्य
नास्ति ईहा, अपोहः, मार्गणा, गवेषणा,
चिन्ता, विमर्शः—सोऽसंज्ञीति लभ्यते ।
तदेतद् कालिक्युपदेशेन ।

अथ किं तद् हेतूपदेशेन ?
हेतूपदेशेन—यस्यास्ति अभिसंधारण-
पूर्विका करणशक्तिः—स संज्ञीति
लभ्यते । यस्य नास्ति अभिसंधारण-
पूर्विका करणशक्तिः—सोऽसंज्ञीति
लभ्यते । तदेतद् हेतूपदेशेन ।

अथ किं तद् दृष्टिवादो-
पदेशेन ? दृष्टिवादोपदेशेन—संज्ञि-
श्रुतस्य क्षयोपशमेन संज्ञी (इति ?)
लभ्यते, असंज्ञिश्रुतस्य क्षयोपशमेन
असंज्ञी (इति ?) लभ्यते । तदेतद्
दृष्टिवादोपदेशेन । तदेतद् संज्ञि-
श्रुतम् । तदेतद् असंज्ञिश्रुतम् ।

अथ किं तत् सम्यक्श्रुतम् ? सम्यक्-
श्रुतं—यदिदम् अर्हंदिभः भगवद्भिः
उत्पन्नज्ञानदर्शनधरैः त्रैलोक्य 'चहिय'-
महित-पूजितैः अतीतप्रत्युत्पन्नानागतज्ञैः
सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः प्रणीतं द्वाद-

६०. वह अनक्षरश्रुत क्या है ?

अनक्षरश्रुत अनेक प्रकार का प्रज्ञप्त है,
जैसे—

उच्छ्वास, निःश्वास, थूकना, खांसना,
छीकना, नाक साफ करना, सानुनासिक
ध्वनि या नाक से उच्चार्यमाण ध्वनि, सीटी
बजाना—ये श्रुतज्ञान के हेतु हैं ।
वह अनक्षरश्रुत है ।

६१. वह संज्ञीश्रुत क्या है ?

संज्ञीश्रुत तीन प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—
१. कालिकी उपदेश २. हेतु उपदेश ३. दृष्टि-
वाद उपदेश ।

६२. वह कालिकी उपदेश क्या है ?

कालिकी उपदेश—जिस व्यक्ति के ईहा,
अपोह, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता और विमर्श
होता है । वह कालिकी उपदेश की अपेक्षा
से संज्ञी है । जिसके ईहा, अपोह, मार्गणा,
गवेषणा, चिन्ता, और विमर्श नहीं होता वह
कालिकी उपदेश की अपेक्षा से असंज्ञी है ।
वह कालिकी उपदेश है ।

६३. वह हेतु उपदेश क्या है ?

हेतु उपदेश—जिस जीव में पर्यालोचना
पूर्वक करणशक्ति होती है । वह हेतु उपदेश
की अपेक्षा से संज्ञी है । जिस जीव में
पर्यालोचना पूर्वक करणशक्ति नहीं होती ।
वह हेतु उपदेश की अपेक्षा से असंज्ञी है ।
वह हेतु उपदेश है ।

६४. वह दृष्टिवाद उपदेश क्या है ?

दृष्टिवाद उपदेश—संज्ञीश्रुत के क्षयोपशम
से जीव संज्ञी है । असंज्ञी श्रुत के क्षयोपशम से
वह असंज्ञी है । वह दृष्टिवाद उपदेश है । वह
संज्ञी श्रुत है । वह असंज्ञीश्रुत है ।

६५. वह सम्यक्श्रुत क्या है ?

सम्यक्श्रुत—समुत्पन्न ज्ञान दर्शन के
धारक, तीन लोक द्वारा अभिलषित, प्रशंसित
और पूजित, अतीत वर्तमान और भविष्य के
ज्ञाता, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवान् द्वारा

सर्ववर्णहं सर्वदरिसींहं पणीयं
दुवालसंगं गणिपिडगं, तं जहा—
आयारो सूयगडो ठाणं समवाओ
वियाहपणत्तो नायाधम्मकहाओ
उवासगदसाओ अंतगडदसाओ
अणुत्तरोववाइयदसाओ पणहावा-
गरणाइं विवागसुयं दिट्ठिवाओ ॥

शाङ्गं गणिपिटकं, तद्यथा—आचारः
सूत्रकृतं स्थानं समवायः व्याख्या-
प्रज्ञप्तिः ज्ञातधर्मकथाः उपासकदशाः
अन्तकृतदशाः अनुत्तरोपपातिकदशाः
प्रश्नव्याकरणानि विपाकश्रुतं दृष्टि-
वादः ।

प्रणीत द्वादशांग गणिपिटक श्रुत सम्यक्श्रुत
हैं, जैसे—आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय,
व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातधर्मकथा, उपासकदशा,
अन्तकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा,
प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुत और दृष्टिवाद ।

६६. इच्छेयं दुवालसंगं गणिपिडगं
चोद्दसपुव्विस्स सम्मसुयं, अभिण्ण-
दसपुव्विस्स सम्मसुयं, तेण परं
भिण्णेषु भयणा । सेत्तं सम्मसुयं ॥

इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं
चतुर्दशपूर्विणः सम्यक्श्रुतं, अभिन्न-
दशपूर्विणः सम्यक्श्रुतं, ततः परं
भिन्नेषु भजना । तदेतत् सम्यक्श्रुतम् ।

६६. यह द्वादशाङ्ग गणिपिटक चौदह पूर्वधरों
के लिए सम्यक्श्रुत है । अभिन्नदस-
पूर्वधरों के लिए भी सम्यक्श्रुत है । इससे
न्यून पूर्वधरों के लिए सम्यक्श्रुत की भजना
है । वह सम्यक्श्रुत है ।

६७. से किं तं मिच्छसुयं ? मिच्छ-
सुयं—जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छ-
दिट्ठिंहिं सच्छंदबुद्धि-मइ-विगण्णियं,
तं जहा—१. भारहं २. रामायणं
३. ४. हंभीमासुरुत्तं ५. कोडिल्लयं
६. सगभद्वियाओ ७. घोडमुहं ८.
कप्पासियं ९. नागसुहुमं १०.
कणगसत्तरी ११. वइसेसियं १२.
बुद्धवयणं १३. वेसियं १४.
काविलं १५. लोगाययं १६.
सट्ठित्तं १७. माठरं १८. पुराणं
१९. वागरणं २०. नाडगादि ।

अथ किं तन्मिथ्याश्रुतम् ?
मिथ्याश्रुतं—यदिदम् अज्ञानिकैः
मिथ्यादृष्टिभिः स्वच्छन्दबुद्धि-मति-
विकल्पितं, तद्यथा—१. भारतं
२. रामायणं ३. भंभी ४. आसुरोक्तं
५. कौटिल्यकं ६. शकभद्रिका
७. घोटमुखं ८. कार्पासिकं ९. नाग-
सूक्ष्मं १०. कनकसप्ततिः ११. वैशे-
षिकं १२. बुद्धवचनं १३. वैशिकं
१४. कापिलं १५. लोकायतं
१६. षष्टितन्त्रं १७. माठरं १८. पुराणं
१९. व्याकरणं २०. नाटकादि ।

६७. वह मिथ्याश्रुत क्या है ?

मिथ्याश्रुत—अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और
स्वच्छंद बुद्धि तथा मति द्वारा विरचित श्रुत
मिथ्याश्रुत है, जैसे—१. भारत, २. रामायण
३. भंभी ४. आसुरोक्त ५. कौटिलीय अर्थशास्त्र
६. शकभद्रिका ७. घोटमुख ८. कार्पासिक
९. नागसूक्ष्म १०. कनकसप्तति ११. वैशेषिक
१२. बुद्धवचन १३. वैशिक १४. कापिल
१५. लोकायत १६. षष्टितन्त्र १७. माठर
१८. पुराण १९. व्याकरण २०. नाटक आदि ।

अहवा—बावत्तरिकलाओ
चत्तारि य वेया संगोवंगा । एयाइं
मिच्छदिट्ठिस्स मिच्छत्त-परिग्ग-
हियाइं मिच्छसुयं । एयाइं चेव
सम्मदिट्ठिस्स सम्मत्त-परिग्ग-
हियाइं सम्मसुयं ।

अथवा द्विसप्ततिः कलाः चत्वा-
रश्च वेदाः साङ्गोपाङ्गाः । एतानि
मिथ्यादृष्टेः मिथ्यात्व-परिगृहीतानि
मिथ्याश्रुतम् । एतानि चैव सम्यग्दृष्टेः
सम्यक्त्व-परिगृहीतानि सम्यक्श्रुतम् ।

अथवा—बहत्तर कलाएं, अंग, उपांग और
चारों वेद । ये मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व द्वारा
परिगृहीत होने पर मिथ्याश्रुत हैं । ये सम्यक्-
दृष्टि के सम्यक्त्व द्वारा सम्यक् परिगृहीत होने
पर सम्यक्श्रुत हैं ।

अहवा—मिच्छदिट्ठिस्स वि
एयाइं चेव सम्मसुयं । कम्हा ?
सम्मत्तहेउत्तणओ । जम्हा ते
मिच्छदिट्ठिया तेहिं चेव समएहिं
चोइया समाणा केइ सपक्खदि-
ट्ठिओ चयंति । सेत्तं मिच्छ-
सुयं ॥

अथवा—मिथ्यादृष्टेरपि एतानि चैव
सम्यक्श्रुतम् । कस्मात् ? सम्य-
क्त्वहेतुत्वात् । यस्मात् ते मिथ्यादृष्ट-
यस्तैश्चैव समयैर्नोदिताः सन्तः केचित्
स्वपक्षदृष्टिः त्यजन्ति । तदेतन्मिथ्या-
श्रुतम् ।

अथवा—मिथ्यादृष्टि के भी ये सम्यक्श्रुत हो
जाते हैं । सम्यक्त्व प्राप्ति का हेतु बनते हैं ।
इसीलिए उन मिथ्याश्रुत ग्रंथों से प्रेरित होकर
कुछ मिथ्यादृष्टि अपने पक्ष की दृष्टि का
आग्रह छोड़ देते हैं । वह मिथ्याश्रुत है ।

६८. से किं तं साइयं सपज्जवसियं, अणाइयं अपज्जवसियं च? इच्चेयं दुवालसंगं गणिपिडंगं—वुच्छित्ति-नयट्ठयाए साइयं सपज्जवसियं, अवुच्छित्तिनयट्ठयाए अणाइयं अपज्जवसियं ॥

६९. तं समासओ चउठ्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ । तत्थ दव्वओ णं सम्म-मुयं एगं पुरिसं पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, बह्वे पुरिसे य पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं । खेत्तओ णं—पंचभरहाइं पंचएरव-याइं पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, पंच महाविदेहाइं पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं । कालओ णं—ओसप्पिणं उस्सप्पिणं च पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, नोओसप्पिणं नोउस्सप्पिणं च पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं । भावओ णं—जे जया जिणपण्णता भावा आघ-विज्जंति पण्णविज्जंति परू-विज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, ते तथा पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, खाओव-समियं पुण भावं पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं ॥

अह्वा—भवसिद्धियस्स सुयं साइयं सपज्जवसियं, अभवसिद्धि-यस्स सुयं अणाइयं अपज्जव-सियं ॥

७०. सव्वागासपएसगं सव्वागासपए-सेहिं अणंतगुणियं पज्जवगक्खरं निष्फज्जइ ॥

७१. सव्वजीवाणं पि य णं—अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ, जइ पुण सो वि आवरिज्जा, तेणं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा ।

अथ किं तत् सादिकं सपर्यव-सितम्, अनादिकम् अपर्यवसितञ्च ? इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं—व्युच्छित्तिनयार्थतया सादिकं सपर्यव-सितम्, अव्युच्छित्तिनयार्थतया अनादि-कमपर्यवसितम् ।

तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः । तत्र द्रव्यतः सम्यक्श्रुतं एकं पुरुषं प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितं, बहून् पुरुषान् च प्रतीत्य अनादिकम् अपर्यवसितम् । क्षेत्रतः—पञ्चभरतानि पञ्चऐरवतानि प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितं, पञ्च महाविदेहान् प्रतीत्य अनादिकम् अपर्यवसितम् । कालतः—अवसर्पिणीम् उत्सर्पिणीञ्च प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितं, नोअव-सर्पिणीं नोउत्सर्पिणीञ्च प्रतीत्य अनादिकम् अपर्यवसितम् । भावतः—ये यदा जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्या-यन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्शयन्ते निदर्शयन्ते उपदर्शयन्ते, तान् तदा प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितं, क्षायो-पशमिकं पुनः भावं प्रतीत्य अनादि-कम् अपर्यवसितम् ।

अथवा—भवसिद्धिकस्य श्रुतं सादिकं सपर्यवसितम्, अभवसिद्धिकस्य श्रुतम् अनादिकम् अपर्यवसितम् ।

सर्वाकाशप्रदेशाग्रं सर्वाकाशप्रदेशैः अनन्तगुणितं पर्यवाप्राक्षरं निष्पद्यते ।

सर्वजीवानामपि च—अक्षरस्य अनन्तभागो नित्यमुद्घाटितः, यदि पुनः सोऽपि आन्वियेत, तेन जीवो-ऽजीवत्वं प्राप्नुयात् ।

६८. वह सादि सपर्यवसित और अनादि अपर्यवसित क्या है ?

यह द्वादशाङ्ग गणिपिटक—व्युच्छित्ति नय की अपेक्षा सादि सपर्यवसित है, अव्युच्छित्ति नय की अपेक्षा अनादि अपर्यवसित है ।

६९. वह संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः । द्रव्यतः—सम्यक्श्रुत एक पुरुष की अपेक्षा सादि सपर्यवसित है । अनेक पुरुषों की अपेक्षा अनादि अपर्यवसित है ।

क्षेत्रतः—पांच भरत, पांच ऐरवत की अपेक्षा सादि सपर्यवसित है, पांच महाविदेह की अपेक्षा अनादि अपर्यवसित है ।

कालतः—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी की अपेक्षा सादि सपर्यवसित है, अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी विभाग से मुक्त काल की अपेक्षा अनादि अपर्यवसित है ।

भावतः—जिन प्रज्ञप्त जिन भावों का जब आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन, उपदर्शन होता है, उन भावों और उस समय की अपेक्षा सादि सपर्यवसित है, तथा क्षायो-पशमिक भाव की अपेक्षा अनादि अपर्यवसित है ।

अथवा—भवसिद्धिक का श्रुत सादि सपर्यवसित है, अभवसिद्धिक का श्रुत अनादि अपर्यवसित है ।^१

७०. सम्पूर्ण आकाश के प्रदेश का जो परिमाण है उसे सम्पूर्ण आकाश के प्रदेशों के अनन्त गुणा करने पर पर्यव परिमाण वाला अक्षर निष्पन्न होता है ।^१

७१. अक्षर का अनन्तवां भाग सब जीवों में नित्य उद्घाटित (अनावृत) रहता है । यदि वह आवृत हो जाए तो जीव अजीवत्व को प्राप्त हो जाता है ।

सुदृठुवि मेहसमुदए,
होइ पभा चंदसूराणं ।
सेत्तं साइयं सपज्जवसियं । सेत्तं
अणाइयं अपज्जवसियं ॥

सुष्ठ्वपि मेघसमुदये,
भवति प्रभा चन्द्रसूरयोः ।
तदेतत् सादिकं सपर्यवसितम् ।
तदेतद् अनादिकम् अपर्यवसितम् ।

सघन मेघपटल होने पर भी चन्द्र और सूर्य
की प्रभा का सर्वथा विलोप नहीं होता, कुछ न
कुछ प्रकाश बना रहता है।^६ वह सादि
सपर्यवसित है। वह अनादि अपर्यवसित है।

७२. से किं तं गमियं ? (से किं तं
अगमियं ?) गमियं दिट्ठिवाओ ।
अगमियं कालियं सुयं । सेत्तं
गमियं । सेत्तं अगमियं ॥

अथ किं तद् गमिकम् ? (अथ
किं तद् अगमिकम् ?) गमिकं दृष्टि-
वादः । अगमिकं कालिकं श्रुतम् ।
तदेतद् गमिकम् । तदेतद् अगमिकम् ।

७२. वह गमिक क्या है ? (वह अगमिक क्या है ?)
गमिक दृष्टिवाद है। अगमिक कालिकश्रुत
है।^७ वह गमिक है। वह अगमिक है।

७३. तं समासओ दुविहं पणत्तं, तं
जहा—अंगपविट्ठं, अंगबाहिरं
च ॥

तत्समासतः द्विविधं प्रज्ञप्तं,
तद्यथा—अंगप्रविष्टम्, अंगबाह्यञ्च ।

७३. वह संक्षेप में दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—
अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य।^८

टिप्पण

सूत्र ५५

१. (सूत्र ५५)

प्रस्तुत सूत्र में श्रुतज्ञान के चौदह प्रकार बतलाए गए हैं। षट्खण्डागम^१, कर्मग्रन्थ^२ (कर्म विपाक) में श्रुतज्ञान के बीस प्रकार बतलाए गए हैं। ये दोनों वर्गीकरण भिन्न-भिन्न अभिप्राय से किये गए हैं। प्रस्तुत वर्गीकरण छह हेतु सापेक्ष है। अक्षरश्रुत और अनक्षरश्रुत यह वर्ग अक्षर तथा संकेत के आधार पर होने वाले ज्ञान की अपेक्षा से किया गया है। संज्ञीश्रुत और असंज्ञीश्रुत—यह वर्ग मानसिक विकास और अविकसित मन के आधार पर किया गया है। सम्यग्श्रुत और मिथ्याश्रुत का वर्गीकरण प्रवचनकार और ज्ञाता इन दोनों के आधार पर किया गया है। सादि, अनादि, सपर्यवसित, अपर्यवसित—यह वर्गीकरण कालावधि के आधार पर किया गया है। गमिक और अगमिक—यह वर्गीकरण ग्रन्थ की रचना शैली के आधार पर किया गया है। अङ्ग और अनङ्ग यह वर्गीकरण ग्रन्थकार की दृष्टि से किया गया है।

षट्खण्डागम में श्रुतज्ञान के बीस भेद श्रुतज्ञानावरण के क्षयोपशम के आधार पर किया गए हैं।^३

श्रुतज्ञान के चौदह भेदों की अवधारणा आवश्यक निर्युक्ति^४ और नन्दी सूत्र में उपलब्ध होती है। देवेन्द्रसूरि कृत कर्म विपाक में श्रुतज्ञान के चौदह और बीस दोनों प्रकार उपलब्ध हैं।^५ इससे पूर्ववर्ती किसी भी आगम ग्रन्थ में उनका उल्लेख नहीं है। श्रुतज्ञान के बीस भेदों की अवधारणा कर्मशास्त्रीय है। श्वेताम्बर और दिग्म्बर^६ दोनों परम्पराओं के कर्मशास्त्र में बीस भेदों का उल्लेख है। षट्खण्डागम में कर्मशास्त्रीय परंपरा का अनुसरण किया गया है। नन्दी में प्राप्त चतुर्दश भेद कर्मशास्त्रीय परम्परा से भिन्न हैं। प्रतीत होता है देवेन्द्रसूरि ने अपने कर्म विपाक में नन्दी और कर्मशास्त्र दोनों परम्पराओं का समावेश किया है। उमास्वाति ने श्रुत के चौदह अथवा बीस भेदों का उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य इन दोनों का उल्लेख किया है।^७ सिद्धसेन-गणि और अकलंक ने सूत्रस्पर्शी व्याख्या की है। चौदह भेद की परम्परा का मूल आधार अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य आगम ही प्रतीत होता है।

सूत्र ५६-५९

२. (सूत्र ५६-५९)

अक्षरश्रुत—

जिसका कभी क्षरण नहीं होता वह अक्षर है। ज्ञान अनुपयोग अवस्था में (विषय के प्रति दत्तचित्ता न होने पर) भी प्रच्युत नहीं होता, इसलिए वह अक्षर है।^८ जिनभद्रगणि ने नयदृष्टि से ज्ञान के क्षर और अक्षर इस उभयात्मक स्वरूप की चर्चा की है। नैगम आदि अविशुद्ध नयों की दृष्टि में ज्ञान अक्षर है उसका प्रच्यवन नहीं होता। ऋजुसूत्र आदि नयों की दृष्टि में ज्ञान क्षर है। अनुपयोग अवस्था में उसका प्रच्यवन होता है। घट आदि अभिलाष्य पदार्थ द्रव्याधिक दृष्टि से नित्य हैं, अक्षर हैं। पर्यायाधिक दृष्टि से अनित्य हैं, क्षर हैं।^९

१. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २६०

२. कर्मग्रन्थ (कर्म विपाक), भाग १, गा. ७

३. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २६०, २६१, सू० ४७,
४८

४. आवश्यक निर्युक्ति, गा० १९

५. कर्मग्रन्थ (कर्म विपाक), भाग १, गा० ६, ७

६. गोम्मटसार जीवकाण्ड, गा० ३१६, ३१७

७. तत्त्वार्थ सूत्र, १।२०

८. नन्दी चूर्ण, पृ० ४४ : तत्थ नाणक्खरं 'क्षर संचरणे' न

क्षरतीत्यक्षरम्, न प्रच्यवते अनुपयोगेऽपीत्यर्थः, आतभा-
वत्तणतो, तं च णाणं अविसेसतो चेतनेत्यर्थः।

९. विशेषावश्यक भाष्य, गा० ४५५-४५७ :

नक्खरइ अणुवओगे वि अक्खरं सो य चेयणाभावो ।
अविसुद्धनयाण मयं सुद्धनयाणवखरं चेव ॥
उवओगे वि य नाणं सुद्धा इच्छंति जं न तव्विरहे ।
उप्पाय-भंगुरा वा जं तेसि सव्वपज्जाया ॥
अभिलप्पा वि य अत्था सव्वे दव्वट्ठियाए जं निच्चा ।
पज्जायेणानिच्चा तेण खरा अक्खरा चेव ॥

यद्यपि सकल ज्ञान अक्षर है फिर भी रूढिवशात् वर्ण को अक्षर कहा जाता है ।^१

१. संज्ञाक्षर २. व्यञ्जनाक्षर ३. लब्ध्याक्षर ।

चूर्णिकार ने अक्षर के तीन प्रकार भिन्न रूप से बतलाए हैं—१. ज्ञानाक्षर २. अभिलापाक्षर ३. वर्णाक्षर ।
भाषा विज्ञान सम्मत शब्द की तीन प्रकृतियों से इनकी तुलना की जा सकती है—

१. चक्षुर् ग्राह्य प्रकृति—लिपिशास्त्रगत रेखाएं ।
२. श्रोत्र ग्राह्य प्रकृति—उच्चारणशास्त्रगत ध्वनियां ।
३. बुद्धि ग्राह्य प्रकृति—वस्तु का अवधारक अर्थ ।

संज्ञाक्षर—

संज्ञा शब्द के अनेक अर्थ होते हैं । यहां संज्ञा का अर्थ संकेत है । अक्षर के जिस संस्थान अथवा आकृति में जिस अर्थ का संकेत स्थापित किया जाता है वह अक्षर संकेत के अनुसार ही अर्थ बोध कराता है । इस संज्ञाक्षर के आधार पर ब्राह्मी आदि सभी लिपियों का विकास हुआ है । अकार के आकार में अकार की ही संज्ञा होती है । इसी प्रकार आकार आदि सभी वर्णों में अपने अपने संस्थानों के आधार पर संज्ञा होती है । इसलिए अकार आदि अक्षरों को संज्ञाक्षर कहा गया है ।^१ चूर्णिकार ने इसे उदाहरण के द्वारा समझाया है । वृत्त और घट की आकृति वाले वर्ण को देखने पर 'ठ' की संज्ञा उत्पन्न हो जाती है ।^२ मलयगिरि ने णकार और ढकार की आकृति का निदर्शन प्रस्तुत किया है । उनके अनुसार णकार चुल्हे की आकृति वाला और ढकार कुत्ते की वक्रीभूत पूंछ की आकृति वाला है ।^३ मलधारी हेमचंद्र के अनुसार टकार अर्द्धचंद्र की आकृति वाला होता है ।^४

व्यञ्जनाक्षर—

अकारादि का उच्चारण व्यञ्जनाक्षर है । इससे अर्थ की अभिव्यञ्जना होती है । इसलिए इसका नाम व्यञ्जनाक्षर है ।^५

लब्ध्याक्षर—

इन्द्रिय और मन इस उभयात्मक विज्ञान से अक्षर का लाभ होता है उसकी संज्ञा लब्धि अक्षर है ।^६ हरिभद्र^७ और मलयगिरि^८ ने श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम और श्रुतज्ञान का उपयोग इन दोनों को लब्धि अक्षर बतलाया है ।

संज्ञा और व्यञ्जन ये दोनों प्रकार के अक्षर द्रव्यश्रुत हैं, ज्ञानात्मक नहीं हैं । ये श्रुतज्ञान के साधन हैं । लब्धि अक्षर भावश्रुत है, ज्ञानात्मक है ।

मलयगिरि ने प्रश्न उपस्थित किया है कि लब्धि अक्षर अक्षरानुविद्ध ज्ञान है इसलिए वह समनस्क जीवों के ही हो सकता है । अमनस्क जीव अक्षर को पढ़ नहीं सकते और उसके उच्चारण को समझ नहीं सकते । उनके लब्धि अक्षर संभव नहीं है । इस

१. विशेषावश्यक भाष्य, गा० ४५९ :

जइ वि हु सव्व चिय नाणमक्खरं तह वि रूढिओ वन्नो ।

भण्णइ अक्खरमिहरा न खरइ सव्वं सभावाओ ॥

२. नन्दी चूर्ण, पृ० ४४ : तस्य अक्खरं तिविहं—नाणक्खरं अभिलावक्खरं वण्णक्खरं च ।

३. वही, पृ० ४४ : सो य ब्रह्मादिलिविधाणो अणे-गविधो आगारो । तेसु अकारादिआगारेसु जम्हा अकारे अकारसण्णा एव भवति, एवं सेसेसु वि, तम्हा ते सण्णक्खरा भणिता ।

४. वही, पृ० ४४ : जहा वट्टं घडागारं दट्ठुं ठकारसण्णा उप्पज्जतीत्यर्थः ।

५. मलयगिरीया वृत्ति, पृ० १८८ : अक्षरस्याकारादेः संस्थानाकृतिः—संस्थानाकारः, तथाहि—सञ्ज्ञायतेऽनयेति सञ्ज्ञा—नाम तन्निबंधनं—तत्कारणमक्षरं संज्ञाक्षरं, संज्ञायाश्च निबंधनमाकृतिविशेषः, आकृतिविशेष एव नाम्नः करणाद् ववहरणाच्च, ततोऽक्षरस्य पट्टिकादौ संस्थापितस्य संस्थानाकृतिः संज्ञाक्षरमुच्यते, तच्च ब्राह्म्यादिलिपिभेदतोऽनेक-

प्रकारं, तत्र नागरीं लिपिमधिकृत्य किञ्चित् प्रदर्शयते—मध्ये स्फाटितचुल्लीसन्निवेशसदृशो रेखासन्निवेशो णकारो वक्री-भूतश्वपुच्छसन्निवेशसदृशो ढकार इत्यादि ।

६. विशेषावश्यक भाष्य, गा० ४६४ की वृत्ति : यथा कस्मि-श्चिल्लिपिविशेषेऽर्धचन्द्राकृतिपट्टकारः घटाकृतिष्ठकार इत्यादि ।

७. (क) नन्दी चूर्ण, पृ० ४५ : तच्चेह सर्वमेव भाष्यमाणं अकारादि हकारान्तम् अर्थाभिव्यञ्जकत्वाच्छब्दस्य । तमेवं अक्खरं अत्थाभिव्यञ्जकं वंजणक्खरं भवति ।

(ख) हरिभद्राया वृत्ति, पृ० ५९

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, पृ० १८८

८. नन्दी चूर्ण, पृ० ४५ : अक्खरलद्धी जस्सऽत्थि तस्स इंदिय-मणोभयविण्णातो इह जो अक्खरलाभो उप्पज्जति तं लद्धिअक्खरं ।

९. हरिभद्राया वृत्ति, पृ० ५९ : लब्धिः—क्षयोपशमः उपयोग इत्यर्थः ।

१०. मलयगिरीया वृत्ति, पृ० १८८

प्रश्न पर उन्होंने एक विमर्श प्रस्तुत किया है—जिनभद्रगणि ने पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय जीवों में भावश्रुत स्वीकार किया है^१ और वह शब्द और अर्थ की पर्यालोचना से होने वाला विज्ञान है। शब्दार्थ का पर्यालोचन अक्षर के बिना नहीं हो सकता। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि अमनस्क जीवों के अव्यक्त अक्षर लाभ होता है। उससे अमनस्क जीवों में अक्षरानुषक्त श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। इस तथ्य की पुष्टि के लिए आहार आदि की अभिलाषा की चर्चा की गई है। अभिलाषा का अर्थ है 'मुझे वह वस्तु मिले' यह अभिलाषा अक्षरानुविद्ध होती है इसलिए एकेन्द्रिय आदि अमनस्क जीवों में अव्यक्त अक्षर लब्धि अवश्य स्वीकार्य है।^१

प्रज्ञापना^१ में प्रतिपादित भाषा विज्ञान और आधुनिक विज्ञान के प्रकंपन की दृष्टि से लब्धि अक्षर पर नयी दृष्टि से विचार किया जा सकता है। एकेन्द्रिय आदि अमनस्क जीव ध्वनि के प्रकंपनों को पकड़ लेते हैं और उन्हें अव्यक्त अक्षर के रूप में बदल देते हैं। इसे फेक्स मशीन की प्रक्रिया से भी समझा जा सकता है।

सूत्र ६०

३. (सूत्र ६०)

अनक्षरश्रुत—

श्रुत शब्द में श्रवण और श्रोत्रेन्द्रिय की विवक्षा मुख्य है। उच्छ्वास, निःश्वास आदि से जो ज्ञान होता है वह अनक्षरश्रुत है। वस्तुतः वह द्रव्यश्रुत है, श्रुतज्ञान का कारण है।^१

विशिष्ट अभिप्रायपूर्वक उच्छ्वास, निःश्वास आदि का प्रयोग होता है तब वह श्रुतज्ञान का कारण बनता है।

एकेन्द्रिय जीवों में भाषा नहीं होती। वे अपनी बात दूसरों तक प्रकंपनों के माध्यम से पहुंचाते हैं। द्वीन्द्रिय जीवों से भाषा का प्रारम्भ होता है। त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय सब भाषा का प्रयोग करते हैं। इनकी भाषा अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक दोनों प्रकार की होती है। अक्षर और लिपि की व्यवस्था मनुष्य ने की। कीट, पतंगों और पशु पक्षियों के पास अक्षर और लिपि की व्यवस्था नहीं है। स्थानाङ्ग में भाषा शब्द के दो प्रकार बतलाए गए हैं^१—

१. अक्षर संबद्ध—वर्णात्मक

२. नोअक्षर संबद्ध—वर्ण रहित।

ध्वला में अक्षर के तीन भेद इस प्रकार हैं^१—

१. लब्धि अक्षर—ज्ञानावरण का क्षायोपशमिक भाव।

२. निर्वृत्ति अक्षर—अक्षर का उच्चारण—इसकी तुलना व्यञ्जनाक्षर से होती है। निर्वृत्ति अक्षर के दो प्रकार हैं—
व्यक्त और अव्यक्त।^१

अमनस्क पर्याप्त पञ्चेन्द्रिय का अक्षर व्यक्त होता है। अव्यक्त अक्षर द्वीन्द्रिय से लेकर अमनस्क पर्याप्त पञ्चेन्द्रिय तक होता है।

१. विशेषावश्यक भाष्य, गा० १०३ :

जह सुहुमं भाविदियनाणं दाँव्वदियावरोहे वि ।

तह दव्वसुयाभावे भावसुयं पत्थिवाईणं ॥

२. मलयगिरीया वृत्ति, प० १८८

३ उवंगमुत्ताणि, पण्णवणा, पद ११

४. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा० ५०२ की वृत्ति :

इहोच्छ्वसिताद्यनक्षरश्रुतं द्रव्यश्रुतमात्रमेवाऽवगन्तव्यम्,
शब्दमात्रत्वात्; शब्दश्च भावश्रुतस्य कारणमेव, यच्च
कारणं तद् द्रव्यमेव भवतीति भावः। भवति च
तथाविधोच्छ्वसित-निःश्वसितादिश्रवणे 'सशांकोऽयं'
इत्यादि ज्ञानम्। एवं विशिष्टाभिसन्धिपूर्वकनिष्ठयूत-
कासितश्रुतादिश्रवणेऽप्यात्मज्ञापनादिज्ञानं वाच्य-
मिति। अथवा, श्रुतज्ञानोपयुक्तस्यात्मनः सर्वात्म-

नवोपयोगात् सर्वोऽप्युच्छ्वसितादिको व्यापारः श्रुत-
मेवेह प्रतिपत्तव्यम्, इत्युच्छ्वसितादयः श्रुतं
भवन्त्येवेति।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, प० ६० : एतदुच्छ्वसितादि
अनक्षरश्रुतमिति। सेण्टनं सेण्टितम्, तत् सेण्टितं
चानक्षरश्रुतमिति। इदं चोच्छ्वसितादि द्रव्यश्रुत-
मात्रम्।

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प० १८९

५. ठाणं, २।२१३

६ षट्खण्डागम, पुस्तक १३, प० २६४ : लद्धिअक्खरं
णिव्वत्तिअक्खरं संठाणक्खरं चेदि तिविहमक्खरं।

७. वही, प० २६५ : णिव्वत्तिअक्खरं वत्तमवत्तं चेदि वुविहं।

३. संस्थान अक्षर—इसकी तुलना संज्ञाक्षर से की जाती है। धवलाकार के अनुसार केवल लब्ध्याक्षर ही ज्ञानाक्षर है। इसकी न्यूनतम मात्रा सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक में मिलती है। इसका उत्कर्ष चतुर्दश पूर्वधर में मिलता है।^१

जहाँ जीव का वाक् प्रयत्न हो और भाषा वर्णात्मक न हो, वह नोअक्षरात्मक बन जाती है। उच्छ्वास, निःश्वास वाक् प्रयत्न से उत्पन्न नहीं है। अतः भाषात्मक नहीं हैं फिर भी श्रुतज्ञान के कारण हैं इसलिए इन्हें अनक्षर श्रुत माना गया है। अकलंक ने अक्षर श्रुत और अनक्षर श्रुत की संयोजना अनुमान, उपमान आदि के साथ की है। उनके अनुसार स्वार्थानुमान—स्वप्रतिपत्ति के काल से अनक्षर श्रुत होता है। परार्थानुमान—दूसरे के लिए प्रतिपादन के काल में अक्षर श्रुत होता है। इसी प्रकार उपमान प्रमाण भी अक्षर श्रुत और अनक्षर श्रुत दोनों प्रकार का होता है।^२

सूत्र ६१-६४

४. (सूत्र ६१-६४)

संज्ञीश्रुत—

आगम साहित्य में संज्ञा शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है।^३ प्रस्तुत प्रकरण में संज्ञा का अर्थ है मनोविज्ञान। एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक सभी जीवों में दस संज्ञाएं होती हैं। वे संज्ञाएं यहां विवक्षित नहीं हैं। जिनमें ईहा, अपोह आदि की शक्ति है, जिनमें इष्ट के लिए प्रवृत्त और अनिष्ट से निवृत्त होने की क्रिया है, जिनमें अनेकांतवाद का संज्ञान है उन्हें संज्ञी माना गया है। एकेन्द्रिय जीवों में इष्ट के लिए प्रवृत्त और अनिष्ट से निवृत्त होने की क्रिया नहीं होती, इसलिए वे असंज्ञी की कोटि में परिगणित हैं।

एकेन्द्रिय जीव में होनेवाला स्वल्प मनोविज्ञान यहां विवक्षित नहीं है।^४

संज्ञा के तीन प्रकार निरूपित हैं—

१. कालिकी
२. हेतूपदेशिकी
३. दृष्टिवादोपदेशिकी

१. कालिकी संज्ञा—

कालिकी संज्ञा मानस ज्ञान का विकसित रूप है। इस संज्ञा का अधिकारी गर्भज पञ्चेन्द्रिय जीव होता है। औपपातिक देव और नारक भी इसका अधिकारी होता है। कालिकी संज्ञा मनुष्य में सर्वाधिक विकसित होती है। उसकी अपेक्षा गर्भज पशु-पक्षी आदि, मनुष्य, उपपातज देव और नारक संज्ञी—समनस्क होते हैं।^५

प्रस्तुत आगम में मन के अर्थ में नोइन्द्रिय और कालिकी संज्ञा दो शब्दों का प्रयोग मिलता है।^६ चूर्णिकार के अनुसार कालिकी लब्धि से सम्पन्न प्राणी मनोवर्गणा के अनन्त परमाणुओं का ग्रहण कर मनन करता है, जैसे—चक्षुष्मान व्यक्ति को प्रदीप के प्रकाश में स्फुट अर्थ की उपलब्धि होती है वैसे ही मन के विकास से अर्थ की उपलब्धि स्पष्ट होती है। मानसिक प्रकाश के अभाव में अर्थ की उपलब्धि मंद, मंदतर होती चली जाती है।^७

१. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ० २६५ : संपहि लद्धिअक्खरं जहणं सुहुमणिगोदलद्धिअपज्जत्तयस्य होदि, उक्कस्सं चोद्दसपुब्बिस्स ।

२. तत्त्वार्थवातिक १।२०, पृ० ७८ : तदेतत्त्रितयमपि स्वप्रतिपत्तिकाले अनक्षरश्रुतं परप्रतिपादनकाले अक्षरश्रुतम् । यथा गौस्तथा गवयः केवलं सास्नारहितः इत्युपमानमपि स्वपरप्रतिपत्तिविषयत्वाक्षरानक्षरश्रुते अन्तर्भवति ।

३. (क) ठाणं, १०।७४, १०५

(ख) नवसुत्ताणि, नंदी, सूत्र ५४, गा० ६

४. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा० ५०६, ५०७ :

थोवा न सोहणा वि य जं सा तो नाहिकीरए इहइं ।
करिसावणेण धणवं न रूववं मुत्तिमेत्तेण ॥
जह बहुदब्बो धणवं पसत्थरूवो य रूववं होइ ।
महई च सोहणाए य तह सण्णी नाणसण्णाए ॥

(ख) नन्दी चूर्ण, पृ० ४५

(ग) हारिभद्राया वृत्ति, पृ० ६१

५. नंदी चूर्ण, पृ० ४६ : जस्स सण्णा भवति सो आदिपदलोवातो कालिओवदेसेणं सण्णीत्यर्थः ।

६. नवसुत्ताणि, नंदी, सू० ४२, ४४, ४६, ४८, ६२

७. नन्दी चूर्ण, पृ० ४६

द्रष्टव्य यंत्र—

प्राणी

गर्भज पञ्चेन्द्रिय
सम्पूर्णच्छिन्न पञ्चेन्द्रिय
चतुरिन्द्रिय
त्रीन्द्रिय
द्वीन्द्रिय
एकेन्द्रिय

अर्थोपलब्धि का प्रकार

विशुद्धतर
अविशुद्ध
अविशुद्धतर
उससे अविशुद्धतर
उससे अविशुद्धतर
अविशुद्धतम^१

चूर्णिकार की व्याख्या का आधार जिनभद्रगणि का विशेषावश्यक भाष्य है।^१

सूत्रकार ने कालिकी संज्ञा के छः कार्य बतलाए हैं—ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा, चिंता और विमर्श।

१. ईहा—शब्द आदि अर्थ के विषय में अन्वय और व्यतिरेक धर्मों का विचार करना, जैसे—यह क्या है।
२. अपोह—व्यतिरेक धर्म का परित्याग कर अन्वयी धर्म का अवधारण करना, अवाय, निश्चय, जैसे—यह खम्भा है।
३. मार्गणा—विशेष धर्म का अन्वेषण करना। मधुर और गंभीर ध्वनि के कारण यह शब्द शंख का है।
४. गवेषणा—स्वभावजन्य, प्रयोगजन्य, नित्य, अनित्य आदि का विचार करना गवेषणा है।
५. चिंता—यह कार्य कैसे करना चाहिए? इस प्रकार का चिंतन करना।
६. विमर्श—त्याज्य धर्म का परित्याग व उपादेय धर्म के ग्रहण के प्रति अभिमुख होना।

चूर्णिकार ने ईहा आदि के वैकल्पिक अर्थ भी किए हैं।^१ हरिभद्र^२ और मलयगिरि^३ की व्याख्या चूर्णिकार की व्याख्या से भिन्न रूप में उपलब्ध है।

चरक में मन के पांच कार्य निर्दिष्ट हैं—

१. चिन्त्य
२. विचार्य
३. ऊह्य
४. ध्येय
५. संकल्प्य।

इन्द्रिय और मन

प्रस्तुत आगम में इंद्रिय प्रत्यक्ष के प्रकरण में मन विवक्षित नहीं है।^४ अर्थावग्रह आदि के प्रकरण में मन का उल्लेख है। नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष में अवधि आदि अतीन्द्रिय ज्ञान विवक्षित है। अर्थावग्रह आदि के प्रकरण में मन के लिए नोइन्द्रिय शब्द का प्रयोग किया गया है।^५

नोइन्द्रिय शब्द का प्रयोग अतीन्द्रिय ज्ञान और मन दोनों के अर्थ में किया गया है। अतीन्द्रिय अर्थ में नोइन्द्रिय का प्रयोग है उसका अर्थ है अतीन्द्रिय ज्ञान। मन के अर्थ में नोइन्द्रिय का अर्थ है आंशिक इंद्रिय।

आगम साहित्य में बहुत बार संज्ञी और असंज्ञी शब्द का उल्लेख मिलता है। यह विभाग कालिकी संज्ञा के आधार पर किया गया है। जिस जीव में कालिकी संज्ञा का विकास होता है वह संज्ञी—समनस्क है। जिस जीव में कालिकी संज्ञा का विकास नहीं है वह असंज्ञी—अमनस्क है।^६ कालिकी संज्ञा के द्वारा अतीत की स्मृति, वर्तमान का चिंतन और भविष्य की कल्पना—इन तीनों कालखण्डों का ज्ञान होता है। इसलिए इसे दीर्घकालिकी संज्ञा भी कहा गया है।

१. मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १९०

२. विशेषावश्यक भाष्य, गा० ५१० :

कालिसणि त्ति तओ जस्स तई सो य जो मणोजोग्गे
खंधेणंते घेत्तुं मन्नइ तल्लद्धिसंपण्णो ॥
रूवे जहोवलद्धी चक्खमओ दंसिए पयासेण ।
तह छव्विहोवओगो मणदव्वपयासिए अत्थे ॥

३. नन्दी चूर्ण, पृ० ४६

४. हरिभद्राया वृत्ति, पृ० ६९

५. मलयगिरीया वृत्ति, पृ० १९०

६. आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान, पृ० १४३, चरकशारीरक १।२०

७. नवसुत्ताणि, नंदी, सू. ५

८. वही, सू. ४२

९. नन्दी चूर्ण, पृ. ४६

तत्त्वार्थ भाष्य में कालिकी संज्ञा के स्थान पर सम्प्रधारण संज्ञा का प्रयोग किया गया है। सम्प्रधारण संज्ञा आलोचनात्मक ज्ञान है।^१ इंद्रिय का बोध केवल वर्तमान अर्थ का बोध है। कालिकी संज्ञा सर्वार्थग्राही है। इंद्रिय केवल अपने-अपने प्रतिनियत विषय का बोध करती है इसलिए कालिकी संज्ञा इंद्रिय कोटि का ज्ञान नहीं है। यह संज्ञा इंद्रियों के द्वारा गृहीत अर्थों का संकलनात्मक ज्ञान करती है। इस निर्भरता के कारण इसे आंशिक इंद्रिय, नोइंद्रिय और अतीन्द्रिय भी कहा गया है।^२ इस प्रकार जैन साहित्य में मन के लिए कालिकी संज्ञा दीर्घकालिकी संज्ञा, सम्प्रधारण संज्ञा, नोइंद्रिय, अनिन्द्रिय और छठी इंद्रिय^३ इतने शब्दों का प्रयोग मिलता है।

२. हेतूपदेशिकी संज्ञा

यह मानसिक चेतना से निम्नस्तर की चेतना का विकास है, कालिकी संज्ञा कैकालिक होती है। हेतूपदेशिकी संज्ञा प्रायः वर्तमान कालिक होती है। कहीं-कहीं अतीत और अनागत का चिन्तन भी होता है किन्तु दीर्घकालिक चिन्तन नहीं होता।^४

हेतूपदेशिकी संज्ञा के विकास में अभिसंधारण—अव्यक्त चिन्तन होता है, इसलिए इस संज्ञा वाले जीव अपनी क्रियात्मक शक्ति में अव्यक्त चिन्तन का प्रयोग करते हैं। वे चितनपूर्वक आहार आदि इष्ट विषयों में प्रवृत्त होते हैं और अनिष्ट विषयों से निवृत्त होते हैं।^५

हेतूपदेशिकी संज्ञा के आधार पर जीवों के संज्ञी और असंज्ञी ये दो विभाग किए गए हैं—जिस जीव में अभिसंधारणपूर्वक क्रिया शक्ति होती है, वह हेतूपदेशिकी संज्ञा की दृष्टि से संज्ञी है,^६ जैसे—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और समुच्छिन्न पञ्चेन्द्रिय जीव। जिस जीव में अभिसंधारणपूर्वक क्रिया शक्ति नहीं होती वह हेतूपदेशिकी संज्ञा की दृष्टि से असंज्ञी है। पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों की चेतना मत्त, मूर्च्छित और विष परिणत चेतना तुल्य होती है। वे इष्ट के लिए प्रवृत्त और अनिष्ट से निवृत्त होने में समर्थ नहीं होते।^७

३. दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा

संज्ञी और असंज्ञी का तीसरा वर्गीकरण दृष्टि अथवा दर्शन के आधार पर किया गया है। इसके अनुसार सम्यक्दृष्टि जीव

१. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्, २।२५ का भाष्य : सम्प्रधारण-संज्ञायां संज्ञिनो जीवाः समनस्का भवन्ति । सर्वे नारकदेवा गर्भव्युत्क्रान्तयश्च मनुष्यास्तिर्यग्योनिजाश्च केचित् । ईहा-पोहयुक्ता गुणदोषविचारणात्मिका सम्प्रधारणसंज्ञा । तां प्रति संज्ञिनो विवक्षिताः । अन्यथा ह्याहार-भय-मैथुन-संज्ञाभिः सर्व एव जीवाः संज्ञिन इति ।

२. तत्त्वार्थभाष्यानुसारिणी, पृ. १७२ : अनिन्द्रियं मनोऽभिधीयते रूपग्रहणादावस्वतन्त्रत्वादसम्पूर्णत्वादानुदरकन्यावत्, इन्द्रियकार्याकरणाद्वाप्युत्पन्नव्यपदेशवत् ।

३. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ४६ : जहा चक्षुमतो पदीवादिप्प-गासेण फुडा रूवोवलद्वी भवति तहा मण खयोवस-मलद्धिमतो मणोदवपगासेण मणोछट्ठोहि इंदिएहि फुडमत्थं उवलभतीत्यर्थः ।

(ख) तत्त्वार्थभाष्यानुसारिणी, पृ. १७६ : यथा च रूपोप-लब्धिश्चक्षुष्मतः प्रदीपादिप्रकाशपृष्ठेन तद्वत् क्षयो-पशमलब्धिमतो मनोद्वयप्रकाशपृष्ठेन मनःषष्ठैरिन्द्रियै-रर्थोपलब्धिः ।

४. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा. ५१६ :
पाएण संपए चिचय कालम्मि न याइदीहकालण्णा ।
ते हेउवायसण्णी निच्चेट्टा होंति अस्सण्णी ॥

(ख) नन्दी चूर्ण, पृ० ४७

(ग) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ६१

(घ) मलयगिरीया वृत्ति, प० १९०

५. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा. ५१५ :

जे पुण संचितेउं इट्टा-णिट्ठेसु विसयवत्थूसु ।

वट्ठंति निवट्ठंति य सदेहपरिपालणाहेउं ॥

(ख) नन्दी चूर्ण, पृ. ४७ : तच्च अभिसंधारणं संचित्य संचित्य इट्ठेसु विसयवत्थूसु आहारादिसु प्रवत्तंते, अणिट्ठेसु य णियत्तंते । एवं सदेहपरिपालणहेतो पवत्तंति ।

(ग) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ६१

(घ) मलयगिरीया वृत्ति, प. १९०, १९१

६. (क) नन्दी चूर्ण, पृ० ४७

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ६१ : अभिसंधारणम्—
अव्यक्तेन विज्ञानेनाऽऽलोचनं तत्पूर्विका-तत्कारणिका
करणशक्तिः—क्रियाशक्तिः ।

७. नन्दी चूर्ण, पृ. ४७ : ते विकलेंदिया सम्मुच्छिमपंचेंदिया या हेतुवायसण्णी भणिता, ते पडुच्च असण्णी जे णिच्चेट्ठा इट्टा-ऽणिट्ठविसयविणियट्टवावारा मत्त-मुच्छिय-विसोवयु-त्ताविसारिच्छचेतणट्टिता पुडवादिएंगदिया ।

संज्ञी और मिथ्यादृष्टि जीव असंज्ञी होते हैं। मिथ्यात्व मोहनीय और श्रुतज्ञानावरण के क्षयोपशम से संज्ञीश्रुत की प्राप्ति होती है।^१ मिथ्यात्व मोहनीय के उदय और श्रुताज्ञानावरण के क्षयोपशम से असंज्ञीश्रुत की प्राप्ति होती है। संज्ञी का श्रुत संज्ञीश्रुत असंज्ञी का श्रुत असंज्ञीश्रुत कहलाता है।^२

जैसे कुत्सित शील को अशील कहा जाता है वैसे ही मिथ्यात्व से कुत्सित होने के कारण संज्ञी को असंज्ञी कहा गया है। मिथ्यात्व के कारण उसका ज्ञान भी अज्ञान कहलाता है।^३

उक्त तीनों संज्ञाओं के आधार पर संज्ञी असंज्ञी का विभाग इस प्रकार होता है—

संज्ञा	संज्ञी	असंज्ञी
हेतुवादोपदेशिकी	द्वीन्द्रिय से सम्मूर्च्छिम पञ्चेन्द्रिय	एकेन्द्रिय
कालिक्युपदेशिकी	समनस्क पञ्चेन्द्रिय	सम्मूर्च्छिम प्राणी
दृष्टिवादोपदेशिकी	सम्यक्दृष्टि	मिथ्यादृष्टि

सूत्र ६५-६७

५. (सूत्र ६५-६७)

सम्यक्श्रुत और मिथ्याश्रुत के विभाग के दो आधार हैं—१. ग्रंथकार २. स्वामित्व।

केवली द्वारा प्रणीत श्रुत सम्यक्श्रुत है। मिथ्यादृष्टि द्वारा रचित श्रुत मिथ्याश्रुत है।

स्वामित्व की अपेक्षा द्वादशांग श्रुत चतुर्दशपूर्वी के लिए सम्यक्श्रुत है।^४ चूर्णिकार और मलयगिरि ने त्रयोदशपूर्वी, द्वादशपूर्वी, एकादशपूर्वी इन अन्तरालवर्ती पूर्वधरों का भी उल्लेख किया है।^५

जिनभद्रगणि ने अङ्गबाह्य श्रुत को भी सम्यक्श्रुत बतलाया है। यह उत्तरकालीन विकास है।^६

अभिन्न दशपूर्वधर से नीचे आचारांग तक के सभी श्रुत स्थान सम्यक्दृष्टि स्वामी के लिए सम्यक्श्रुत है, मिथ्यादृष्टि स्वामी के लिए मिथ्याश्रुत है।^७

प्रस्तुत आगम में अङ्गबाह्य आगमों का विवरण दिया हुआ है फिर भी उसका सम्यक्श्रुत के प्रकरण में उल्लेख नहीं है। हरिभद्र ने जिनभद्रगणि का अनुसरण किया है।^८

चूर्णिकार ने सम्यक्श्रुत और मिथ्याश्रुत के चार विकल्प बताए हैं—

१. सम्यक्श्रुत—सम्यक्दृष्टि के लिए सम्यक्श्रुत सम्यक्श्रुत है।

१. नन्दी चूर्ण, पृ. ४७ : मिच्छत्तस्स सुतावरणस्स य खयो-
वसमेणं कतेणं सण्णिसुतस्स लंभो भवति ।

२. वही, पृ. ४७ : तं खयोवसमियभावत्थं समद्विट्ठिं सण्णि
पडुच्च मिच्छाद्विट्ठिं असण्णी भणितो । सो य मिच्छत्तस्सु-
दयतो अस्सण्णी भवति, तस्स सुतं असण्णिसुतं । तं च
सुतअण्णाणावरणखयोवसमेणं लंभति ।

३. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा. ५२० :

जह दुव्वयणमवयणं कुच्छियसीलं असीलमसईए ।

भण्णइ तह नाणं पि हु मिच्छद्विट्ठिस्स अण्णाणं ॥

(ख) नन्दी चूर्ण, पृ. ४८

(ग) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ६१

४. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा. ५३४ :

चोहस दस य अभिन्ने नियमा सम्मं तु सेसए भयणा ।

मइ-ओहीविवज्जासे वि होइ मिच्छं न उण सेसे ॥

५. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ४९ : जो चोहसपुव्वी तस्स सामादि-
यादि बिदुसारपज्जवसाणं सव्वं नियमा सम्मसुतं,
ततो ओमत्थगपरिहाणीए जाव अभिण्णदसपुव्वी

एताण वि सामाइयादि सव्वं सम्मसुतं सम्मगुणत्तणतो
चेव भवति ।

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. १९३

६. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ५२७

अंगा-णंगपविट्ठं सम्मसुयं लोइयं तु मिच्छसुयं ।

आसज्ज उ सामित्तं लोइय-लोउत्तरे भयणा ॥

७. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ४९ : तेण परं ति अभिण्णदसपुव्वे-

हितो हेट्ठा ओमत्थगपरिहाणीए जाव सामादितं ताव

सव्वे सुतट्ठाणा सामिसम्मगुणत्तणतो सम्मसुतं भवति,

ते चेव सुतट्ठाणा सामिमिच्छगुणत्तणतो मिच्छसुतं

भवति ।

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, प. १९३

८. हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ६४

९. नन्दी चूर्ण, पृ. ५० : सम्मसुतं सम्मद्विट्ठिणो सम्मसुतं चेव १।

सम्मसुतं मिच्छद्विट्ठिणो मिच्छसुतं २ । मिच्छसुतं

सम्मद्विट्ठिणो सम्मसुतं ३ । मिच्छसुतं मिच्छद्विट्ठिणो

मिच्छसुतं ४ ।

२. सम्यक्श्रुत—मिथ्यादृष्टि के लिए सम्यक्श्रुत मिथ्याश्रुत है ।

३. मिथ्याश्रुत—सम्यक्दृष्टि के लिए मिथ्याश्रुत सम्यक्श्रुत है ।

४. मिथ्याश्रुत—मिथ्यादृष्टि के लिए मिथ्याश्रुत मिथ्याश्रुत है ।

द्वितीय और चतुर्थ विकल्प साक्षात् निर्दिष्ट है । शेष दो विकल्प चूर्णिकार द्वारा निर्दिष्ट है ।

श्रुत सम्यक् है उसका अध्येता सम्यक्दृष्टि है वह अपने सम्यक्त्व गुण के कारण सम्यक्श्रुत को सम्यक् रूप में ग्रहण करता है । यह प्रथम विकल्प का आशय है ।

दूसरे विकल्प का आशय यह है कि शर्करा युक्त दूध पित्त ज्वर वाले व्यक्ति के लिए अनुकूल नहीं होता जैसे ही मिथ्यादृष्टि सम्यक्श्रुत को मिथ्यात्व के कारण मिथ्या रूप में परिणत कर लेता है । इसलिए सम्यक्श्रुत उसके लिए मिथ्या हो जाता है ।

सम्यक्दृष्टि मनुष्य मिथ्याश्रुत का सम्यक् रूप में ग्रहण करता है अतः उसके लिए मिथ्याश्रुत सम्यक्श्रुत बन जाता है ।

मिथ्या अभिनिवेश के कारण मिथ्याश्रुत मिथ्यादृष्टि के लिए मिथ्या ही रहता है । मिथ्याश्रुत के ग्रंथों की जानकारी के लिए द्रष्टव्य अणुओगदाराइं सू. ४९ का टिप्पण ।

सूत्र ६८, ६९

६. (सूत्र ६८, ६९)

प्रस्तुत आलापक में द्वादशाङ्गी के कालमान पर नय दृष्टि से विचार किया गया है । जैन दर्शन प्रत्येक ग्रंथ को पौरुषेय मानता है । पुरुषकृत कोई भी रचना अनादि अनंत नहीं हो सकती । इस सत्य को व्युच्छित्तिनय की दृष्टि से स्वीकार किया गया है । द्वादशाङ्गी का प्रतिपाद्य है सत्य अथवा अस्तित्व । सत्य त्रैकालिक, नित्य होता है । वह कभी विलुप्त नहीं होता । अव्युच्छित्तिनय की दृष्टि से उसे अनादि अपर्यवसित माना गया है ।

उत्तरवर्ती जैन दार्शनिकों ने वेद के अपौरुषेयत्व का निरसन किया है । किन्तु अव्युच्छित्ति और व्युच्छित्तिनय की दृष्टि से अपौरुषेयत्व और पौरुषेयत्व का समन्वय किया जा सकता है ।^१

द्रव्य की दृष्टि से—

एक पुरुष की अपेक्षा श्रुत के सादि सपर्यवसित होने के अनेक हेतु हो सकते हैं । जिनभद्रगणि ने इसके पांच हेतु बतलाए हैं, नदी चूर्णिकार और टीकाकारों ने भी उनका अनुसरण किया है^२—

१. मिथ्यादर्शन में गमन
२. भवान्तर में गमन
३. केवलज्ञान की उत्पत्ति
४. रोग
५. प्रमाद अथवा विस्मृति ।

क्षत्र की दृष्टि से—

महाविदेह में श्रुत की निरंतरता रहती है उसकी अपेक्षा द्वादशाङ्ग अनादि अपर्यवसित है ।

काल की दृष्टि से—

काल की अपेक्षा महाविदेह में उत्सर्पिणी अवसर्पिणी का विभाग नहीं होता । इस अपेक्षा से नोउत्सर्पिणी नोअवसर्पिणी में द्वादशाङ्ग अनादि अपर्यवसित है ।

भाव की दृष्टि से—

भाव की अपेक्षा भगवान महावीर ने द्वादशाङ्ग के अर्थ का प्रज्ञापन जिस काल—पूर्वाह्न, अपराह्न, दिन, रात में किया, वह

१. स्याद्वादमंजरी, पृ. ९८, ९९

२. (क) विशेषावश्यक भाष्य, गा. ५४०

मिच्छ-भवंतर-केवल-नेलन्त-पमायमाइणा नासो ।

आह किमत्थं नासड किं जीवाओ तयं भिण्णं ॥

(ख) नन्दी चूर्ण, पृ. ५१ : सपज्जवसाणं देवलोगगमणातो,

गेलण्णतो वा णट्ठे, पमादेण वा, केवलणाणुप्पत्तितो वा, मिच्छादंसणगमणतो वा सपज्जवसाणं ।

(ग) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ६६

(घ) मलयगिरीया वृत्ति, प. १९६

द्वादशाङ्ग का आदि है। और प्रवचन की सम्पन्नता का काल उसका पर्यवसान है। प्रज्ञापनीय भाव की अपेक्षा से भी द्वादशाङ्ग सादि सपर्यवसित होता है। जिनभद्रगणि ने इसके अनेक हेतु बतलाए हैं। प्रज्ञापक की अपेक्षा द्वादशाङ्ग सादि सपर्यवसित होता है।

जिनभद्रगणि ने उसके चार हेतु बतलाए हैं—

२. श्रुत का उपयोग
२. स्वर, ध्वनि
३. प्रयत्न—तालु आदि का व्यापार
४. आसन।

ये प्रज्ञापक के भाव—पर्याय बदलते रहते हैं। इस परिवर्तन की अपेक्षा द्वादशाङ्ग को सादि सपर्यवसित कहा जा सकता है। व्याख्या ग्रन्थों में इनका ही अनुसरण किया गया है।^१

क्षायोपशमिक भाव नित्य है। उसकी अपेक्षा द्वादशाङ्ग अनादि अपर्यवसित है।

भवसिद्धिय—जिसमें सिद्ध होने की योग्यता हो।

अभवसिद्धिय—जिसमें सिद्ध होने की योग्यता न हो।

सूत्र ७०

७. (सूत्र ७०)

प्रस्तुत प्रकरण में अक्षर के दो प्रकार विवक्षित हैं—१. ज्ञान २. अकार आदि लिप्यक्षर।

केवलज्ञान का उत्पन्न होने के बाद क्षरण नहीं होता इसलिए वह अक्षर है। ज्ञान और ज्ञेय में पारस्परिक संबंध है। इसलिए ज्ञान ज्ञेय प्रमाण होता है।^१

प्रस्तुत सूत्र में अक्षर अथवा केवलज्ञान का प्रमाण ज्ञेय के आधार पर समझाया गया है। आकाश के एक प्रदेश में अगुरुलघु-पर्याय अनन्त होते हैं। लोकाकाश और अलोकाकाश दोनों को मिलाकर आकाश के प्रदेश अनन्त हैं। सब आकाश प्रदेशों को सब पर्यायों से अनन्त गुणित करने पर जो प्रमाण प्राप्त होता है वह पर्याय का प्रमाण होता है।^२

∴ एक आकाश प्रदेश=अनन्त अगुरुलघुपर्याय

∴ सर्व आकाश प्रदेश=सर्वाकाश × अनन्त अगुरुलघुपर्याय

=सर्वाकाश पर्याय

=अक्षर

कल्पना करें सर्वजीव राशि २ है

२ × २ = ४ सर्व पुद्गल द्रव्य

४ × ४ = १६ सर्वकाल

१६ × १६ = २५६ सर्वाकाश श्रेणि

२५६ × २५६ = ६५५३६ धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय द्रव्य का अगुरुलघु गुण

६५५३६ × ६५५३६ = ४२९४९६७२९६ एक जीव का अगुरुलघुगुण

४२९४९६७२९६ × ४२९४९६७२९६ = १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ सूक्ष्म निगोद लब्धपर्याय का लब्धक्षर ज्ञान

एक-एक आकाश प्रदेश में जितने अगुरुलघुपर्याय होते हैं उन सबको एकत्र पिण्डित करने पर इतने पर्याय होते हैं। अक्षर

१. विशेषावश्यक, भाष्य गा, ५४७ :

उवओग-सर-पयत्ता थाणविसेसा य होंति पण्णवए ।

गइ-ट्ठाण-भेय-संघाय-वण्ण-सद्दाइ भावेसु ॥

२. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ५२

(ख) हारिभद्रोया वृत्ति, पृ. ६७

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. १९८

३. (क) प्रवचनसार, १।२३ :

आदा णाणपमाणं णाणं णेयप्पमाणमुद्दिठं ।

णेयं लोद्यालोयं तम्हा णाणं तु सव्वगयं ॥

(ख) नन्दी चूर्ण, पृ. ५२ : तं च केवलं णेये पवत्तइ, तस्स

वि परिमाणं इमेणं चेव विधिणा भाणितव्वं ।

४. नन्दी चूर्ण, पृ. ५२

अथवा केवलज्ञान का परिमाण इतना ही होता है ।^१ अक्षर पटल के विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—नन्दी चूर्ण, पृ. ५२-५५

सूत्र ७१

द. (सूत्र ७१)

अक्षर के तीन प्रकार हैं—

१. ज्ञानाक्षर

२. ज्ञेयाक्षर

३. व्यञ्जनाक्षर, स्वराक्षर अथवा वर्णाक्षर ।

अकारादि स्वर है । ककार आदि व्यञ्जनाक्षर है । उनसे अर्थ अभिव्यक्त होता है । स्वरयुक्त व्यञ्जनों के द्वारा अर्थ का अभिलाप किया जाता है इसलिए उनकी संज्ञा वर्णाक्षर है । प्रत्येक अक्षर के अनन्त पर्याय हैं ।^२ उदाहरणस्वरूप अकार के अठारह पर्याय—

१. उदात्त निरनुनासिक ह्रस्व

२. अनुदात्त निरनुनासिक ह्रस्व

३. स्वरित निरनुनासिक ह्रस्व

४. उदात्त सानुनासिक ह्रस्व

५. अनुदात्त सानुनासिक ह्रस्व

६. स्वरित सानुनासिक ह्रस्व

७. उदात्त निरनुनासिक दीर्घ

८. अनुदात्त निरनुनासिक दीर्घ

९. स्वरित निरनुनासिक दीर्घ

१०. उदात्त सानुनासिक दीर्घ

११. अनुदात्त सानुनासिक दीर्घ

१२. स्वरित सानुनासिक दीर्घ

१३. उदात्त निरनुनासिक प्लुत

१४. अनुदात्त निरनुनासिक प्लुत

१५. स्वरित निरनुनासिक प्लुत

१६. उदात्त सानुनासिक प्लुत

१७. अनुदात्त सानुनासिक प्लुत

१८. स्वरित सानुनासिक प्लुत ।

ये अठारह स्वपर्याय हैं, शेष सब परपर्याय हैं । आकाश को छोड़कर सब द्रव्यों के परपर्याय अनन्तगुना होते हैं । आकाश के स्वपर्याय से परपर्याय अनन्तवें भाग प्रमाण होते हैं ।

ज्ञानाक्षर, वर्णाक्षर और ज्ञेयाक्षर तीनों अनन्त हैं ।^१ प्रस्तुत सूत्र में अक्षर का प्रयोग ज्ञानात्मक ही विवक्षित है । उसका अनन्तवां भाग सदा उद्घाटित (अनावृत) रहता है । यही जीव और अजीव की भेदरेखा का निर्माण करता है ।

केवलज्ञान का कोई विभाग नहीं होता इसलिए ज्ञान के विकास का अनन्तवां भाग उससे संबद्ध नहीं है । अवधिज्ञान की

१. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ५२ : पञ्जाया णाम-एककेकस्सा-
SSगासपदेसस्स जावंतो अगुरुलहुयादी पञ्जवा ते पण्णाए
सव्वे सींपींडिताणं जं अगं एतप्पमाणं अक्खरं लब्भति ।

(ख) विशेषावश्यक भाष्य, गा. ४७७ से ५००

(ग) बृहत्कल्प भाष्य, भाग १, पृ. २२ से २५

(घ) हारिभद्राया वृत्ति, पृ. ६८

(ङ) मलयगिरीया वृत्ति, प. १९८, १९९

२. नन्दी चूर्ण, पृ. ५४, ५५ : एत्थ अकारस्स अकारजाती-
सामण्णतो सपञ्जाया अट्ठारस, सेसा परपञ्जाया, एवं
संखेज्जा पञ्जाया । अहवा अकारादिसरा ककारादिवंजणा
केवला अण्णसहिता वा जं अभिलावं लभे स तस्स सपञ्जायो,
सेसा तस्स परपञ्जाया, ते य सव्वे वि अणंता ।

३. वही, पृ. ५५ : नाणक्खरं अकारादिअक्खरं णेयअक्खरं
च तिण्णि वि अणंताऽभिहिता ।

प्रकृति असंख्येय है इसलिए ज्ञान के विकास का अनन्तवां भाग उससे संबद्ध नहीं है। मनःपर्यव ज्ञान का भी वह संभव नहीं हो सकता। अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान नित्य उद्घाटित नहीं रहते। इसलिए प्रस्तुत प्रकरण में उनका अधिकार नहीं है। शेष दो ज्ञान रहते हैं—मति और श्रुत। श्रुतज्ञानात्मक अक्षर का अनन्तवां भाग उद्घाटित रहता है। श्रुत और मति दोनों सहचारी हैं।

चूर्णिकार की व्याख्या विशेषावश्यक भाष्य पर आधारित है। उसके अनुसार केवलज्ञान को छोड़कर जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट ये तीन भेद होते हैं। केवलज्ञान सर्वथा भेद विमुक्त है।^१ इसलिए प्रस्तुत प्रकरण में अक्षर का तात्पर्यार्थ श्रुताक्षर है।

विशेषावश्यक भाष्य में मतांतर का उल्लेख किया है। उसके अनुसार अक्षर का संबंध श्रुतज्ञान और केवलज्ञान दोनों से है।^२

यह मत षट्खण्डागम में उपलब्ध है। उसके अनुसार लब्ध्यक्षर ज्ञान अक्षरसंज्ञक केवलज्ञान का अनन्तवां भाग है।^३

सापेक्ष दृष्टि से दोनों मतों का सामञ्जस्य किया जा सकता है। सामान्य ज्ञान के केवलज्ञान आदि विभाग करें तो लब्ध्यक्षर का संबंध श्रुतज्ञान और मतिज्ञान से होता है। यदि सामान्य ज्ञान को केवलज्ञान माने तो लब्ध्यक्षर को केवलज्ञान का अनन्तवां भाग मानने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

ज्ञान का अनन्तवां भाग सदा उद्घाटित रहता है। इसका तात्पर्य है कि एकेन्द्रिय जीव में सर्व जघन्य ज्ञान चैतन्य मात्र सदा अनावृत रहता है। उत्कृष्ट स्त्यानद्धि निद्रा का उदय होने पर भी उसका ज्ञान-दर्शन आवृत नहीं होता। इस अनावृत अवस्था के आधार पर ही जीव का जीवत्व सुरक्षित रहता है। अनावृत रहना जीव द्रव्य का स्वभाव है इसलिए इस स्वभाव का अतिक्रमण नहीं होता। सूत्रकार ने एक दृष्टांत के द्वारा इसे स्पष्ट किया है—आकाश सघन बादलों से आच्छादित हो गया है फिर भी चांद और सूर्य की प्रभा मेघपटल को भेदकर द्रव्यों को अवभासित करती है, दिन और रात का भेद भी बना रहता है। इसी प्रकार आत्मा का प्रत्येक प्रदेश ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के अनन्त पुद्गल स्कंधों से आवेष्टित, परिवेष्टित है। फिर भी ज्ञान का अनन्तवां भाग कर्मावरण पटल का भेदन कर अवभासित रहता है। अनावृत ज्ञान के विकास का क्रम इस प्रकार है, देखें यंत्र—

पृथ्वीकाय जीव	सर्वजघन्य ज्ञानाक्षर
अपकाय जीव	अनन्त भाग विशुद्धतर ज्ञानाक्षर
तेजस्काय जीव	” ”
वायुकाय जीव	” ”
वनस्पतिकाय जीव	” ”
द्वीन्द्रिय जीव	” ”
त्रीन्द्रिय जीव	” ”
चतुरिन्द्रिय जीव	” ”
असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव	” ”
संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव	” ”

प्रस्तुत आगम में पर्यवाग्र का वर्णन है। उसकी तुलना के लिए द्रष्टव्य षट्खण्डागम पुस्तक १३ पृ० २६२ से २६५।

आवश्यकनिर्युक्ति में श्रुतज्ञान की प्रकृतियों पर विचार किया गया है। जितने अक्षर और जितने अक्षर संयोग होते हैं उतनी ही श्रुतज्ञान की प्रकृतियां हैं।

निर्युक्तिकार ने विनम्रता के साथ कहा—“श्रुतज्ञान की सब प्रकृतियों का वर्णन करना मेरी शक्ति से परे है।”^४ जिनभद्रगणि ने इसके रहस्य का उद्घाटन किया है। उन्होंने लिखा कि संयुक्त और असंयुक्त वर्णों के अनंत संयोग होते हैं और प्रत्येक संयोग के स्व और परपर्याय अनंत होते हैं।^५

षट्खण्डागम में श्रुतज्ञानावरण की संख्येय प्रकृतियां बतलाई गई हैं।^६

१. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ४९७ :

तत्स उ अणंतभागो निच्चुगघाडो य सव्वजीवाणं ।
भणियो सुयम्मि केवलिवज्जाणं तिविहभेओ वि ॥

२. वही, गा. ४९६ :

अविसेसियं पि सुत्ते अक्खरपज्जायमाणमाड्ढं ।
सुय-केवलक्खराणं एवं दोण्हं पि न विरुद्धं ॥

३. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २६३ : तं पुण लद्धिअक्खरं
अक्खरसण्णिदस्स केवलणाणस्स अणंतिमभागो ।

४. आवश्यकनिर्युक्ति, गा. १७, १८

५. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ४४५ से ४४८

६. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २४७

धवलाकार ने अक्षरों की संख्या पर विस्तार से विचार किया है।^१

ये अक्षर संयोग विश्व की समस्त भाषाओं की आधारभूमि बनते हैं। कैलाशचंद्र शास्त्री ने इस विषय में विशेष अनुसंधान की आवश्यकता बतलाई है।^२

सूत्र ७२

६. (सूत्र ७२)

पाठ रचना शैली के आधार पर आगम श्रुत के दो विभाग किए गए हैं—

१. गमिक

२. अगमिक।

गम के दो अर्थ होते हैं—

१. भङ्ग, गणित

२. सदृश पाठ।

जो रचना भङ्ग प्रधान अथवा सदृश पाठ प्रधान होती है उसकी संज्ञा गमिक है। इसका प्रतिपक्षा अगमिक है।^३ चूर्णिकार और वृत्तिकारों ने गमिक का अर्थ सदृश पाठ प्रधान रचना शैली किया है। उनके अनुसार आदि, मध्य और अवसान में कुछ विशिष्ट पाठ होता है और शेष पाठ की पुनरावृत्ति अनेक बार होती है। इस शैली का प्रयोग प्रायः दृष्टिवाद में होता है। अगमिक की रचना शैली विसदृश होती है। आचारांग आदि कालिक सूत्र में उस शैली का प्रयोग किया गया है।^४

अगमिक श्रुत में भी क्वचित्-क्वचित् सदृशपाठ की रचना शैली उपलब्ध है। उसका प्रयोग विशेष प्रयोजनवश हुआ है।^५

नंदी सूत्र ८१ में चूर्णिकार तथा वृत्तिकारों ने बतलाया है—अभिधान और अभिधेय के कारण गम होते हैं। उन्होंने उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया है।^६

सूत्र ७३

१०. (सूत्र ७३)

श्रुत के चौदह भेदों का विभाग एक साथ हुआ या कालक्रम से हुआ? श्रुत के ये चौदह भेद संकलित हैं या फिर किसी एक कर्त्ता के द्वारा इनका वर्गीकरण किया गया है? यह सब अनुसंधेय है। इस विषय में स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध नहीं है। द्वादशाङ्ग

१. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २४९

२. जैन साहित्य का इतिहास, पूर्व पीठिका, पृ. ६२१-६२४

३. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ५४९ :

भंगगणियाइ गमियं जं सरिसगमं च कारणवसेण ।

गाहाइ अगमियं खलु कालियसुयं दिट्ठिवाए वा ॥

४. (क) नंदी चूर्ण, पृ. ५६ : आदि-मज्झ-उवसाने वा किञ्चिविसेसजुत्तं सुत्तं दुगादिसतगसो तमेव पढिज्ज-माणं गमियं भण्णति, तं च एवंविहमुस्सणं दिट्ठिवातो । अण्णोण्णक्खराभिधानट्ठितं जं पढिज्जति तं अगमियं, तं च प्रायसो आयारादि कालियसुतं ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ६९ : इहाऽऽदि-मध्यावसानेषु किञ्चिद् विशेषतः पुनस्तत्सूत्रोच्चारणलक्षणो गमः, ...अगमिकं तु प्रायो गाथाद्यसमानग्रन्थत्वात् कालिकश्रुतमाचारादि ।

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. २०३

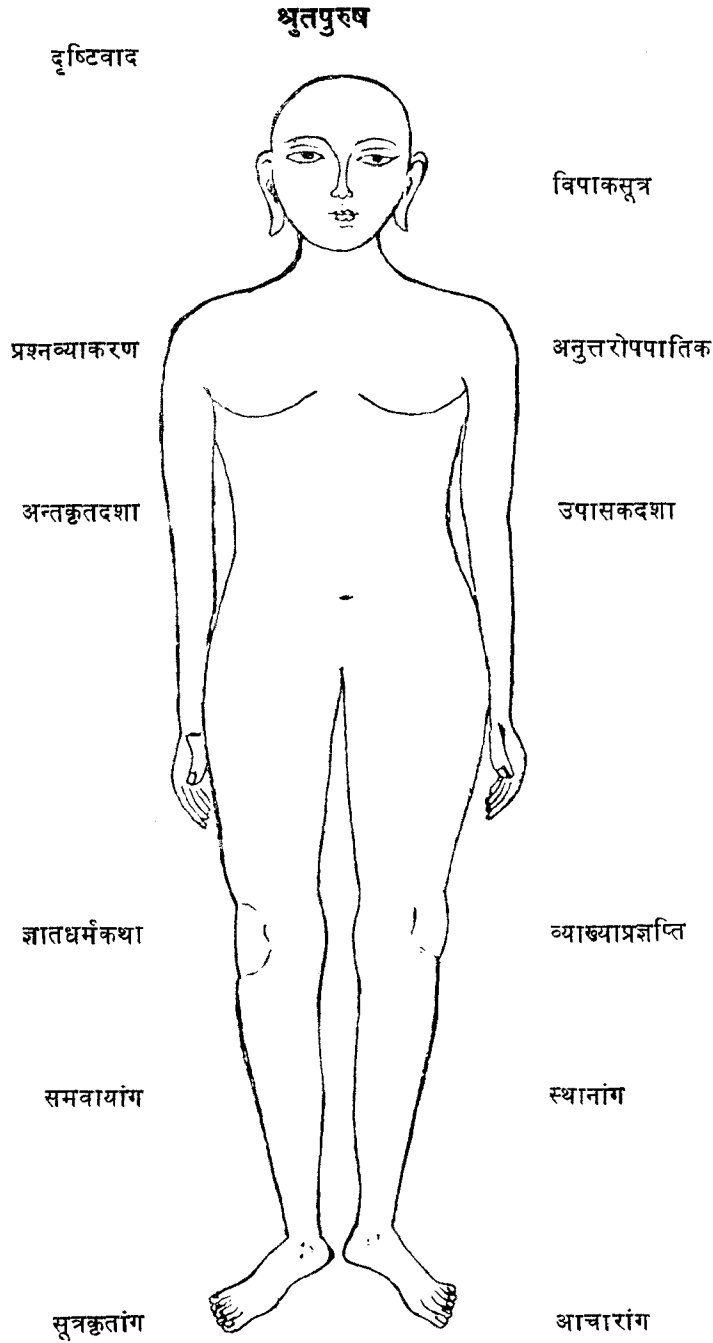
५. द्रष्टव्य, बृहत्कल्प भाष्य, १४३ की वृत्ति

६. (क) नंदी चूर्ण, पृ. ६२ : अभिधानभिधेयवसतो गमा भवंति, ते य अणंता इमेण विधिणा—सुतं मे आउसं तेणं भगवता, तं सुतं मे आउसं, तं हि सुतं मे आ०, आ सुतं मे आ०, तं सुतं मया आ०, तदा सुतं मदा आ०, तं हि सुतं मया आ०, एवमादिगमेहि भण्णमाणं अणंतगमं ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ७७ : अन्ये तु व्याचक्षते—अभिधानाऽभिधेयवसतो गमा इति, ते चानन्ताः, ते पुनरनेन विधिना अवसेयाः, तद्यथा—सुयं मे आउसं! तेणं भगवया, आउसंतेणं भगवया, सुयं मे आउसंपदा, सुयं मे आउसं तं हि, सुयं मे आउसं, आउसं सुयं मे, आसुयं मया, तं सुयं मया, आ तथा सुयं मया, आ तं हि सुयं मया आ, एवमादिभिर्भण्यमानं किलानन्तगममिति ।

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. २१२

के साथ गणिपिटक और श्रुतपुरुष ये दो प्रयोग मिलते हैं। गणिपिटक के बारह अङ्ग हैं अथवा बारह अङ्गवाला आगम गणिपिटक है। दोनों प्रकार से अनुप्रेक्षा की जा सकती है। श्रुतपुरुष की कल्पना उत्तरवर्ती है। इसमें पुरुष के बारह अंगों पर आगम के बारह अंगों का न्यास किया गया है।^१



आगम साहित्य में द्वादशाङ्ग का उल्लेख सूत्रकृत^१, स्थानाङ्ग^२, समवायाङ्ग^३, भगवती^४, उपासकदशा^५ तथा उत्तराध्ययन^६ में

१. नन्दी चूर्ण, पृ. ५७ :

पायदुगं जंघोरू गातदुगद्धं तु दो य बाहूयो ।

गीवा सिरं च पुरिसो बारसअंगो सुतविसिट्ठो ॥

२. सूयगडो, २।१३५

३. ठाणं, १०।१०३

४. समवाओ, १।२, प्रकीर्णकसमवाय, सू. ८८, ९२, १३१ (से १३४)

५. भगवई, १६।९१, २०।७५, २५।९६।

६. अंगमुत्ताणि, भाग ३, उपासकदशाओ, २।४६, ६।२९

७. उत्तरज्झयणाणि, भाग २, २४।३

मिलता है।

जिनभद्रगणि ने अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य के भेदकारक हेतु बतलाए हैं—

अङ्गप्रविष्ट	अङ्गबाह्य
१. अङ्गप्रविष्ट आगम गणधर के द्वारा रचित है।	१. अङ्गबाह्य आगम स्थविर के द्वारा रचित हैं।
२. गणधर द्वारा प्रश्न किए जाने पर तीर्थङ्कर द्वारा प्रतिपादित होता है।	२. प्रश्न पूछे बिना तीर्थङ्कर द्वारा प्रतिपादित होता है।
३. शाश्वत सत्त्यों से संबंधित होता है और सुदीर्घकालीन होता है।	३. चल होता है—तात्कालिक या सामयिक होता है।

चूर्णिकार ने एक गाथा उद्धृत की है। उसका तात्पर्य भी यही है—

गणहरकतमंगगतं जं कत थेरेहि बाहिरं तं च ।

णियतं वंगपविट्टं अणियतमुत बाहिरं भणितं ॥

उमास्वाति ने अङ्गबाह्य के कर्ता और उद्देश्य दोनों का निरूपण किया है। उनके अनुसार अङ्गबाह्य के रचनाकार आचार्य गणधर की परम्परा में होते हैं उनका आगम ज्ञान अत्यन्त विशुद्ध होता है। वे परम प्रकृष्ट वाक्, मति, बुद्धि और शक्ति से अन्वित होते हैं। वे काल, संहनन, आयु की दृष्टि से अल्पशक्ति वाले शिष्यों पर अनुग्रह कर जो रचना करते हैं वह अङ्गबाह्य है।^१

आगम रचना के विषय में पूज्यपाद, अकलंक, वीरसेन और जिनसेन का अभिमत भी ज्ञातव्य है। पूज्यपाद के अनुसार आगम के वक्ता तीन होते हैं—

१. सर्वज्ञ — तीर्थङ्कर अथवा अन्यकेवली

२. श्रुतकेवली

३. आरातीय (उत्तरवर्ती) आचार्य ।

सर्व तीर्थङ्कर ने अर्थागम का प्रतिपादन किया। आरातीय आचार्यों ने कालदोष से प्रभावित आयु, मति, बल को ध्यान में रखकर अङ्गबाह्य आगमों की रचना की।^२

अङ्गबाह्य आगम की रचना के विषय में अकलंक का अभिमत पूज्यपाद जैसा ही है।^३ वीरसेन ने अङ्गबाह्य के रचनाकार के रूप में इन्द्रभूति गौतम का उल्लेख किया है।^४ जिनसेन के अनुसार अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य का अर्थ महावीर ने बतलाया और उन दोनों की रचना गौतम गणधर ने की।^५

अङ्गबाह्य आगम की रचना के विषय में प्रमुख मत तीन हैं—

१. भगवान महावीर के द्वारा अर्थ रूप में प्रतिपादन और गणधरों द्वारा उनकी रचना।

२. इन्द्रभूति गौतम द्वारा अङ्गबाह्य की रचना।

३. आरातीय आचार्यों द्वारा अङ्गबाह्य की रचना।

दशवैकालिक आदि अङ्गबाह्य आगम के रचनाकार श्रुतकेवली हैं, गणधर नहीं हैं। प्रज्ञापना, अनुयोगद्वारा आदि अङ्गबाह्य आगम रचना की भी यही स्थिति है। इसलिए जिनभद्रगणि, पूज्यपाद और अकलंक का अभिमत अधिक प्रासंगिक है। क्वचित्-क्वचित् अङ्गबाह्य आगम की रचना के साथ तीर्थंकर और गणधर का उल्लेख भी मिलता है।

१. विशेषावश्यक भाष्य, गा. ५५०

गणहरथेरकयं वा आएसा मुक्कवागरणओ वा ।

धुव-चलविसेसओ वा अंगाणंगेसु नाणत्तं ॥

२. नन्दी चूर्ण, पृ. ५७

३. तत्त्वार्थाधिगम सूत्रम्, १।२० का भाष्य : गणधरानन्तर्यादि-भिस्त्वत्यन्तविशुद्धागमैः परमप्रकृष्टवाङ्मतिबुद्धिशक्ति-भिराचार्यैः कालसंहननायुर्दोषादल्पशक्तीनां शिष्याणामनु-ग्रहाय यत् प्रोक्तं तदङ्गबाह्यमिति ।

४. सर्वार्थसिद्धि, पृ. ८७ : त्रयोवक्तरः—सर्वज्ञस्तीर्थंकर इतरौ वा श्रुतकेवली आरातीयश्चेति ।

५. वही, पृ. ८७ : आरातीयैः पुनराचार्यैः कालदोषात्संक्षिप्ता-

युर्मतिबलशिष्यानुग्रहार्थं दशवैकालिकाद्युपनिबद्धम् ।

तत्प्रमाणमर्थतस्तदेवेदमिति क्षीरार्णवजलं घटगृहीतमिव ।

६. तत्त्वार्थवातिक, भाग १, १।२०, पृ. ७८

७. षट्खण्डागम, पुस्तक ९, पृ. १५९ : गोदमगोत्तेण ब्रह्मणेण इन्द्रभूदिण। आधार.....दिद्विवादाणां.....मंगबज्ज्ज्ञाणं च.....रयणा कदा ।

८. हरिवंश पुराण, सर्ग २।१०१, १११ :

अंगप्रविष्टतत्त्वार्थं प्रतिपाद्य जिनेश्वरः ।

अंगबाह्यमवोचत्तत्प्रतिपाद्यार्थरूपतः ॥

अथ सप्तद्विसम्पन्नः श्रुत्वार्थं जिनभाषितम् ।

द्वादशाङ्गश्रुतस्कन्धं सोपाङ्गं गौतमो व्यधात् ॥

पांचवां प्रकरण
(सूत्र ७४-१२७)

आमुख

प्रस्तुत प्रकरण में आगम सूत्रों की लम्बी तालिका प्राप्त है। आगम के मुख्य दो वर्ग हैं—अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य। अङ्ग-प्रविष्ट का वर्णन समवाओ में प्राप्त है।^१ अङ्गबाह्य का विवरण उसमें नहीं है। स्थानाङ्ग में अङ्गबाह्य का संक्षिप्त उल्लेख है—
“श्रुतज्ञान के दो प्रकार हैं—

१. अङ्गप्रविष्ट

२. अङ्ग बाह्य।

अङ्गबाह्य दो प्रकार का है—

१. आवश्यक

२. आवश्यकव्यतिरिक्त।

आवश्यक व्यतिरिक्त दो प्रकार का है—

१. कालिक—जो दिन-रात के प्रथम और अन्तिम प्रहर में ही पढ़ा जा सके।

२. उत्कालिक—जो अकाल के सिवाय सभी प्रहरों में पढ़ा जा सके”।^२

तत्त्वार्थसूत्र में अङ्गबाह्य के तेरह ग्रन्थों का उल्लेख है।^३ कषायपाहुड में चौदह ग्रन्थों का उल्लेख है।^४ प्रस्तुत आगम में अङ्गबाह्य आगमों की तालिका सबसे बड़ी है। व्यवहार सूत्र में क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्ति, महतीविमानप्रविभक्ति, अङ्गचूलिका, वर्ग-चूलिका, व्याख्याचूलिका, अरुणोपपात, वरुणोपपात, गरुडोपपात, धरणोपपात, वैश्रमणोपपात, वेलंधरोपपात, उत्थानश्रुत, समुत्थान-श्रुत, देवेन्द्रोपपात, नागपर्यापिनिका—इनका उल्लेख है।^५ शेष आगम ग्रन्थों के नाम प्रस्तुत आगम (नदी) में ही मिलते हैं।

द्वादशाङ्गी के ग्यारह अङ्ग वर्तमान में उपलब्ध हैं। दृष्टिवाद वर्तमान में अनुपलब्ध है। उसकी अनुपलब्धि विशाल ज्ञान राशि के विलोप का हेतु बन गई। चौदह पूर्व उपलब्ध नहीं रहे किन्तु उनके कुछ अंश उपलब्ध रहे, उनका समावेश अङ्गों अथवा अन्य ग्रन्थों में हो गया। बहुत सारे आगम ग्रन्थों तथा उत्तरवर्ती ग्रन्थों में पूर्वों से उद्धृत अथवा निर्यूढ होने का उल्लेख मिलता है। दृष्टिवाद का विवरण उपलब्ध है उसके आधार पर दृष्टिवाद की रूपरेखा तैयार की जा सके तो बहुत बड़ा कार्य हो सकता है, किन्तु उसके लिए बहुत श्रम, अनुसंधान और समय की अपेक्षा है। किन्तु यह कार्य अक्षयकरणीय है। प्रस्तुत आगम (नदी) और उसके व्याख्या ग्रन्थ द्वादशाङ्गी की रूपरेखा को तैयार करने में काफी उपयोगी हो सकते हैं।

१. समवाओ, प्रकीर्णक समवाय, ८८ से १३४

२. ठाणं, २।१०४ से १०६

३. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्, १।२०

४. कषायपाहुड, पृ. २५

५. नवसुत्ताणि, ववहारो, १०।३० से ३२

अंगवाह्य ^१		अंगवाह्य— कषायपाहृड ^२		तत्त्वार्थसूत्र ^३
↓		↓		
१. आवश्यक	२. आवश्यकव्यतिरिक्त	१. सामायिक	२. चतुर्विंशतिस्तव	१. सामायिक
↓	↓	३. वंदना	३. वंदना	३. वंदन
१. सामायिक		४. प्रतिक्रमण	४. प्रतिक्रमण	४. प्रतिक्रमण
२. चतुर्विंशति		५. वैतयिक	५. वैतयिक	५. कायव्युत्सर्ग
३. वंदना		६. कृतिकर्म	६. कृतिकर्म	६. प्रत्याख्यान
४. प्रतिक्रमण	कालिक	७. दशवैकालिक	७. दशवैकालिक	७. दशवैकालिक
५. कायोत्सर्ग	१. उत्तराध्ययन	८. उत्तराध्ययन	८. उत्तराध्ययन	८. उत्तराध्ययन
६. प्रत्याख्यान	२. दशा	९. कल्प्यव्यवहार	९. कल्प्यव्यवहार	९. दशा
	३. कल्प	१०. कल्प्याकल्प्य	१०. कल्प्याकल्प्य	१०. कल्प
	४. व्यवहार	११. महाकल्प्य	११. महाकल्प्य	११. व्यवहार
	५. निशीथ	१२. पुंडरीक	१२. पुंडरीक	१२. निशीथ
	६. महानिशीथ	१३. महापुंडरीक	१३. महापुंडरीक	१३. ऋषिभाषित
	७. ऋषिभाषित	१४. निषिद्धिका	१४. निषिद्धिका	
	८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति			
	९. द्वीपसागरप्रज्ञप्ति			
	१०. चन्द्रप्रज्ञप्ति			
	११. क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्ति			
	१२. महतीविमानप्रविभक्ति			
	१३. अंगचूलिका			
	१४. वर्गचूलिका			
	१५. व्याख्याचूलिका			
	१६. अरुणोपपात			
	१७. वरुणोपपात			
	१८. गरुडोपपात			
	१९. धरणोपपात			
	२०. वैश्रमणोपपात			
	२१. वेलन्धरोपपात			
	२२. देवेन्द्रोपपात			
	२३. उत्थानश्रुत			
	२४. समुत्थानश्रुत			
	२५. नागपर्यापनिका			
	२६. निरयावलिका			
	२७. कल्पवत्सिका			
	२८. पुष्पिका			
	२९. पुष्पचूलिका			
	३०. वृष्णिदशा			

१. नवसुत्तानि, नंदी, सूत्र ७४-७८

२. कषायपाहृड, पृ. २५

३. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्, १।२०

पाचवां प्रकरण द्वादशांग विवरण

मूल पाठ

संस्कृत छाया

हिन्दी अनुवाद

७४. से किं तं अंगबाहिरं ? अंगबाहिरं
दुविहं पणत्तं, तं जहा—आवस्सयं
च, आवस्सयवइरित्तं च ॥

अथ किं तद् अंगबाह्यम् ?
अंगबाह्यं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—
आवश्यकञ्च, आवश्यकव्यति-
रिक्तञ्च ।

७४. वह अंगबाह्य क्या है ?
अंगबाह्य दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—
आवश्यक और आवश्यकव्यतिरिक्त ।

७५. से किं तं आवस्सयं ? आवस्सय
द्विविहं पणत्तं, तं जहा—
सामाइयं, चउवीसत्थओ, वंदणयं,
पडिक्कमणं, काउस्सगो, पच्च-
क्खाणं । सेत्तं आवस्सयं ॥

अथ किं तद् आवश्यकम् ?
आवश्यकं षड्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—
सामायिकं, चतुर्विंशस्तवः, वन्दनकं,
प्रतिक्रमणं, कायोत्सर्गः प्रत्याख्यानम् ।
तदेतद् आवश्यकम् ।

७५. वह आवश्यक क्या है ?
आवश्यक छह प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—
१. सामायिक २. चतुर्विंशस्तव ३. वन्दना ४.
प्रतिक्रमण ५. कायोत्सर्ग ६. प्रत्याख्यान । वह
आवश्यक है ।

७६. से किं तं आवस्सयवइरित्तं ?
आवस्सयवइरित्तं दुविहं पणत्तं, तं
जहा—कालियं च, उक्कालियं
च ॥

अथ किं तद् आवश्यकव्यति-
रिक्तम् ? आवश्यकव्यतिरिक्तं
द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—कालिकञ्च,
उत्कालिकञ्च ।

७६. वह आवश्यकव्यतिरिक्त क्या है ?
आवश्यकव्यतिरिक्त दो प्रकार का प्रज्ञप्त है,
जैसे—कालिक और उत्कालिक ।

७७. से किं तं उक्कालियं ?
उक्कालियं अणेगविहं पणत्तं, तं
जहा—१. दसवेयालियं २. कप्पि-
याकप्पियं ३. चुल्लकप्पसुयं ४.
महाकप्पसुयं ५. ओवाइयं ६.
रायपसेणि (णइ) यं ७. जीवा-
भिगमो (जीवाजीवाभिगमे ?)
८. पणवणा ९. महापणवणा
१०. पमायप्पमायं ११. नन्दी १२.
अणुओगदाराइं १३. देविदत्थओ
१४. तन्दुलवेयालियं १५. चंदग-
विज्जभयं १६. सूरपणत्ती १७.
पोरिसिमंडलं १८. मंडलपवेसो
१९. विज्जाचरणविणिच्छओ २०.
गणिविज्जा २१. भाणविभत्ती
२२. मरणविभत्ती २३. आयवि-
सोही २४. वीयरामसुयं २५.
संलेहणामुयं २६. विहारकप्पो
२७. चरणविही २८. आउरपच्च-

अथ किं तद् उत्कालिकम् ?
उत्कालिकम् अनेकविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा
—१. दशवैकालिकं २. कल्पिका-
कल्पिकं ३. क्षुल्लकल्पश्रुतं ४. महाकल्प-
श्रुतम् ५. औपपातिकं ६. राजप्रसेनिकं
७. जीवाभिगमः (जीवाजीवाभिगमः ?)
८. प्रज्ञापना ९. महाप्रज्ञापना
१०. प्रमादाप्रमादं ११. नन्दी
१२. अनुयोगद्वाराणि १३. देवेन्द्र-
स्तवः १४. तन्दुलवैचारिकं १५. चन्द्र-
कवेध्यकः १६. सूरप्रज्ञप्तिः १७. पौरुषी-
मंडलं १८. मंडलप्रवेशः १९. विद्या-
चरणविनिश्चयः २०. गणिविद्या
२१. ध्यानविभक्तिः २२. मरण-
विभक्तिः २३. आत्मविशोधिः
२४. वीतरागश्रुतं २५. संलेखनाश्रुतं
२६. विहारकल्पः २७. चरणविधिः
२८. आतुरप्रत्याख्यानं २९. महा-
प्रत्याख्यानम् । तदेतद् उत्कालिकम् ।

७७. वह उत्कालिक क्या है ?
उत्कालिक अनेक प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—
१. दशवैकालिक २. कल्पिकाकल्पिक ३.
क्षुल्लकल्पश्रुत ४. महाकल्पश्रुत ५. औप-
पातिक ६. राजप्रसेनिक ७. जीवाभिगम
(जीवाजीवाभिगम ?) ८. प्रज्ञापना ९. महा-
प्रज्ञापना १०. प्रमादाप्रमाद ११. नन्दी १२.
अनुयोगद्वार १३. देवेन्द्रस्तव १४. तन्दुल-
वैचारिक १५. चंद्रकवेध्यक १६. सूर्यप्रज्ञप्ति
१७. पौरुषीमण्डल १८. मण्डलप्रवेश १९.
विद्याचरणविनिश्चय २०. गणिविद्या २१.
ध्यानविभक्ति २२. मरणविभक्ति २३. आत्म-
विशोधि २४. वीतरागश्रुत २५. संलेखनाश्रुत
२६. विहारकल्प २७. चरणविधि २८. आतु-
रप्रत्याख्यान २९. महाप्रत्याख्यान । वह
उत्कालिक है ।

कखाणं २६. महापञ्चकखाणं । सेत्तं
उक्कालियं ॥

७८. से किं तं कालियं ? कालियं
अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा—१.
उत्तराध्ययणाइं २. दसाओ ३.
कप्पो ४. ववहारो ५. निसीहं ६.
महानिसीहं ७. इसिभासियाइं ८.
जंबूद्वीवपण्णत्ती ९. दीवसागर-
पण्णत्ती १०. चंदपण्णत्ती ११.
खुड्डियाविमाणपविभत्ती १२.
महल्लियाविमाणपविभत्ती १३.
अंगचूलिया १४. वगचूलिया १५.
वियहचूलिया १६. अरुणोववाए
१७. वरुणोववाए १८. गरुलोव-
वाए १९. धरणोववाए २०. वेस-
मणोववाए २१. वेल्धरोववाए
२२. देविदोववाए २३. उट्ठाण-
सुयं २४. समुट्ठाणसुयं २५.
नागपरियावणियाओ २६. निरया-
वलियाओ २७. कप्पवडंसियाओ
२८. पुष्पियाओ २९. पुष्पचूलि-
याओ ३०. वण्हदसाओ ॥

७९. एवमाइयाइं चउरासीइं पइण्ण-
गसहस्साइं भगवओ अरहओ
उसहसामिस्स आइतित्थयरस्स ।
तहा संखिज्जाइं पइण्णगसहस्साइं
मज्झिममाणं जिणवराणं । चोहस
पइण्णगसहस्साणि भगवओ
वद्धमाणसामिस्स ।

अहवा—जस्स जत्तिया सीसा
उप्पत्तियाए, वेणइयाए, कम्मयाए,
पारिणामियाए—चउव्विहाए
बुद्धीए उववेया, तस्स तत्तियाइं
पइण्णगसहस्साइं । पत्तेयबुद्धावि
तत्तिया चेव । सेत्तं कालियं ।
सेत्तं आवस्सयवइरित्तं । सेत्तं
अणंगपविट्ठं ॥

८०- से किं तं अंगपविट्ठं ? अंग-
पविट्ठं दुवालसविहं पण्णत्तं, तं
जहा—आयारो, सूयगडो, ठाणं,

अथ किं तत्कालिकम् ? कालिकं
अनेकविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—
१. उत्तराध्ययनानि २. दशाः ३. कल्पः
४. व्यवहारः ५. निशीथं ६. महा-
निशीथं ७. ऋषिभाषितानि ८. जम्बू-
द्वीपप्रज्ञप्तिः ९. द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः
१०. चन्द्रप्रज्ञप्तिः ११. क्षुल्लिका-
विमानप्रविभक्तिः १२. महतीविमान-
प्रविभक्तिः १३. अंगचूलिका
१४. वर्गचूलिका १५. व्याख्याचूलिका
१६. अरुणोपपातः १७. वरुणोपपातः
१८. गरुडोपपातः १९. धरणोपपातः
२०. वैश्रमणोपपातः २१. वेल्ध-
रोपपातः २२. देवेन्द्रोपपातः
२३. उत्थानश्रुतं २४. समुत्थानश्रुतं
२५. नागपर्यापनिकाः २६. निर-
यावलिकाः २७. कल्पवतंसिकाः
२८. पुष्पिकाः २९. पुष्पचूलिकाः
३०. वृष्णिदशाः ।

एवमादीनि चतुरशीतिः प्रकीर्णक-
सहस्राणि भगवतः अर्हतः ऋषभ-
स्वामिनः आदितीर्थकरस्य । तथा
संख्येयानि प्रकीर्णकसहस्राणि मध्यम-
कानां जिनवराणाम् । चतुर्विंश
प्रकीर्णकसहस्राणि भगवतः वर्धमान-
स्वामिनः ।

अथवा—यस्य यावन्तः शिष्याः
औत्पत्तिक्या, वैनयिक्या, कर्मजया,
पारिणामिक्या—चतुर्विधया बुद्ध्या
उपेताः, तस्य तावन्ति प्रकीर्णक-
सहस्राणि । प्रत्येकबुद्धाः अपि तावन्तः
चैव । तदेतत् कालिकम् । तदेतद्
आवश्यकव्यतिरिक्तम् । तदेतद् अनंग-
प्रविष्टम् ।

अथ किं तद् अंगप्रविष्टम् ?
अंगप्रविष्टं द्वादशविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा
—आचारः, सूत्रकृतं, स्थानं,

७८. वह कालिक क्या है ?

कालिकश्रुत अनेक प्रकार के प्रज्ञप्त हैं,
जैसे—१. उत्तराध्ययन २. दशा ३. कल्प
४. व्यवहार ५. निशीथ ६. महानिशीथ ७.
ऋषिभाषित ८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ९. द्वीप-
सागरप्रज्ञप्ति १०. चन्द्रप्रज्ञप्ति ११.
क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्ति १२. महतीविमान-
प्रविभक्ति १३. अंगचूलिका १४. वर्गचूलिका
१५. व्याख्याचूलिका १६. अरुणोपपात १७.
वरुणोपपात १८. गरुडोपपात १९. धरणो-
पपात २०. वैश्रमणोपपात २१. वेल्धरोपपात
२२. देवेन्द्रोपपात २३. उत्थानश्रुत २४.
समुत्थानश्रुत २५. नागपर्यापनिका २६.
निरयावलिका २७. कल्पवतंसिका २८.
पुष्पिका २९. पुष्पचूलिका ३०. वृष्णिदशा ।

७९. इत्यादि ८४ हजार प्रकीर्णक आदि तीर्थकर
अर्हत् भगवान् ऋषभस्वामी के थे । मध्यवर्ती
तीर्थकरों के संख्यात हजार प्रकीर्णक थे ।
भगवान् वर्धमानस्वामी के १४ हजार प्रकीर्णक
थे ।

अथवा—जिसके जितने शिष्य औत्पत्तिकी,
वैनयिकी, कर्मजा और पारिणामिकी—इस
बुद्धि चतुष्टय से उपेत होते हैं, उसके उतने
ही हजार प्रकीर्णक होते हैं । उतने ही प्रत्येक-
बुद्ध होते हैं । वह कालिक है । वह आवश्यक-
व्यतिरिक्त है । वह अनंगप्रविष्ट है ।

८०. वह अंगप्रविष्ट क्या है ?

अंगप्रविष्ट बारह प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—
आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्या-

समवाओ, वियाहपण्णत्ती, नाया-धम्मकहाओ, उवासगदसाओ, अंतगडदसाओ, अणुत्तरोववाइय-दसाओ, पण्हावागरणाइं, विवाग-सुयं, दिट्ठवाओ ॥

समवायः, व्याख्याप्रज्ञप्तिः, ज्ञातधर्म-कथाः, उपासकदशाः, अन्तकृतदशाः, अनुत्तरोपपातिकदशाः, प्रश्नव्या-करणानि, विपाकश्रुतं, दृष्टिवादः ।

प्रज्ञप्ति, ज्ञातधर्मकथा, उपासकदशा, अन्त-कृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुत, दृष्टिवाद ।

दुवालसंग-विवरण-पदं

८१. से किं तं आयारे ? आयारे णं समणणं निग्गंथाणं आयार-गोयर-विणय-वेणइय-सिक्खा-भासा-अभासा-चरण-करण-जाया-माया-वित्तीओ आघविज्जंति । से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—नाणायारे, दंसणायारे, चरित्तायारे, तवायारे, वीरियायारे। आयारे णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखे-ज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ ।

से णं अंगट्ठयाए पढमे अंगे, दो सुयक्खंधा, पणवीसं अज्झयणा, पंचासीइं उद्देसणकाला, पंचासीइं समुद्देसणकाला, अट्ठारस पयस-हस्साणि पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निका-इया जिणपण्णत्ता भावा आघ-विज्जंति पण्णविज्जंति परू-विज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति ।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करण-परूवणा आघविज्जइ । सेत्तं आयारे ॥

द्वादशांग-विवरण-पदम्

अथ कः स आचारः ? आचारे श्रमणानां निर्ग्रन्थानाम् आचार-गोचर-विनय-वैनयिक-शिक्षा-भाषा-अभाषा-चरण-करण-यात्रा-मात्रा-वृत्तयः आख्यायन्ते । स समासतः पंचविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ज्ञानाचारः, दर्शना-चारः, चरित्राचारः, तपआचारः, वीर्याचारः ।

आचारे परीताः वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येयाः वेष्टाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येयाः निर्युक्तयः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः ।

तद् अङ्गार्थतया प्रथमम् अंगम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, पंचविंश अध्ययनानि, पंचाशीतिः उद्देशनकालाः, पंचाशीतिः समुद्देशनकालाः, अष्टादश पदसहस्राणि पदाग्नेण, संख्येयाः अक्षराः, अनन्ताः गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीताः त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते दर्शयन्ते निदर्शयन्ते उपदर्शयन्ते ।

स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरण-करण-परूपणा आख्यायते । स एष आचारः ।

द्वादशांग-विवरण-पद

८१. वह आचार क्या है ?

आचार में—श्रमण निर्ग्रन्थ के आचार-गोचर-विनय-वैनयिक-शिक्षा-भाषा-अभाषा-चरण-करण-यात्रा-मात्रा-वृत्ति का आख्यान किया गया है । वह संक्षेप में पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चरित्राचार, तपआचार, वीर्याचार ।

आचारांग में परिमित वाचनाएं, संख्येय अनुयोगद्वार, संख्येय वेढा (छंद-विशेष), संख्येय श्लोक, संख्येय निर्युक्तियां और संख्येय प्रतिपत्तियां हैं ।

वह अंगों में प्रथम अंग है । उसके दो श्रुतस्कन्ध, पच्चीस अध्ययन, पचासी उद्देशन-काल, पचासी समुद्देशन-काल, पद परिमाण की दृष्टि से अठारह हजार पद, संख्येय अक्षर, अनन्त गम (सदृश पाठ), अनन्त पर्यव हैं । उसमें परिमित त्रस, अनन्त स्थावर, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिनप्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, परूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है ।

इस प्रकार आचार का अध्येता आत्मा—आचार में परिणत हो जाता है । वह इस प्रकार ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार आचार में चरण-करण की परूपणा का आख्यान किया गया है । वह आचार है ।

८२. से किं तं सूयगडे ? सूयगडे णं लोए सूइज्जइ, अलोए सूइज्जइ, लोयालोए सूइज्जइ । जीवा सूइज्जंति, अजीवा सूइज्जंति,

अथ किं तत् सूत्रकृतम् ? सूत्र-कृते लोकः सूच्यते, अलोकः सूच्यते, लोकालोकः सूच्यते । जीवाः सूच्यन्ते, अजीवाः सूच्यन्ते, जीवाजीवाः

८३. वह सूत्रकृत क्या है ?

सूत्रकृत में लोक की सूचना, अलोक की सूचना तथा लोक-अलोक—दोनों की सूचना की गई है । जीवों की सूचना, अजीवों की

जीवाजीवा सूइज्जंति । ससमए सूइज्जइ, परसमए सूइज्जइ, ससमय-परसमए सूइज्जइ ।

सूयगडे णं आसीयस्स किरिया-वाइ-सयस्स, चउरासीइए अकिरियावाइणं, सत्तठ्ठीए अण्णाणिय-वाइणं, बत्तीसाए वेणइयवाइणं—तिण्हं तेसट्ठाणं पावाडुय-सयाणं वूहं किच्चा ससमए ठाविज्जइ ।

सूयगडे णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ ।

से णं अंगट्ठयाए बिइए अंगे, दो सुयक्खंधा, तेवीसं अज्झयणा, तेत्तीसं उद्देशणकाला, तेत्तीसं समुद्देशणकाला, छत्तीसं पयसहस्साणि पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परुविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति ।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करण-परुवणा आघविज्जइ । सेत्तं सूयगडे ॥

८३. से किं तं ठाणे ? ठाणे णं जीवा ठाविज्जंति, अजीवा ठाविज्जंति, जीवाजीवा ठाविज्जंति । ससमए ठाविज्जइ, परसमए ठाविज्जइ, ससमय-परसमए ठाविज्जइ । लोए ठाविज्जइ, अलोए ठाविज्जइ, लोयालोए ठाविज्जइ ।

ठाणे णं टंका, कडा, सेला, सिहरिणो, पम्भारा, कंडाई,

सूच्यन्ते । स्वसमयः सूच्यते, परसमयः सूच्यते, स्वसमय-परसमयः सूच्यते ।

सूत्रकृते आशीतस्य क्रियावादि-शतस्य, चतुरशीतेः अक्रियावादिनां, सप्तषष्टेः अज्ञानिकवादिनां, द्वात्रिंशतः वैनयिकवादिनां—त्रयाणां त्रिषष्टेः प्रावादुक-शतानां व्यूहं कृत्वा स्वसमयः स्थाप्यते ।

सूत्रकृते परीताः वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येयाः वेष्टाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येयाः निर्युक्तयः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः ।

तद् अंगार्थतया द्वितीयम् अंगम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, त्रयोविंशतिः अध्ययनानि, त्रयस्त्रिंशद् उद्देशनकालाः, त्रयस्त्रिंशत् समुद्देशनकालाः, षट्त्रिंशत् पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ताः गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीताः त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्शयन्ते निदर्शयन्ते उपदर्शयन्ते ।

स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरण-करण-परुपणा आख्यायते । तदेतत् सूत्रकृतम् ।

अथ किं तत् स्थानम् ? स्थाने जीवाः स्थाप्यन्ते, अजीवाः स्थाप्यन्ते, जीवाजीवाः स्थाप्यन्ते । स्वसमयः स्थाप्यते, परसमयः स्थाप्यते, स्वसमय-परसमयः स्थाप्यते । लोकः स्थाप्यते, अलोकः स्थाप्यते, लोकालोकः स्थाप्यते ।

स्थाने टङ्कानि, कूटानि, शंलाः, शिखरिणः, प्राग्भाराः, कुण्डानि,

सूचना तथा जीव-अजीव—दोनों की सूचना की गई है । स्वसमय की सूचना, परसमय की सूचना तथा स्वसमय-परसमय—दोनों की सूचना की गई है ।

सूत्रकृत में एक सौ अस्सी क्रियावादियों, चौरासी अक्रियावादियों, सड़सठ अज्ञानवादियों तथा बत्तीस वैनयिकवादियों—इस प्रकार तीन सौ तिरसठ प्रावादुकों का निरसन कर स्वसमय की स्थापना की गई है ।

सूत्रकृत में परिमित वाचनाएँ, संख्येय अनुयोगद्वार, संख्येय वेढा (छंद-विशेष), संख्येय श्लोक, संख्येय निर्युक्तियाँ और संख्येय प्रतिपत्तियाँ हैं ।

वह अंगों में दूसरा अंग है । उसके दो श्रुतस्कन्ध, तेईस अध्ययन, तेतीस उद्देशन-काल, तेतीस समुद्देशन-काल, पद परिमाण की दृष्टि से छत्तीस हजार पद, संख्येय अक्षर, अनन्त गम और अनन्त पर्यव हैं । उसमें परिमित त्रस, अनन्त स्थावर, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिनप्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है ।

इस प्रकार सूत्रकृत का अध्येता आत्मा—सूत्रकृत में परिणत हो जाता है । वह इस प्रकार ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार सूत्रकृत में चरण-करण की प्ररूपणा का आख्यान किया गया है । वह सूत्रकृत है ।

८३. वह स्थान क्या है ?

स्थान में जीवों की स्थापना अजीवों की स्थापना तथा जीव-अजीव—दोनों की स्थापना की गई है । स्वसमय की स्थापना, परसमय की स्थापना तथा स्वसमय-परसमय—दोनों की स्थापना की गई है । लोक की स्थापना, अलोक की स्थापना तथा लोक-अलोक—दोनों की स्थापना की गई है ।

स्थान में टंक—छिन्नतट, कूट—शिखर, पर्वत, शिखर वाले पर्वत, प्राग्भार—पर्वत का

गुहाओ, आगरा, दहा, नईओ
आघविज्जंति ।

ठाणे णं एगाइयाए एगुत्तरियाए
बुड्ढीए दसट्ठाणग-विबुद्धियाणं
भावानं परूवणा आघविज्जइ ।

ठाणे णं परित्ता वायणा,
संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा
वेढा, संखेज्जा सिलोगा,
संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ,
संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ
पडिवत्तीओ ।

से णं अंगट्ठयाए तइए अंगे,
एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा,
एगवीसं उद्देशणकाला, एगवीसं
समुद्देशणकाला, बावत्तरिं पयस-
हस्ताइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा,
अणंता गमा, अणंता पज्जवा,
परित्ता तसा, अणंता थावरा,
सासय-कड-निबद्ध-निकाइया
जिणपणत्ता भावा आघविज्जंति
पण्णविज्जंति परूविज्जंति
दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदं-
सिज्जंति ।

से एवं आया, एवं नाया, एवं
विण्णयाया, एवं चरण-करण-परू-
वणा आघविज्जइ । सेत्तं ठाणे ॥

८४. से किं तं समवाए ? समवाए
णं जीवा समासिज्जंति, अजीवा
समासिज्जंति, जीवाजीवा समा-
सिज्जंति । ससमए समासिज्जइ,
परसमए समासिज्जइ ससमय-
परसमए समासिज्जइ । लोए
समासिज्जइ, अलोए समासिज्जइ,
लोयालोए समासिज्जइ ।

समवाए णं एगाइयाणं एगुत्त-
रियाणं ठाणसय-विबुद्धियाणं
भावानं परूवणा आघविज्जइ ।
दुवालसविहस्स य गणिपिट्ठगस्स
पल्लवग्गे समासिज्जइ ।

गुहाः, आकराः, द्रहाः, नद्यः
आख्यायन्ते ।

स्थाने एकादिकया एकोत्तरिकया
वृद्ध्या दशस्थानक-विबुद्धितानां भावानां
प्ररूपणा आख्यायते ।

स्थाने परीताः वाचनाः, संख्ये-
यानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येयाः
वेष्टाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येयाः
निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः
प्रतिपत्तीयः ।

तद् अंगार्थतया तृतीयम् अंगम्,
एकः श्रुतस्कन्धः, दश अध्ययनानि,
एकविंशतिः उद्देशनकालाः, एकविंशतिः
समुद्देशनकालाः, द्वासप्ततिः पदसह-
स्राणि पदाप्रेण, संख्येयानि अक्षराणि,
अनन्ताः गमाः, अनन्ताः पर्यवाः,
परीताः त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः,
शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचिताः जिन-
प्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते,
प्ररूप्यन्ते, दर्शयन्ते निदर्शयन्ते
उपदर्शयन्ते ।

स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं
विज्ञाता, एवं चरण-करण-प्ररूपणा
आख्यायते । तदेतत् स्थानम् ।

अथ कः स समवायः ? समवाये
जीवाः समाश्रियन्ते, अजीवाः समा-
श्रियन्ते, जीवाजीवाः समाश्रियन्ते ।
स्वसमयः समाश्रियते, परसमयः
समाश्रियते, स्वसमय-परसमयः समा-
श्रियते । लोकः समाश्रियते, अलोकः
समाश्रियते, लोकालोकः समाश्रियते ।

समवाये एकदिकानाम् एकोत्त-
रिक्तानां स्थानशत-विबुद्धितानां भावानां
प्ररूपणा आख्यायते । द्वादशविधस्य
च गणिपिटकस्य पल्लवाग्रः समा-
श्रियते ।

अग्रभाग, कुंड, गुफा, आकर, द्रह और नदियों
का आख्यान किया गया है ।

स्थान में एक से लेकर एक-एक की वृद्धि
करते हुए दस स्थान तक विवर्धित भावों की
प्ररूपणा की गई है ।

स्थान में परिमित वाचनाएं, संख्येय
अनुयोगद्वार, संख्येय वेढा (छंद-विशेष),
संख्येय श्लोक, संख्येय निर्युक्तियां, संख्येय
संग्रहणियां और संख्येय प्रतिपत्तियां हैं ।

यह अंगों में तीसरा अंग है । उसके एक
श्रुतस्कन्ध, दस अध्ययन, इक्कीस उद्देशन-
काल, इक्कीस समुद्देशन-काल, पद परिमाण
की दृष्टि से बहत्तर हजार पद, संख्येय अक्षर,
अनन्त गम और अनन्त पर्यव हैं । उसमें
परिमित त्रस, अनन्त स्थावर, शाश्वत-कृत-
निबद्ध-निकाचित जिनप्रज्ञप्त भावों का
आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन
और उपदर्शन किया गया है ।

इस प्रकार स्थान का अध्येता आत्मा—
स्थान में परिणत हो जाता है । वह इस
प्रकार ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है । इस
प्रकार स्थान में चरण-करण की प्ररूपणा का
आख्यान किया गया है । वह स्थान है ।

८४. वह समवाय क्या है ?

समवाय में जीवों का समाश्रयण, अजीवों
का समाश्रयण तथा जीव-अजीव—दोनों का
समाश्रयण किया गया है । स्वसमय का
समाश्रयण, परसमय का समाश्रयण तथा
स्वसमय-परसमय—दोनों का समाश्रयण
किया गया है । लोक का समाश्रयण, अलोक
का समाश्रयण तथा लोक-अलोक—दोनों का
समाश्रयण किया गया है ।

समवाय में एक से लेकर एक-एक की
वृद्धि करते हुए सौ स्थान तक विवर्धित भावों
की प्ररूपणा की गई है । इसमें द्वादशांग
गणिपिटक के पल्लव परिमाण (पर्यव-
परिमाण) का समाश्रयण किया गया है ।

समवायस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा-वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ ।

से णं अंगट्ठयाए चउत्थे अंगे, एगे सुयक्खंधे, एगे अज्झयणे, एगे उद्देशणकाले, एगे समुद्देशणकाले, एगे चोयाले पयसयसहस्से पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति पुरुविज्जंति दंसिज्जंति निदंसि-ज्जंति उवसिज्जंति ।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करण-परुवणा आघविज्जइ । सेत्तं सम-बाए ॥

८५. से किं तं वियाहे ? वियाहे णं जीवा विआहिज्जंति, अजीवा विआहिज्जंति, जीवाजीवा विआ-हिज्जंति । ससमए विआहिज्जति परसमए विआहिज्जति, ससमय-परसमए विआहिज्जति । लोए विआहिज्जति, अलोए विआ-हिज्जति, लोयालोए विआ-हिज्जति ।

वियाहस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखे-ज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ ।

से णं अंगट्ठयाए पंचमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, एगे साइरेगे अज्झयण-सए, दस उद्देशगसहस्साइं, दस समुद्देशगसहस्साइं, छत्तीसं वाग-रणसहस्साइं, दो लक्खा अट्ठासीइं

समवायस्य परीताः वाचनाः, संखेयानि अनुयोगद्वाराणि, संखेयाः वेष्टाः, संखेयाः श्लोकाः, संखेयाः निर्युक्तयः, संखेयाः संग्रहण्यः, संखेयाः प्रतिपत्तयः ।

तद् अङ्गार्थतया चतुर्थम् अङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, एकम् अध्ययनम्, एकः उद्देशनकालः, एकः समुद्देशन-कालः, एकं चतुश्चत्वारिंशत् पदशत-सहस्रं पदाग्नेण, संखेयानि अक्षराणि, अनन्ताः गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीताः त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचिताः जिन-प्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दश्यन्ते निदश्यन्ते उपदश्यन्ते ।

स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरण-करण-परुवणा आख्यायते । स एष समवायः ।

अथ का सा व्याख्या ? व्याख्यायां जीवाः व्याख्यायन्ते, अजीवाः व्याख्यायन्ते, जीवाजीवाः व्याख्या-यन्ते । स्वसमयः व्याख्यायते, परसमयः व्याख्यायते, स्वसमय-परसमयः व्याख्यायते । लोकः व्याख्यायते, अलोकः व्याख्यायते, लोकालोकः व्याख्यायते ।

व्याख्यायाः परीताः वाचनाः, संखेयानि अनुयोगद्वाराणि, संखेयाः वेष्टाः, संखेयाः श्लोकाः, संखेयाः निर्युक्तयः, संखेयाः संग्रहण्यः, संखेयाः प्रतिपत्तयः ।

तद् अङ्गार्थतया पञ्चमम् अङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः एकं सातिरेकं अध्ययन-शतं, दश उद्देशकसहस्राणि, दश समुद्देशकसहस्राणि, षट्त्रिंशद् व्याकरण-सहस्राणि, द्वे लक्षे अष्टाशीतिः पद-

समवाय में परिमित वाचनाएं, संखेय अनुयोगद्वार, संखेय वेढा (छंद-विशेष), संखेय श्लोक, संखेय निर्युक्तियां, संखेय संग्रहणियां और संखेय प्रतिपत्तियां हैं ।

वह अंगों में चौथा अंग है । उसके एक श्रुतस्कन्ध, एक उद्देशन-काल, एक समुद्देशन-काल, पद परिमाण की दृष्टि से एक लाख चौवालीस हजार पद, संखेय अक्षर, अनन्त गम और अनन्त पर्यव हैं । उसमें परिमित त्रस अनन्त स्थावर, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिनप्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है ।

इस प्रकार समवाय का अध्येता आत्मा—समवाय में परिणत हो जाता है । वह इस प्रकार ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार समवाय में चरण-करण की परुवणा का आख्यान किया गया है । वह समवाय है ।

८५. वह व्याख्या (भगवती) क्या है ?

व्याख्या में जीवों की व्याख्या, अजीवों की व्याख्या तथा जीव-अजीव—दोनों की व्याख्या की गई है । स्वसमय की व्याख्या, परसमय की व्याख्या तथा स्वसमय-परसमय—दोनों की व्याख्या की गई है । लोक की व्याख्या, अलोक की व्याख्या तथा लोक-अलोक—दोनों की व्याख्या की गई है ।

व्याख्या में परिमित वाचनाएं, संखेय अनुयोगद्वार, संखेय वेढा (छंद-विशेष), संखेय श्लोक, संखेय निर्युक्तियां, संखेय संग्रहणियां और संखेय प्रतिपत्तियां हैं ।

वह अंगों में पाचवां अंग है । उसके एक श्रुतस्कंध, कुछ अधिक सौ अध्ययन, दस हजार उद्देशक, दस हजार समुद्देशक, छत्तीस हजार व्याख्या द्वार, पद परिमाण की दृष्टि से दो लाख अट्ठाईस हजार पद, संखेय अक्षर,

पयसहस्साइं पयग्णेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निका-इया जिणपणत्ता भावा आघ-विज्जंति पणविज्जंति परू-विज्जंति दंसिज्जंति निर्दंसिज्जंति उवदंसिज्जंति ।

से एवं आया, एव नाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करण-परूवणा आघविज्जइ । सेत्तं वियाहे ॥

८६. से किं तं नायाधम्मकहाओ ? नायाधम्मकहासु णं नायाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं, वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्म-कहाओ, इहलोइय-परलोइया इड्ढिसेसा, भोगपरिचचाया, पव्वज्जाओ, परिआया, सुय-परिग्गहा, तवोवहाणाइं, संलेह-णाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओ-वगमणाइं, देवलोगमणाइं, सुकुलपच्चयाईओ, पुणबोहि-लाभा, अंतकिरियाओ य आघ-विज्जंति ।

दस धम्मकहाणं वग्गा । तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए पंच पंच अक्खाइयासयाइं । एगमेगाए अक्खाइयाए पंच पंच उवक्खाइ-यासयाइं । एगमेगाए उवक्खाइयाए पंच पंच अक्खाइओवक्खाइया-सयाइं—एवमेव सपुव्वावरेणं अद्धुओ कहाणगकोडीओ हवंति ति मक्खायं ।

नायाधम्मकहाणं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ ।

सहस्राणि पदाग्नेण संखेयानि अक्षराणि, अनन्ताः गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीताः त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निका-चिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्या-यन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्शयन्ते निदर्शयन्ते उपदर्शयन्ते ।

स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरण-करण-परूपणा आख्यायते । सा एषा व्याख्या ।

अथ काः ताः ज्ञातधर्मकथाः ? ज्ञातधर्मकथासु ज्ञातानां नगराणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वनखण्डानि, समवसरणानि, राजानः, मातापितरः, धर्माचार्याः धर्मकथाः ऐहलौकिक-पारलौकिकाः ऋद्धिविशेषाः, भोग-परित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुत-परिग्रहाः, तपउपधानानि, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, प्रायोपगमनानि, देवलोकगमनानि, सुकुलप्रत्यायातीः, पुनर्बोधिलाभाः, अन्तक्रियाश्च आख्यायन्ते ।

दश धर्मकथानां वर्गाः । तत्र एकैकस्यां धर्मकथायां पञ्च पञ्च आख्यायिकाशतानि । एकैकस्याम् आख्यायिकायां पञ्च पञ्च उपाख्या-यिकाशतानि । एकैकस्याम् उपाख्या-यिकायां पञ्च पञ्च आख्यायिका-उपाख्यायिकाशतानि—एवमेव सपूर्वा-परेण 'अद्धुओ' कथानककोट्यः भवन्तीति आख्यातम् ।

ज्ञातधर्मकथायाः परीताः वाचनाः, संखेयानि अनुयोगद्वाराणि, संखेयाः वेष्टाः, संखेयाः श्लोकाः, संखेयाः निर्युक्तयः संखेयाः संग्रहण्यः, संखेयाः प्रतिपत्तयः ।

अनन्त गम और अनन्त पर्यव हैं । उसमें परिमित त्रस, अनन्त स्थावर, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिनप्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है ।

इस प्रकार व्याख्या का अध्येता आत्मा—व्याख्या में परिणत हो जाता है । वह इस प्रकार ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार व्याख्या में चरण-करण की प्ररूपणा का आख्यान किया गया है । वह व्याख्या है ।

८६. वह ज्ञातधर्मकथा क्या है ?

ज्ञातधर्मकथाओं में ज्ञात में निर्दिष्ट व्यक्तियों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, ऐहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धि-विशेष, भोग परित्याग, प्रव्रज्या, पर्याय, श्रुत परिग्रह, तपउपधान, संलेखना, भक्त-प्रत्याख्यान, प्रायोपगमन, देवलोकगमन, सुकुल में पुनरागमन, पुनर्बोधिलाभ और अन्तक्रिया आदि का आख्यान किया गया है ।

धर्मकथाओं का वर्गीकरण इस प्रकार है—धर्मकथा के दस वर्ग हैं । एक-एक धर्म-कथा की पांच-पांच सौ आख्यायिका हैं । एक-एक आख्यायिका की पांच-पांच सौ उपाख्यायिका हैं । एक-एक उपाख्यायिका की पांच-पांच सौ आख्यायिका-उपाख्यायिका हैं । इन सबका पूर्वापर गुणा करने से साढ़े तीन करोड़ की संख्या होती है ।

ज्ञातधर्मकथा में परिमित वाचनाएं, संखेय अनुयोगद्वार, संखेय वेढा(छंद-विशेष), संखेय श्लोक, संखेय निर्युक्तियां, संखेय संग्रहणियां और संखेय प्रतिपत्तियां हैं ।

से णं अंगद्वयाए छट्ठे अंगे, दो सुयक्खंधा, एगूणतीसं अज्झयगा, एगूणतीसं उद्देशनकाला, एगूणतीसं समुद्देशनकाला, संखेज्जाइं पय-सहस्साइं पयगोणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निका-इया जिणपण्णत्ता भावा आघ-विज्जंति पण्णविज्जंति परू-विज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति ।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करण-परू-वणा आघविज्जइ । सेत्तं नाया-धम्मकहाओ ।।

८७. से किं तं उवासगदसाओ ? उवासगदसासु णं समणोवासगणं नगराईं, उज्जाणाईं, चेइयाईं, वणसंडाईं, समोसरणाईं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्म-कहाओ, इहलोइय-परलोइया इडिड्विसेसा, भोगपरिच्चाया, परिआया, सुयपरिग्गहा, तवोव-हाणाईं, सोलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववास-पडि-वज्जणया, पडिमाओ, उवसग्गा, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाईं, पाओवगमणाईं, देवलोगगमणाईं, सुकुलपच्चायाईओ, पुण बोहि-लाभा, अंतकिरियाओ य आघ-विज्जंति ।

उवासगदसाणं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखे-ज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडि-वत्तीओ ।

से णं अंगद्वयाए सत्तमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, दस उद्देशनकाला, दस समुद्देशनकाला,

तद् अङ्गार्थतया षष्ठम् अङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, एकोनत्रिंशद् अध्यय-नानि, एकोनत्रिंशद् उद्देशनकालाः, एकोनत्रिंशत् समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाघेण, संख्येयाः अक्षराः, अनन्ताः गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीताः त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचिताः जिणप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्शयन्ते निदर्शयन्ते उप-दर्शयन्ते ।

स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरण-करण-प्ररूपणा आख्यायन्ते । ताः एताः ज्ञातधर्मकथाः ।

अथ काः ताः उपासकदशाः ? उपासकदशासु श्रमणोपासकानां नगराणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वन-षण्डानि, समवसरणानि, राजानः, मातापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिक-पारलौकिकाः ऋद्धि-विशेषाः, भोगपरित्यागाः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः, तपउपधानानि, शील-व्रत-गुण-विरमण-प्रत्याख्यान - पौष-धोपवास-प्रतिपादनानि, प्रतिमाः, उपसर्गाः, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्या-नानि, प्रायोपगमनानि, देवलोकगम-नानि, सुकुलप्रत्याधातीः, पुनर्बोधि-लाभाः, अन्तक्रियाश्च आख्यायन्ते ।

उपासकदशानां परीताः वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येयाः वेष्टाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येयाः निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः ।

तद् अङ्गार्थतया सप्तमम् अंगम्, एकः श्रुतस्कन्धः, दश अध्ययनानि, दश उद्देशनकालाः, दश समुद्देशन-

वह अंगों में छठा अंग है । उसके दो श्रुत-स्कन्ध, उनतीस अध्ययन, उनतीस उद्देशन-काल, उनतीस समुद्देशन-काल, पद परिमाण की दृष्टि से संख्येय हजार पद, संख्येय अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्यव हैं । उसमें परिमित त्रस, अनन्त स्थावर, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिणप्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उप-दर्शन किया गया है ।

इस प्रकार ज्ञाता का अध्येता आत्मा— ज्ञाता में परिणत हो जाता है । वह इस प्रकार ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार ज्ञाता में चरण-करण की प्ररूपणा का आख्यान किया गया है । वह ज्ञातधर्मकथा है ।

८७. वह उपासकदशा क्या है ?

उपासकदशाओं में श्रमणोपासकों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, ऐहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धि-विशेष, भोग परित्याग, पर्याय, श्रुत परिग्रह, तपउपधान, शीलव्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास प्रतिपत्ति, प्रतिमा, उपसर्ग, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, प्रायोपगमन, देवलोकगमन, सुकुल में पुनरा-रागमन पुनर्बोधिलाभ और अन्तक्रिया आदि का आख्यान किया गया है ।

उपासकदशा में परिमित वाचनाएं, संख्येय अनुयोगद्वार, संख्येय वेढा (छंद-विशेष), संख्येय श्लोक, संख्येय निर्युक्तियां, संख्येय संग्रहणियां और संख्येय प्रतिपत्तियां हैं ।

वह अंगों में सातवां अंग है । उसके एक श्रुतस्कन्ध, दस अध्ययन, दस उद्देशन-काल, दस समुद्देशन-काल, पद परिमाण की दृष्टि से

संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं,
संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा,
अणंता पज्जवा, परित्ता तसा,
अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-
निकाइया जिणपण्णत्ता भावा
आघविज्जंति पण्णविज्जंति परू-
विज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति
उवदंसिज्जति ।

से एवं आया, एवं नाया, एवं
विण्णाया, एवं चरण-करण-परू-
वणा आघविज्जइ । सेत्तं उवासग-
दसाओ ॥

८८. से किं तं अंतगडदसाओ ? अंत-
गडदसासु णं अंतगडणं नगराईं,
उज्जाणाईं, चेइयाईं, वणसंडाईं,
समोसरणाईं, रायाणो, अम्मा-
पियरो, धम्मायरिया, धम्म-
कहाओ, इहलोइय-परलोइया
इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चागा,
पव्वज्जाओ, परिआया, सुय-
परिग्गहा, तवोवहाणाईं संलेह-
णाओ, भत्तपच्चक्खाणाईं, पाओ-
वगमणाईं, अंतकिरियाओ य
आघविज्जंति ।

अंतगडदसाणं परित्ता वायणा,
संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा
वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखे-
ज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ
संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिव-
त्तीओ ।

से णं अंगट्टयाए अट्टमे अंगे, एगे
सुयक्खंधे, अट्टवग्गा, अट्ट उट्टेसण-
काला, अट्ट समुट्टेसणकाला,
संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं,
संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा,
अणंता पज्जवा, परित्ता तसा,
अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-
निकाइया जिणपण्णत्ता भावा
आघविज्जंति पण्णविज्जंति परू-
विज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति
उवदंसिज्जंति ।

कालाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदा-
ग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ताः
गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीताः त्रसाः,
अनन्ताः स्थावराः, शाश्वत-कृत-
निबद्ध-निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः
भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते
दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते ।

स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं
विज्ञाता, एवं चरण-करण-प्ररूपणा
आख्यायते । ताः एताः उपासकदशाः ।

अथ काः ताः अन्तकृतदशाः ?
अन्तकृतदशासु अन्तकृतानां नगराणि,
उद्यानानि, चैत्यानि, वनवण्डानि,
समवसरणानि, राजानः, मातापितरः,
धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिक-
पारलौकिकाः ऋद्धिविशेषाः, भोग-
परित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुत-
परिग्रहाः, तपउपधानानि, संलेखनाः,
भक्तप्रत्याख्यानानि, प्रायोपगमनानि,
अन्तक्रियाः च आख्यायन्ते ।

अन्तकृतदशासु परीताः वाचनाः,
संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येयाः
वेष्टाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येयाः
निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः
प्रतिपत्तयः ।

तद् अङ्गार्थतया अष्टमम् अंगम्,
एकः श्रुतस्कन्धः, अष्टवर्गाः, अष्ट
उद्देशनकालाः, अष्ट समुद्देशनकालाः,
संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण,
संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ताः गमाः,
अनन्ताः पर्यवाः, परीताः त्रसाः,
अनन्ताः स्थावराः, शाश्वत-कृत-
निबद्ध-निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः
भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते
दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते ।

संख्येय हजार पद, संख्येय अक्षर, अनन्त गम,
अनन्त पर्यव हैं । उसमें परिमित त्रस, अनन्त
स्थावर, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिन-
प्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण,
दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया
है ।

इस प्रकार उपासक का अध्येता आत्मा—
उपासक में परिणत हो जाता है । वह इस
प्रकार ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है । इस
प्रकार उपासक में चरण-करण की प्ररूपणा का
आख्यान किया गया है । वह उपासकदशा है ।

८८. वह अन्तकृतदशा क्या है ?

अन्तकृतदशा में अन्तकृत मनुष्यों के नगर,
उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, समवसरण, राजा,
माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, ऐहलौकिक-
पारलौकिक ऋद्धिविशेष, भोग परित्याग,
प्रव्रज्या, पर्याय, श्रुतपरिग्रह, तपउपधान,
संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, प्रायोपगमन और
अन्तक्रिया आदि का आख्यान किया गया
है ।

अन्तकृतदशा में परिमित वाचनाएं, संख्येय
अनुयोगद्वार, संख्येय वेढा(छंद-विशेष), संख्येय
श्लोक, संख्येय निर्युक्तियां, संख्येय संग्रहणियां
और संख्येय प्रतिपत्तियां हैं ।

वह अंगों में आठवां अंग है । उसके एक
श्रुतस्कन्ध, आठ वर्ग, आठ उद्देशन-काल,
आठ समुद्देशन काल, पद परिमाण की दृष्टि
से संख्येय हजार पद, संख्येय अक्षर, अनन्त
गम, अनन्त पर्यव हैं । उसमें परिमित त्रस,
अनन्त स्थावर, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित
जिनप्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन,
प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया
गया है ।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विष्णाया, एवं चरण-करण-परू-वणा आघविज्जइ । सेत्तं अंतगड-दसाओ ॥

स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरण-करण-परूपणा आख्यायते । ताः एताः अन्तकृतदशाः ।

इस प्रकार अन्तका अध्येता आत्मा— अन्तकृत में परिणत हो जाता है । वह इस प्रकार ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार अन्तकृत में चरण-करण की परूपणा का आख्यान किया गया है । वह अन्तकृतदशा है ।

८६. से किं तं अणुत्तरोववाइय-दसाओ ? अणुत्तरोववाइयदसासु णं अणुत्तरोववाइयाणं नगराईं, उज्जाणाईं, चेइयाईं, वणसंडाईं, समोसरणाईं, रायाणो, अम्मा-पियरो, धम्मायरिया, धम्म-कहाओ, इहलोइय-परलोइया इडिडविसेसा, भोगपरिच्चागा-पव्वज्जाओ, परिआगा, सुय-परिग्गहा, तवोवहाणाईं, पडि-माओ, उवसग्गा, संलेहणाओ, भक्तपच्चक्खाणाईं, पाओवगमणाईं, अणुत्तरोववाइयत्ते उववत्ती, सुकुलपच्चायाईओ, पुणबोहि-लाभा, अंतकिरियाओ य आघ-विज्जंति ।

अथ काः ताः अनुत्तरोपपातिक-दशाः । अनुत्तरोपपातिकदशासु अनु-त्तरोपपातिकानां नगराणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वनषण्डानि, समवसरणानि, राजानः, मातापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिक-पारलौकिकाः ऋद्धिविशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः, तपउपधानानि, प्रतिमाः, उप-सर्गाः, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, प्रायोपगमनानि, अनुत्तरोपपातिकत्वे उपपत्तिः, सुकुलप्रत्यायातीः, पुनर्बोधि-लाभाः, अन्तक्रियाः च आख्यायन्ते ।

८९. वह अनुत्तरोपपातिकदशा क्या है ?

अनुत्तरोपपातिकदशा में अनुत्तरोपपातिक मनुष्यों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, ऐहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धि-विशेष, भोग परित्याग, प्रव्रज्या, पर्याय, श्रुत-परिग्रह, तपउपधान, प्रतिमा, उपसर्ग, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, प्रायोपगमन, अनुत्तरविमान के देवों के रूप में उत्पत्ति, सुकुल में पुनरागमन, पुनर्बोधिलाभ और अन्तक्रिया आदि का आख्यान किया गया है ।

अणुत्तरोववाइयदसाणं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिव-त्तीओ ।

अनुत्तरोपपातिकदशासु परीताः वाचनाः, संखेयानि अनुयोगद्वाराणि, संखेयाः वेष्टाः, संखेयाः श्लोकाः, संखेयाः निर्युक्तयः, संखेयाः संग्रहण्यः, संखेयाः प्रतिपत्तयः ।

अनुत्तरोपपातिकदशा में परिमित वाचनाएं, संखेय अनुयोगद्वार, संखेय वेढा (छंद-विशेष), संखेय श्लोक, संखेय निर्युक्तियां, संखेय संग्रहणियां और संखेय प्रतिपत्तियां हैं ।

से णं अंगट्टयाए नवमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, तिण्णि वग्गा, तिण्णि उद्देशणकाला, तिण्णि समुद्देशण-काला, संखेज्जाईं पयसहस्साईं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निकाइया जिनपणत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परू-विज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति ।

तद् अङ्गार्थतया नवमम् अंगम्, एकः श्रुतस्कन्धः, त्रयो वर्गाः त्रयः उद्देशनकालाः, त्रयः समुद्देशन-कालाः, संखेयानि पदसहस्राणि पदा-श्रेण, संखेयानि अक्षराणि, अनन्ताः गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीताः त्रसाः अनन्ताः स्थावराः, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्शयन्ते निदर्शयन्ते उपदर्शयन्ते ।

वह अंगों में नवम अंग है । उसके एक श्रुतस्कन्ध, तीन वर्ग, तीन उद्देशन-काल, तीन समुद्देशन-काल, पदपरिमाण की दृष्टि से संखेय हजार पद, संखेय अक्षर, अनन्तगम, अनन्त पर्यव हैं । उसमें परिमित त्रस, अनन्त स्थावर, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिनप्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, परूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है ।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विष्णाया, एवं चरण-करण-परू-

स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरण-करण-परूपणा

इस प्रकार अनुत्तरोपपातिक का अध्येता आत्मा— अनुत्तरोपपातिक में परिणत हो

वणा आघविज्जइ । सेत्तं अणु-
त्तरोववाइयदसाओ ॥

आख्यायते । ताः एताः अनुत्तरोप-
पातिकदशाः ।

जाता है । वह इस प्रकार ज्ञाता और विज्ञाता
हो जाता है । इस प्रकार अनुत्तरोपपातिक में
चरण-करण की प्ररूपणा का आख्यान किया
गया है । वह अनुत्तरोपपातिकदशा है ।

६०. से किं तं पण्हावागरणाइं ?
पण्हावागरणेषु णं अट्ठुत्तरं
पसिणसयं, अट्ठुत्तरं अपसिणसयं
अट्ठुत्तरं पसिणापसिणसयं, अण्णे
य विच्चित्ता दिव्वा विज्जाइसया,
नागसुवण्णेहिं सद्धिं दिव्वा संवाया
आघविज्जंति ।

अथ कानि तानि प्रश्नव्याकरणानि ?
प्रश्नव्याकरणेषु अष्टोत्तरं प्रश्नशतम्,
अष्टोत्तरम् अप्रश्नशतम्, अष्टोत्तरं
प्रश्नाप्रश्नशतम्, अन्ये च विचित्राः
दिव्याः विद्यातिशयाः, नागसुवर्णः
सार्धं दिव्याः संवादाः आख्यायन्ते ।

९०. वह प्रश्नव्याकरण क्या है ?

प्रश्नव्याकरण में एक सौ आठ प्रश्न, एक
सौ आठ अप्रश्न, एक सौ आठ प्रश्नाप्रश्न
और अन्य विचित्र दिव्य विद्यातिशय तथा
नागकुमार और सुवर्णकुमारों के साथ हुए
दिव्य संवादों का आख्यान किया गया है ।

पण्हावागरणाणं परित्ता वायणा,
संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा
वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ
निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगह-
णीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ ।

प्रश्नव्याकरणानां परीताः वाचनाः,
संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येयाः
वेष्टाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येयाः
निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः,
संख्येयाः प्रतिपत्तयः ।

प्रश्नव्याकरण में परिमित वाचनाएं,
संख्येय अनुयोगद्वार, संख्येय वेढा (छंद-
विशेष), संख्येय श्लोक, संख्येय निर्युक्तियां,
संख्येय संग्रहणियां और संख्येय प्रतिपत्तियां
हैं ।

से णं अंगट्टयाए दसमे अंगे एगे
सुयक्खंधे, पणयालीसं अज्भयणा,
पणयालीसं उद्देशणकाला, पणया-
लीसं समुद्देशणकाला, संखेज्जाइं
पयसहस्साइं पयगणेणं, संखेज्जा
अक्खरा, अणंता गमा, अणंता
पज्जया, परित्ता तसा, अणंता
थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निका-
इया जिणपणत्ता भावा आघ-
विज्जंति पण्णविज्जंति परू-
विज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति
उवदंसिज्जंति ।

तद् अङ्गार्थतया दशमम्
अंगम्, एकः श्रुतस्कन्धः, पञ्चचत्वारि-
शद् अध्ययनानि, पञ्चचत्वारिंशद्
उद्देशनकालाः, पञ्चचत्वारिंशत्
समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसह-
स्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि,
अनन्ताः गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीताः
त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वत-
कृत-निबद्ध-निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः
भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते परू-
प्यन्ते दर्शयन्ते निदर्शयन्ते उपदर्शयन्ते ।

वह अंगों में दसवां अंग है । उसके एक
श्रुतस्कन्ध, पैंतालीस अध्ययन, पैंतालीस
उद्देशन-काल, पैंतालीस समुद्देशन-काल, पद
परिमाण की दृष्टि से संख्येय हजार पद,
संख्येय अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्यव हैं ।
उसमें परिमित त्रस, अनन्त स्थावर, शाश्वत-
कृत-निबद्ध-निकाचित जिनप्रज्ञप्त भावों का
आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन
और उपदर्शन किया गया है ।

से एवं आया, एवं नाया, एवं
विण्णयाया, एवं चरण-करण-परू-
वणा आघविज्जइ । सेत्तं पण्हा-
वागरणाइं ॥

स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं
विज्ञाता, एवं चरण-करण-प्ररूपणा
आख्यायते । तानि एतानि प्रश्न-
व्याकरणानि ।

इस प्रकार प्रश्नव्याकरण का अध्येता
आत्मा—प्रश्नव्याकरण में परिणत हो जाता
है । वह इस प्रकार ज्ञाता और विज्ञाता हो
जाता है । इस प्रकार प्रश्नव्याकरण में
चरण-करण की प्ररूपणा का आख्यान किया
गया है । वह प्रश्नव्याकरण है ।

६१. से किं तं विवागसुयं ? विवागसुए
णं सुकड-दुक्कडणं कम्मणां
फलविवागे आघविज्जइ । तत्थ णं
दस दुहविवागा, दस सुहविवागा ।

अथ किं तत् विपाकश्रुतम् ?
विपाकश्रुते सुकृत-दुष्कृतानां कर्मणां
फलविपाकः आख्यायते । तत्र दश
दुःखविपाकाः, दश सुखविपाकाः ।

९१. वह विपाकश्रुत क्या है ?

विपाकश्रुत में सुकृत और दुष्कृत कर्मों के
फल का आख्यान किया गया है । विपाक में
दस दुःखविपाक हैं, दस सुखविपाक हैं ।

से किं तं दुहविवागा ? दुह-
विवागेषु णं दुहविवागाणं नगराइं,

अथ के ते दुःखविपाकाः ?
दुःखविपाकेषु दुःखविपाकानां नग-

वे दुःखविपाक क्या हैं ?

दुःखविपाक में दुःखविपाक वाले मनुष्यों

उज्जाणाई, वणसंडाई, चेइयाई, समोसरणाई, रायाणो, अम्मा-पियरो, धम्मयारिया, धम्मकहाओ, इहलोइय-परलोइया रिद्धिविसेसा, निरयगमणाई, संसारभवपवंचा, दुहपरंपराओ, दुक्कुलपच्चायाईयो, दुल्लहबोहियत्तं आघविज्जइ । सेत्तं दुहविवागा ।

से किं तं सुहविवागा ? सुह-विवागेषु णं सुहविवागाणं नगराई, उज्जाणाई, वणसंडाई, चेइयाई, समोसरणाई, रायाणो, अम्मा-पियरो, धम्मकहाओ, इहलोइय-परलोइया इडिडविसेसा, भोग-परिच्चागा, पव्वज्जाओ, परि-आया, सुयपरिग्गहा, तवोवहा-णाई, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खा-णाई, पाओवगमणाई, देवलोगग-मणाई, सुहपरंपराओ, सुकुल-पच्चायाईओ, पुणबोहिलाभा, अंतकिरियाओ य आघविज्जंति । सेत्तं सुहविवागा ।

विवागसुयस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखे-ज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिबत्तीओ ।

से णं अंगट्टयाए इक्कारसमे अंगे, दो सुयक्खंधा, वीसं अज्झ-यणा, वीसं उद्देशणकाला, वीसं समुद्देशणकाला, संखेज्जाई पय-सहस्साई पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा सासय-कड-निबद्ध-निका-इया जिणपण्णत्ता भावा आघ-विज्जंति पण्णविज्जंति परू-विज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति ।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करण-परू-

राणि, उद्यानानि, वनखण्डानि, चैत्यानि, समवसरणानि, राजानः, मातापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिक-पारलौकिकाः ऋद्धि-विशेषाः, निरयगमनानि, संसारभव-प्रपञ्चाः, दुःखपरम्पराः, दुष्कुल-प्रत्यायातीः, दुर्लभबोधिकत्वम् आख्यायन्ते । ते एते दुःखविपाकाः ।

अथ के ते सुखविपाकाः ? सुख-विपाकेषु सुखविपाकानां नगराणि, उद्यानानि, वनखण्डानि, चैत्यानि, समवसरणानि, राजानः, मातापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिक-पारलौकिकाः ऋद्धिविशेषाः, भोग-परित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुत-परिग्रहाः, तपउपधानानि, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, प्रायोपगमनानि, देवलोकगमनानि, सुखपरम्पराः, सुकुलप्रत्यायातीः, पुनर्बोधिलाभाः, अन्तक्रियाः च आख्यायन्ते । ते एते सुखविपाकाः ।

विपाकश्रुतस्य परीताः वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येयाः वेष्टाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येयाः निर्युक्त्यः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः ।

तद् अङ्गार्थतया एकादशमम् अङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, विशतिः अध्ययनानि, विशतिः उद्देशन-कालाः, विशतिः समुद्देशनकालाः संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ताः गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीताः त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दश्यन्ते निदश्यन्ते उपदश्यन्ते ।

स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरण-करण-प्ररूपणा

के नगर, उद्यान, वनखण्ड, चैत्य, समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, ऐहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धिविशेष, नरक गमन, संसार के भव प्रपंच, दुःख परम्पराओं, दुष्कुल में पुनरागमन और दुर्लभ बोधित्व का आख्यान किया गया है । वह दुःखविपाक है ।

वे सुखविपाक क्या हैं ।

सुख विपाक में सुख विपाक वाले मनुष्यों के नगर, उद्यान, वनखण्ड, चैत्य, समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, ऐहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धिविशेष, भोग परित्याग, प्रव्रज्या, पर्याय, श्रुतपरिग्रह, तपउपधान, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, प्रायोपगमन, देवलोकगमन, सुख परम्पराओं, सुकुल में पुनरागमन, पुनर्बोधिलाभ और अन्तक्रिया का आख्यान किया गया है । वह सुखविपाक है ।

विपाक में परिमित वाचनाएं, संख्येय अनुयोगद्वार, संख्येय वेढा (छंद-विशेष), संख्येय श्लोक, संख्येय निर्युक्तियां, संख्येय संग्रहणियां और संख्येय प्रतिपत्तियां हैं ।

वह अंगों में ग्यारहवां अंग है । उसके दो श्रुतस्कन्ध, बीस अध्ययन, बीस उद्देशन-काल, बीस समुद्देशन-काल, पद परिमाण की दृष्टि से संख्येय हजार पद, संख्येय अक्षर, अनन्त गम और अनन्त पर्यव हैं । उसमें परिमित त्रस अनन्त स्थावर, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिनप्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है ।

इस प्रकार विपाक का अध्येता आत्मा—विपाक में परिणत हो जाता है ।

वणा आघविज्जइ । सेत्तं विवाग-
सुयं ॥ आख्यायते । तद् एतद् विपाकश्रुतम् ।

वह इस प्रकार ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार विपाक में चरण-करण की प्ररूपणा का आख्यान किया गया है । वह विपाकश्रुत है ।

६२. से किं तं दिट्ठिवाए । दिट्ठिवाए
णं सव्वभावपरुवणा आघविज्जइ ।
से समासओ पंचविहे पणत्ते, तं
जहा—१. परिकम्मे २. सुत्ताइं
३. पुव्वगए ४. अणुओगे ५.
चूलिया ॥

अथ कः स दृष्टिवादः ? दृष्टि-
वादे सर्वभावप्ररूपणा आख्यायते । स
समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा
—१. परिकर्म २. सूत्राणि ३. पूर्व-
गतं ४. अनुयोगः ५. चूलिका ।

९२. वह दृष्टिवाद क्या है ?
दृष्टिवाद में सर्वभावों की प्ररूपणा की गई
है । संक्षेप में वह पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है,
जैसे—१. परिकर्म २. सूत्र ३. पूर्वगत ४.
अनुयोग ५. चूलिका ।

६३. से किं तं परिकम्मे ? परिकम्मे
सत्तविहे पणत्ते, तं जहा—१. सिद्ध-
सेणियापरिकम्मे २. मणुस्ससे-
णियापरिकम्मे ३. पुट्टसेणियापरि-
कम्मे ४. ओगाढसेणियापरिकम्मे
५. उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे
६. विप्पज्जहणसेणियापरिकम्मे ७.
७. चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ॥

अथ किं तत् परिकर्म ? परिकर्म
सप्तविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—१. सिद्ध-
श्रेणिकापरिकर्म २. मनुष्यश्रेणिका-
परिकर्म ३. स्पृष्टश्रेणिकापरिकर्म
४. अवगाहनश्रेणिकापरिकर्म ५.
उपसंपादनश्रेणिकापरिकर्म ६. विप्र-
हाणश्रेणिकापरिकर्म ७. च्युताच्युत-
श्रेणिकापरिकर्म ।

९३. वह परिकर्म क्या है ?
परिकर्म सात प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—
१. सिद्धश्रेणिका परिकर्म २. मनुष्यश्रेणिका
परिकर्म ३. स्पृष्टश्रेणिका परिकर्म ४.
अवगाढश्रेणिका परिकर्म ५. उपसंपादन-
श्रेणिका परिकर्म ।

६४. से किं तं सिद्धसेणियापरिकम्मे ?
सिद्धसेणियापरिकम्मे चउट्टसविहे
पणत्ते, तं जहा—१. माउगा-
पयाइं २. एगट्टियपयाइं ३. अट्टा-
पयाइं ४. पाठो ५. आगासपयाइं
६. केउभूयं ७. रासिबद्धं ८. एग-
गुणं ९. दुगुणं १०. तिगुणं ११.
केउभूयपडिग्गहो १२. संसार-
पडिग्गहो १३. नंदावत्तं १४.
सिद्धावत्तं । सेत्तं सिद्धसेणिया-
परिकम्मे ॥

अथ किं तत् सिद्धश्रेणिकापरि-
कर्म ? सिद्धश्रेणिकापरिकर्म चतुर्दशविधं
प्रज्ञप्तं, तद्यथा—१. मातृकापदानि
२. एकार्थिकपदानि ३. अर्थपदानि
४. पाठः ५. आकाशपदानि ६. केतु-
भूतं ७. राशिबद्धम् ८. एकगुणं ९.
द्विगुणं १०. त्रिगुणं ११. केतुभूतप्रति-
ग्रहः १२. संसारप्रतिग्रहः १३. नन्द्या-
वर्तं १४. सिद्धावर्तम् । तदेतत्
सिद्धश्रेणिकापरिकर्म ।

९४. वह सिद्धश्रेणिका परिकर्म क्या है ?
सिद्धश्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकार का
प्रज्ञप्त है, जैसे—१. मातृकापद २. एका-
र्थिकपद ३. अर्थपद ४. पाठ ५. आकाशपद
६. केतुभूत ७. राशिबद्ध ८. एकगुण ९.
द्विगुण १०. त्रिगुण ११. केतुभूतप्रतिग्रह
१२. संसारप्रतिग्रह १३. नन्द्यावर्त १४.
सिद्धावर्त । वह सिद्धश्रेणिका परिकर्म है ।

६५. से किं तं मणुस्ससेणियापरि-
कम्मे ? मणुस्ससेणियापरिकम्मे
चउट्टसविहे पणत्ते, तं जहा—१.
माउगापयाइं २. एगट्टियपयाइं
३. अट्टापयाइं ४. पाठो ५. आगा-
सपयाइं ६. केउभूयं ७. रासिबद्धं
८. एगगुणं ९. दुगुणं १०. तिगुणं
११. केउभूयपडिग्गहो १२. संसार-
पडिग्गहो १३. नंदावत्तं १४.
मणुस्सावत्तं । सेत्तं मणुस्ससेणिया-
परिकम्मे ॥

अथ किं तद् मनुष्यश्रेणिकापरि-
कर्म ? मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म चतुर्दश-
विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—१. मातृका-
पदानि २. एकार्थिकपदानि ३. अर्थ-
पदानि ४. पाठः ५. आकाशपदानि
६. केतुभूतं ७. राशिबद्धम् ८. एकगुणं
९. द्विगुणं १०. त्रिगुणं ११. केतुभूत-
प्रतिग्रहः १२. संसारप्रतिग्रहः १३.
नन्द्यावर्तं १४. मनुष्यावर्तम् । तदेतत्
मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म ।

९५. वह मनुष्यश्रेणिका परिकर्म क्या है ?
मनुष्यश्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकार का
प्रज्ञप्त है, जैसे—१. मातृकापद २. एकार्थिक-
पद ३. अर्थपद ४. पाठ ५. आकाशपद ६.
केतुभूत ७. राशिबद्ध ८. एकगुण ९. द्विगुण
१०. त्रिगुण ११. केतुभूतप्रतिग्रह १२. संसार-
प्रतिग्रह १३. नन्द्यावर्त १४. मनुष्यावर्त । वह
मनुष्यश्रेणिका परिकर्म है ।

१. पाढो ३. आगासपयाइं ३. केउभूयं ४. रासिबद्धं ५. एगगुणं ६. दुगुणं ७. तिगुणं ८. केउभूय-पडिगहो १०. नंदावत्तं ११. चुयअचुयावत्तं । सेत्तं चुयअचुय-सेणियापरिकम्मे ॥

पाठः २. आकाशपदानि ३. केतुभूतं ४. राशिबद्धम् ५. एकगुणं ६. द्विगुणं ७. त्रिगुणं ८. केतुभूतप्रतिग्रहः ९. संसारप्रतिग्रहः १०. नन्द्यावर्त ११. च्युताच्युतावर्तम् । तदेतत् च्युता-च्युतश्रेणिकापरिकर्म ।

केतुभूत ४. राशिबद्ध ५. एकगुण ६. द्विगुण ७. त्रिगुण ८. केतुभूतप्रतिग्रह ९. संसार-प्रतिग्रह १०. नन्द्यावर्त ११. च्युताच्युतावर्त । वह च्युताच्युतश्रेणिका परिकर्म है ।

१०१. (इच्चेयाइं सत्त परिकम्माइं छ ससमइयाणि सत्त आजीवि-याणि ?) छ चउक्कणइयाइं, सत्त तेरासियाइं । सेत्तं परिकम्मे ॥

[इत्येतानि सप्त परिकर्माणि षट् स्वसामयिकानि सप्त आजीविकानि ?] षट् चतुष्कनयिकानि, सप्त त्रैराशिकानि । तदेतत् परिकर्म ।

१०१. (ये सात परिकर्म हैं । इनमें प्रथम छह स्व-समय के प्रज्ञापक हैं और सातवां आजीवक मत का प्रज्ञापक है ।) तथा छह परिकर्म चार नय वाले हैं और एक सातवां त्रैराशिक—तीन नय वाला है । इस प्रकार सात परिकर्मों के तिरासी भेद होते हैं । वह परिकर्म है ।

१०२. से किं तं सुत्ताइं ? सुत्ताइं बावीसं पणत्ताइं, तं जहा—१. उज्जुसुयं २. परिणयापरिणयं ३. बहुभंगियं ४. विजयचरियं ५. अणंतरं ६. परंपरं ७. सामाणं ८. संजूहं ९. संभिण्णं १०. आहच्चायं ११. सोवत्थियं घटं १२. नंदावत्तं १३. बहुलं १४. पुट्ठापुट्ठं १५. वियावत्तं १६. एवभूयं १७. दुयावत्तं १८. वत्तमाणुप्पयं १९. समभिरूढं २०. सव्वओभइं २१. पण्णासं २२. दुप्पडिगहं ॥

अथ कानि तानि सूत्राणि ? सूत्राणि द्वाविंशतिः प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—१. ऋजुसूत्रं २. परिणतापरिणतं ३. बहुभंगिकं ४. विजयचरितम् ५. अनन्तरं ६. परम्परं ७. सत् ८. संयूथं ९. संभिन्नं १०. यथात्यागः ११. सौवस्तिकं घण्टं १२. नन्द्यावर्त १३. बहुलं १४. पृष्ठापृष्ठां १५. व्यावर्त १६. एवभूतं १७. द्व्यावर्त १८. वर्तमानपदं १९. समभिरूढं २०. सर्वतोभद्रं २१. पन्नचासं २२. द्विप्रति-ग्रहम् ।

१०२. वह सूत्र क्या है ?

सूत्र के बाईस प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—१. ऋजुश्रुत २. परिणतापरिणत ३. बहुभंगिक ४. विजयचरित ५. अनन्तर ६. परम्पर ७. सत् ८. संयूथ ९. भिन्न १०. यथात्याग ११. सौवस्तिक घण्ट १२. नन्द्यावर्त १३. बहुल १४. पृष्ठापृष्ठा १५. व्यावर्त १६. एवभूत १७. द्विकावर्त १८. वर्तमानपद १९. समभिरूढ २०. सर्वतोभद्र २१. पन्न्यास २२. द्विप्रति-ग्रह ।

१०३ इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं छिण्णच्छेदनइयाणि ससमयसुत्त-परिवाडीए ।

इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि छिन्नच्छेदनयिकानि स्वसमयसूत्र-परिपाट्या ।

१०३. ये बाईस सूत्र स्वसमय परिपाटी (जैना-गम पद्धति) के अनुसार छिन्नच्छेदनयिक होते हैं ।

इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं अच्छिण्णच्छेदनइयाणि आजीवि-यसुत्तपरिवाडीए ।

इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि अच्छिन्नच्छेदनयिकानि आजीविक-सूत्रपरिपाट्या ।

ये बाईस सूत्र आजीविक परिपाटी के अनुसार अच्छिन्नच्छेदनयिक होते हैं ।

इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं तिगनइयाणि तेरासियसुत्तपरिवा-डीए ।

इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि त्रिकनयिकानि त्रैराशिकसूत्रपरि-पाट्या ।

ये बाईस सूत्र त्रैराशिक परिपाटी के अनुसार त्रिकनयिक होते हैं ।

इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं चउक्कणइयाणि ससमयसुत्तपरि-वाडीए ।

इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि चतुष्कनयिकानि स्वसमयसूत्र-परिपाट्या ।

ये बाईस सूत्र स्वसमय परिपाटी के अनु-सार चतुष्कनयिक होते हैं ।

एवमेव सपुव्वावरेणं अट्ठा-सीइं सुत्ताइं भवन्तीति मक्खायं । सेत्तं सुत्ताइं ॥

एवमेव सपूर्वापरेण अष्टाशीतिः सूत्राणि भवन्ति इति आख्यातम् । तानि एतानि सूत्राणि ।

ये पूर्वापर सारे सूत्र अट्ठासी होते हैं, ऐसा आख्यान किया गया है । वह सूत्र है ।

१०४. से किं तं पुर्वगए ? पुर्वगए चउद्दसविहे पणत्ते, तं जहा—१. उप्पायपुर्वं २. अग्गेणीयं ३. वीरियं ४. अत्थिनत्थिप्पवायं ५. नाणप्पवायं ६. सच्चप्पवायं ७. आयप्पवायं ८. कम्मप्पवायं ९. पच्चक्खवाणं १०. विज्जाणुप्पवायं ११. अवंभं १२. पाणाउं १३. किरियाविसालं १४. लोक-बिदुसारं ॥

१०५. उप्पायपुर्वस्स णं पुर्वस्स दस वत्थू, चत्तारि चूलियावत्थू पणत्ता ॥

१०६. अग्गेणीयपुर्वस्स णं चोद्दस वत्थू, दुवालस चूलियावत्थू पणत्ता ॥

१०७. वीरियपुर्वस्स णं अट्ठ वत्थू, अट्ठ चूलियावत्थू पणत्ता ॥

१०८. अत्थिनत्थिप्पवायपुर्वस्स णं अट्ठारस वत्थू, दस चूलियावत्थू पणत्ता ॥

१०९. नाणप्पवायपुर्वस्स णं वारस वत्थू पणत्ता ॥

११०. सच्चप्पवायपुर्वस्स णं दोण्णि वत्थू पणत्ता ॥

१११. आयप्पवायपुर्वस्स णं सोलस वत्थू पणत्ता ॥

११२. कम्मप्पवायपुर्वस्स णं तीसं वत्थू पणत्ता ॥

११३. पच्चक्खवाणपुर्वस्स णं वीसं वत्थू पणत्ता ॥

११४. विज्जाणुप्पवायपुर्वस्स णं पण्णरस वत्थू पणत्ता ॥

११५. अवंभपुर्वस्स णं वारस वत्थू पणत्ता ॥

अथ किं तत् पूर्वगतम् ? पूर्वगतं चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—१. उत्पादपूर्वम् २. अग्गेणीयं ३. वीर्यम् ४. अस्तित्नास्तिप्रवादं ५. ज्ञानप्रवादं ६. सत्यप्रवादम् ७. आत्मप्रवादं ८. कर्म-प्रवादं ९. प्रत्याख्यानं १०. विद्यानु-प्रवादम् ११. अवन्ध्यं १२. प्राणायुः १३. क्रियाविशालं १४. लोकबिन्दु-सारम् ।

उत्पादपूर्वस्य पूर्वस्य दश वस्तूनि, चत्वारि चूलिकावस्तूनि प्रज्ञप्तानि ।

अग्गेणीयपूर्वस्य चतुर्दश वस्तूनि, द्वादश चूलिकावस्तूनि प्रज्ञप्तानि ।

वीर्यपूर्वस्य अष्ट वस्तूनि, अष्ट चूलिकावस्तूनि प्रज्ञप्तानि ।

अस्तित्नास्तिप्रवादपूर्वस्य अष्टा-दश वस्तूनि, दश चूलिकावस्तूनि प्रज्ञप्तानि ।

ज्ञानप्रवादपूर्वस्य द्वादश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ।

सत्यप्रवादपूर्वस्य द्वे वस्तुनी प्रज्ञप्ते ।

आत्मप्रवादपूर्वस्य षोडश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ।

कर्मप्रवादपूर्वस्य त्रिंशद् वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ।

प्रत्याख्यानपूर्वस्य विशतिः वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ।

विद्यानुप्रवादपूर्वस्य पञ्चदश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ।

अवन्ध्यपूर्वस्य द्वादश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ।

१०४. वह पूर्वगत क्या है ?

पूर्वगत के चौदह प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे— १. उत्पादपूर्व २. अग्गेणीय ३. वीर्य ४. अस्तित्नास्तिप्रवाद ५. ज्ञानप्रवाद ६. सत्यप्रवाद ७. आत्मप्रवाद ८. कर्मप्रवाद ९. प्रत्याख्यान १०. विद्यानुप्रवाद ११. अवन्ध्य १२. प्राणायु १३. क्रियाविशाल १४. लोकबिन्दुसार ।

१०५. उत्पादपूर्व के दस वस्तु और चार चूलिका वस्तु प्रज्ञप्त हैं ।

१०६. अग्गेणीयपूर्व के चौदह वस्तु और बारह चूलिका वस्तु प्रज्ञप्त हैं ।

१०७. वीर्यपूर्व के आठ वस्तु और आठ चूलिका वस्तु प्रज्ञप्त हैं ।

१०८. अस्तित्नास्तिप्रवादपूर्व के अट्ठारह वस्तु और दस चूलिका वस्तु प्रज्ञप्त हैं ।

१०९. ज्ञानप्रवादपूर्व के बारह वस्तु प्रज्ञप्त हैं ।

११०. सत्यप्रवादपूर्व के दो वस्तु प्रज्ञप्त हैं ।

१११. आत्मप्रवादपूर्व के सोलह वस्तु प्रज्ञप्त हैं ।

११२. कर्मप्रवादपूर्व के तीस वस्तु प्रज्ञप्त हैं ।

११३. प्रत्याख्यानपूर्व के बीस वस्तु प्रज्ञप्त हैं ।

११४. विद्यानुप्रवादपूर्व के पन्द्रह वस्तु प्रज्ञप्त हैं ।

११५. अवन्ध्यपूर्व के बारह वस्तु प्रज्ञप्त हैं ।

११६. पाणाउपुव्वस्स णं तेरस वत्थू पणत्ता ॥

प्राणायुपूर्वस्य त्रयोदश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ।

११६. प्राणायुपूर्व के तेरह वस्तु प्रज्ञप्त हैं ।

११७. किरियाविसालपुव्वस्स णं तीसं वत्थू पणत्ता ॥

क्रियाविशालपूर्वस्य त्रिंशद् वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ।

११७. क्रियाविशालपूर्व के तीस वस्तु प्रज्ञप्त हैं ।

११८. लोकाबिन्दुसारपुव्वस्स णं पणुवीसं वत्थू पणत्ता ॥

लोकाबिन्दुसारपूर्वस्य पञ्चविंशतिः वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ।

११८. लोकाबिन्दुसारपूर्व के पञ्चीस वस्तु प्रज्ञप्त हैं ।

संग्रहणी-गाथा

संग्रहणी-गाथा

संग्रहणी-गाथा

दस चोद्दस अट्ठ,
अट्ठारसेव बारस दुवे य वत्थूणि ।
सोलस तीसा वीसा,
पण्णरस अणुप्पवायम्मि ॥१॥

दश चतुर्दश अष्टौ,
अष्टादशं द्वादश द्वे च वस्तूनि ।
षोडश त्रिंशद् विंशतिः,
पञ्चदश अनुप्रवादे ॥

१,२. दस, चौदह, आठ, अठारह, बारह, दो, सोलह, तीस, बीस, विद्यानुप्रवाद में पन्द्रह, ग्यारहवें पूर्व में बारह, बारहवें पूर्व में तेरह, तेरहवें पूर्व में तीस और चौदहवें पूर्व में पञ्चीस— ये क्रमशः पूर्वों की वस्तुएं हैं ।

बारस इक्कारसमे,
बारसमे तेरसेव वत्थूणि ।
तीसा पुण तेरसमे,
चोद्दसमे पण्णवीसाओ ॥२॥

द्वादशंकादशे,
द्वादशे त्रयोदश एव वस्तूनि ।
त्रिंशत् पुनस्त्रयोदशे,
चतुर्दशे पञ्चविंशतिः ॥

३. चार, बारह, आठ और दस ये आदि चार पूर्वों की चूलिका वस्तु हैं । शेष पूर्वों की चूलिका नहीं है ।^१ वह पूर्वगत है ।

चत्तारि दुवालस अट्ठ,
चेव दस चेव चुल्लवत्थूणि ॥
आइल्लाण चउण्हं,
सेसाणं चूलिया नत्थि ॥३॥

चत्वारि द्वादश अष्टौ,
चैव दश चैव चूलवस्तूनि ।
आदिमानां चतुर्णां,
शेषाणां चूलिका नास्ति ॥

सेत्तं पुव्वगए ॥

तदेतत् पूर्वगतम् ।

११९. से किं तं अणुओगे ? अणुओगे दुविहे पणत्ते, तं जहा—मूलपढ-माणुओगे गंडियाणुओगे य ॥

अथ कोऽसौ अनुयोगः ? अनुयोगः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—मूल-प्रथमानुयोगः गण्डिकानुयोगश्च ।

११९. वह अनुयोग क्या है ? अनुयोग दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे— १. मूलप्रथमानुयोग २. गंडिकानुयोग ।

१२०. से किं तं मूलपढमाणुओगे ? मूलपढमाणुओगे णं अरहंताणं भगवंताणं पुव्वभवा, देवलोगग-मणाई, आउं, चवणाई, जम्मणाणि य अभिसेया, रायवरसिरीओ, पव्वज्जाओ, तवा य उग्गा, केवल-नाणुप्पयाओ, तित्थपवत्तणाणि य, सीसा, गणा, गणहरा, अज्जा, पवत्तिणीओ, संघस्स चउव्विहस्स जं च परिमाणं, जिण-मणपज्जव-ओहिनाणी, समत्तसुयनाणिणो य, वाई, अणुत्तरगई य, उत्तरवे-उव्विणो य मुणिणो, जत्तिया सिद्धा, सिद्धिपहो जह देसिओ, जच्चिरं च कालं पाओवगया, जे

अथ कः स मूलप्रथमानुयोगः ? मूलप्रथमानुयोगे अर्हंतां भगवतां पूर्वभवाः, देवलोकगमनानि, आयुः, च्यवनानि, जन्मानि च अभिषेकाः, राज्यवरश्चियः, प्रव्रज्याः, तपांसि च उग्राणि, केवलज्ञानोत्पादाः, तीर्थप्रवर्तनानि च, शिष्याः, गणाः, गणधराः, आर्याः, प्रवर्तिन्यः, संघस्य चतुर्विधस्य यत् च परिमाणं, जिन-मनःपर्यव-अवधिज्ञानिनः, सम्यक्त्व-श्रुतज्ञानिनश्च, वादिनः, अनुत्तरगत-यश्च, उत्तरविक्रियावन्तश्च मुनयः, यावन्तः सिद्धाः, सिद्धिपथो यथा देशितो, यावच्चिरञ्च कालं प्रायोप-गताः, ये यत्र यावन्ति भक्तानि छित्वा

१२०. वह मूलप्रथमानुयोग क्या है ।

मूलप्रथमानुयोग में अरहन्त भगवान् के पूर्वभव, देवलोकगमन, आयुष्य, च्यवन, जन्म, अभिषेक, राज्य की प्रवर श्री (लक्ष्मी), प्रव्रज्या, उग्रतप, केवलज्ञान की उत्पत्ति, तीर्थप्रवर्तन, शिष्य, गण, गणधर, आर्या, प्रवर्तिनी, चतुर्विध संघ का परिमाण, जिन, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, सम्यक्त्वी, श्रुतज्ञानी, वादी, अनुत्तरगति वाले, उत्तरवैक्रिय वाले मुनि, जितने सिद्ध हुए, जैसे सिद्धि पथ का उपदेश दिया, जितने काल तक प्रायोपगमन अनशन किया तथा जितने भक्तों का छेदन कर, जो उत्तम मुनिवर अन्त-कृत हुए हैं, तम और रज से विप्रमुक्त होकर मोक्ष के अनुत्तर सुख को प्राप्त किया है ।

जहिं जत्तियाइं भत्ताइं छेइत्ता
अंतगडे मुणिवरुत्तमे तम-रओघ-
विष्पमुक्के मुखसुहमणुत्तरं च
पत्ते । एतेअण्णे य एवमाइं भावा
मूलपढमाणुओगे कहिया । सेत्तं
मूलपढमाणुओगे ॥

अन्तकृतः मुनिवरोत्तमः तमो-रजओघ-
विप्रमुक्तः मोक्षसुखमनुत्तरञ्च प्राप्तः ।
एते अन्ये च एवमादयः भावाः
मूलप्रथमानुयोगे कथिताः । स एषः
मूलप्रथमानुयोगः ।

ऐसे ही अन्यभावों का मूलप्रथमानुयोग में
आख्यान किया गया है । वह मूलप्रथमानुयोग
है ।

१२१. से किं तं गंडियाणुओगे ?
गंडियाणुओगे कुलगरगंडियाओ,
तिथ्यरगंडियाओ, चक्रकवट्टि-
गंडियाओ, दसारगंडियाओ, बल-
देवगंडियाओ, वासुदेवगंडियाओ,
गणधरगंडियाओ, भद्रबाहु-
गंडियाओ, तवोकम्मगंडियाओ,
हरिवंशगंडियाओ, ओसपिणी-
गंडियाओ, उत्सपिणीगंडियाओ,
चित्तंतरगंडियाओ, अमर-नर-
तिरिय-निरय-गइ-गमण-विविह-
परियट्टणुओ, एवमाइयाओ गंडियाओ
आघविज्जंति । सेत्तं गंडियाणुओगे ।
सेत्तं अगुओगे ॥

अथ कः स गण्डिकानुयोगः ?
गण्डिकानुयोगे कुलकरगण्डिकाः,
तीर्थकरगण्डिकाः, चक्रवर्तिगण्डिकाः,
दशरगण्डिकाः, बलदेवगण्डिकाः, वासु-
देवगण्डिकाः, गणधरगण्डिकाः, भद्र-
बाहुगण्डिकाः, तपःकर्मगण्डिकाः,
हरिवंशगण्डिकाः, अवसर्पिणीगण्डिकाः,
उत्सर्पिणीगण्डिकाः, चित्रान्तर-
गण्डिकाः, अमर-नर-तिर्यङ्-निरय-
गति-गमन-विविध-परिवर्तनेषु, एव-
मादिकाः गण्डिकाः आख्यायन्ते । स
एषः गण्डिकानुयोगः । स एषः
अनुयोगः ।

१२१. वह गंडिकानुयोग क्या है ?

गंडिकानुयोग में कुलकरगंडिकाओं, तीर्थ-
करगंडिकाओं, चक्रवर्तीगंडिकाओं, दशर-
गंडिकाओं, बलदेवगंडिकाओं, वासुदेवगंडि-
काओं, गणधरगंडिकाओं, भद्रबाहुगंडिकाओं,
तपःकर्मगण्डिकाओं, हरिवंशगण्डिकाओं,
अवसर्पिणीगण्डिकाओं उत्सर्पिणीगंडिकाओं,
चित्रान्तरगंडिकाओं, देवता, मनुष्य, तिर्यञ्च,
नरकगति में गमन और विविध परिवर्तन
आदि का आख्यान किया गया है । वह
गण्डिकानुयोग है । वह अनुयोग है ।

१२२. से किं तं चूलियाओ ?
चूलियाओ — आइल्लानं चउण्हं
पुव्वाणं चूलिया, सेसाइं पुव्वाइं
अचूलियाइं । सेत्तं चूलियाओ ।

अथ काः ताः चूलिकाः ?
चूलिकाः - आदिमानां चतुर्णां
पूर्वाणां चूलिकाः, शेषाणि पूर्वाणि अचूलि-
कानि । ताः एताः चूलिकाः ।

१२२. वे चूलिकाएं क्या हैं ?

प्रथम चार पूर्वों की चूलिकाएं हैं, शेष पूर्वों
की चूलिकाएं नहीं हैं ।^{१०} वे चूलिकाएं हैं ।

१२३. दिट्ठिवायस्स णं परित्ता वायणा,
संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा
वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ
पडिवत्तीओ, संखेज्जाओ निज्जु-
त्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ ।

दृष्टिवादस्य परीताः वाचनाः,
संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येयाः
वेष्टाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येयाः
प्रतिपत्तयः, संख्येयाः निर्युक्तयः,
संख्येयाः संग्रहण्यः ।

१२३. दृष्टिवाद में परिमित वाचनाएं, संख्येय
अनुयोगद्वार, संख्येय वेढा (छंद-विशेष), संख्येय
श्लोक, संख्येय प्रतिपत्तियां संख्येय निर्युक्तियां
और संख्येय संग्रहणियां हैं ।

से णं अंगट्टयाए बारसमे
अंगे, एगे सुयक्खंधे, चौदस
पुव्वाइं, संखेज्जा वत्थू, संखेज्जा
चूलवत्थू, संखेज्जा पाहुडा,
संखेज्जा पाहुडपाहुडा, संखेज्जाओ
पाहुडियाओ, संखेज्जाओ
पाहुडपाहुडियाओ, संखेज्जाइं
पयसहस्साइं पयणेणं, संखेज्जा
अक्खरा, अणंता गमा,
अणंतापज्जवा, परित्ता तसा,
अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-

तद् अङ्गार्थतया द्वादशम्
अङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, चतुर्दश
पूर्वाणि, संख्येयानि वस्तूनि, संख्येयानि
चूलिकावस्तूनि, संख्येयानि प्राभूतानि,
संख्येयानि प्राभूतप्राभूतानि, संख्येयाः
प्राभूतिकाः, संख्येयाः प्राभूतप्राभू-
तिकाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाश्रेण,
संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ताः गमाः,
अनन्ताः पर्यवाः, परीताः त्रसाः,
अनन्ताः स्यावराः, शाश्वत-कृत-
निबद्ध-निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः

वह अंगों में बारहवां अंग है । उसके एक
श्रुतस्कन्ध, चौदह पूर्व, संख्येय वस्तु (दो सौ
पच्चीस वस्तु) संख्येय चूलिकावस्तु, संख्येय
प्राभूत, संख्येय प्राभूत-प्राभूत, संख्येय प्राभूति-
काएं, संख्येय प्राभूत-प्राभूतिकाएं, पद परिमाण
की दृष्टि से संख्येय हजार पद, संख्येय अक्षर,
अनन्त गम, अनन्त पर्यव हैं । उसमें परिमित
त्रस, अनन्त स्थावर, शाश्वत-कृत-निबद्ध-
निकाचित जिनप्रज्ञप्त भावों का आख्यान,
प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उप-
दर्शन किया गया है ।

निकाइया जिणपणत्ता भावा
आघविज्जंति पणविज्जंति परू-
विज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति
उवदंसिज्जंति ।

से एवं आया, एवं नाया, एवं
विण्णाया, एवं चरण-करण-परूवणा
आघविज्जति । सेत्तं दिट्ठिवाए ॥

भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते
दश्यन्ते निदश्यन्ते उपदश्यन्ते ।

स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं
विज्ञाता, एवं चरण-करण-परूवणा
आख्यायते । स एषः दृष्टिवादः ।

इस प्रकार दृष्टिवाद का अध्येता आत्मा-
दृष्टिवाद में परिणत हो जाता है । वह इस
प्रकार ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है । इस
प्रकार दृष्टिवाद में चरण-करण की प्ररूपणा
का आख्यान किया गया है ।^{११} वह दृष्टिवाद
है ।

१२४. इच्चेइयम्मि दुवालसंगे गणि-
पिडगे अणंता भावा, अणंता
अभावा, अणंता हेऊ, अणंता
अहेऊ, अणंता कारणा, अणंता
अकारणा, अणंता जीवा, अणंता
अजीवा, अणंता भवसिद्धिया,
अणंता अभवसिद्धिया, अणंता
सिद्धा, अणंता असिद्धा पणत्ता ।

संग्रहणी-गाहा

भावमभावा हेऊ-

महेऊ कारणमकारणा चव ।

जीवाजीवा भवियमभविद्या,

सिद्धा असिद्धा य ॥१॥

इत्येतस्मिन् द्वादशाङ्गे गणिपिटके
अनन्ताः भावाः, अनन्ताः अभावाः,
अनन्ताः हेतवः, अनन्ताः अहेतवः,
अनन्तानि कारणानि, अनन्तानि
अकारणानि, अनन्ताः जीवाः, अनन्ताः
अजीवाः, अनन्ताः भवसिद्धिकाः,
अनन्ताः अभवसिद्धिकाः, अनन्ताः
सिद्धाः, अनन्ताः असिद्धाः प्रज्ञप्ताः ।

संग्रहणी-गाथा

भावाभावा हेतवः-

अहेतवः कारणाकारणानि चव ।

जीवाजीवा भविकाभविकाः,

सिद्धाः असिद्धाः च ॥

इस द्वादशांग गणिपिटक में अनन्त भाव,
अनन्त अभाव, अनन्त हेतु, अनन्त अहेतु, अनन्त
कारण, अनन्त अकारण, अनन्त जीव,
अनन्त अजीव, अनन्त भवसिद्धिक, अनन्त
अभवसिद्धिक, अनन्त सिद्ध, अनन्त असिद्ध
प्रज्ञप्त हैं ।

संग्रहणी-गाथा

१. भाव, अभाव, हेतु, अहेतु, कारण,
अकारण, जीव, अजीव, भविक, अभविक,
सिद्ध, असिद्ध प्रज्ञप्त हैं ।^{१२}

१२५. इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं
तीए काले अणंता जीवा आणाए
विराहिता चाउरंतं संसारकंतारं
अणुपरियट्टिसु ।

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं
पडुप्पणकाले परित्ता जीवा
आणाए विराहिता चाउरंतं
संसारकंतारं अणुपरियट्टंति ।

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं
अणागए काले अणंता जीवा
आणाए विराहिता चाउरंतं
संसारकंतारं अणुपरियट्टिस्संति ।

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं
तीए काले अणंता जीवा आणाए
आराहिता चाउरंतं संसारकंतारं
वीईवइंसु ।

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं
पडुप्पणकाले परित्ता जीवा

इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकम्
अतीते काले अनन्ताः जीवाः आज्ञया
विराध्य चातुरन्तं संसारकान्तारम्
अनुपरिवर्तितम् ।

इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं
प्रत्युत्पन्ने काले परीताः जीवाः
आज्ञया विराध्य चातुरन्तं संसार-
कान्तारम् अनुपरिवर्तन्ते ।

इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकम्
अनागते काले अनन्ताः जीवाः आज्ञया
विराध्य चातुरन्तं संसारकान्तारम्
अनुपरिवर्तित्यन्ते ।

इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकम्
अतीते काले अनन्ताः जीवाः आज्ञया
आराध्य चातुरन्तं संसारकान्तारं
व्यत्यव्राजिषुः ।

इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं
प्रत्युत्पन्नकाले परीताः जीवाः

१२५. अतीतकाल में अनन्त जीवों ने इस द्वादशांग
गणिपिटक की आज्ञा का पालन न करने के
कारण विराधना कर चार गति वाले संसार-
कान्तार में परिभ्रमण किया है ।

वर्तमानकाल में परिमित जीव इस द्वाद-
शांग गणिपिटक की आज्ञा की विराधना
करके चार गतिवाले संसारकान्तार में परि-
भ्रमण करते हैं ।

भविष्यकाल में अनन्त जीव इस द्वादशांग
गणिपिटक की आज्ञा की विराधना करके चार
गति वाले संसारकान्तार में परिभ्रमण करेंगे ।

अतीत काल में अनन्त जीवों ने इस द्वादशांग
गणिपिटक की आज्ञा की आराधना करके चार
गतिवाले संसारकान्तार का व्यतिक्रमण किया
है ।

वर्तमानकाल में परिमित जीव इस द्वादशांग
गणिपिटक की आज्ञा की आराधना करके

आणाए आराहिता चाउरंतं
संसारकंतारं वीईवयति ।
इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं
अणागए काले अणंता जीवा
आणाए आराहिता चाउरंतं
संसारकंतारं वीईवइस्संति ॥

१२६. इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं
न कयाइ नासी, न कयाइ न भवइ,
न कयाइ न भविस्सइ । भुवि च,
भवइ य, भविस्सइ य । ध्रुवे नियए
सासए अक्खए अक्खए अवट्टिए
निच्चे ।
से जहानामए पंचत्थिकाए न
कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि,
न कयाइ न भविस्सइ । भुवि च,
भवइ य, भविस्सइ य । ध्रुवे नियए
सासए अक्खए अक्खए अवट्टिए
निच्चे । एवामेव दुवालसंगे गणि-
पिडगे न कयाइ नासी, न कयाइ
नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ ।
भुवि च, भवइ य, भविस्सइ य ।
ध्रुवे नियए सासए अक्खए अक्खए
अवट्टिए निच्चे ॥

१२७. से समासओ चउव्विहे पणत्ते,
तं जहा—द्व्वओ, खेत्तओ,
कालओ, भावओ । तत्थ द्व्वओ
णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइं
जाणइ पासइ ।

खेत्तओ णं सुयनाणी उवउत्ते
सव्वं खेत्तं जाणइ पासइ ।

कालओ णं सुयनाणी उवउत्ते
सव्वं कालं जाणइ पासइ ।

भावओ णं सुयनाणी उवउत्ते
सव्वे भावे जाणइ पासइ ।

संगहणी-गाहा

अक्खर सण्णी सम्मं,
साइयं खलु सपज्जवसियं च ।
गमियं अंगपविट्ठं,
सत्तवि एए सपडिक्खवा ॥१॥

आज्जया आराध्य चातुरन्तं संसार-
कान्तारं व्यतिज्जन्ति ।

इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकम्
अनागते काले अनन्ताः जीवाः
आज्जया आराध्य चातुरन्तं संसार-
कान्तारं व्यतिज्जिष्यन्ति ।

इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं न
कदाचिद् नासीत्, न कदाचिद् न
भवति, न कदाचिद् न भविष्यति ।
अभूत् च, भवति च, भविष्यति च ।
ध्रुवं नियतं शाश्वतम् अक्षयम् अव्ययम्
अवस्थितं नित्यम् ।

तद् यथानाम पञ्चास्तिकायः न
कदाचिद् नासीत् न कदाचिद् नास्ति
न कदाचिद् न भविष्यति । अभूत् च,
भवति च भविष्यति च । ध्रुवः नियतः
शाश्वतः अक्षयः अव्ययः अवस्थितः
नित्यः । एवमेव द्वादशाङ्गं गणिपिटकं
न कदाचिद् नासीत् न कदाचिद्
नास्ति न कदाचित् न भविष्यति ।
अभूत् च भवति च भविष्यति
च । ध्रुवं नियतं शाश्वतम् अक्षयम्
अव्ययम् अवस्थितं नित्यम् ।

तत् समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तं,
तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः,
भावतः । तत्र द्रव्यतः श्रुतज्ञानी उप-
युक्तः सर्वद्रव्याणि जानाति पश्यति ।

क्षेत्रतः श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वं
क्षेत्रं जानाति पश्यति ।

कालतः श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वं
कालं जानाति पश्यति ।

भावतः श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वान्
भावान् जानाति पश्यति ।

संग्रहणी-गाथा

अक्षर संज्ञि सम्यक्,
सादिकं खलु सपर्यवसितञ्च ।
गमिकमङ्गप्रविट्ठं,
सप्तापि एते सप्रतिपक्षाः ॥

चार गतिवाले संसारकांतार का व्यतिक्रमण
करते हैं ।

भविष्यकाल में अनन्त जीव इस
द्वादशांग गणिपिटक की आज्ञा की आराधना
करके चार गति वाले संसारकांतार का
व्यतिक्रमण करेंगे ।^{१३}

१२६. यह द्वादशांग गणिपिटक कभी नहीं था,
कभी नहीं है या कभी नहीं होगा—ऐसा
नहीं हो सकता । था, है और रहेगा । यह
ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय,
अवस्थित और नित्य है ।

जैसे—पंचास्तिकाय कभी नहीं था, कभी
नहीं है या कभी नहीं होगा—ऐसा नहीं हो
सकता । था, है और रहेगा । यह ध्रुव,
नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित
और नित्य है । वैसे ही द्वादशांग गणिपिटक
कभी नहीं था, कभी नहीं है कभी नहीं रहेगा—
ऐसा नहीं हो सकता । था, है और रहेगा—
यह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय,
अवस्थित और नित्य है ।^{१४}

१२७. वह श्रुतज्ञान संक्षेपतः चार प्रकार का
प्रज्ञप्त है, जैसे—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः,
भावतः ।

द्रव्य की दृष्टि से श्रुतज्ञानी उपयुक्त
अवस्था में (ज्ञेय के प्रति दत्तचित्त होने पर)
सब द्रव्यों को जानता, देखता है ।

क्षेत्र की दृष्टि से श्रुतज्ञानी उपयुक्त
अवस्था में सब क्षेत्रों को जानता, देखता है ।

काल की दृष्टि से श्रुतज्ञानी उपयुक्त
अवस्था में सर्वकाल को जानता देखता है ।

भाव की दृष्टि से श्रुतज्ञानी उपयुक्त
अवस्था में सब भावों को जानता, देखता है ।^{१५}

संग्रहणी-गाथा

१. अक्षरश्रुत, संज्ञीश्रुत, सम्यक्श्रुत,
सादिश्रुत, सपर्यवसितश्रुत, गमिकश्रुत,
अंगप्रविष्टश्रुत ये सात हैं । इनके प्रतिपक्षी भी
सात हैं । कुल मिलाकर चौदह हैं ।^{१६}

आगम-सत्त्वग्रहणं,
जं बुद्धिगुणोर्हि अट्टुर्हि दिट्ठं ।
बिंति सुयनाणलभं,
तं पुव्वविसारया धीरा ॥२॥
सुस्सुसइ पडिपुच्छइ,
सुणइ गिण्हइ य ईहए यावि ।
तत्तो अपोहए वा,
धारेइ करेइ वा सम्मं ॥३॥
सूअं हुंकारं वा,
बाढक्कार पडिपुच्छ वीमंसा ।
तत्तो पसंगपारायणं च,
परिणिट्ठ सत्तमए ॥४॥

सुत्तथो खलु पढमो,
बीओ निज्जुत्तिमीसओ भणिओ ।
तइओ य निरवसेसो,
एस विही होइ अणुओगे ॥५॥
सेत्तं अंगपविट्ठं । सेत्तं
सुयनाणं । सेत्तं परोक्खं । सेत्तं
नंदी ॥

आगम-शास्त्रग्रहणं,
यद् बुद्धिगुणैः अष्टभिः दृष्टम् ।
ब्रुवते श्रुतज्ञानलाभं,
तत् पूर्वविशारदाः धीराः ॥
शुश्रूषते प्रतिपृच्छति,
शृणोति गृह्णाति चेहते चापि ।
ततो अपोहते वा,
धारयति करोति वा सम्यक् ।

सूकं हुंकारं वा,
बाढंकारं प्रतिपृच्छा विमर्शः ।
ततः प्रसंगपारायणञ्च,
परिनिष्ठा सप्तमके ॥

सूत्रार्थः खलु प्रथमः,
द्वितीयः निर्युक्तिमिश्रको भणितः ।
तृतीयश्च निरवशेषः,
एष विधिर्भवति अनुयोगे ॥
तदेतद् अङ्गप्रविष्टम् । तदेतत्
श्रुतज्ञानम् । तदेतत् परोक्षम् ।
सा एषा नन्दी ।

२. बुद्धि के आठ गुणों से जो आगम
शास्त्र का ग्रहण दृष्ट है। उसे धीर, पूर्व
विशारद श्रुतज्ञान की उपलब्धि कहते हैं।

आठ गुण ये हैं—

३. १. सुनने की इच्छा २. प्रतिपृच्छा ३.
श्रवण ४. ग्रहण ५. ईहा ६. अपोह ७.
धारणा ८. सम्यक् क्रिया ॥^{१०}

श्रवण-विधि—

४. पहले सूकभाव से सुनता है, हुंकार
करता है फिर बाढक्कार (साधु-साधु कहता
है), प्रतिपृच्छा करता है, विमर्श अथवा मीमांसा
करता है, तत्पश्चात् प्रसंग का पारायण और
सातवीं बार में उसकी परिनिष्ठा हो जाती
है ॥^{११}

५. अनुयोग (व्याख्या) की विधि इस
प्रकार है। प्रथम बार में सूत्र और अर्थ
का बोध, दूसरी बार में निर्युक्ति सहित सूत्र
और अर्थ का बोध, तीसरी बार में समग्रता
का बोध ॥^{१२} वह अंगप्रविष्ट है। वह श्रुतज्ञान
है। वह परोक्ष है। वह नन्दी है।

टिप्पण

सूत्र ७४,७५

१. (सूत्र ७४,७५)

अङ्गबाह्य आगमों की सूची में पहला आगम है—आवश्यक। उसके रचना और रचनाकार के विषय में यत्र तत्र उल्लेख मिलते हैं। आवश्यकनिर्युक्ति में सामायिक अध्ययन के विषय में एक उल्लेख है—यह अध्ययन गुरुजनों के द्वारा उपदिष्ट और आचार्य परम्परा द्वारा आगत है।^१ मलधारी हेमचन्द्र ने गुरुजन का अर्थ जिन, तीर्थङ्कर और गणधर किया है।^२ इससे सामायिक आवश्यक की प्राचीनता सिद्ध होती है।

वर्तमान में आवश्यक का जो स्वरूप है वह महावीर के काल में नहीं था। प्रतिक्रमण प्राचीन है। महावीर के धर्म को सप्रतिक्रमण कहा गया है।^३ चतुर्विंशतिस्तव की रचना भद्रबाहु ने की। इसका उल्लेख अनेक व्याख्या ग्रन्थों में मिलता है।^४

उक्त चर्चा का निष्कर्ष यह है कि आवश्यक की रचना अनेक कालखण्डों में हुई है। उसके रचनाकार गौतम, भद्रबाहु आदि अनेक आचार्य हैं। आवश्यक की रचना के विषय में पण्डित सुखलालजी और पण्डित बेचरदासजी का मतव्य अवलोकनीय है।^५

प्रस्तुत आगम में आवश्यक के छः प्रकार निर्दिष्ट हैं। अनुयोगद्वार के अनुसार आवश्यक छह अध्ययनों का एक श्रुतस्कन्ध है।^६ जयध्वला के अनुसार आवश्यक एक श्रुतस्कन्ध के रूप में प्रतिष्ठित नहीं है। उसमें अङ्गबाह्य श्रुत के चौदह प्रकार बतलाए गए हैं।^७ उनमें पहले छः प्रकार हैं—१. सामायिक, २. चतुर्विंशतिस्तव, ३. वंदना, ४. प्रतिक्रमण, ५. वैनयिक, ६. कृतिकर्म। मूलाचार में षडावश्यक की सूची में प्रत्याख्यान पांचवां तथा विसर्ग अथवा कायोत्सर्ग छठा है।^८ तत्त्वार्थभाष्य में कायव्युत्सर्ग के पश्चात् प्रत्याख्यान का उल्लेख है।^९ मूलाचार का क्रम भाष्य का संवादी है क्योंकि भाष्य से भी यही फलित होता है कि छह अध्ययनों का अस्तित्व स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में था।

इन सब संदर्भों का निष्कर्ष यह है कि आवश्यक अनेक कालखण्डों में परिवर्तित होता रहा।

सूत्र ७६-७८

२. (सूत्र ७६-७८)

स्थानाङ्ग सूत्र में कालिक और उत्कालिक का उल्लेख मात्र मिलता है।^{१०} अकलंक ने अङ्गबाह्य के कालिक और उत्कालिक

१. आवश्यकनिर्युक्ति, गा. ८७ :

सामाह्यनिज्जुत्ति वुच्छं उवएसियं गुरुजणेणं ।

आयरियपरंपरण आगयं आणुपुव्वीए ॥

२. विशेषावश्यकभाष्य, गा. १०८१ की वृत्ति—जिनगणधर-
लक्षणेन गुरुजनेन देशिताम् ।

३. ठाणं, ६।१०३ का टिप्पण ।

४. (क) आचारांग, वृत्ति प. २।१ : आवश्यकान्तर्भूत-
चतुर्विंशतिस्तवस्त्वारातीयकालभाविना भद्रबाहुस्वा-
मिनाऽकारि ।

(ख) सेनप्रश्नोत्तर, उल्लास २ : भद्रबाहुस्वामिना आव-
श्यकान्तर्भूत चतुर्विंशतिस्तवरचनमपरावश्यकरचनञ्च
निर्युक्तिरूपतयाकृतमिति भावार्थः ।

५. (क) दर्शन और चिन्तन, पृ. १९४-१९६

(ख) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १, पृ.
४२,४३

६. अणुओगदाराई, सू. ६

७. कषायपाहुड, पृ. २५

८. मूलाचार, गा. २२ :

समदा थवो य वंदण पाडिक्कमणं तहेव णादव्वं ।

पच्चखाणविसग्गो करणीयावासया छुप्पि ॥

९. तत्त्वार्थाधिगम सूत्रम्, १।२० का भाष्य—अङ्गबाह्यमनेक-
विधं । तद्यथा—सामायिकं, चतुर्विंशतिस्तवः, वन्दनं,
प्रतिक्रमणं, कायव्युत्सर्गः, प्रत्याख्यानं, दशवैकालिकं..... ॥

१०. ठाणं, २।१०८

के अनेक विकल्प बतलाए हैं। उनके अनुसार स्वाध्याय काल में जिसका काल नियत है वह कालिक है, अनियत काल वाला उत्कालिक है।^१

अनुयोगद्वारा में परिमाण संख्या के प्रकरण में कालिक सूत्र का परिमाण बताया गया है।^१ आवश्यकनिर्युक्ति से ज्ञात होता है कि आर्यरक्षितसूरि ने अनुयोग की व्यवस्था के समय कालिकश्रुत की व्यवस्था की थी।

प्रथम अनुयोग चरणकरणानुयोग है। उसके लिए निर्युक्तिकार ने कालिकश्रुत का प्रयोग किया है।^१ मलधारी हेमचन्द्र का अभिमत है—ग्यारह अङ्ग कालग्रहण आदि की दृष्टि से पढ़े जाते थे, इसलिए उनकी संज्ञा कालिक है। कालिकश्रुत में प्रायः चरणकरणानुयोग का प्रतिपादन है इसलिए भाष्यकार ने चरणकरणानुयोग के स्थान पर कालिकश्रुत का प्रयोग किया है।^१

कालिकश्रुत का प्रायः चरणकरणानुयोग में समावेश है।

ऋषिभाषित—उत्तराध्ययन में नमि, कपिल आदि का कथानक है। इसलिए उनका समावेश धर्मकथानुयोग में, सूर्यप्रज्ञप्ति आदि का समावेश गणितानुयोग में और दृष्टिवाद का समावेश द्रव्यानुयोग में किया गया है।^१

कालिक और उत्कालिक—यह विभाग सर्वप्रथम प्रस्तुत आगम में ही उपलब्ध होता है। चूर्णिकार के अनुसार कालिक आगम दिन रात के प्रथम प्रहर व चरम प्रहर में पढ़े जाते थे। उत्कालिक आगम अकाल बेला को छोड़कर हर समय पढ़े जाते थे।^१ इससे यह स्पष्ट है कि स्वाध्याय काल की मर्यादा के आधार पर यह विभाग किया गया है। दशवैकालिक को उत्कालिक की सूची में और उत्तराध्ययन को कालिक की सूची में रखने का हेतु क्या है? इसका स्पष्ट समाधान नहीं किया जा सकता। केवल स्वाध्याय व्यवस्था को ही हेतु माना जा सकता है।

उत्कालिक की सूची में उनतीस आगमों का उल्लेख है—

१. दशवैकालिक—

दशवैकालिक के दस अध्ययन हैं और चूँकि वह विकाल में रचा गया, इसलिए इसका नाम दशवैकालिक रखा गया। इसके कर्ता श्रुतकेवली शय्यभद्र हैं। अपने पुत्र-शिष्य मनक के लिए उन्होंने इसकी रचना की। वीर सम्बत् ७२ के आसपास 'चम्पा' में इसकी रचना हुई। विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य **दसवैकालिक** की भूमिका।

२. कल्पिकाकल्पिक—

इसमें कल्प और अकल्प का वर्णन था। यह सम्प्रति अनुपलब्ध है।

३. क्षुल्लकल्पश्रुत—

इसके कर्ता भद्रबाहु हैं। यह लघु आकारवाला विधिनिषेधात्मक आचार शास्त्र है।

४. महाकल्पश्रुत—

इसके कर्ता भद्रबाहु हैं। यह महत् आकारवाला विधि निषेधात्मक आचार शास्त्र है।

१. तत्त्वार्थवातिक, १।२०।१४ : स्वाध्यायकाले नियतकालं कालिकम् । अनियतकालमुत्कालिकम् ।

२. अणुओगदाराई, सू. ५७१

३. आवश्यक निर्युक्ति, गा. ७७६, ७७७ :

कालियसुयं च इसिभासियाइं तइओ य सूरपन्नत्ती ।

सव्वो य दिट्ठिवाओ चउत्थओ होइ अणुओगो ॥

जं च महाकप्पसुयं जाणि अ सेसाणि छेअसुत्ताणि ।

चरणकरणणुओगो त्ति कालियत्थे उवगयाणि ॥

४. विशेषावश्यकभाष्य, गा. २२९४-९५ की वृत्ति—इहैका-दशाङ्गरूपं सर्वमपि श्रुतं कालग्रहणादिविधिनाऽधीयत इति कालिकमुच्यते । तत्र प्रायश्चरण-करणे एव प्रतिपाद्येते । अतः आर्यरक्षितसूरिभिस्तत्र चरणकरणानुयोग एव कर्तव्यतयानुज्ञातः ।

५. विशेषावश्यकभाष्य, गा. २२९४, २२९५ की वृत्ति—ऋषिभाषितान्युत्तराध्ययनानि, तेषु च नमिकपिलादिमहर्षीणां संबन्धीनि प्रायो धर्माख्यानकान्येव कथ्यन्त इति धर्मकथानुयोग एव तत्र व्यवस्थापितः । सूर्यप्रज्ञप्त्यादौ तु चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्रादिचारणगणितमेव प्रायः प्रतिपाद्यत इति तत्र गणितानुयोग एव व्यवस्थापितः । दृष्टिवादे तु सर्वस्मिन्नपि चालना-प्रत्यवस्थानादिभिर्जावादिद्रव्याण्येव प्रतिपाद्यन्ते, तथा सुवर्ण-रजत मणि-मौक्तिकादिद्रव्याणां च सिद्धयोऽभिधीयन्त इति द्रव्यानुयोग एव ।

६. नन्दी चूर्ण, पृ. ५७ : तत्थ 'कालियं' जं दिण-रातीणं पढम-चरमपोरिसीसु पडिज्जति । जं पुण कालवेलवज्जं पडिज्जति तं उक्कालियं ।

५. औपपातिक—

औपपातिक अंगवाह्य आगम है इसलिए यह गणधर कृत नहीं है। किसी स्थविर ने इसकी रचना की है।

इसमें अध्ययन, उद्देशक आदि का विभाग नहीं है।

प्रस्तुत सूत्र का मुख्य प्रतिपाद्य उपपात है। समवसरण इसका प्रासंगिक विषय है। मुख्य प्रतिपाद्य के आधार पर प्रस्तुत सूत्र का नाम 'ओवाइय' किया गया है। इसका संस्कृत रूप 'औपपातिक' होता है।

औपपातिक का मुख्य विषय पुनर्जन्म है। उपपात के प्रकरण में 'अमुक प्रकार के आचरण से अमुक प्रकार का आगामी उपपात होता है', यही विषय चर्चित है।

उपोद्घात प्रकरण में अनेक वर्णक हैं—नगरी वर्णक, चैत्य वर्णक, उद्यान वर्णक, राज वर्णक आदि-आदि। इन वर्णकों से प्रस्तुत सूत्र वर्णक सूत्र बन गया।

६. राजप्रश्नीय—

यह स्थविर के द्वारा रचित है।

प्रस्तुत सूत्र अध्ययन, उद्देशक आदि विभागों में विभक्त नहीं है। विषय की दृष्टि से इसके दो मुख्य प्रकरण हैं—

१. सूर्याभदेव

२. प्रदेशी राजा का कथानक।

प्रस्तुत सूत्र का प्रथम प्रकरण आमलकप्पा नगरी के वर्णन से प्रारम्भ होता है। सूर्याभ के प्रसंग में विमानरचना, प्रेक्षामंडप, नाट्यविधि आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है।

७. जीवाभिगम—

प्रस्तुत सूची में आलोच्य आगम का नाम जीवाभिगम है। इस समय आगम का उत्क्षेप पद में जीवाजीवाभिगम नाम उपलब्ध है।^१ इसका प्रारम्भ अजीवाभिगम से होता है।^२ इससे आगे जीवाभिगम का विस्तृत विवेचन है। इसके कर्त्ता का नाम उपलब्ध नहीं है। उत्क्षेप पद में यह निर्देश मिलता है कि जिनमत में श्रद्धा रखने वाले स्थविरों ने जीवाजीवाभिगम नामक अध्ययन का प्रज्ञापन किया है—

इह खलु जिगमयं जिणाणुमयं जिणाणुलोमं जिणप्पणीतं जिणपरुवियं जिणक्खायं जिणाणुचिण्णं जिणपण्णत्तं जिणदेसियं जिणपसत्थं अणुवीइ तं सट्ठहमाणा तं पत्तियमाणा तं रोएमाणा थेरा भगवंतो जीवाजीवाभिगमं णामज्झयणं पण्णवइंसु ।^३

इसका रचनाकाल अज्ञात है। इसमें अनेक स्थानों पर 'जहा पण्णवणाए'^४—अर्थात् प्रज्ञापना को देखने का संकेत है। इससे ज्ञात होता है कि जीवाजीवाभिगम की रचना श्यामाचार्य के उत्तरवर्ती स्थविरों ने की है। इस तथ्य को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि आगम संकलन काल में देवर्धगणी ने 'जहा पण्णवणाए' का उल्लेख किया है।

कुछ भी हो रचनाकाल तक पहुंचने के लिए काफी अनुसंधान की आवश्यकता है।

८. प्रज्ञापना—

इसके रचनाकार श्यामाचार्य हैं। वे वाचक और पूर्वधर थे।^५ सूत्रकार ने आगम के प्रारम्भ में भगवान महावीर को नमस्कार किया है—

ववगयजर-मरणभए सिद्धे अभिवंदिऊण तिविहेणं ।

वंदामि जिणवरिदं तेलोककगुहं महावीरं ॥^६

उनके अनुसार प्रस्तुत ग्रंथ दृष्टिवाद का निष्यन्द (सार) है। भगवान महावीर ने सब आगमों की प्रज्ञापना की।

ग्रन्थकार ने उन्हीं के प्रज्ञापन का संकल्प किया है^७—

सुघरयणनिहाणं जिणवरेण, भवियजणनिव्वुइकरेण ।

उवदंसिया भगवया, पण्णवणा सव्वभावाणं ॥

१. उवंगसुत्ताणि, खण्ड १, जीवाजीवाभिगमे, १।१

२. वही १।३-५

३. वही १।१

४. नवसुत्ताणि, नंदी, गा. २६ :

हारियागुत्तं साइं, च वंदिमो हारियं च सामिज्जं ।

५. उवंगसुत्ताणि, खण्ड २, पण्णवणा, गा. १

६. वही, गा. २,३

अज्जयणमिणं चित्तं, सुयरयणं विट्ठिवायणीसंबं ।
जह वणिणयं भगवया, अहमवि तह वण्णइस्सामि ॥

मलयगिरि ने प्रस्तुत ग्रन्थ की वृत्ति में दो गाथाएं उद्धृत की हैं। उनमें उल्लेख है कि श्यामाचार्य वाचक वंश के तेवीसवें वाचक थे। उनका पूर्वश्रुत बहुत समृद्ध था।^१ माथुरी वाचना के अनुसार श्यामाचार्य का स्थान तेरहवां है।^२ तपागच्छ पट्टावली के अनुसार श्यामाचार्य का स्वर्गवास भगवान् महावीर से ३७६ वर्ष बाद हुआ था।^३

इन तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि श्यामाचार्य सुधर्मा के पश्चात् तेरहवें वाचक थे। वृत्ति में उद्धृत गाथा में तेवीसवां वाचक बतलाया गया है। यह किसी अन्य अनुश्रुति के आधार पर लिखा गया प्रतीत होता है। इसे प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

जयाचार्य का अभिमत है कि श्यामाचार्य ने प्रज्ञापना की रचना किसी बड़े ग्रन्थ के लघु संस्करण के रूप में की है।^४

९. महाप्रज्ञापना—

चूर्णिकार के अनुसार इसमें प्रज्ञापनीय विषय विस्तार से बतलाए गए हैं।^५ यह सम्प्रति अनुपलब्ध है।

१०. प्रमादाप्रमाद—

चूर्णिकार के अनुसार इसमें प्रमाद, अप्रमाद का वर्णन किया गया है।^६ यह सम्प्रति उपलब्ध नहीं है।

११. नन्दी—

प्रस्तुत आगम। विशेष विवरण के लिए देखें भूमिका।

१२. अनुयोगद्वार—

यह आर्यरक्षित द्वारा रचित है। विशेष विवरण के लिए देखें 'अणुओगद्वाराइं' की भूमिका।

१३. देवेन्द्रस्तव—

इस अध्ययन में देवेन्द्रों की स्थिति, भवन, विमान, नगर, उच्छ्वास-निःश्वास आदि का वर्णन है।

१४. तंहुलवैचारिक—

इस अध्ययन में गर्भ, मानव शरीर रचना, उसकी शत वर्ष की आयु के दस विभाग, उनमें होने वाली शारीरिक स्थितियां, उसके आहार आदि—मानव जीवन के विविध पक्षों पर विमर्श किया गया है।

१५. चन्द्रवेध्यक—

इस अध्ययन में विनय गुण, आचार्य गुण, शिष्य गुण, ज्ञान गुण, चारित्र गुण आदि विषयों पर विस्तार से विवेचन है।

१६. सूर्यप्रज्ञप्ति—

इसमें सूर्य की चर्या का प्रज्ञापन है। इसमें प्रहर के कालमान का निरूपण है।^७

१७. पौरुषीमंडल—

इस अध्ययन में एक प्रहर के कालमान का प्रतिपादन है।

१८. मण्डलप्रवेश—

इस अध्ययन में चन्द्र और सूर्य के एक मण्डल से दूसरे मण्डल में प्रवेश का वर्णन है। यह सम्प्रति उपलब्ध नहीं है।

१. प्रज्ञापना, मलयगिरीया वृत्ति, प. ५

२. पट्टावलि प्रबन्ध संग्रह, भूमिका पृ. २९

३. पट्टावलि समुच्चय, पृ. ४६

४. प्रश्नोत्तर तत्त्व बोध, पृ. ८२, ८३

५. नन्दी चूर्ण, पृ. ५८

६. वही, पृ. ५८

७. वही, सूरचरितं पणविज्जते जत्थ सा सूरपणत्ति ।

१९. विद्याचरणविनिश्चय—

इस अध्ययन में विद्या और चारित्र का निरूपण किया गया है।^१

२०. गणविद्या—

इस अध्ययन में विभिन्न अवसरों पर प्रयुक्त होने वाले मुहूर्त, नक्षत्र आदि का वर्णन है।

२१. ध्यानविभक्ति—

इस अध्ययन में ध्यान का विभाग युक्त विस्तृत वर्णन है। यह सम्प्रति अनुपलब्ध है।

२२. मरणविभक्ति—

इस अध्ययन में मरण का विभाग युक्त विस्तृत वर्णन है।

२३. आत्मविशोधि—

इस अध्ययन में आत्मा की विशुद्धि का वर्णन है। यह सम्प्रति उपलब्ध नहीं है।

२४. वीतरागश्रुत—

इस अध्ययन में वीतराग के स्वरूप का विवेचन है। यह सम्प्रति अनुपलब्ध है।

२५. संलेखनाश्रुत—

इस अध्ययन में मारणान्तिक संलेखना का निरूपण है। पुण्यविजयजी ने संलेखनाश्रुत का मरणविभक्ति के अंतर्गत उल्लेख किया है।^२

२६. विहारकल्प—

इस अध्ययन में जिनकल्प, स्थविरकल्प, प्रतिमाधारी, यथालन्दक और पारिहारिक—मुनि की इन पांचों श्रेणियों का कल्प है।

२७. चरणविधि—

इस अध्ययन में चारित्र की विधियों का निरूपण है।

२८. आतुरप्रत्याख्यान—

इस अध्ययन में आतुर (ग्लान) को कराए जाने वाले प्रत्याख्यान का वर्णन है।

२९. महाप्रत्याख्यान—

इस अध्ययन में चरम अवस्था में कराए जाने वाले प्रत्याख्यान का वर्णन है।

प्रस्तुत आगम में छह प्रकीर्णकों के नाम उपलब्ध होते हैं—देवेन्द्रस्तव, तंदुलवैचारिक, चन्द्रवेध्यक, गणविद्या, आतुर-प्रत्याख्यान और महाप्रत्याख्यान। चूर्णिकार ने कुल्लेक प्रकीर्णकों का विवेचन किया है।^३

प्रकीर्णकों की सूची भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार की मिलती है। इस विषय में मुनि पुण्यविजयजी ने विस्तार से लिखा है^४—सामान्यतया प्रकीर्णक दस माने जाते हैं। किन्तु इनकी कोई निश्चित नामावलि न होने के कारण ये नाम कई प्रकार से गिनाए जाते हैं। इन सब प्रकारों में से संग्रह किया जाय तो कुल बाईस नाम प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार हैं—१. चउसरण, २. आउरपच्चकखाण, ३. भत्तपरिण्णा, ४. संथारय, ५. तंदुलवेयालय, ६. चंदावेज्जभय, ७. देविदत्थव, ८. गणविज्जा, ९. महापच्चकखाण, १०. वीरत्थय, ११. इसिभासियाइं, १२. अजीवकप्प, १३. गच्छाचार, १४. मरणसमाधि, १५. तित्थोगालि, १६. आराहणापडागा, १७. दीवसागरपण्णत्ति, १८. जोइसकरंडय, १९. अंगविज्जा, २०. सिद्धपाहुड, २१. सारावली, २२. जीवविभक्ति।

१. पडण्णयसुत्ताइं, पृ. १५९

२. नन्दी चूर्ण, पृ. ५७-६०

३. पडण्णयसुत्ताइं, पृ. १८

आगम युग का जन दर्शन^१

१. चतुःशरण
२. आतुरप्रत्याख्यान
३. भक्तपरिज्ञा
४. संस्तारक
५. तन्दुलवैचारिक
६. चन्द्रवेध्यक
७. देवेन्द्रस्तव
८. गणिविद्या
९. महाप्रत्याख्यान
१०. वीरस्तव

तन्दुलवेयालियपइण्यं^२

१. चतुःशरण
२. आतुरप्रत्याख्यान
३. भक्तपरिज्ञा
४. संस्तारक
५. तन्दुलवैचारिक
६. गच्छाचार
७. देवेन्द्रस्तव
८. गणिविद्या
९. महाप्रत्याख्यान
१०. मरणसमाधि

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, पीठिका^३

१. चतुःशरण
२. आतुरप्रत्याख्यान
३. भक्तपरिज्ञा
४. संस्तारक
५. तन्दुलवैचारिक
६. गच्छाचार
७. देवेन्द्रस्तव
८. गणिविद्या
९. महाप्रत्याख्यान
१०. मरणसमाधि

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-२^४

१. चतुःशरण
२. आतुरप्रत्याख्यान
३. महाप्रत्याख्यान
४. भक्तपरिज्ञा
५. तन्दुलवैचारिक
६. संस्तारक
७. गच्छाचार
८. गणिविद्या
९. देवेन्द्रस्तव
१०. मरणसमाधि
११. चन्द्रवेध्यक व वीरस्तव

चौरासी आगम अधिकार^५

१. चतुःशरण
२. आतुरप्रत्याख्यान
३. महाप्रत्याख्यान
४. भक्तप्रत्याख्यान
५. तन्दुलवैचारिक
६. गणिविद्या
७. देवेन्द्रस्तव
८. चन्द्रविभक्ति
९. संस्तारक
१०. मरणविभक्ति

कालिकसूत्र की सूची में ३० आगमों का उल्लेख है—

१. उत्तराध्ययन—

उत्तराध्ययन एक कृति है। कोई भी कृति शाश्वत नहीं होती, इसलिए यह प्रश्न भी स्वाभाविक है कि इसका कर्ता कौन है? इस प्रश्न पर सर्वप्रथम निर्युक्तिकार ने विचार किया है। चूर्णिकार ने भी इस प्रश्न को स्पष्ट शब्दों में उठाया है।^६ निर्युक्तिकार की दृष्टि में उत्तराध्ययन एक-कर्तृक नहीं है। उनके मतानुसार उत्तराध्ययन के अध्ययन कर्तृत्व की दृष्टि से चार वर्गों में विभक्त होते हैं—

- (१) अंगप्रभव
- (२) जिन-भाषित
- (३) प्रत्येकबुद्ध-भाषित
- (४) संवाद-समुत्थित।

२-५. दशा, कल्प, व्यवहार, निशीथ—

ये चार आगम वर्तमान वर्गीकरण के अनुसार छेदसूत्र के वर्गीकरण में हैं। इनका मुख्य विषय कल्प, अकल्प, विधि, निषेध और प्रायश्चित्त है।

१. आगम युग का जैन दर्शन, पृ० २६
२. तन्दुलवेयालियपइण्यं, भूमिका पृ. ४
३. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, पीठिका पृ. ७१०-७१२
४. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग २, पृ. ३४५-३६३

५. चौरासी आगम अधिकार (अमुद्रित)।

६. उत्तराध्ययन चूर्ण, पृ. ६ : एयाणि पुण उत्तरज्जयणाणि कओ केण वा भासियाणित्ति ?
७. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गा. ४ : अंगप्पभवा जिनभासिया य पत्तेयबुद्धसंवाया।

६. महानिशीथ—

चूर्णिकार के अनुसार समालोच्य आगम का विषय निशीथ की अपेक्षा विस्तीर्णतर है इसलिए इसकी संज्ञा महानिशीथ है।^१

महानिशीथ का संशोधन आचार्य हरिभद्र ने किया है।^२

७. ऋषिभाषित—

'ऋषिभाषितानि' किसी कर्ता की कृति नहीं है। इसमें पैंतालीस अर्हंतों का प्रवचन संकलित है। समवाओ में ऋषिभाषित के चवांलीस अध्ययन हैं।^३ मुनि पुण्यविजयजी का मंतव्य मननीय है—

"समवायांग सूत्र में चवांलीसवें समवाय में ऋषिभाषित सूत्र का उल्लेख मिलता है। देवलोक से च्यवित चवांलीस ऋषियों के प्रवचन रूप यह सूत्र है। किन्तु एक प्रश्न उपस्थित होता है कि यहां वर्तमान ऋषिभाषित सूत्र के पैंतालीस अध्ययन हैं और समवायांग सूत्र में चवांलीस अध्ययनों का उल्लेख मिलता है। इस विभेद को मिटाने के लिए टीकाकार लिखते हैं कि समवायांग सूत्र में देवलोक से च्यवित ऋषियों का ही उल्लेख है। संभव है एक ऋषि किसी अन्य गति से आये हों, अतः उनका उल्लेख नहीं किया है।"

८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—

उपांग के वर्गीकरण के अनुसार यह पांचवां उपांग है। इसमें जंबूद्वीप आदि अनेक विषयों का वर्णन है।

९. द्वीपसागरप्रज्ञप्ति—

बाईस प्रकीर्णकों की सूची में इसका उल्लेख है।^४

१०. चन्द्रप्रज्ञप्ति

चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति का उपलब्ध पाठ और विषय समान है। चंद्रप्रज्ञप्ति के प्रारम्भ में चार मंगल गाथाएं हैं। सूर्य-प्रज्ञप्ति में वे नहीं हैं। चंद्रप्रज्ञप्ति का प्रारम्भिक पाठ कुछ प्रतियों में भिन्न है। सूर्यप्रज्ञप्ति की गणना उत्कालिक में की गई है, चंद्रप्रज्ञप्ति की गणना कालिक में। यह अनुसंधान का विषय है। इसका कोई स्पष्ट हेतु नहीं है। इसमें चन्द्र की चर्या का प्रज्ञापन है।

११,१२. क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्ति, महाविमानप्रविभक्ति—

विमान प्रविभक्ति में सौधर्म आदि कल्पों के आवलिका और प्रकीर्णक दोनों प्रकार के विमानों का निरूपण है। इसके दो अध्ययन हैं—

१. क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्ति—सूत्र और अर्थ की दृष्टि से संक्षिप्त है।

२. महाविमानप्रविभक्ति—सूत्र और अर्थ की दृष्टि से विस्तृत है।^५

१३. अंगचूलिका—

चूर्णिकार ने इसका अर्थ आचाराङ्ग की चूला अथवा दृष्टिवाद की चूला किया है।^६ व्यवहार सूत्र में अंगचूलिका, वर्गचूलिका और व्याख्याचूलिका इन तीनों का उल्लेख है।^७ व्यवहार भाष्य में इन चूलिकाओं की आगम के साथ संयोजना का निर्देश मिलता है। अङ्गचूलिका अङ्गों की चूलिका है। वर्गचूलिका महाकल्पश्रुत की चूलिका है और व्याख्याचूलिका व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) की चूलिका है।^८

१. नन्दी चूर्ण, पृ. ५९ : जं इमस्स निसीहस्स सुत्तत्थेहं

वित्थिण्णतरं तं महानिशीहं ।

२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १, प्रस्तावना पृ. ५४

३. समवाओ, ४४।१ : चोयालीसं अज्जयणा इतिभासिया दियलोग्गुयाभासिया पणत्ता । द्रष्टव्य टिप्पण ।

४. पइण्णयसुत्ताइं, पृ. ४६

५. वही, पृ. २५७ से २७९

६. नन्दी चूर्ण, पृ. ५९

७. वही, पृ. ५९

८. नवसुत्ताणि, ववहारो, १०।३० : एक्कारसवासपरिया-यस्स समणस्स निगंथस्स कप्पइ छुड्डियाविमाणपविभत्ती महल्लियाविमाणपविभत्ती अंगचूलिया वर्गचूलिया वियाहचूलिया नामं अज्जयणे उद्दिस्सिए ।

९. व्यवहारभाष्य, गा. ४६५९ :

अंगाणमंगचूली महकल्पसुतस्स वर्गचूलीओ ।

वियाहचूलिया पुण, पणत्तीए मुणेयव्वा ॥

चूर्णकार ने अंगचूलिका के प्रसंग में आचार की पांच चूलिकाओं और दृष्टिवाद की चूला का उल्लेख किया है।^१
मलयगिरि ने अङ्गचूलिका के सन्दर्भ में निरयावलिका का उल्लेख किया है। उसके पांच विभाग हैं—वे उपासकदशा आदि पांच अङ्गों की चूलिका हैं—

अंग	उपांग
उवासगदसाओ	निरयावलियाओ (कप्पिया)
अंतगडदसाओ	कप्पवाडिसियाओ
अणुत्तरोववाइयदसाओ	पुप्फियाओ
पण्हावागरणाइं	पुप्फचूलियाओ
विवागसुयं	वण्हदसाओ

१४. वर्गचूलिका

वर्गचूलिका के विषय में भाष्य और चूर्ण का मत बहुत भिन्न है। भाष्यकार के अनुसार वर्गचूलिका महाकल्पश्रुत की चूलिका है।^१ चूर्णकार के अनुसार अंतकृतदशा और अनुत्तरोपपातिकदशा के वर्ग हैं, उनकी चूलिका वर्गचूलिका है।^२

१५. व्याख्याचूलिका—

यह व्याख्याप्रज्ञप्ति की चूलिका है।^३

१६-२२. अरुणोपपात, वरुणोपपात, गरुडोपपात, धरणोपपात, वैश्रमणोपपात, वेलंधरोपपात, देवेन्द्रोपपात—

ये अध्ययन देव गण के नाम से सम्बद्ध हैं। अरुण, वरुण, गरुड, धरण, वैश्रमण, वेलंधर और देवेन्द्र—देवों के नाम के आधार पर उक्त अध्ययनों की रचना की गई है। अध्ययन से संबद्ध देवों को प्रणिधान कर, उनका परावर्तन किया जाता है। उस समय वे देव उपस्थित हो जाते हैं। इनका परावर्तन निश्चित समय में किया जाता है और उस समय उन देवों के आसन चलित होते हैं और वे परावर्तन कर्त्ता के सामने अन्तहित अवस्था में ध्यानपूर्वक अध्ययनों को सुनते हैं। उसकी समाप्ति पर कहते हैं 'सुभाषितम्' वर मांगो। परावर्तन करनेवाले श्रमण के मन में कोई चाह नहीं होती। वह कहता है—मुझे कोई वर नहीं मांगना है। तब वे उस श्रमण को वंदना कर लौट जाते हैं।^४

व्यवहार भाष्य में धरणोपपात का उल्लेख नहीं है।^५

२३-२५. उत्थानश्रुत, समुत्थानश्रुत, नागपर्यापनिका—

उत्थानश्रुत का उपयोग दुष्ट श्रमण जिसको लक्ष्य कर शृंग बजाता है वह कुल, गांव और देश उजड़ जाता है। वह प्रसन्न होकर समुत्थानश्रुत का परावर्तन करता है तब उजड़े हुए कुल, गांव और देश पुनः बस जाते हैं।^६

नागपर्यापनिका नामक अध्ययन का परावर्तन करने पर नागकुमार अपने स्थान पर स्थित रहकर वंदना, नमस्कार करते हैं और शृंगजात जैसे कार्यों में वर भी देते हैं।^७ मलधारी श्रीचंद्रसूरि ने 'सिंहनाइयकज्ज' का विस्तृत अर्थ किया है।^८

१. नन्दी चूर्ण, पृ. ५९ : अंगस्स चूलिता जहा—आयारस्स पंच चूलातो, दिट्ठिवातस्स वा चूला ।

२. व्यवहार सूत्र, १०।३० : वृत्ति प० १०९ : अङ्गानामुपासकदशाप्रभृतीनां पञ्चानां चूलिका निरयावलिका अङ्गचूलिका ।

३. द्रष्टव्य — अङ्गचूलिका का पादटिप्पण ।

४. नन्दी चूर्ण, पृ. ५९ : जहा अंतकडदसाणं अट्ट वग्गा, अणुत्तरोववातियदसाणं तिण्णि वग्गा, तेसिं चूला वग्गचूला ।

५. वही, पृ. ५९ : वियाहो भगवती, तीए चूला वियाहचूला ।

६. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ५९

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ७३

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. २०६, २०७

७. व्यवहार भाष्य, गा. ४६६०

८. नन्दी चूर्ण, पृ. ६०

९. वही पृ. ६०

१०. हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. १६२, १६३ : सिगनाइयकज्जेसु त्ति, शृङ्गजातेन तुल्यानि शृङ्गजातीयानि, तानि च तानि कार्याणि चेति विग्रहः। यथा गवि स्थितं शृङ्गं सर्वजनप्रकटं भवति, एवं यत् सर्वजनविदितं महदद्भुत किञ्चिच्चन्त्य-गुरु-सङ्गादिविषयमनर्थरूपं प्रत्यनीकेन क्रियमाणं भवति तत् शृङ्गजातीयमुच्यते इत्येके। शृङ्गनादितकार्यमित्यपरे, तत्र तादृशे कार्य उत्पन्ने शृङ्गनादः—शृङ्गापुरणपूर्वकं सङ्गमिलनलक्षणः स सञ्जातो यत्र तच्च तत् कार्यं चेति व्याचक्षते। शृङ्गजातीयं संघकार्यमुच्यते इति तात्पर्यम्।

२६-३० निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा—

ये उपांग के पांच वर्ग हैं।^१ व्यवहार सूत्र में नन्दी में आए हुए आगमों के अतिरिक्त आगमों का उल्लेख है^२— स्वप्नभावना, चारणभावना, तेजोनिर्गमभावना, आशीविषभावना, दृष्टिविषभावना ।

सूत्र ७९

३. (सूत्र ७९)

प्रस्तुत सूत्र का प्रारम्भ 'एवमाइयाइं चउरासीइं पइण्णगसहस्साइं' इन वाक्यों से होता है। 'एवमादि' यह वाक्य पूर्वनिर्दिष्ट ग्रन्थों की ओर संकेत करता है। इसका तात्पर्य है—पूर्ववर्ती सूत्रों में जिन उत्कालिक और कालिक आगमों की तालिका दी गई है वे आगम प्रकीर्णक की कोटि के हैं। चूर्णिकार ने बताया है—भगवान् ऋषभ के चौरासी हजार शिष्य और उनके द्वारा रचित कालिक और उत्कालिक प्रकीर्णक चौरासी हजार थे।

चूर्णिकार तथा वृत्तिकारों ने प्रकीर्णक के दो अर्थ परिभाषित किए हैं—

१. अर्हत् के द्वारा उपदिष्ट श्रुत से निर्यूहण कर जो रचना की जाती है वह प्रकीर्णक है।

२. श्रुत का अनुसरण कर अपने वचन कौशल से जो प्रवचन किया जाता है वह प्रकीर्णक है। वह प्रवचन नियमतः किसी श्रुत ग्रन्थ का अनुपाती होता है।

प्रकीर्णक की रचना के विषय में सूत्रकार ने दो परम्पराओं का उल्लेख किया है—

१. जिस तीर्थङ्कर के जितने शिष्य होते हैं उतने ही प्रकीर्णकों की रचना की जाती है।

२. दूसरा विकल्प यह है कि जिस तीर्थङ्कर के बुद्धि चतुष्टय युक्त जितने शिष्य होते हैं, उतने ही प्रकीर्णकों की रचना की जाती है।

प्रकीर्णकों की संख्या और प्रत्येकबुद्धों की संख्या का परिमाण समान बतलाया गया है। इससे यह फलित होता है कि प्रकीर्णक के रचनाकार प्रत्येकबुद्ध होते हैं। इससे ज्ञात होता है कि सूत्रकार के सामने प्रकीर्णक रचना की निश्चित परम्परा नहीं थी। अनेक आगमधरों की अनेक परम्पराओं का सूत्रकार ने संकलन कर दिया।

सूत्र ८०-९१

४. (सूत्र ८०-९१)

१. आचार

आचार द्वादशाङ्गी का पहला अङ्ग है। इसकी विषय वस्तु है—आचार। प्रस्तुत विवरण आचारचूला से संबद्ध अधिक है, आचार से कम है। आचार के प्रतिपाद्य विषय नौ बतलाए गए हैं—

१. आचार—ज्ञान आदि की आसेवन विधि।

२. गोचर—भिक्षा ग्रहण की विधि।

३. विनय—ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य के प्रति विनम्रता।

४. वैनयिक—शिक्षा—विनय का फल। चूर्णिकार तथा वृत्तिकारों ने विनय और शिक्षा दोनों पदों को संयुक्त माना है। उसका अर्थ है शिष्य को दी जाने वाली आसेवन शिक्षा।^५

१. उवंगसुत्ताणि, निरयावलियाओ, १।४,५

२. नवसुत्ताणि, ववहारो, १०।३३-३७

३. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ६० : भगवओ उसभस्स चउरासी-
तिसमणसाहस्सीतो होत्था, पइण्णगज्झयणा वि सव्वे
कालिय-उक्कालिया चतुरासीतिसहस्सा। कहं ? जतो ते
चतुरासीति समणसहस्सा अरहंतमगउवदिट्ठे जं सुतमणु-
सरित्ता किच्च णिज्जूहंते ते सव्वे पइण्णगा, अहवा सुत-
मणुस्सरतो अप्पणो वयणकोसल्लेण जं धम्मदेसणादिसु
भासंते तं सव्वं पइण्णगं, जम्हा अणंतगमपज्जय सुत्तं दिट्ठं।

तं च वयणं नियमा अण्णतरगमाणुपाती भवति तम्हा तं
पइण्णगं।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ६४

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. २०८

४. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ६१ : वेणइया—सीसा, तींस जहा
आसेवण सिक्खा।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ७५ : विनेयशिक्षेत्यन्ये।

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. २१० : विनेयशिक्षेति
चूर्णकृत्।

५. भाषा—मुनि के लिए वक्तव्य भाषा—सत्य भाषा और व्यवहार भाषा ।
६. अभाषा—मुनि के लिए अवक्तव्य भाषा—असत्य भाषा और मिश्र (सत्यमृषा) भाषा ।
७. चरण—व्रत, समिति आदि ।
८. करण—आहार विशुद्धि ।
९. यात्रा-मात्रा-वृत्ति—संयम यात्रा के निर्वाह के लिए प्रमाणयुक्त आहार ग्रहण करना ।
आचार के प्रतिपाद्य विषयों का संक्षिप्त वर्गीकरण पांच आचार के रूप में किया गया है—
१. ज्ञानाचार
२. दर्शनाचार
३. चरित्राचार
४. तपाचार
५. वीर्याचार ।

समवाओ में आचार में प्रतिपाद्य विषय की सूची लम्बी है । उसमें खड़े होना, चलना, चंक्रमण करना, समिति, गुप्ति आदि अनेक विषयों का उल्लेख है ।^१

जयधवला में आचार के प्रतिपाद्य विषय का संक्षिप्त विवरण है । उसके अनुसार संयमपूर्वक चलना, खड़ा होना, बैठना, सोना, खाना और बोलना इत्यादि वर्णित है ।^२

वाचना

इसका अर्थ है—अध्यापन । सूत्रपद का अध्यापन सूत्र की वाचना और अर्थपद का अध्यापन अर्थ की वाचना है ।^३ वाचना सीमित होती है । देवधिगणी ने आगमों का संकलन किया, उस समय उनके सामने दो प्रमुख वाचनाएं थी—

१. माथुरी वाचना
२. वालभी वाचना

उत्तरवर्ती आदर्शों (प्रतियों) के अध्ययन से प्रतीत होता है कि कुछ अन्य वाचनाएं भी रही हैं ।

अनुयोगद्वार

अनुयोग के मुख्यतः चार प्रकार हैं^४—

१. उपक्रम
२. निक्षेप
३. अनुगम
४. नय ।

आचाराङ्ग के अध्ययन संख्येय हैं और अनुयोगद्वार सूत्रप्रतिबद्ध नहीं है वह प्रज्ञापक पर निर्भर है । प्रज्ञापक शिष्य को संख्येय अनुयोगद्वारों का ही ज्ञान कराता है ।^५

वेदा

व्याख्याकारों ने इसका अर्थ छन्द जाति अथवा छन्द विशेष किया है ।^६

श्लोक

आचाराङ्ग की रचना शैली चौर्ण है । इस शैली में गद्य के साथ पद्य का भी भाग होता है । इसीलिए संख्येय श्लोकों का निर्देश है । द्रष्टव्य—आचारांग भाष्यम्, भूमिका पृष्ठ २३ ।

१. समवाओ, प्रकीर्णक समवाय, सू. ८९

२. कषायपाहुड, पृ. १२२ :

जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सए ।

जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्जइ ।

३. नन्दी चूर्ण, पृ. ६२

४. अणुओगदाराइं, सू. ७५

५. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ६२ : उवक्कमादि णामादिणिद्वेव-

करणं च अणियोगद्वारा, ते आयारे संखेज्जा, तेसि पणव-
गवयणगोयरत्तणतो ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ७६

६. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ६२

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ७६

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. २१०

निर्युक्ति

आगम के व्याख्या ग्रन्थों की अनेक शैलियां हैं उनमें सबसे पहली शली निर्युक्ति है। इसके द्वारा आगम के पदों का निर्वचन किया जाता है।^१ अनुयोगद्वार में इसके तीन प्रकार बतलाए गए हैं—^२

१. निक्षेपनिर्युक्ति
२. उपोद्घातनिर्युक्ति
३. सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्ति

प्रतिपत्ति

प्रतिपत्ति के अनेक अर्थ होते हैं।^३ चूर्णिकार तथा वृत्तिकारों ने इसके दो अर्थ किए हैं—

१. द्रव्य आदि पदार्थों का अभ्युपगम
 २. प्रतिमा, अभिग्रह।
- ये प्रतिपत्तियां सूत्र में निबद्ध हैं।

श्रुतस्कन्ध

आचाराङ्ग के दो श्रुतस्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध प्राचीन है। दूसरा श्रुतस्कन्ध उत्तरकालीन है। उसकी प्रथम श्रुतस्कन्ध की चूला के रूप में स्थापना की गई है और उसके निर्यूहण का भी उल्लेख किया गया है।^४

अध्ययन

आचाराङ्ग के नौ अध्ययन हैं। इनमें 'महापरिज्ञा' नामक सातवां अध्ययन व्युच्छिन्न है। आचारचूला के सोलह अध्ययन हैं। आचाराङ्ग की पांच चूलाएं हैं। पांचवीं चूला निशीथ है, वह यहां विवक्षित नहीं है। आवश्यक सूत्र में आचारप्रकल्प के अट्ठाईस अध्ययन बतलाए गए हैं। यहां निशीथ के तीन अध्ययनों को छोड़कर शेष पच्चीस अध्ययनों का निरूपण है।

उद्देशन काल—

अध्ययन के लिए ग्रन्थांश और कालांश की समुचित व्यवस्था की जाती थी, वह उद्देशनकाल है। उदाहरणस्वरूप—आचार्य शिष्य को आचाराङ्ग सूत्र पढाते हैं, पहला पाठ होता है—अङ्ग, श्रुतस्कन्ध, अध्ययन और उद्देशक का बोध कराना। यह एक उद्देशन-काल है। इस प्रकार पूर्ण ग्रन्थ के अध्ययन की व्यवस्था की जाती थी।

चूर्णिकार तथा वृत्तिकारों ने ८५ उद्देशनकालों को इस प्रकार विभक्त किया है^५—

अध्ययन	उद्देशनकाल
I १. शस्त्रपरिज्ञा	७
२. लोकविजय	६
३. शीतोष्णीय	४
४. सम्यक्त्व	४
५. लोकसार (आवृत्ती)	६
६. धृत	५
७. महापरिज्ञा	७
८. विमोक्ष	=
९. उपधानश्रुत	४

१. हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ७६ : निर्युक्तानां युक्तिनिर्युक्तयुक्ति-रिति वाच्ये युक्तशब्दलोपान्निर्युक्तिरिति।
२. अणुओगदाराइं, सू. ७१० से ७१४
३. आटे—obeservation, perception, acceptance, acknowledgement etc.
४. नन्दी चूर्ण, पृ. ६२ : द्वादिपदत्थभ्रुवगमो पडिमा-अभिगह्वितेसा य पडिबत्तीओ, ते समासतो मुत्तपडिबद्धा

सखेज्जा।

- (ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ७६
- (ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. २१०
५. आचारो तह आचारचूला, भूमिका, पृ. ९-११
६. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ६२
- (ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ७६
- (ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. २११

II १. पिडैपणा	११
२. शय्या	३
३. ईर्या	३
४. भाषाजात	२
५. वस्त्रैपणा	२
६. पात्रैपणा	२
७. अवग्रहप्रतिमा	२
८-१४. सप्तैकक	७
१५. भावना	१
१६. विमुक्ति	१

कुल उद्देशनकाल	८५

समुद्देशनकाल

उद्देशनकाल में अध्ययन के क्रम का निर्देश है और समुद्देशनकाल में अधीत विषय के स्थिरीकरण और अर्थबोध का निर्देश है।

पदपरिमाण

आचाराङ्ग के अठारह हजार पद हैं। इसमें आचारचूला के पदों का निर्देश नहीं है। श्वेताम्बर साहित्य में पद का प्रमाण उपलब्ध नहीं है। दिगम्बर साहित्य में प्रमाण का व्यवस्थित निरूपण है। पद के तीन प्रकार हैं—

१. अर्थ पद—जितने अक्षरों से अर्थ की उपलब्धि होती है वह अर्थ पद है।

२. प्रमाण पद—आठ अक्षरों से निष्पन्न पद प्रमाण पद है।

३. मध्यम पद—सोलह सौ चौतीस करोड़ तिरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी (१६३४८३०७८८८)—इतने मध्यम पद के वर्ण होते हैं।

अङ्गों और पूर्वी का पद परिमाण मध्यम पद के द्वारा होता है।^१

मध्यम पद के आधार पर पदों की गणना करने पर आचाराङ्ग का आकार बहुत विशाल हो जाता है। उसका वर्तमान आकार छोटा है। देवधिगणी के समय में संभवतः यही आकार रहा, जो आज उपलब्ध है। उन्होंने अठारह हजार पदों का उल्लेख परम्परा से प्राप्त अवधारणा के आधार पर किया है, ऐसा प्रतीत होता है। आचाराङ्ग के अठारह हजार पदों का उल्लेख श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्परा में समान है।^२

देवधिगणी ने जब तक आगमों का संकलन किया, तब तक उनका बहुत बड़ा भाग विस्मृति में चला गया था। इसलिए निर्दिष्ट पदों का परिमाण अब उस विशाल ज्ञान राशि का इतिहास मात्र रह गया है।

अक्षर

रचना की दृष्टि से आचाराङ्ग के अक्षर संख्येय हैं।

गम

भङ्ग, विकल्प। आचाराङ्ग के गम अनन्त हैं। वाच्य और वाचक (अभिधान और अभिधेय) के भेद, संयोजना और सदृशता के आधार पर एक सूत्र के अनेक भङ्ग बन जाते हैं। चूर्णि व वृत्ति द्वय में भङ्ग रचना की विधि का निर्देश किया है—

चूर्णि^३

१. सुतं में आउसं तेषं भगवता

२. तं सुतं में आउसं

३. तहि सुतं में आउसं

१. षट्खण्डागम, पुस्तक १३, पृ. २६६

२. (क) वही, पृ. १९७ :

(ख) कषायपाहुड़, पृ. ९३

३. नन्दी चूर्णि, पृ. ६२

४. आ सुतं मे आउसं
५. तं सुतं मया आउसं
६. तदा सुतं मदा आउसं
७. तर्हि सुतं मदा आउसं ।

हारिभद्रीया वृत्ति^१

१. सुयं मे आउसं तेणं भगवया
२. आउसंतेणं भगवया
३. सुयं मे आउसंपदा
४. सुयं मे आउसं तर्हि
५. सुयं मे आउसं
६. आउसं सुयं मे
७. आ सुयं मया
८. तं सुयं मया
९. आ तया सुयं मया
१०. आ तर्हि सुयं मया आ ।

मलयगिरीया वृत्ति^२

१. सुयं मे आउसंतेण भगवया एवमक्खायं
२. श्रुतं मया आयुष्मदन्ते
३. श्रुतं मया आयुष्मता
४. श्रुतं मया हे आयुष्मन्
५. श्रुतं मम हे आयुष्मन्^३
६. सुयं मे आउसं
७. आउसं सुयं मे
८. मे सुयं आउसं ।^४

के. आर. चन्द्रा ने “सुतं मे आउसंतेण भगवता एवमक्खातं” —आचारांग के इस पाठ को सही और प्राचीन माना है।^५ नन्दीचूर्ण में वर्णित गमक पद्धति के अनुसार केवल यही पाठ सही नहीं है, अन्य पाठ भी सही हैं। केवल एक पाठ को ही सही मानने पर गमक अनन्त नहीं हो सकते। विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य सू० ७२ का टिप्पण।

पर्यव

चूर्णकार ने इसका अर्थ अक्षर के पर्याय और अर्थ के पर्याय किया है। अध्ययन काल में ज्ञान के अंश अथवा पर्याय बढ़ते जाते हैं। इस उत्तरोत्तर वृद्धि की अपेक्षा अनन्त पर्यव बतलाए गए हैं।^६

त्रस, स्थावर

त्रस जीव परीत हैं—परिमित हैं। स्थावर जीव अनन्त हैं।

शाश्वत

द्रव्यथिक नय की दृष्टि से विचार।^७ चूर्णकार ने शाश्वत की व्याख्या में पञ्चास्तिकाय आदि का उल्लेख किया है।^८ किन्तु

१. हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ७७
२. मलयगिरीया वृत्ति, प. २१२
३. मलयगिरि ने ये भेद अर्थ भेद (वाच्य भेद) के आधार पर किए हैं।
४. मलयगिरि ने ये भेद अभिधान भेद (वाचक भेद) के आधार पर किए हैं।

५. प्राचीन अर्धमागधी की खोज में, पृ. ९८
६. नन्दी चूर्ण, पृ० ६२ : अक्खरपज्जएहि अत्थपज्जएहि य अणंतं ।
७. हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ७७ : शाश्वता द्रव्यार्थतयाऽविच्छेदेन प्रवृत्तः ।
८. नन्दी चूर्ण, पृ. ६२ : सासत त्ति पंचत्थिकाइयाइया ।

आचाराङ्ग में धर्मास्तिकाय आदि का निरूपण नहीं है इसलिए हरिभद्र का अर्थ अधिक संगत है ।

कृत

पर्यायाधिक नय की दृष्टि से विचार, परिवर्तन ।^१ चूर्णिकार और हरिभद्र ने कृत का अर्थ कृत्रिम-प्रयोग और स्वभाव से होनेवाला परिवर्तन किया है ।^२

निबद्ध

जो आचाराङ्ग में सूत्र रूप में प्रतिपादित है ।^३

निकाचित

जो अर्थ रूप में व्यवस्थापित है ।^४

आत्मा, ज्ञाता, विज्ञाता—

इन तीन पदों में आचाराङ्ग का फल बताया है ।

आत्मा

आचाराङ्ग का अध्ययन करनेवाला आत्मा बन जाता है । आचाराङ्ग उसके लिए आत्मीय बन जाता है । इसलिए वह स्वयं आचाराङ्ग में निबद्ध बन जाता है ।^५

ज्ञाता

आचाराङ्ग में निबद्ध भावों का ज्ञाता ।

विज्ञाता

आचाराङ्ग में निबद्ध भावों को निर्युक्ति, हेतु और उदाहरण आदि से जानने वाला ।^६

चरणकरणप्ररूपणा

आचाराङ्ग आचारशास्त्र है । इसलिए इसमें आचार का निरूपण किया गया है ।

द्रष्टव्य—समवायो, प्रकीर्णक समवाय, सू० ८९ ।

२. सूत्रकृत

सूचना का तात्पर्य है प्राथमिक जानकारी, जैसे विनष्ट सूई का धागे से पता चल जाता है वैसे ही सूत्रकृताङ्ग से जीव, अजीव आदि पदार्थों की प्राप्ति होती है इसलिए सूत्रकृताङ्ग की रचना शैली के लिए सूचनार्थक धातु का प्रयोग किया गया है । उसमें क्रियावाद, अक्रियावाद, वैतयिकवाद और अज्ञानवाद इस प्रकार ३६३ दार्शनिकों की व्यूह रचना कर स्वसमय की स्थापना की गई है ।

सूत्रकृताङ्ग में लोक, अलोक, जीव, अजीव आदि के आगे सूचनार्थक धातु का प्रयोग है, स्थानाङ्ग में स्थापनार्थक धातु का समवायाङ्ग में समाश्रयणार्थक धातु का और व्याख्याप्रज्ञप्ति में व्याख्यानार्थक धातु का प्रयोग है ।

द्रष्टव्य—समवायो, प्रकीर्णक समवाय सू. ९०

३. स्थान

स्थानाङ्ग में एक से लेकर दस तक जीव आदि पदार्थों के स्थान बतलाए गए हैं । वर्तमान में उपलब्ध स्थानाङ्ग में यह

१. हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ७७ : कृताः पर्यायार्थतया प्रतिसमयमन्यत्वावाप्तेः ।

२. (क) नन्दी चूर्ण, पृ० ६२ : कड त्ति—कित्तिमा, पयोगतो वीससापरिणामतो वा जहा अम्भा अम्बरुखादी ।

(ख) हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ७७

३. (क) नन्दी चूर्ण, पृ० ६२ : एते सव्वे आचारे सुत्तेण निबद्धा ।

(ख) हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ७७

४. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ६२ : निञ्जुति—संगहणि-हेतूदाहरणादिर्हं य णिकाइया ।

५. (क) हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ७७ : तदुक्तक्रियापरिणामात्माव्यतिरेकात् स एव भवतीत्यर्थः ।

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, पृ. २१२ : तदुक्तक्रियापरिणामाव्यतिरेकात् स एवाचारो भवतीत्यर्थः ।

६. मलयगिरीया वृत्ति, पृ. २१२ : यथा निर्युक्ति सङ्ग्रहणहेतूदाहरणादिभिर्विधं प्ररूपितास्तथा विविधं ज्ञाता भवति ।

शैली सर्वत्र उपलब्ध नहीं है। यत्र-तत्र इस शैली का स्वरूप मिलता है। जैसे—

१. आत्मा एक है।^१

२. जीव के दो प्रकार हैं—संसारी और सिद्ध।^२

३. जीव के तीन प्रकार हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक।^३

४. जीव के चार प्रकार हैं—नैरयिक, तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देव।^४

५. (संसारी) जीव के पांच प्रकार हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय।^५

६. (संसारी) जीव के छः प्रकार हैं—पृथ्वीकायिक, अष्कायिक, तैजसकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और ब्रह्मकायिक।^६

७. (संसारी) जीव के सात प्रकार हैं—नैरयिक, तिर्यञ्चयोनिक, तिर्यञ्चयोनिकी, मनुष्य, मानुषी, देव और देवी।^७

८. जीव के आठ प्रकार हैं—नैरयिक, तिर्यञ्चयोनिक, तिर्यञ्चयोनिकी, मनुष्य, मानुषी, देव, देवी और सिद्ध।^८

९. (संसारी) जीव के नव प्रकार हैं—पृथ्वीकायिक, अष्कायिक, तैजसकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय।^९

१०. (संसारी) जीव के दस प्रकार हैं—पृथ्वीकायिक, अष्कायिक, तैजसकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय और अतीन्द्रिय।^{१०}

जयधवला में स्थानाङ्ग की पूर्वोक्त शैली का स्पष्ट निर्देश है।^{११} स्थानाङ्ग में जीव, पुद्गल आदि द्रव्यों का एक से लेकर दस तक क्रमिक निरूपण है। इसको स्पष्ट करने के लिए आचार्य वीरसेन ने पञ्चास्तिकाय से दो गाथाएं उद्धृत की है।^{१२}

द्रष्टव्य—समवाओ, प्रकीर्णक समवाय, सू० ९१

४. समवाय

समवायाङ्ग में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा समवाय का वर्णन है। यह जयधवला का निरूपण है।^{१३} षट्खण्डागम के जीवस्थान में भी ऐसा ही निरूपण उपलब्ध है।^{१४} नन्दी चूर्णिकार ने समवाय के चतुर्विध निक्षेप का उल्लेख किया है। 'समासिज्जन्ति' इस धातु पद की व्याख्या में उन्होंने यह संकेत दिया है कि समवायांग में समवस्तुओं का वर्णन है विषम का नहीं।^{१५} द्रव्यों की समानता का निरूपण करने वाली शैली वर्तमान समवायाङ्ग में उपलब्ध नहीं है। पं० कौलाशचन्द्रजी ने समवायाङ्ग और नन्दी के तुलनात्मक अध्ययन में लिखा है^{१६}—“समवायाङ्ग में द्वादशाङ्ग का वर्णन नन्दी से प्रायः अक्षरशः मेल खाता है। अतः डॉ० वेबर का कहना था कि हमें यह विश्वास करने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि नन्दी और समवाय में पाये जाने वाले समान वर्णनों का मूल आधार नन्दी है। और यह कार्य समवाय के संग्राहक का या लेखक का होना चाहिए। आगे डॉ० वेबर ने लिखा है कि “किन्तु हमारे इस अनुमान में एक कठिनाई है और वह यह है कि नन्दी और समवाय के ढंग में अन्तर है। किन्तु समवाय से नन्दी की विषयसूची बहुत संक्षिप्त है। इससे यह प्रमाणित होता है कि नन्दी में दत्त विषयसूची प्राचीन है। इसके सिवाय नन्दी में उक्त द्वादशांग की विषयसूची को लेकर जो पाठभेद पाये जाते हैं, निश्चय ही समवाय के पाठों से उत्तम या प्राचीन है।”

द्रष्टव्य—समवाओ, प्रकीर्णक समवाय, सू० ९२।

१. ठाणं, १।२
२. वही, २।४०८
३. वही, ३।३१७
४. वही, ४।६०८
५. ठाणं ५।२०४
६. वही, ६।८
७. वही, ७।७१
८. वही, ८।१०६
९. वही, ९।७
१०. वही, १०।१५३
११. कषायपाहुड़, पृ. १२३

१२. षट्खण्डागम, पुस्तक ९, पृ. १९८

१३. कषायपाहुड़, पृ. १२४ : समवाओ णाम अंगं दव्व-खेत्त-काल-भावाणं समवायं वण्णेदि । तत्थ दव्व समवाओ । तं जहा, धम्मत्थिय-अधम्मत्थिय-लोगागासएगजीवाणं पदेसा अण्णोणं सरिसा । कथं पदेसाणं दव्वत्तं ? ण, पज्जवट्टियण-यावलंबणाए पदेसाणं पि दव्वत्तसिद्धीदो । सीमंत-माणूसखेत्त-उडुविमाण-सिद्धिखेत्ताणि-चत्तारि वि सरिसणि, एसो खेत्तसमवाओ ।.....

१४. षट्खण्डागम, पुस्तक १, पृ. १०२

१५. नन्दी चूर्ण, पृ. ६४

१६. जैन साहित्य का इतिहास, पूर्व पीठिका, पृ. ६५३, ६५४

५. व्याख्याप्रज्ञप्ति

प्रस्तुत आगम में जीव, अजीव, लोक, अलोक आदि की व्याख्या की गई है। उसके दोनों प्रकार उपलब्ध हैं—

१. गौतम आदि के द्वारा पूछे जाने पर तत्त्व की व्याख्या की गई है।

२. किसी प्रश्न के बिना व्याख्येय तत्त्व की व्याख्या की गई है।

धवला और जयधवला के अनुसार—क्या जीव है? क्या जीव नहीं है? इत्यादि ६० हजार प्रश्नों के उत्तरों तथा छिन्न-छेद नयों से ज्ञापनीय ९६ हजार शुभ और अशुभ का वर्णन है।^१

प्रस्तुत प्रकरण में अध्ययन शत का प्रयोग मिलता है। वर्तमान में अध्ययन के स्थान पर शतक का प्रयोग मिलता है।

६. ज्ञातधर्मकथा

णायाधम्मकहा—इसमें दो शब्द हैं—ज्ञात और धर्मकथा। चूर्णिकार ने ज्ञात का अर्थ आहरण अथवा दृष्टान्त किया है और धर्मकथा का—धार्मिक कथा।^२ प्रथम श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन हैं, वे ज्ञात शैली में रचित हैं। दूसरे श्रुतस्कन्ध में धर्मकथा के दश वर्ग हैं। उनमें साढ़े तीन करोड़ कथाएं हैं।^३

आधुनिक लेखकों ने 'ज्ञातधर्मकथा' के लिए 'ज्ञातृधर्मकथा' लिखा है, उसका अर्थ ज्ञातृपुत्र भगवान् महावीर की धर्मकथा किया है। यह समीचीन नहीं है।

दिगम्बर साहित्य में 'णायाधम्मकहा' के स्थान पर **णाहधम्मकहा** अथवा **णाहाधम्मकहा** मिलता है।^४

चूर्णिकार ने प्रस्तुत आगम की व्याख्या में पद की व्याख्या की है। पद के पांच प्रकार हैं—

१. उपसर्ग पद

२. निपात पद

३. नामिक पद

४. आख्यात पद

५. मिश्र पद।

पद का वैकल्पिक अर्थ किया है सूत्र का आलापक।^५ अनुयोगद्वार में निर्दिष्ट नाम के पांच प्रकार तुलनीय हैं।^६

आचाराङ्ग से लेकर भगवती तक पद परिमाण का निर्देश है और ज्ञातधर्मकथा से विपाक तक के छः आगमों के विवरण में पद परिमाण का निर्देश नहीं है। केवल 'संखेज्जाइं पयसहस्साइं' यह पाठ मिलता है। अङ्गप्रविष्ट आगमों के लिए द्विगुणता का नियम मान्य है—जैसे आचारांग के १८०००, सुयगडो के ३६०००, इस नियम के आधार पर ज्ञाता आदि छः आगमों का पद परिमाण निर्धारित किया जा सकता है।

७. उपासकदशा

इसमें भगवान् महावीर के दश श्रमणोपासकों का जीवन वर्णन है। इसके दश अध्ययन हैं। इसलिए इसका नाम उपासक-दशा है।^७ धवला और जयधवला के अनुसार उपासकदशा में ग्यारह प्रकार के श्रावकों का वर्णन है—१. दर्शन प्रतिमा वाला २. व्रती ३. सामायिक प्रतिमा वाला ४. पौषधोपवासी ५. सच्चित्तविरत ६. रात्रिभक्तविरत ७. ब्रह्मचारी ८. आरम्भविरत ९. परिग्रहविरत १०. अनुमतविरत ११. उद्दिष्टविरत।^८ ग्यारह प्रकार के श्रावकों का वर्गीकरण श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं के आधार पर किया गया है।

१. (क) षट्खण्डागम, पुस्तक १, पृ. १०२

(ख) कषायपाहुड, पृ. १२५

२. नन्दी चूर्ण, पृ. ६६ : णाय त्ति—आहरणा, दिट्ठंतियो वा णज्जति जेह्स्थो ते णाता.....धम्मियाओ वा कहाओ धम्मकहाओ।

३. वही, पृ. ६६ : बितियसुतक्खंधे दस धम्मकहाणं वग्गा।

४. (क) कषायपाहुड, पृ. १२५

(ख) षट्खण्डागम, पुस्तक १, पृ. १०२

५. नन्दी चूर्ण, पृ. ६६ : 'पदग्गेणं' ति उवसग्गपदं णिवातपदं णामियपदं अक्खातपदं मिस्सपदं च।अह्वा सुत्ताला-वयपदग्गेणं संखेज्जाइं पदसहस्साइं भवन्ति।

६. अणुओगदाराइं, सू. २७०

७. नन्दी चूर्ण, पृ. ६७ : दससु अज्जयणेसु अक्खात त्ति उवासगदसा भणित्ता।

८. (क) षट्खण्डागम, पुस्तक १, पृ. १०३

(ख) कषायपाहुड, पृ. १२९, १३०

उपासकदशा^१

१. आनन्द
२. कामदेव
३. गृहपति चूलनीपिता
४. सुरादेव
५. चुल्लशतक
६. गृहपति कुण्डकौलिक
७. सद्दालपुत्र
८. महाशतक
९. नन्दिनीपिता
१०. लेयिकापिता

ठाणं^२

१. आनन्द
२. कामदेव
३. गृहपति चूलनीपिता
४. सुरादेव
५. चुल्लशतक
६. गृहपति कुण्डकौलिक
७. सद्दालपुत्र
८. महाशतक
९. नन्दिनीपिता
१०. लेयिकापिता

८. अन्तकृतदशा

प्रस्तुत आगम में मुक्त होने वाले जीवों का वर्णन है। चूणिकार और हरिभद्र ने 'अन्तगड' का अर्थ किया है—अन्तकृत—जिसने कर्म अथवा संसार का अन्त किया है।^१

प्रथम वर्ग में दस अध्ययन हैं इसलिए यह अन्तकृतदशा है। इसका वैकल्पिक अर्थ है—इसमें जीवन की अंतिम दशा का वर्णन है इसलिए इसका नाम अन्तकृतदशा है।^२

स्थानाङ्ग में 'अन्तगडदसा' के दस अध्ययन बतलाए गए हैं।^३ अन्तगडदसा के वर्तमान स्वरूप में भिन्न नाम उपलब्ध हैं। अभयदेव सुरि ने स्थानाङ्ग की वृत्ति में उसका उल्लेख किया है।^४

तत्त्वार्थवातिक और धवला में अन्तकृत व्यक्तियों के नामों का उल्लेख मिलता है।^५ भट्ट अकलंक ने इन नामों का उल्लेख किस आधार पर किया, यह अनुसंधेय है।

दृष्टव्य यंत्र—

अंतगड	ठाणं	तत्त्वार्थराजवातिक/धवला
१. गीतम	नमि	नमि
२. समुद्र	मातङ्ग	मतंग
३. सागर	सोमिल	सोमिल
४. गंभीर	रामगुप्त	रामपुत्र
५. स्तिमित	सुदर्शन	सुदर्शन
६. अचल	जमाली	यमलीक
७. काम्पित्य	भगाली	वलीक
८. अक्षोभ्य	किक्क	किक्कम्बल
९. प्रसेनजित्	चिल्वक	पाल
१०. विष्णु	पाल अम्बडपुत्र	अम्बडपुत्र

१. अंगसुत्तणि, भाग ३, उवासगदसाओ, १।६

२. ठाणं, १०।११२

३. (क) नन्दी चूणि, पृ. ६८ : अंतकडदस त्ति—कम्मणो संसारस्स वा अंतो कडो जेहि ते अंतकडा।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ८३

४. नन्दी चूणि, पृ. ६८ : पढमवग्गे दस अज्जयण त्ति तस्स-क्खतो अंतकडदस त्ति।

अहवा दस त्ति—अवत्था, तदंते जा अवत्था सा वणिज्जति

त्ति अतो अंतकडदसा।

५. ठाणं, १०।११३

६. स्थानाङ्ग वृत्ति, पृ. ४८३ : इह चाण्टो वर्गस्तत्र प्रथमवर्गो दशाध्ययनानि तानि चामूनि नमीत्यादिसाई रूपकम्, एतानि च नमीत्यादिकान्यन्तकृत साधुनामानि अन्तकृतदशाङ्गप्रथमवर्गोध्ययनसंग्रहे नोपलभ्यते।

७. (क) तत्त्वार्थवातिक, १।२०, पृ. ७३

(ख) षट्खण्डागम, पुस्तक १, पृ. १०४

९. अनुत्तरोपपातिकदशा

प्रस्तुत आगम में अनुत्तर नामक देवलोकों में उत्पन्न होने वाले व्यक्तियों का प्रतिपादन है।^१ स्थानाङ्ग, तत्त्वार्थवार्तिक और धवला में अध्ययनों के नाम मिलते हैं।^२ अनुत्तरोपपातिकदशा के वर्तमान स्वरूप में कुछ नाम भिन्न हैं। द्रष्टव्य यन्त्र—

अनुत्तरोपपातिकदशा	ठाणं	तत्त्वार्थवार्तिक/धवला
जाली	ऋषिदास	ऋषिदास
मयाली	धन्य	वान्य
उपयाली	सुनक्षत्र	सुनक्षत्र
पुरुषसेन	कार्तिक	कार्तिक
वारिषेण	संस्थान	नन्द
दीर्घदन्त	शालिभद्र	नन्दन
लण्टदन्त	आनन्द	शालिभद्र
वेहल्ल	तेतली	अभय
वैहायस	दशार्णभद्र	वारिषेण
अभय	अतिमुक्त	चिलातपुत्र

१०. प्रश्नव्याकरण

प्रस्तुत आगम में प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं इसलिए इसका नाम प्रश्नव्याकरण है। चूर्णिकार ने प्रश्नव्याकरण के दो विषय बतलाए हैं—

१. आश्रव और संवर
२. अंगुष्ठ, बाहु आदि प्रश्नों का व्याकरण।

किन्तु मूल पाठ में पांच आश्रव और पांच संवर द्वारों का उल्लेख नहीं है। प्रश्नव्याकरण के उपलब्ध स्वरूप में केवल पांच आश्रव और पांच संवर द्वारों का प्रतिपादन है। इससे प्रश्नव्याकरण के मूल स्वरूप के विलुप्त होने की संभावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

तत्त्वार्थवार्तिक और धवला में भी पांच आश्रव व पांच संवर द्वारों का उल्लेख नहीं है। आक्षेप, विक्षेप के द्वारा हेतु-नयाश्रित प्रश्नों का व्याकरण करना प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु है। इसमें लौकिक और वैदिक अर्थों (सिद्धांतों) का निर्णय किया जाता है। यह भट्ट अकलंक का मत है।^३ इसमें अंगुष्ठ प्रश्न आदि का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। निर्णय के द्वारा उसका संकेत पकड़ा जा सकता है।

धवलाकार ने प्रारम्भ में आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेजनी, निर्वेदनी इन चार कथाओं का उल्लेख किया है। उसके पश्चात् हृत, नष्ट, मुष्टि आदि प्रश्नों का उल्लेख किया है।^४

प्रस्तुत आगम में प्रश्नव्याकरण के अध्ययनों की संख्या बतलाई गई है।^५ स्थानाङ्ग में इसका नाम प्रश्नव्याकरणदशा है और उसके दश अध्ययनों का उल्लेख किया गया है—१ उपमा २. संख्या ३. ऋषिभाषित ४. आचार्यभाषित ५. महावीरभाषित ६. क्षौमकप्रश्न ७. कोमलप्रश्न ८. आदर्शप्रश्न ९. अंगुष्ठप्रश्न १०. बाहुप्रश्न।

१. अंगमुत्तानि, भाग ३, अणुत्तरोपपातिकदशाओ, १११४
२. (क) ठाणं, १०११४
- (ख) तत्त्वार्थवार्तिक, ११२०, पृ. ७३
- (ग) षट्खण्डागम, पुस्तक १, पृ. १०५
३. नन्दी चूर्ण, पृ. ६९ : पण्हावागरणे अंगे पंचासवदाराइदा व्याख्येयाः परप्पवादिणो य । अंगुठु-बाहुपसिणादियाणं च

- पसिणाणं अट्टुत्तरं सतं ।
४. तत्त्वार्थवार्तिक, ११२०, पृ. ७३, ७४
५. षट्खण्डागम, पुस्तक १, पृ. १०५-१०८
६. नवमुत्तानि, नन्दी, सू. ९०
७. ठाणं, १०११६

११. विपाकश्रुत

इसमें शुभ और अशुभ कर्मों के विपाक का वर्णन है।

प्रस्तुत आगम (नंदी) में ग्यारह अङ्गों का वर्णन उपलब्ध है। समवायाङ्ग में भी वह उपलब्ध है। इन दोनों में नंदी का वर्णन मौलिक और समवायाङ्ग का वर्णन नंदी से संकलित प्रतीत होता है। नंदी में उपलब्ध आगम वर्णन का अध्ययन करने पर दो प्रश्न उपस्थित होते हैं—

१. नंदी में आगमों के आकार और प्रकार का पद परिमाण और विषय वस्तु का वर्णन है। क्या सूत्रकार ने उपलब्ध आगमों के आधार पर किया अथवा अनुश्रुति के आधार पर किया ?

२. यदि आगम संकलना के समय आगमों का इतना विशाल रूप प्राप्त था, तो वह कब विलुप्त हुआ ?

इनका उत्तर वाचना के प्रसंग में खोजा जा सकता है। वीर निर्वाण की दूसरी शताब्दी से लेकर वीर निर्वाण की दसवीं शताब्दी तक पांच वाचनाएं हुईं। इन वाचनाओं का उद्देश्य आगमों की विलुप्त होती हुई सामग्री को व्यवस्थित रखना था। नंदी की रचना पांचवीं वाचना के समय की है। इससे सहज ही जाना जा सकता है कि आगम अपने पूर्ण आकार में उपलब्ध नहीं थे, उनका वर्णन अनुश्रुति के आधार पर किया है।

प्रश्नव्याकरण का उपलब्ध स्वरूप नंदी और समवायांग में वर्णित स्वरूप से सर्वथा भिन्न है। वर्तमान स्वरूप में केवल पांच आश्रव और पांच संवर द्वारों का निरूपण मिलता है। इसके दो निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

१. यदि नंदी सूत्रकार के सम्मुख पांच आश्रव द्वार और पांच संवर द्वारों का निरूपण होता तो वे उनका उल्लेख अवश्य करते।

२. उन्होंने आश्रव और संवर का उल्लेख नहीं किया इससे अनुमान किया जा सकता है कि प्रश्नव्याकरण के वर्तमान स्वरूप की रचना देवधिगणी के उत्तरकाल में हुई है। उपलब्ध ग्यारह अंगों में भाषा, विषयवस्तु आदि की दृष्टि से आचारांग सबसे प्राचीन माना जाता है।

आगम प्रामाण्य—

वर्तमान में ग्यारह अङ्ग उपलब्ध हैं। बारहवां अङ्ग दृष्टिवाद विच्छिन्न है। आगम प्रामाण्य की चर्चा रचनाकार और चालू परम्परा दोनों के आधार पर करणीय है। रचना की दृष्टि से बारह अङ्ग गणधरकृत है। इसलिए इनका प्रामाण्य असन्दिग्ध है। अङ्ग साहित्य के अतिरिक्त अङ्गबाह्य के रचनाकार स्थविर हैं। सब स्थविरों की रचना का प्रामाण्य नहीं माना जाता। जिनकी रचना का प्रामाण्य माना जाता है, उनके लिए पूर्वं ज्ञान की सीमा निर्धारित है। व्यवहार (प्रायश्चित्तदान) के लिए छह पुरुष अधिकृत माने गए हैं—केवलज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, चतुर्दशपूर्वी, दशपूर्वी और नवपूर्वी।^१ किन्तु इस प्रकरण में आगम रचना की दृष्टि से विचार नहीं किया गया है। रचना की दृष्टि से विचार करने पर नवपूर्वी द्वारा रचित आगम की रचना का प्रामाण्य सिद्ध नहीं होता। नंदीसूत्र के आधार पर जयाचार्य ने सम्पूर्ण दशपूर्वी के वचन का प्रामाण्य स्वीकार किया है। प्रस्तुत आगम (नंदी) में बतलाया गया है कि द्वादशाङ्गी चतुर्दशपूर्वी और सम्पूर्णदशपूर्वी के लिए सम्यक्श्रुत है। नवपूर्वी आदि के लिए सम्यक्श्रुत की भजना (विकल्प) है।^२

इस सूत्र के आधार पर जयाचार्य ने यह स्थापना की कि चतुर्दशपूर्वी और सम्पूर्ण दशपूर्वी द्वारा रचित आगम प्रमाण है। शेष नवपूर्वी आदि के द्वारा रचित आगम प्रामाण्य की भजना है।^३ जो द्वादशाङ्गी से अविरुद्ध है वह प्रमाण है। जो द्वादशाङ्गी के विरुद्ध है वह प्रमाण नहीं है।

१. व्यवहारभाष्य, गा. ३१८

आगमसुतववहारी आगतो छ्दिवहो उ ववहारो ।

केवल मणोहि चोदस-दस-नव-पुव्वी य नायव्वो ॥

२. नवसुस्ताणि, नंदी, सू० ६६

३. प्रश्नोत्तर तत्त्वबोध, १९१२, २०१९

संपूरण दस पूर्वधर, अउदश पूरवधर ।

तास रचित आगम हुबं, वारू न्याय विचार ॥

दश, अउदश पूरवधरा, आगम रचं उदार ।

ते पिण जिन नो साख धो, विमल न्याय सुविचार ॥

भाष्यकारों ने व्यवहार (प्रायश्चित्त दान) के लिए नवपूर्वी का भी प्रामाण्य माना है। वहाँ आगम रचना का प्रसंग नहीं है। सम्यक्श्रुत की दृष्टि से नवपूर्वी का प्रामाण्य निश्चित नहीं है। इन दोनों अध्युपगमों का एक साथ अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि आगम रचना में सम्पूर्ण दशपूर्वी तक का प्रामाण्य है, नवपूर्वी आदि के श्रुत का प्रामाण्य नहीं है।

भट्ट अकलंक ने दशपूर्वधर के चारित्र को विचलित न होने वाला चारित्र बतलाया है।^१ इससे भी दशपूर्वी के वचन का प्रामाण्य सिद्ध होता है।

जयधवला में मूलाराधना और मूलाचार की गाथा उद्धृत की गई है। इसमें गणधर, प्रत्येकबुद्ध, भूतकेवली और सम्पूर्ण दशपूर्वधर के द्वारा रचित आगम का प्रामाण्य स्वीकार किया है।^१

द्रष्टव्य—ठाणं, पृ० ६२९, ६३०; भगवई, भाष्य भूमिका पृ० ३२, ३३।

१. तत्त्वार्थवातिक, ३।३६, पृ. २०२ : महारोहिण्यादिभिस्त्रि-
रागताभिः प्रत्येकमात्मीयरूपसामर्थ्याविष्करणकथन-
कुशलाभिर्वेगवतीभिर्विद्यादेवताभिरविचलितचारित्रस्य
दशपूर्वदुस्तरसमुद्रोत्तरणं दशपूर्वित्वम् ।

२. कषायपाहुड़, पृ १५३
सुत्तं गणहर कहियं तहेय पत्तेयबुद्धकहियं च ।
सुदकेवलिणा कहियं अभिण्णइसपुट्टिकहियं च ॥

समवायाङ्ग के आधार पर

अंग नाम	विषयवस्तु	वाचना	अनुयोगद्वार	प्रतिपत्ति	वेदा	श्लोक	निर्युक्ति	संग्रहणी	श्रुतस्कन्ध
१. आचार	आचार	परिमित	संख्येय	संख्येय	संख्येय	संख्येय	संख्येय	×	२
२. सूत्रकृत	जीव-अजीव, लोक-अलोक, स्वसमय-परसमय की सूचना	"	"	"	"	"	"	×	२
३. स्थान	जीव-अजीव, लोक-अलोक, स्वसमय-परसमय की स्थापना	"	"	"	"	"	"	संख्येय	१
४. समवाय	स्वसमय-परसमय, जीव-अजीव, लोक-अलोक की सूचना	"	"	"	"	"	"	"	१
५. व्याख्याप्रज्ञप्ति	स्वसमय-परसमय, जीव-अजीव, लोक-अलोक की व्याख्या	"	"	"	"	"	"	"	१
६. ज्ञातधर्मकथा	दृष्टान्तभूत व्यक्तियों के नगर आदि का वर्णन	"	"	"	"	"	"	"	२
७. उपासकदशा	उपासकों की आचार संहिता	"	"	"	"	"	"	"	१
८. अन्तकृतदशा	मोक्षगामी जीवों का वर्णन	"	"	"	"	"	"	"	१
९. अनुत्तरोपपातिकदशा	अनुत्तरविमान में उत्पन्न होने वाले व्यक्तियों का वर्णन	"	"	"	"	"	"	"	१
१०. प्रश्नव्याकरण	एक सी आठ प्रश्न, अप्रश्न, प्रश्न-अप्रश्न, विद्या आदि का वर्णन	"	"	"	"	"	"	"	१
११. विपाकश्रुत	सुकृत दुष्कृत कर्मों का फलविपाक	"	"	"	"	"	"	"	

अङ्गप्रविष्ट आगमों का विवरण

अध्ययन	वर्ग	उद्देशनकाल	समुद्देशनकाल	व्याकरण	पद-परिमाण	अक्षर	गम	पर्यव
२५	×	८५	८५	×	१८०००	संख्येय	अनन्त	अनन्त
२३	×	३३	३३	×	३६०००	"	"	"
१०	×	२१	२१	×	७२०००	"	"	"
१	×	१	१	×	१४४०००	"	"	"
१०० से कुछ अधिक	×	१००००	१००००	३६०००	८४०००	"	"	"
२९	१०	२९	२९	×	५७६०००	"	"	"
१०	×	१०	१०	×	११५२०००	"	"	"
१०	७	१०	१०	×	२३०४०००	"	"	"
१०	३	१०	१०	×	४६०८०००	"	"	"
४५	×	४५	४५	×	९२१६०००	"	"	"
२०	×	२०	२०	×	१८४३२०००	"	"	"

नन्दी के आधार पर

अंग नाम	विषयवस्तु	वाचना	अनुयोगद्वार	वेदा	श्लोक	निर्युक्ति	संग्रहणी	प्रतिपत्ति	श्रुतस्कन्ध
१. आचार	आचार	परिमित	संख्येय	संख्येय	संख्येय	संख्येय	०	संख्येय	२
२. सूत्रकृत	लोक, -अलोक, जीव- अजीव तथा स्वसमय- परसमय की सूचना	"	"	"	"	"	०	"	२
३. स्थान	जीव-अजीव, स्वसमय-परसमय तथा लोक-अलोक का स्थापन	"	"	"	"	"	संख्येय	"	१
४. समवाय	जीव-अजीव, स्वसमय-परसमय तथा लोक-अलोक का समाश्रयण	"	"	"	"	"	"	"	१
५. व्याख्याप्रज्ञप्ति	जीव-अजीव, स्वसमय-परसमय तथा लोक-अलोक की व्याख्या	"	"	"	"	"	"	"	१
६. ज्ञातधर्मकथा	धर्मकथा और दृष्टान्त	"	"	"	"	"	"	"	२
७. उपासकदशा	श्रमणोपासकों की आचारसंहिता	"	"	"	"	"	"	"	१
८. अन्तकृतदशा	संसार का अंत करने वालों का वर्णन	"	"	"	"	"	"	"	१
९. अनुत्तरोपपातिक- दशा	अनुत्तरविमान में उत्पन्न होने वालों का वर्णन	"	"	"	"	"	"	"	१
१०. प्रश्नव्याकरण	अंगुष्ठ प्रश्न आदि विद्याओं का निरूपण	"	"	"	"	"	"	"	१
११. विपाकश्रुत	अशुभ कर्म के दुःख विपाक और शुभ कर्म के सुखद विपाक का वर्णन	"	"	"	"	"	"	"	२

अङ्गप्रविष्ट आगमों का विवरण

अध्ययन	उद्देशनकाल	समुद्देशनकाल	व्याकरण	पद-परिमाण	अक्षर	मम	पर्यव
२५	८५	८५	०	१८०००	संख्येय	अनन्त	अनन्त
२३	३३	३३	०	३६०००	"	"	"
१०	२१	२१	०	७२०००	"	"	"
१	१	१	०	१४४०००	"	"	"
१०० से कुछ अधिक	१००००	१००००	३६०००	२८८०००	"	"	"
२९	२९	२९	०	संख्येय हजार	"	"	"
१०	१०	१०	०	"	"	"	"
८ वर्ग	८	८	०	"	"	"	"
३ वर्ग	३	३	०	"	"	"	"
४५	४५	४५	०	"	"	"	"
२०	२०	२०	०	"	"	"	"

अंग	पद परिमाण ^१
१. आचार	१८०००
२. सूत्रकृत	३६०००
३. स्थान	४२०००
४. समवाय	१६४०००
५. व्याख्याप्रज्ञप्ति	२२८०००
६. ज्ञातधर्मकथा	५५६०००
७. उपासकदशा	११७००००
८. अन्तकृतदशा	२३२८०००
९. अनुत्तरोपपातिकदशा	९२४४०००
१०. प्रश्नव्याकरण	९३१६०००
११. विपाकश्रुत	१८४०००००

सूत्र ९२

५. (सूत्र ६२)

'दिट्टिवाय' के संस्कृत रूप दो किए गए हैं—१. दृष्टिवाद २. दृष्टिपात । प्रस्तुत अङ्ग में विभिन्न दार्शनिकों की दृष्टियों का निरूपण है इसलिए इसकी संज्ञा दृष्टिवाद है । इसका दूसरा अर्थ है कि इसमें सब नय दृष्टियों का समपात है इसलिए इसका नाम दृष्टिपात है ।

स्थानाङ्ग में दृष्टिवाद के दस नाम बतलाए गए हैं^२—१. दृष्टिवाद २. हेतुवाद ३. भूतवाद ४. तत्त्ववाद (तथ्यवाद) ५. सम्यक्वाद ६. धर्मवाद ७. भाषाविचय ८. पूर्वगत ९. अनुयोगगत १०. सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वसुखावह ।

दृष्टिवाद के पांच प्रकार अथवा पांच अर्थाधिकार बतलाए गए हैं । उनका विवरण स्वयं सूत्रकार ने किया है । दिगम्बर साहित्य में क्रम और नाम का भेद मिलता है ।

नन्दी

१. परिकर्म
२. सूत्र
३. पूर्वगत
४. अनुयोग
५. चूलिका

तत्त्वार्थवार्तिक^३, कषायपाहुड^४, षट्खण्डागम^५

१. परिकर्म
२. सूत्र
३. प्रथमानुयोग
४. पूर्वगत
५. चूलिका

सूत्र ९३-१०१

६. (सूत्र ६३-१०१)

परिकर्म का अर्थ है योग्यता पैदा करना । जैसे गणित के सोलह परिकर्म होते हैं उनके सूत्र और अर्थ का ग्रहण करने वाला शेष गणित के अध्ययन के योग्य बन जाता है । इसी प्रकार परिकर्म के सूत्र और अर्थ को ग्रहण करने वाले में सूत्र, पूर्वगत आदि के अध्ययन करने की योग्यता आ जाती है ।^६

१. कषायपाहुड, पृ. ९३, ९४

२. ठाणं, १०१२

३. तत्त्वार्थवार्तिक, १।२०, पृ. ७४

४. कषायपाहुड, पृ. १३२

५. षट्खण्डागम, पुस्तक १, पृ. ११०

६. (क) नन्दी चूणि, पृ. ७२ : तत्थ परिकम्मे त्ति जोगगकरणं, जहा गणितस्स सोलस परिकम्मा, तग्गहितसुत्तत्थो सेसगणितस्स जोगगो भवति ।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ८६

(ग) ठाणं, टिप्पण न. ३९, पृ. ९९२ से ९९४

(घ) समवाओ, पृ. ३८९ से ३९१

परिकर्म के मूलभेद और उत्तरभेद विच्छिन्न हैं। उनकी सूत्र और अर्थ परम्परा दोनों उपलब्ध नहीं है। चूर्णिकार ने इतना संकेत किया है कि अपने-अपने सम्प्रदाय के अनुसार वक्तव्य है।^१

मूल परिकर्म सात है। उनमें छह स्वसामयिक हैं, स्वसिद्धान्त के अनुसार हैं। सातवां आजीवक परम्परा के अनुसार है। छह स्वसामयिक परिकर्मों की व्याख्या चार नयों के आधार पर की जाती है।^२ सातवें परिकर्म की व्याख्या तीन राशियों के आधार पर की जाती है।

नय की अनेक परम्पराएं हैं। भगवती^३ तथा कुन्दकुन्द के साहित्य^४ में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ये दो नय मिलते हैं। उमास्वाति के वर्गीकरण में नय पांच है।^५ सिद्धसेन के वर्गीकरण में नय छह है।^६ अनुयोगद्वार आदि अनेक ग्रन्थों में सात नय की परम्परा प्रसिद्ध है।^७ प्रस्तुत आगम में चार नय का उल्लेख है। चूर्णिकार ने चार नय ये बतलाए हैं—संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द।^८ आजीवक तीन राशियों और उनकी प्रज्ञापना के लिए तीन नय स्वीकार करते हैं। चूर्णिकार ने तीन राशियों के कुछ उदाहरण दिए हैं—

- I. १. जीव
२. अजीव
३. जीवाजीव
- II. १. लोक
२. अलोक
३. लोकालोक
- III. १. सत्
२. असत्
३. सदसत्।

तीन नय इस प्रकार हैं —

१. द्रव्यार्थिक
२. पर्यायार्थिक
३. उभयार्थिक

आजीवक एक श्रमण सम्प्रदाय है। भगवान् महावीर के समय वह एक शक्तिशाली संघ था। दृष्टिवाद में परिकर्म के लिए उनकी त्रैराशियों और तीन नयों का प्रयोग एक आश्चर्यकारी घटना है। इससे यह संकेत मिलता है कि पार्श्व और महावीर की परम्परा आजीवक परम्परा को तथा आजीवक परम्परा जैन परम्परा को प्रभावित करती रही है।

सातवां परिकर्म आजीवक की शिक्षा से संबद्ध है। इसका स्रोत देवधिगणी को किसी प्राचीन ग्रन्थ से मिला अथवा अनुश्रुति से मिला? यह एक विमर्शनीय विषय है। अन्यत्र कहीं भी ऐसा उल्लेख प्राप्त नहीं है। धवला और जयधवला में परिकर्म की

१. नन्दी चूर्ण, पृ. ७२ : तं च परिकर्ममुत्तं सिद्धसेणिया-परिकर्मादिमूलभेदयो सत्तविहं, उत्तरभेदतो तेसीतिविहं मातुयपदादी। तं च सर्वं समूलुत्तरभेदं सुत्तत्थतो वोच्छिण्णं, जहागतसंप्रदातं वा वच्चं।

२. वही, पृ. ७२ : एतेसि सत्तहं परिकर्माणं छ आदिमा परिकर्मा ससमइका, स्वसिद्धांतप्रज्ञापना एवेत्यर्थः। आजीविकापासंडत्था गोसालपवत्तिता, तेसि सिद्धंतमतेण चुताऽचुतसहिता सत्त परिकर्मा पणविज्जंति।

३. अंगसुत्ताणि, भाग २, भगवई, १८।१०७-११०

४. (क) नियमसार, गा. १९

(ख) प्रवचनसार, २।२२

५. तत्त्वार्थाधिगम सूत्रम्, १।३४

६. सन्मति प्रकरण, १।५

७. अणुओगदाराइं, सू. ७१५

८. नन्दी चूर्ण, पृ. ७२, ७३ : इदाणि परिकर्मे णत्तंचिता— णेगमो दुविहो—संगहितो असंगहितो य, संगहितो संगहं पविट्ठो, असंगहितो ववहारं, तम्हा संगहो ववहारो रिजुसुतो सदाइया य एवको, एवं चतुरो णया।

९. वही, पृ. ७३ : ते चेव आजीविका तेरासिया भणिता। कम्हा? उच्चते—जम्हा ते सर्वं जगं त्पात्मकं इच्छंति, जहा—जीवो अजीवो जीवाजीवश्च, लोए अलोए लोया-लोए, संते असंते संतासंते एवमादि। णयंचिताए वि ते तिविहं णयमिच्छंति, तं जहा—दव्वट्ठितो पज्जवट्ठितो उभयट्ठितो, अतो भणियं—‘सत्त तेरासियाइं’ ति सत्त परिकर्माइं तेरासियपासंडत्था तिविधाए णयंचिताए चित्तयतीत्यर्थः।

व्याख्या भिन्न प्रकार से मिलती है। परिकर्म के पांच अर्थाधिकार अथवा भेद बतलाए गए हैं—१. चन्द्रप्रज्ञप्ति २. सूरप्रज्ञप्ति ३. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ४. द्वीपसागरप्रज्ञप्ति ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति।

सूत्र १०२-१०३

७. (सूत्र १०२-१०३)

सूत्र के बावीस प्रकार बतलाए गए हैं। चूर्णिकार के अनुसार इन सूत्रों से सर्व द्रव्य, सर्व पर्याय, सर्व नय और सर्व भङ्गों की विकल्पना जानी जाती है। ये पूर्वगत श्रुत और उसके अर्थ के सूत्रक हैं। इसलिए इन्हें सूत्र कहा गया है।^१

इन बावीस सूत्रों के अध्ययन की चार पद्धतियां थीं—

१. छिन्नछेद नय
२. अछिन्नछेद नय
३. तीन नय
४. चार नय

इनमें दो पद्धतियां (पहली और चौथी) स्वसमय की सूत्र परिपाटी के अनुसार हैं। दूसरी और तीसरी दो पद्धतियां आजीवक सूत्र परिपाटी का अनुसरण करती हैं।

१. छिन्नछेद नय—

जिस ग्रन्थ का प्रत्येक सूत्र अथवा श्लोक सूत्रपाठ और अर्थ की दृष्टि से स्वतन्त्र होता है, दूसरे श्लोक अथवा अर्थ की अपेक्षा नहीं रखता, उस शैली का नाम छिन्नछेद नय है। उदाहरण के लिए—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।

देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥^२

यह श्लोक स्वतन्त्र है। उत्तरवर्ती श्लोकों की अपेक्षा नहीं रखता।

२. अछिन्नछेद नय—

‘धम्मो मंगलमुक्किट्ठं……’ इसकी अर्थ योजना द्वितीय आदि श्लोकों से करें, द्वितीय आदि श्लोकों की अर्थ योजना प्रथम श्लोक से करें—इस पद्धति का नाम अछिन्नछेद नय है।^३

इन बावीस सूत्रों का चिन्तन तीन नयों और चार नयों—इन दोनों पद्धतियों से किया जाता है। इस प्रकार चारों पद्धतियों के आधार पर ये बावीस सूत्र अठ्यासी बन जाते हैं।^४ इनका सूत्र पाठ और अर्थ पाठ दोनों ही विच्छिन्न है।^५

ध्वला और जयध्वला में सूत्र का प्ररूपण सर्वथा भिन्न है। उनके अनुसार सूत्र विभाग में जीव के स्वरूप का वर्णन है तथा नास्तिकवाद, क्रियावाद, अक्रियावाद, ज्ञानवाद, वैयक्तिकवाद आदि वादों तथा अनेक प्रकार के गणित का निरूपण है।^६

देवर्धिगणी का अस्तित्वकाल वीर निर्वाण की दसवीं शताब्दी है। जिनसेन और वीरसेन का अस्तित्वकाल उनसे

१. (क) षट्खण्डागम, पुस्तक १, पृ. ११०

(ख) कषायपाहुड़, पृ. १५० : परियम्मे पंच अत्थाहियारा
—चंदपणत्ती सूरपणत्ती जंबूद्वीवपणत्ती दीव-
सायरपणत्ती वियाहपणत्ती चेदि ।

२. नन्दी चूर्ण, पृ. ७४ : ताणि य सुत्ताइं सव्वदव्वाण सव्व-
पज्जवाण सव्वणताण सव्वभंगविकप्पाण य दंसगाणि,
सव्वस्स य पुव्वगतसुतस्स अत्थस्स य सूयग त्ति, अतो ये
सूयणत्तातो सुत्ता भणिता जहाभिधाणत्थाते । ते य इदाणि
सुत्तत्थतो वोच्छिण्णा, जहागतसंप्रदायतो वा वच्चा ।

३. दसवेआलियं, १११

४. नन्दी चूर्ण, पृ. ७४ : अछिन्नछेदणता……अछिन्न-
छेदणतो जहा—एसेव दुमपुक्फियपढमसिलोगो अत्थतो

बितियाइसिलोगे अवेक्खमाणो, बितियादिया य पढमं
अच्छिन्नछेदणताभिप्पाययो भवति । एवं पि बावीसं सुत्ता
अक्खरयणविभागट्ठिता वि अत्थयो अण्णोणमवेक्खमाणा
अच्छिन्नछेदणयट्ठित त्ति भण्णंति ।

५. वही, पृ. ७४ : णयंचिताए वि बावीसं चेव सुत्ता,
‘तेरासियाणं तिकणइयाइं’ ति त्रिकनयाभिप्रायतो चित्त्यं-
तेत्यर्थः । तथा ससमये वि णयंचिताए बावीसं चेव सुत्ता
चउक्कणइया । एवं चतुरो बावीसातो अट्ठासीति सुत्ता
भवन्ति ।

६. वही, पृ. ७४ : ते य इदाणि सुत्त-त्थतो वोच्छिण्णा ।

७. (क) षट्खण्डागम, पुस्तक १, पृ. १११, ११२

(ख) कषायपाहुड़, पृ. १३३, १३४

उत्तरवर्ती है—जिनसेन का शक सम्वत् ७५९, वीरसेन का शक सम्वत् ७३८। नदी और धवला, जयधवला के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि दोनों के परम्परा स्रोत भिन्न हैं। इसका दूसरा अनुमान यह भी हो सकता है कि देवर्षिगणी ने सूत्रों के नामों का उल्लेख किया है। धवला और जयधवलाकार ने सूत्रों के अर्थाधिकार का प्रतिपादन किया है।

सूत्र १०४-११८

८. (सूत्र १०४-११८)

पूर्वगत—

पूर्व शब्द के अनेक तात्पर्यार्थ बतलाए गए हैं—१. तीर्थङ्कर तीर्थ प्रवर्तन के काल में सर्वप्रथम पूर्वगत के अर्थ का निरूपण करते हैं। उस अर्थ के आधार पर निर्मित ग्रन्थ पूर्व कहलाते हैं। गणधर सूत्ररचना करते समय सर्वप्रथम आचाराङ्ग की रचना करते हैं फिर क्रमशः सूत्रकृतांग आदि की रचना करते हैं। और उसी क्रम से उनकी स्थापना करते हैं।^१

कुछ आचार्यों का मत इससे भिन्न है—गणधर सर्वप्रथम पूर्वों की रचना करते हैं उसके पश्चात् आचाराङ्ग आदि अङ्गों की रचना करते हैं।^२

आचाराङ्ग निर्युक्ति में बताया गया है कि सब अङ्गों में प्रथम आचाराङ्ग है फिर पूर्व की रचना सबसे पहले हुई यह कैसे माना जा सकता है। चूर्णिकार ने इसका समाधान किया है—आचाराङ्ग निर्युक्ति का कथन स्थापना की दृष्टि से है, रचना की दृष्टि से नहीं।^३

तुलना के लिए द्रष्टव्य—१. आचारांग भाष्य भूमिका, पृ. १३, १४

२. समवाओ, पृ. ३९०

३. श्री भिक्षु आगम विषय कोश, पृ. ४२३ से ४२९

चौदह पूर्वों के पदों का प्रमाण

क्रम	दिगम्बर ^४	श्वेताम्बर ^५
१. उत्पाद पूर्व	१०००००००	१०००००००
२. अग्नेयणीय पूर्व	९६०००००	९६०००००
३. वीर्य पूर्व	७००००००	७२०००००
४. अस्तित्नास्तिप्रवाद पूर्व	६००००००	६००००००
५. ज्ञानप्रवाद पूर्व	९९९९९९९	९९९९९९९
६. सत्यप्रवाद पूर्व	१००००००६	१००००००६
७. आत्मप्रवाद पूर्व	२६०००००००	२६०००००००
८. कर्मप्रवाद पूर्व	१८००००००	१००८००००
९. प्रत्याख्यान पूर्व	८४०००००	८४०००००
१०. विद्यानुप्रवाद पूर्व	११००००००	११००००००
११. अवध्य पूर्व	२६०००००००	२६०००००००
१२. प्राणायु पूर्व	१३०००००००	१५६०००००
१३. क्रियाविशाल पूर्व	९०००००००	९०००००००
१४. लोकविन्दुसार पूर्व	१२५००००००	१२५००००००
	९५५०००००५	८३२८८०००५

१. नन्दी चूर्ण, पृ. ७५ : जम्हा तित्थकरो तित्थपवत्तणकाले गणधराण सव्वसुताधारत्तणतो पुव्वं पुव्वगतसुतत्थं भासति तम्हा पुव्वं त्ति भणित्ता, गणधरा पुण सुत्तरयणं करेन्ता आयाराइकमेण रयंति ठुवेंति य ।

२. वही, पृ. ७५ : अण्णायरियमतेणं पुण पुव्वगतसुत्तत्थो पुव्वं अरहता भासितो, गणहरेहि वि पुव्वगतसुत्तं चेव पुव्वं रइत्तं पच्छा आयाराइ ।

३. वही, पृ. ७५ : णणु पुव्वावरविरुद्धं, कम्हा ? जम्हा आयारनिज्जुत्तीए भणितं—“सव्वेसि आयारो” । आचार्या-SSह—सत्यमुक्तम्, किंतु सा ठवणा, इमं पुण अक्खररयणं पडुच्च भणितं, पुव्वं पुव्वा कता इत्यर्थः ।

४. षट्खण्डागम, पुस्तक १, पृ. ११६-१२२

५. नन्दी चूर्ण, पृ. ७५, ७६

	नंदी चूर्ण ^१	धवला ^२	जयधवला ^३
१. उत्पाद पूर्व	सर्व द्रव्य व पर्यायों के उत्पादन का प्रज्ञापन ।	जीव आदि के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य का प्रज्ञापन ।	नाना नय के विषयभूत तथा क्रम अक्रम से होने वाले उत्पाद व्यय और ध्रौव्य का प्रतिपादन ।
२. अग्रेयणीय पूर्व	सब द्रव्यों, पर्यायों और सब जीवों के परिमाण का प्रज्ञापन ।	अंग का वर्णन ।	सात सौ सुनय और दुर्नयों का तथा छह द्रव्य, नौ पदार्थ और पांच अस्तिकाय का प्रज्ञापन ।
३. वीर्य पूर्व	जीव और अजीव के वीर्य का प्रज्ञापन ।	स्व-पर-उभय-क्षेत्र-भव-तप-वीर्य का प्रज्ञापन ।	आत्मवीर्य, परवीर्य, उभय, क्षेत्र, काल-तप-वीर्य का प्रज्ञापन ।
४. अस्तित्वास्तित्वादि प्रवाद पूर्व	अस्तित्व और नास्तित्व का प्रज्ञापन ।	जीव-अजीव के अस्तित्व-नास्तित्व का प्रज्ञापन ।	सब द्रव्यों का स्वरूपादि (स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव) चतुष्टय की अपेक्षा अस्तित्व तथा पर द्रव्य आदि चतुष्टय की अपेक्षा नास्तित्व का प्रज्ञापन ।
५. ज्ञानप्रवाद पूर्व	ज्ञान मीमांसा—ज्ञान और उसके भेदों का प्रज्ञापन ।	ज्ञान-अज्ञान का प्रज्ञापन ।	ज्ञान—प्रत्यक्ष-परोक्ष आदि का प्रज्ञापन ।
६. सत्यप्रवाद पूर्व	सत्य वचन का प्रज्ञापन ।	वाग्गुप्ति, वाक्संस्कार के कारण, वचन प्रयोग, भाषा के प्रकार, वक्ता के असत्य-सत्य वचन का प्रज्ञापन ।	व्यवहार सत्य आदि दसविध सत्यों का प्रज्ञापन । सप्तभंगी के द्वारा समस्त पदार्थों की निरूपणविधि का प्रज्ञापन ।
७. आत्मप्रवाद पूर्व	आत्मा का नयों के द्वारा प्रज्ञापन ।	जीव, वेत्ता, विष्णू, भोक्ता बुद्ध आदि के रूप में आत्मा का प्रज्ञापन ।	जीव की सिद्धि और आत्मा के स्वरूप का प्रज्ञापन ।
८. कर्मप्रवाद पूर्व	कर्म के स्वरूप और प्रकृति बन्ध आदि भेदों का प्रज्ञापन ।	आठ प्रकार के कर्मों का वर्णन ।	समवदान क्रिया, ईर्ष्यापथिकी क्रिया तप और अधः कर्म का प्रज्ञापन ।
९. प्रत्याख्यान पूर्व	सर्व प्रत्याख्यान के स्वरूप का प्रज्ञापन ।	द्रव्य भाव आदि की अपेक्षा से परिमित काल व अपरिमित काल के प्रत्याख्यान, उपवासविधि, पांच समिति और तीन गुप्ति का प्रज्ञापन ।	नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव भेदयुक्त परिमित और अपरिमित काल वाले प्रत्याख्यान का प्रज्ञापन ।
१०. विद्यानुप्रवाद पूर्व	अतिशायी विद्याओं का प्रज्ञापन ।	अंगुष्ठ प्रश्न आदि सात सौ अल्प-विद्याओं का तथा रोहिणी आदि पांच सौ महाविद्याओं, अन्तरिक्ष आदि आठ महानिमित्तों का प्रज्ञापन ।	अंगुष्ठ प्रश्न आदि सात सौ मंत्र तथा रोहिणी आदि महाविद्याओं का, उनकी साधना विधि एवं फल का प्रज्ञापन ।
११. अचंध्य पूर्व	ज्ञान, तप आदि की सफलता एवं प्रमाद आदि की निष्फलता का प्रज्ञापन ।	सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र व तारागण के चार क्षेत्र, उपपाद स्थान, गति तथा उनके फल तथा तीर्थकर आदि के महाकल्याणकों का प्रज्ञापन ।	ग्रह, नक्षत्र, चन्द्र और सूर्य के चार क्षेत्र, अष्टांग महानिमित्त और तीर्थकर, चक्रवर्ती बलदेव आदि के कल्याणकों का प्रज्ञापन ।
१२. प्राणायु पूर्व	आयु आदि प्राणों का भेद सहित प्रज्ञापन ।	आयुर्वेद, भूतिकर्म और प्राणायाम का भेद-प्रभेद सहित प्रज्ञापन ।	दसविध प्राणों की हानि वृद्धि का प्रज्ञापन ।
१३. क्रियाविशाल पूर्व	कायक्रिया आदि क्रियाओं का भेद सहित प्रज्ञापन ।	७२ कलाओं तथा ६४ गुणों का प्रज्ञापन ।	नृत्य, गीत, लक्षण, छन्द, अलंकार आदि शास्त्रों का प्रज्ञापन ।
१४. लोकविन्दुसार पूर्व	श्रुत लोक के बिन्दु सर्वाक्षर सन्निपात आदि का प्रज्ञापन ।	आठ व्यवहार, चार बीज और मोक्ष की ओर ले जाने वाली क्रियाओं एवं उनके फल का प्रज्ञापन ।	परिकर्म, व्यवहार, रज्जुराशि कला-सवण (गणित का भेद विशेष) वर्ग, घन, बीजगणित और मोक्ष का प्रज्ञापन ।

१. नन्दी चूर्ण, पृ. ७५, ७६

२. षट्खण्डागम, पुस्तक १, पृ. ११५-१२३

३. कषायपाहुड़, पृ. १३९-१४८

सूत्र ११९-१२१

६. (सूत्र ११६-१२१)

प्रस्तुत आगम में अनुयोग के दो विभाग बतलाए गए हैं—

१. मूलप्रथमानुयोग—इसमें अर्हत् का जीवन वर्णन है।

२. गण्डिकानुयोग (कण्डिकानुयोग)—इसमें कुलकर आदि अनेक व्यक्तियों के जीवन का वर्णन है।

सामान्यतः इनमें कोई अंतर दिखाई नहीं देता। हरिवंश गण्डिका, अवसर्पिणी गण्डिका, उत्सर्पिणी गण्डिका और चित्रान्तर गण्डिका इनके अध्ययन से पता चलता है कि गण्डिकानुयोग केवल जीवन का वर्णन करने वाला ग्रन्थ नहीं है किन्तु वह इतिहास ग्रन्थ है।

चूर्णिकार तथा मलयगिरि ने गण्डिका का अर्थ खण्ड किया है। ईख के एक पर्व से दूसरे पर्व का मध्यवर्गीय भाग गण्डिका कहलाता है वैसे ही जिस ग्रन्थ में एक व्यक्ति का अधिकार होता है उस ग्रन्थ की संज्ञा गण्डिका अथवा कण्डिका है।^१

दिगम्बर साहित्य में अनुयोग के ये ही दो विभाग किए गए हैं।

शब्द विमर्श—

चित्रान्तरगण्डिका—यह अनेक अर्थवाली गण्डिका होती है। उदाहरणस्वरूप प्रथम तीर्थंकर ऋषभ और द्वितीय तीर्थंकर अजित के अंतराल में जो घटनाएं घटित हुईं वह ग्रन्थ चित्रान्तर गण्डिका है।^२ चित्रान्तर गण्डिका को समझाने के लिए चूर्णिकार ने कुछ गाथाओं को उद्धृत किया है।^३

सूत्र १२२

१०. (सूत्र १२२)

चूलिका को आज की भाषा में परिशिष्ट कहा जा सकता है। चूर्णिकार ने बताया है कि परिकर्म, सूत्र, पूर्व और अनुयोग में जो नहीं बतलाया है वह चूलिका में बतलाया गया है।^४ हरिभद्रसूरि के अनुसार चूलिका में उक्त और अनुक्त दोनों का ही उल्लेख किया गया है।^५

आद्यवर्ती चार पूर्वों के अंतिम भाग में चूलिकाएं हैं। शेष पूर्वों के नहीं हैं। ये श्रुत रूपी पर्वत के चूला (चोटी) के समान हैं इसलिए इन्हें चूलिका कहा गया है।^६ इनकी संख्या का निर्देश इस प्रकार है^७—

१. उत्पाद पूर्व—४

२. अग्रेयणीय पूर्व—१२

३. वीर्यप्रवाद—८

४. अस्तिनास्तिप्रवाद—१०

हरिभद्रसूरि और मलयगिरि ने चूलिका की संख्या निर्देश के लिए एक-एक गाथा का निर्देश किया है।^८

१. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ७७ : इक्खुमादिपर्वगण्डिकावत् एक्काहिकारत्तगतो गण्डियाणुओगो भणितो..... गण्डिका इति—खंडं।

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, पृ. २४२ : इक्ष्वादीनां पूर्वापर-परिच्छन्नो मध्यभागो गण्डिका, गण्डिकेव गण्डिका—एकार्थाधिकार ग्रन्थपद्धतिरित्यर्थः।

२. नन्दी चूर्ण, पृ. ७७ : 'चित्तंतरगण्डिय' ति चित्रा इति अनेकार्था, अंतरे इति—उसभ-अजियंतरे।

३. वही, पृ. ७७, ७८

४. वही, पृ. ७९ : दिट्ठिवाते जं परिकम्म-सुत्त-पुव्व-अणुयोगे य ण भणितं तं चूलामु भणितं।

५. हरिभद्रोया वृत्ति, पृ. ९३ : इह दृष्टिवादे परिकर्म-

सूत्र-पूर्वानुयोगोक्तानुक्तार्थसङ्ग्रहणपरा ग्रन्थपद्धतयश्चूडा इति।

६. नन्दी चूर्ण, पृ. ७९ : ताओ य चूलाओ आदिल्लपुव्वाण चतुण्हं जे चूलवत्थू भणिता ते चेव सव्वुवरि ट्ठिता पडि-ज्जंति य, अतो ते सुयपव्वयचूला इव चूला। तेसि जह-क्कमेण संखा चतु बारस अट्ठ दस य भवंति।

७. (क) हरिभद्रोया वृत्ति, पृ. ९३ :

चउ बारसट्ठ दस या हवंति चूडा चउण्ह पुव्वाणं।

एए य चूलवत्थू सव्वुवरि किल पडिज्जंति ॥

(ख) मलयगिरीया वृत्ति, पृ. २४६ :

चत्तारि दुवालस अट्ठ चेव दस चेव चूलवत्थूणि।

आइल्लाण चउण्हं सेसाणं चूलिया नत्थि ॥

धवला और जयधवला में चूलिकाओं की संख्या पांच बतलाई गई है—

	धवला ^१	जयधवला ^२
१. जलगता	जलगमन, जलस्तम्भन के कारणभूत मंत्र, तंत्र और तपश्चरण की विधियों का प्रज्ञापन ।	१. जलस्तम्भन और जलगमन के कारणभूत मंत्र, तंत्र और तपस्या का तथा अग्नि का स्तम्भन करना, अग्नि का भक्षण करना, अग्नि पर आसन लगाना, अग्नि पर तैरना आदि क्रियाओं के कारणभूत प्रयोगों का प्रज्ञापन ।
२. स्थलगता	पृथ्वी के भीतर गमन के कारणभूत मंत्र, तंत्र, वास्तुविद्या और भूमि संबंधी अन्य शुभाशुभ कारणों का प्रज्ञापन ।	२. कुल शैल, मेरु, महीधर, गिरि और पृथ्वी आदि पर गमन के कारणभूत मंत्र, तंत्र और तपस्या का प्रज्ञापन ।
३. मायागता	इन्द्रजाल आदि के कारणभूत मंत्र, तंत्र और तपस्या आदि का प्रज्ञापन ।	३. महेन्द्रजाल का प्रज्ञापन ।
४. रूपगता	सिंह, अश्व, हरिण आदि के परिणमन के कारणभूत मंत्र, तंत्र और तपस्या का तथा चित्रकर्म, काष्ठकर्म, लेप्यकर्म, लयन (पर्वत गृह) आदि का प्रज्ञापन ।	४. सिंह, हाथी, मृग-विशेष, मनुष्य, वृक्ष, हरिण, वृषभ आदि के रूप में अपने रूप को बदलने की विधि का प्रज्ञापन ।
५. आकाशगता	आकाशगमन के कारणभूत मंत्र, तंत्र और तपस्या आदि का प्रज्ञापन ।	५. आकाशगमन के कारणभूत मंत्र, तंत्र और तपस्या का प्रज्ञापन ।

सूत्र १२३

११. (सूत्र १२३)

ग्यारह अङ्गों में अवान्तर विभागों के नाम अध्ययन, शतक, उद्देशक आदि हैं । दृष्टिवाद के अंतर्गत पूर्वों के विभागों के नाम उनसे भिन्न हैं—

वस्तु—अनेक प्राभूतों का समुदाय ।

क्षुल्लकवस्तु—छोटे प्राभूतों का समुदाय ।

प्राभूत—वस्तु का एक अध्याय ।

प्राभूत प्राभूत—प्राभूत का एक अंश ।

प्राभूतिका—अध्याय का एक प्रकरण ।

प्राभूत प्राभूतिका—अध्याय का अवान्तर प्रकरण ।

मलधारी हेमचन्द्र ने प्राभूत आदि का अर्थ पूर्वों के अन्तर्गत होने वाले श्रुताधिकार विशेष किया है ।^१ द्रष्टव्य—अनुयोगद्वारा सू० ५७०-५७२ का टिप्पण ।

१. षट्खण्डागम, पुस्तक १, पृ. ११४

२. कषायपाहड़, पृ. १३९

३. अनुयोगद्वारा, मलधारी हेमचन्द्राया वृत्ति, प. २१६ : नवरं प्राभूतादयः पूर्वान्तरगताः श्रुताधिकारविशेषाः ।

सूत्र १२४

१२. (सूत्र १२४)

प्रस्तुत सूत्र में द्वादशाङ्गी की समग्र विषय वस्तु का प्रतिपादन किया गया है। प्रतिपाद्य विषय के छः युगल हैं—

१. भाव और अभाव
२. हेतु और अहेतु
३. कारण और अकारण
४. जीव और अजीव
५. भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक
६. सिद्ध और असिद्ध।

१. भाव और अभाव—

भाव होने (being) का वाचक है। अस्तित्व की परीक्षा दो दृष्टियों से की जाती है—

१. द्रव्याधिक दृष्टि से अस्तित्व
२. पर्यायाधिक दृष्टि से अस्तित्व।

अभाव न होने (non-being) का वाचक है। चूर्णिकार के अनुसार ये दो भावात्मक तत्त्व हैं। अनेकान्त की दृष्टि से इनके अभावात्मक स्वरूप का भी विवेचन किया गया है।

१. अजीवत्व की दृष्टि से जीव अभावात्मक है।
२. जीवत्व की दृष्टि से अजीव अभावात्मक है।

यह द्रव्याधिक दृष्टिकोण है।

पर्यायाधिक दृष्टिकोण का उदाहरण यह है—

१. पटत्व की दृष्टि से घट अभावात्मक है।
२. घटत्व की दृष्टि से पट अभावात्मक है।

इस प्रकार भाव और अभाव अनन्त हो जाते हैं। जितने भाव है उतने ही अभाव हैं।'

२. हेतु और अहेतु—

जिज्ञासित अर्थ का गमक ज्ञापक साधन हेतु होता है। उसका प्रतिपक्ष अहेतु है। चूर्णिकार ने हेतु के अनेक विकल्प प्रस्तुत किए हैं। सूत्र में अनन्त गमक होते हैं इस अपेक्षा से हेतु अनन्त हैं उनके प्रतिपक्ष अहेतु भी अनन्त हैं।'

विस्तार के लिए द्रष्टव्य स्थानाङ्ग ४।५०४ का सूत्र तथा टिप्पण पृ. ५२७ से ५३२।

३. कारण और अकारण—

जो कार्य का साधक है वह कारण है। प्रयोग और विस्रसा की दृष्टि से कारण अनन्त हैं। जो जिस कार्य का साधक नहीं है वह उसका अकारण है। वे भी अनन्त हैं।'

१. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ८० : भवनं भूतिर्वा भावः, ते य जीवाऽजीवात्मका अणंता प्रतिबद्धा। 'अणंता अभाव' त्ति अभवनं अभावः अभूतिर्वा। जहा जीवो अजीवत्तेण अभावो, अजीवा य जीवत्तेण, घडो पडत्तेण, पडो य घडत्तेण, एमादि अणंता अभावा प्रतिबद्धा। अहवा जे जहा जावइया भावा तेसि पडिपक्खतो तावइया चेव अणंता अभावा भवति।

- (ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ९३
- (ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. २४७

२. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ८० : 'अणंता हेतु' त्ति पंच-दसावय-ववयणेषु पक्खधम्मत्तं सपक्खसत्तं अभिलसितमत्थ-साधकं वयणं हेतु भण्णति, अहवा सव्वजुत्तिजुत्तं

वयणं हेतु भण्णति, अहवा सव्वे जिणवयणपहा हेतु, प्रतिपातकत्तणतो, णिदोसहेतुवयणं व, सुत्तस्स य अणंतगमत्तणतो, एवं अणंता हेतु। भणितपडि-वक्खतो य अणंता चेव अहेतु।

- (ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ९३
- (ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. २४७

३. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ८० : 'अणंता कारण' त्ति कज्ज-साधयं कारणं त्ति, त य पयोग-वीससातो अणंता भाणितव्वा। जं च जस्स असाधकं तं तस्स अकारणं, चक्क-दंडादयो पडस्स, एवं अणंता अकारणा।

- (ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ९३
- (ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. २४७

सूत्र १२५

१३. (सूत्र १२५)

प्रस्तुत प्रकरण में द्वादशाङ्ग गणिपिटक में प्राप्त आज्ञा की आराधना और विराधना का परिणाम बताया है। विराधना का परिणाम है—संसार (जन्म-मरण का चक्र) भ्रमण। आराधना का परिणाम है—संसार से मुक्ति। चूर्णिकार ने द्वादशाङ्ग गणिपिटक के तीन प्रकारों का निर्देश किया है^१—१. सूत्र, २. अर्थ, ३. तदुभय। इस आधार पर आज्ञा के भी तीन प्रकार बन जाते हैं^२—

१. सूत्राज्ञा
२. अर्थाज्ञा
३. तदुभयाज्ञा।

जिनके द्वारा शिष्य को ज्ञान कराया जाता है वह आज्ञा है। जिससे हित का ज्ञान कराया जाता है वह आज्ञा है।^३

शब्द विमर्श—

आराधना—साध्य के अनुरूप आचरण करना।

विराधना—साध्य के प्रतिकूल आचरण करना।

सूत्र १२६

१४. (सूत्र १२६)

प्रस्तुत सूत्र में द्वादशाङ्ग गणिपिटक की त्रैकालिकता की प्ररूपणा की गई है। इसे पढते समय मीमांसकों का वेदों की नित्यता का सिद्धान्त सामने आ जाता है। दार्शनिक युग में जैन आचार्यों ने वेदों की नित्यता का निरसन किया। इस अवस्था में द्वादशाङ्गी की नित्यता की स्थापना कैसे की जा सकती है। मीमांसक शब्द को नित्य मानते हैं और जैन दर्शन के अनुसार शब्द अनित्य है। द्वादशाङ्गी शब्द निबद्ध है। कोई भी भाषा नित्य नहीं होती। अतः भाषा में लिखा हुआ कोई ग्रन्थ नित्य नहीं हो सकता।

पञ्चास्तिकाय नित्य है। इसका तात्पर्य है कि द्वादशाङ्गी में प्रतिपादित तत्त्व नित्य है। उसका भाषात्मक स्वरूप नित्य नहीं है। आत्मा तत्त्व नित्य है। उसके लिए आत्मा, चैतन्य, चेतना आदि प्रयुक्त होने वाले शब्द नित्य नहीं हैं इसलिए आचाराङ्ग में कहा है—‘अपयस्स पयं नत्थि।’^४

सूत्र १२७

१५. (सूत्र १२७)

आभिनिवोधिकज्ञान^१, अवधिज्ञान^२, मनःपर्यवज्ञान^३ और केवलज्ञान^४ की विषय वस्तु पहले बतलाई जा चुकी है। श्रुतज्ञान की विषयवस्तु प्रस्तुत सूत्र में निर्दिष्ट है। श्रुतज्ञानी उपयुक्त—श्रुतज्ञान में दत्तचित्त होकर सब द्रव्यों को जानता देखता है। आभिनिवोधिकज्ञान के संदर्भ में सर्व शब्द आदेश-सापेक्ष है और यहां सर्व शब्द ग्रन्थ अथवा श्रुत-सापेक्ष है। चूर्णिकार के अनुसार श्रुतज्ञान की विषय वस्तु का प्रतिपादन सम्पूर्ण दशपूर्वधर यावत् श्रुतकेवली (चतुर्दशपूर्वधर) आदि की अपेक्षा से किया गया

१. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ८० : ‘डुवालसंगं गणिपिडगं’ ति
तिविहं पण्णत्तं—सुत्ततो अत्थतो तदुभयतो।

(ख) अणुओगबाराइं, सू. ५५० का शब्द विमर्श।

२. नन्दी चूर्ण, पृ. ८०, ८१ : एमेव आणा तिविहा—सुत्ताणा
अत्थाणा तदुभयआणा य।

३. वही, पृ. ८१ : यदा आज्ञाप्यते एभिः तदा आज्ञा भवति,
तंतुपटव्यपदेशवत्। आज्ञाप्यते यया हितोपदेशत्वेन सा आज्ञा

इति।

४. आयारो, ५।१३९

५. नवसुत्ताणि, नंदी, सू. ५४

६. वही, सू. २२

७. वही, सू. २५

८. वही, सू. ३३

है। श्रुतज्ञानी पुरुष परमाणु स्कन्धों के सूक्ष्म प्रकारों को जानता है। वह उसका अपना ज्ञान नहीं है किन्तु ग्रन्थों के आधार पर जानता है।

द्रव्यतः श्रुतज्ञानी श्रुतज्ञान में उपयुक्त होकर सूत्र विज्ञप्ति के अनुसार सब द्रव्यों को जानता है, देखता है। इस प्रसंग में 'देखता है' (पासति) यह विमर्शनीय है। शास्त्रीय ज्ञान जाना जा सकता है किन्तु देखा नहीं जा सकता। इसलिए देखा जाता है— इस कथन में विरोधाभास है।

चूर्णिकार ने बतलाया है कि श्रुतज्ञानी इन्द्रिय सीमा से परे मेरु पर्वत आदि का श्रुतज्ञान के आधार पर आलेखन करता है। वह अदृष्ट का आलेखन नहीं कर सकता। प्रज्ञापना में श्रुतज्ञान की पश्यत्ता का विधान किया गया है। वास्तव में 'पश्यति' का अर्थ चक्षु से देखना अथवा साक्षात्कार करना नहीं है। यहां 'पासइ' का प्रयोग पश्यत्ता के अर्थ में है। इसका तात्पर्य है दीर्घकालिक उपयोग। श्रुतज्ञान का संबंध मन से है। मानसिक ज्ञान दीर्घकालिक अथवा त्रैकालिक होता है इसलिए यहां 'पासइ' का प्रयोग संगत है।

चूर्णिकार ने बतलाया है कि सम्पूर्ण दशपूर्वी से अल्पज्ञान वाले श्रुतज्ञानी हैं उनमें सब द्रव्यों के ज्ञान और पश्यत्ता भाज्य हैं—उनमें से कुछ श्रुतज्ञानी सब द्रव्यों को जानते देखते हैं और कुछ श्रुतज्ञानी सब द्रव्यों को न जानते हैं न देखते हैं।

जिनभद्रगणी ने प्रस्तुत सूत्र (नन्दी सूत्र) के 'न पासइ' पाठ को स्वीकार किया है। उनके अनुसार 'पासइ' पाठ मतान्तर द्वारा सम्मत है। प्रज्ञापना के आधार पर पश्यत्ता को भी मान्य किया है।

१६. (गाथा १)

अक्षर आदि श्रुतज्ञान की जानकारी के लिए द्रष्टव्य सूत्र ५५ से १२७।

१७. (गाथा २, ३)

प्रस्तुत दो गाथाओं में श्रुतज्ञान के ग्रहण का उपाय (ग्रहण विधि) बतलाया गया है। चूर्णिकार ने बतलाया है कि गणधर द्वारा प्रणीत द्वादशाङ्ग तथा प्रत्येकबुद्ध द्वारा भाषित ग्रन्थों का अध्ययन गहन प्रतीत हुआ। उस समय आचार्यों ने चिन्तन किया कि काल के प्रभाव से बल, बुद्धि, मेधा और आयु की हानि हो रही है इसलिए पूर्ववर्ती आगम ग्रन्थों से निर्यूहण कर सरल ग्रन्थों का निर्माण करना चाहिए। अनुयोगद्वारा, नन्दी, प्रज्ञापना आदि ग्रन्थ इसी निर्यूहण विधि से रचे गए हैं। उनके अध्ययन की विधि निम्नवर्ती गाथाओं में बतलाई जा रही है।

बुद्धि के आठ गुण—

१. शुश्रूषा—गुरु के मुख से सुनने की इच्छा।
२. प्रतिपृच्छा—प्रश्न के द्वारा अधीत विषय को स्पष्ट करना।
३. श्रवण—अधीत ग्रन्थ के अर्थ का ज्ञान करना।
४. ग्रहण—श्रुत अर्थ का अवग्रह करना।
५. ईहा—अवग्रहीत अर्थ की ईहा करना, पर्यालोचन करना, अपनी बुद्धि से उत्प्रेक्षा करना।
६. अपोह—अन्वय और व्यतिरेकी धर्मों के पर्यालोचना के आधार पर विषय का निर्णय करना।
७. धारणा—अपोह द्वारा निश्चित विषय का धारण करना।

१. (क) नन्दी चूर्ण, पृ. ८२ : अभिष्णदसपुव्वादिद्याण जाव सुतनाणकेवली ते पडुच्च भणितं। दव्वतो णं सुतनाणेणोवयुत्तो सुत्तविष्णत्तीए सव्वदव्वादि जाणति पासति य।

(ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ९५

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, पृ. २८५

२. नन्दी चूर्ण, पृ. ८२ : णणु पासइ त्ति विरोहो ? उच्यते—जम्हा अदिट्ठाण वि मेरुमादिद्याण सुतनाणपासणताए आगारमालिहइ, ण यादिट्ठं लिखइ, पणवणाए य भणिता

सुतनाणपासणत त्ति ण विरोधो।

३. वही, पृ. ८२ : आरतो पुण जे सुतनाणी ते सव्वदव्वनाणपासणतासु भइत्ता। सा य भयणा मतिविसेसतो जाणितव्वा।

४. विशेषावश्यकभाष्य, गा. ५५३ से ५५५

५. नन्दी चूर्ण, पृ. ८३ : एत्थं आयारादिगणधरागमपणी-तस्स पत्तेगबुद्धभासितस्स वा तहाकालाणुभावतो बल-बुद्धि-मेधा-ससुहाणि जाणित्ता जे य सुतभावा अयरिण्हा निज्जुहा तेसु गहणविही दंसिज्जइ।

द. करण—धारणा द्वारा प्राप्त विषय का आचरण, अनुष्ठान अथवा अनुशीलन करना ।^१

आचार्य हेमचन्द्र ने इस गाथा में निर्दिष्ट बुद्धि के आठ गुणों का कुछ भिन्न रूप में निर्देश किया है^१—शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारणा, ऊहा, अपोह, अर्थविज्ञान और तत्त्वज्ञान ।

१८. (गाथा ४)

प्रस्तुत गाथा में श्रवण विधि का निर्देश किया गया है । श्रवण के सात अङ्ग निर्दिष्ट हैं^१—

१. सूक—गुरु पढ़ाए उस समय शिष्य प्रथम बार के श्रवण में मौन रहकर अध्ययन के विषय का अवधारण करें ।

२. हुंकार—द्वितीय बार के श्रवण में हुंकार शब्द का उच्चारण करना ।

३. बाढंकार—तृतीय बार के श्रवण में बाढंकार का प्रयोग करें—आप कह रहे हैं वैसा ही है । बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, ऐसा कहें ।

४. प्रतिपृच्छा—प्रश्न प्रस्तुत करें ।

५. विमर्श, मीमांसा—अधीयमान विषय की मीमांसा करें, प्रमाण की जिज्ञासा करें ।

६. प्रसंग पारायण—अधीयमान विषय का पारगामी बनें ।

७. परिनिष्ठा—विषय की सम्पन्नता तक पहुंच जाएं ।

१९. (गाथा ५)

गुरु के द्वारा की जाने वाली व्याख्यान विधि—

१. प्रथम अनुयोग—सूत्र के अर्थमात्र का प्रतिपादन ।

२. द्वितीय अनुयोग—सूत्रस्पर्शी निर्युक्ति मिश्रित अर्थ का प्रतिपादन ।

३. तृतीय अनुयोग—निरवशेष अर्थ का प्रतिपादन । इसमें समग्र दृष्टि से अनुयोग किया जाता है, प्रासंगिक और अल्प प्रासंगिक विषय भी बताए जाते हैं ।^१

श्रवण विधि के सात प्रकार बतलाए गए हैं और अनुयोगविधि के तीन प्रकार बतलाए गए हैं । यह एक विरोधाभास है । हरिभद्रसूरि ने इसका समाधान इस प्रकार किया है^१—सब शिष्य समान योग्यता वाले नहीं होते, उनमें ग्रहण शक्ति का तारतम्य होता है । इसलिए योग्यता की तरतमता के आधार पर इन तीनों अनुयोग विधियों में से किसी एक विधि का सात बार प्रयोग किया जा सकता है । इसलिए दोनों में विरोधाभास नहीं है । आचार्य मलयगिरि^१ ने हरिभद्र का अनुसरण किया है ।

१. (क) द्रष्टव्य, विशेषावश्यकभाष्य, गा. ५५९ से ५६४

(ख) हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ९६

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. २५०

२. अभिधान चिन्तामणि, २।३१०, ३११

३. (क) विशेषावश्यकभाष्य, गा. ५६५

(ख) हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ९६

(ग) मलयगिरीया वृत्ति, प. २५०

४. विशेषावश्यकभाष्य, गा. ५६७

५. हरिभद्राया वृत्ति, पृ. ९६, ९७

६. मलयगिरीया वृत्ति, प. २५०

परिशिष्ट :

१. अणुणानंदी (सानुवाद)
२. जोगनंदी (सानुवाद)
३. कथा
४. विशेषनामानुक्रम—देशी शब्द
५. पदानुक्रम
६. टिप्पण : अनुक्रम
७. ज्ञानमीमांसा
८. प्रयुक्त ग्रन्थ-सूची

परिशिष्ट : १

अणुणानंदी-अनुज्ञानन्दी

मूल पाठ

हिन्दी अनुवाद

१. से किं तं अणुण्णा ? अणुण्णा छ्विहा पणत्ता, तं जहा—नामाणुण्णा ठवणाणुण्णा दव्वाणुण्णा खेत्ताणुण्णा कालाणुण्णा भावाणुण्णा ॥
२. से किं तं नामाणुण्णा ? नामाणुण्णा—जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवाण वा अजीवाण वा तदुभयस्स वा तदुभयाण वा अणुण्ण त्ति णामं कीरइ । सेत्तं नामाणुण्णा ॥
३. से किं तं ठवणाणुण्णा ? ठवणाणुण्णा—जं णं कट्ठकम्मे वा पोत्थकमे वा लेप्पकम्मे वा चित्तकम्मे वा गंथिमे वा वेढिमे वा पूरिमे वा संघातिमे वा अक्खे वा वराडए वा एगे वा अणेगे वा सम्भावठवणाए वा असम्भावठवणाए वा अणुण्ण त्ति ठवणा ठविज्जति । सेत्तं ठवणाणुण्णा ॥
४. णाम-ठवणाणं को पतिविसेसो ? णामं आवकहियं, ठवणा इत्तिरिया वा होज्जा आवकहिया वा ॥
५. से किं तं दव्वाणुण्णा ? दव्वाणुण्णा दुविहा पणत्ता, तं जहा— आगमतो य नोआगमतो य ।
६. से किं तं आगमतो दव्वाणुण्णा ? आगमतो दव्वाणुण्णा—जस्स णं अणुण्ण त्ति पदं सिक्खियं ठियं जियं मियं परिजियं नामसमं घोससमं अहीणक्खरं अणच्चक्खरं अवाइद्धक्खरं अक्खलियं अमिलियं अविच्चामेलियं पडिपुण्णं पडिपुण्णघोसं कंठोट्टविप्पमुक्कं गुरुवायणोवगयं से णं तत्थ वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए धम्मकहाए, नो अणुण्पेहाए । कम्हा ? अणुवओगो दव्वं इति कट्ठु ।

१. वह अनुज्ञा क्या है ? अनुज्ञा के छह प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे— नामअनुज्ञा, स्थापनाअनुज्ञा, द्रव्यअनुज्ञा, क्षेत्रअनुज्ञा, कालअनुज्ञा, भावअनुज्ञा ।

२. वह नामअनुज्ञा क्या है ? नामअनुज्ञा—जिस जीव या अजीव का, जीवों या अजीवों का, जीव-अजीव दोनों का, जीवों-अजीवों दोनों का अनुज्ञा यह नाम किया जाता है । वह नामअनुज्ञा है ।

३. वह स्थापना अनुज्ञा क्या है ? स्थापना अनुज्ञा—काष्ठाकृति, पुस्तक में अंकित चित्र, लेप्याकृति या चित्राकृति में गूँथकर, वेष्टितकर, भरकर या जोड़कर बनाई हुई पुतली में, अक्ष या कौड़ी में एक या अनेक सद्भावस्थापना (वास्तविक-प्राकृति) अथवा असद्भावस्थापना (काल्पनिक आरोपण) के द्वारा अनुज्ञा का जो रूपांकन या कल्पना की जाती है । वह स्थापनाअनुज्ञा है ।

४. नाम और स्थापना में क्या अन्तर है ? नाम यावज्जीवन होता है, स्थापना अल्पकालिक भी होती है और यावज्जीवन भी ।

५. वह द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? द्रव्यअनुज्ञा के दो प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—आगमतः (ज्ञान की अपेक्षा से) और नोआगमतः (ज्ञानाभाव और क्रिया की अपेक्षा से) ।

६. वह आगमतः द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? आगमतः द्रव्यअनुज्ञा—जिसने अनुज्ञा यह पद सीख लिया, स्थिर कर लिया, चित (स्मृति-योग्य) कर लिया, मित (श्लोक आदि की संख्या से निर्धारित) कर लिया, परिचित कर लिया, नामसम (अपने नाम के समान) कर लिया, घोषसम (सही उच्चारणयुक्त) कर लिया, जिसे वह हीन, अधिक और विषयंस्त अक्षर रहित, अस्खलित, अन्य वर्णों से अमिश्रित, अन्य ग्रन्थ वाक्यों से अमिश्रित, प्रतिपूर्ण, प्रतिपूर्णघोषयुक्त, कण्ठ और होठ से निकला हुआ तथा जिसे गुरु की वाचना से प्राप्त किया जाता है वह अनुज्ञापद के अध्यापन, प्रश्न, परावर्तन और धर्मकथा में प्रवृत्त होता है तब आगमतः द्रव्यअनुज्ञा है । वह अनुप्रेक्षा (अर्थ के अनु-चिन्तन) में प्रवृत्त नहीं होता क्योंकि द्रव्य निक्षेप अनुपयोग (चित्त की की प्रवृत्ति से शून्य) होता है ।

जगमस्स एगे अणुवउत्ते आगमतो एगा दव्वाणुण्णा, दोण्णिण अणुवउत्ता आगमतो दोण्णिण दव्वाणुण्णाओ, तिण्णिण अणुवउत्ता आगमतो तिण्णिण दव्वाणुण्णाओ, एवं जावतिया अणुवउत्ता तावतियाओ दव्वाणुण्णाओ । एवमेव चवहारस्स वि । संगहस्स एगे वा अणेगे वा अणुवउत्तो वा अणुवउत्ता वा दव्वाणुण्णा वा दव्वाणुण्णाओ वा सा एगा दव्वाणुण्णा । उज्जुसुअस्स एगे अणुवउत्ते आगमतो एगा दव्वाणुण्णा, पुहत्तं नेच्छइ । तिण्हं सदणयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थू ।

कम्हा ? जति जाणए अणुवउत्ते ण भवति । सेत्तं आगमतो दव्वाणुण्णा ॥

७. से किं तं नोआगमतो दव्वाणुण्णा ? नोआगमतो दव्वाणुण्णा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—जाणगसरीरदव्वाणुण्णा भवियसरीरदव्वाणुण्णा जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुण्णा ॥
८. से किं तं जाणगसरीरदव्वाणुण्णा ? जाणगसरीरदव्वाणुण्णा—‘अणुण्ण’ त्ति पदत्थाहिगारजाणगस्स जं सरीरं ववगयचुत्तचइयचत्तेहं जीवविप्पजडं सिज्जागयं वा संथारगयं वा निसीहियागयं वा सिद्धसिलातलगयं वा, अहो णं इमेणं सरीरसमुस्सएणं [जिणदिट्ठेणं भावेणं ?] ‘अणुण्ण’ त्ति पयं आघवियं पण्णवियं परुवियं दंसियं णिदंसियं उवदंसियं । जहा को दिट्ठंतो ? अयं घयकुंभे आसी, अयं महकुंभे आसी । सेत्तं जाणगसरीरदव्वाणुण्णा ॥
९. से किं तं भवियसरीरदव्वाणुण्णा ? भवियसरीरदव्वाणुण्णा—जे जीवे जोणोजम्मणिवक्खंते इमेणं चैव सरीरसमुस्सएणं आदत्तेणं जिणदिट्ठेणं भावेणं ‘अणुण्ण’ त्ति पयं सेयकाले सिक्खिस्सइ, न ताव सिक्खइ । जहा को दिट्ठंतो ? अयं घयकुंभे भविस्सति, अयं महकुंभे भविस्सति । सेत्तं भवियसरीरदव्वाणुण्णा ॥
१०. से किं तं जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुण्णा ? जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुण्णा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—लोइया कुप्पावयणिया लोउत्तरिया य ॥
११. से किं तं लोइया दव्वाणुण्णा ? लोइया दव्वाणुण्णा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सच्चित्ता अच्चित्ता मोसिया ॥

नैगमनय की अपेक्षा एक अनुपयुक्त (चित्त की प्रवृत्ति से शून्य) व्यक्ति आगमतः एक द्रव्यअनुज्ञा है, दो अनुपयुक्त व्यक्ति आगमतः दो द्रव्यअनुज्ञा हैं, तीन अनुपयुक्त व्यक्ति आगमतः तीन द्रव्यअनुज्ञा हैं । इस प्रकार जिनने अनुपयुक्त व्यक्ति हैं, नैगमनय की अपेक्षा उतने ही आगमतः द्रव्यअनुज्ञा हैं । इसी प्रकार व्यवहारनय की अपेक्षा भी जितने अनुपयुक्त व्यक्ति हैं उतने ही आगमतः द्रव्य अनुज्ञा हैं । संग्रहनय की अपेक्षा एक अनुपयुक्त व्यक्ति है या अनेक अनुपयुक्त व्यक्ति हैं आगमतः एक द्रव्यअनुज्ञा है अथवा अनेक द्रव्यअनुज्ञा हैं, वह एक द्रव्यअनुज्ञा है । ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा एक अनुपयुक्त व्यक्ति आगमतः एक द्रव्यअनुज्ञा है । भिन्नता उसे इष्ट नहीं । तीन शब्दनयों (शब्द, समभिरूढ और एवंबूत) की अपेक्षा अनुपयुक्त ज्ञाता अवस्तु (वास्तविक नहीं) है ।

क्योंकि यदि कोई ज्ञाता है तो वह अनुपयुक्त नहीं होता । वह आगमतः द्रव्यअनुज्ञा है ।

७. वह नोआगमतः द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? नोआगमतः द्रव्यअनुज्ञा के तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—ज्ञशरीर द्रव्यअनुज्ञा, भव्यशरीर द्रव्यअनुज्ञा, ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यअनुज्ञा ।

८. वह ज्ञशरीर द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? ज्ञशरीर द्रव्यअनुज्ञा—अनुज्ञा इस पद के अर्थाधिकार को जानने वाले व्यक्ति का जो शरीर अचेतन, प्राण से च्युत, किसी निमित्त में प्राणच्युत किया हुआ, अनशन द्वारा त्यक्त अथवा जीव-विप्रमुक्त है, उसे शय्या, बिछौने, शमशानभूमि या सिद्धशिलातल पर देखकर कोई कहे—आश्चर्य है इस पौद्गलिक शरीर ने (जिन द्वारा उपदिष्ट भाव के अनुसार ?) ‘अनुज्ञा’ इस पद का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया है । जैसे कोई दृष्टान्त है ? (आचार्य ने कहा—इसका दृष्टान्त यह है) यह घृतघट था, यह मधुघट था । वह ज्ञशरीर द्रव्यअनुज्ञा है ।

९. वह भव्यशरीर द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? भव्यशरीर द्रव्यअनुज्ञा—गर्भ की पूर्णवधि से निकला हुआ जो जीव इस प्राप्त पौद्गलिक शरीर से ‘अनुज्ञा’ इस पद को जिन द्वारा उपदिष्ट भाव के अनुसार भविष्य में सीखेगा, वर्तमान में नहीं सीखता है, तब तक वह भव्यशरीर द्रव्यअनुज्ञा है । जैसे कोई दृष्टान्त है ? (आचार्य ने कहा—इसका दृष्टान्त यह है) यह घृतघट होगा, यह मधुघट होगा । वह भव्यशरीर द्रव्यअनुज्ञा है ।

१०. वह ज्ञशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त-द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? ज्ञशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यअनुज्ञा के तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—लौकिक, कुप्रावचनिक और लोकोत्तरिक ।

११. वह लौकिक द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? लौकिक द्रव्यअनुज्ञा के तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सचित्त, अचित्त, मिश्र ।

१२. से किं तं सचित्ता दव्वाणुण्णा ? सचित्ता दव्वाणुण्णा—से जहाणामए राया इ वा जुवराया इ वा ईसरे इ वा तलवरे इ वा माडंबिए इ वा कोडुंबिए इ वा इब्भे इ वा सेट्टी इ वा सेणावई इ वा सत्थवाहे इ वा कस्सइ कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे आसं वा हत्थि वा उट्टं वा गोणं वा खरं वा घोडयं वा एलयं वा अयं वा दासं वा दासिं वा अणुजाणज्जा । सेत्तं सचित्ता दव्वाणुण्णा ।

१३. से किं तं अचित्ता दव्वाणुण्णा ? अचित्ता दव्वाणुण्णा—से जहाणामए राया इ वा जुवराया इ वा ईसरे इ वा तलवरे इ वा माडंबिए इ वा कोडुंबिए इ वा इब्भे इ वा सेट्टी इ वा सेणावई इ वा सत्थवाहे इ वा कस्सइ कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे आसणं वा सयणं वा छत्तं वा चामरं वा पडगं वा मउडं वा हिरण्णं वा सुवण्णं वा कंसं वा दूंसं वा मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल-रत्तरयणमादीयं संत-सार-साव-इज्जं अणुजाणज्जा । सेत्तं अचित्ता दव्वाणुण्णा ॥

१४. से किं तं मीसिया दव्वाणुण्णा ? मीसिया दव्वाणुण्णा—से जहाणामए राया इ वा जुवराया इ वा ईसरे इ वा तलवरे इ वा माडंबिए इ वा कोडुंबिए इ वा इब्भे इ वा सेट्टी इ वा सेणावई इ वा सत्थवाहे इ वा कस्सइ कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे हत्थि वा मुहंभंडगमंडियं, आसं वा थासग-चामरमंडियं, सकडगं दासं वा दासिं वा सव्वालंकारविभूसियं अणुजाणज्जा । सेत्तं मीसिया दव्वाणुण्णा । सेत्तं लोइया दव्वाणुण्णा ॥

१५. से किं तं कुप्पावयणिया दव्वाणुण्णा ? कुप्पावयणिया दव्वाणुण्णा ति विहा पण्णत्ता, तं जहा—सचित्ता अचित्ता मीसिया ॥

१६. से किं तं सचित्ता दव्वाणुण्णा ? सचित्ता दव्वाणुण्णा—से जहाणामए आयरिए इ वा उवज्भाए इ वा कस्सइ कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे आसं वा हत्थि वा उट्टं वा गोणं वा खरं वा घोडं वा अयं वा एलगं वा दासं वा दासिं वा अणुजाणज्जा । सेत्तं सचित्ता दव्वाणुण्णा ॥

१७. से किं तं अचित्ता दव्वाणुण्णा ? अचित्ता दव्वाणुण्णा—से जहाणामए आयरिए इ वा उवज्भाए इ वा कस्सइ कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे आसणं वा सयणं वा छत्तं वा चामरं वा पट्टं (पडगं ?) वा मउडं वा हिरण्णं वा सुवण्णं वा कंसं वा दूंसं वा मणि-मोत्तिय-

१२. वह सचित्त द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? सचित्त द्रव्यअनुज्ञा—जैसे कोई राजा, युवराज, तलवर (कोतवाल), मडम्बपति, कुटुम्बपति, इभ्य, सेठ, सेनापति अथवा सार्थवाह किसी पर किसी कारण से तुष्ट होने पर घोड़े, हाथी, ऊंट, बैल, गधे, घोटक (खच्चर), भेड़, बकरे, दास अथवा दासी के लिए अनुज्ञा दे । वह सचित्त द्रव्यअनुज्ञा है ।

१३. वह अचित्त द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? अचित्त द्रव्यअनुज्ञा—जैसे कोई राजा, युवराज, तलवर (कोतवाल), मडम्बपति, कुटुम्बपति, इभ्य, सेठ, सेनापति अथवा सार्थवाह किसी पर किसी कारण से तुष्ट होने पर आसन, शयन, छत्र, चामर, पताका, मुकुट, हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, दूष्य, मणि, मौक्तिक, शंख, शिला, प्रवाल, रत्तरत्न आदि तथा श्रेष्ठ सुगन्धित द्रव्य एवं स्वापतेय (दान, भोग आदि के लिए स्वाधीनता पूर्वक व्यय किए जाने वाले धन) की अनुज्ञा दे । वह अचित्त द्रव्यअनुज्ञा है ।

१४. वह मिश्र द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? मिश्र द्रव्यअनुज्ञा—जैसे कोई राजा, युवराज, तलवर (कोतवाल), मडम्बपति, कुटुम्बपति, इभ्य, सेठ, सेनापति अथवा सार्थवाह किसी पर किसी कारण से तुष्ट होने पर मुखभाण्ड (मुखालंकार) से मण्डित हाथी, स्थासक और चामर से मण्डित अश्व, कड़े सहित दास अथवा सब अलंकारों से विभूषित दासी के लिए अनुज्ञा दे । वह मिश्र द्रव्य अनुज्ञा है । वह लौकिक द्रव्यअनुज्ञा है ।

१५. वह कुप्रावचनिक द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? कुप्रावचनिक द्रव्यअनुज्ञा के तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सचित्त, अचित्त मिश्र ।

१६. वह सचित्त द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? सचित्त द्रव्यअनुज्ञा—जैसे कोई आचार्य अथवा उपाध्याय किसी पर किसी कारण से तुष्ट होने पर घोड़े, हाथी, ऊंट, बैल, गधे, घोटक (खच्चर), बकरे, भेड़, दास अथवा दासी के लिए अनुज्ञा दे । वह सचित्त द्रव्यअनुज्ञा है ।

१७. वह अचित्त द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? अचित्त द्रव्यअनुज्ञा—जैसे कोई आचार्य अथवा उपाध्याय किसी पर किसी कारण से तुष्ट होने पर आसन, शयन, छत्र, चामर, पट्ट (पताका?), मुकुट, हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, दूष्य, मणि, मौक्तिक, शंख, शिला, प्रवाल, रत्तरत्न आदि तथा श्रेष्ठ सुगन्धित द्रव्य एवं स्वापतेय (दान भोग आदि के लिए स्वाधीनतापूर्वक

संख-सिलप्पवाल-रत्तरयणमाईयं संत-सार-सावएज्जं
अणुजाणिज्जा । सेत्तं अचित्ता दव्वाणुण्णा ॥

१६. से किं तं मीसिया दव्वाणुण्णा ? मीसिया दव्वा-
णुण्णा—से जहाणामए आयरिए इ वा उवज्भाए इ
वा कस्सइ कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे हत्थि वा
मुहभंडगमंडियं, आसं वा थासगचामरमंडियं,
सकडगं दासं वा, दांसि वा सव्वालंकारविभूसियं
अणुजाणिज्जा । सेत्तं मीसिया दव्वाणुण्णा । सेत्तं
कुप्पावयणिया दव्वाणुण्णा ॥

१६. से किं तं लोउत्तरिया दव्वाणुण्णा ? लोउत्तरिया
दव्वाणुण्णा तिविहा पणत्ता, तं जहा—सचित्ता
अचित्ता मीसिया ॥

२०. से किं तं सचित्ता दव्वाणुण्णा ? सचित्ता दव्वा-
णुण्णा—से जहाणामए आयरिए इ वा उवज्भाए इ
वा थेरे इ वा पवत्ती इ वा गणी इ वा गणहरे इ वा
गणावच्छेयए इ वा सिस्सस्स वा सिस्सिणीए वा
कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे सीसं वा सिस्सिणि वा
अणुजाणेज्जा । सेत्तं सचित्ता दव्वाणुण्णा ॥

२१. से किं तं अचित्ता दव्वाणुण्णा ? अचित्ता दव्वा-
णुण्णा—से जहाणामए आयरिए इ वा उवज्भाए
इ वा थेरे इ वा पवत्ती इ वा गणी इ वा गणहरे इ
वा गणावच्छेयए इ वा सिस्सस्स वा सिस्सिणीए
वा कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे वत्थं वा पायं वा
पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा अणुजाणेज्जा ।
सेत्तं अचित्ता दव्वाणुण्णा ॥

२२. से किं तं मीसिया दव्वाणुण्णा ? मीसिया दव्वा-
णुण्णा—से जहाणामए आयरिए इ वा उवज्भाए इ
वा थेरे इ वा पवत्ती इ वा गणी इ वा गणहरे इ वा
गणावच्छेयए इ वा सिस्सस्स वा सिस्सिणीए वा
कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे सिस्सं वा सिस्सिणि वा
सभंड-मत्तोवगरणं अणुजाणेज्जा । सेत्तं मीसिया
दव्वाणुण्णा । सेत्तं लोउत्तरिया दव्वाणुण्णा । सेत्तं
जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुण्णा । सेत्तं
नोआगमतो दव्वाणुण्णा । सेत्तं दव्वाणुण्णा ॥

२३. से किं तं खेत्ताणुण्णा ? खेत्ताणुण्णा—जो णं जस्स
खेत्तं अणुजाणति, जत्तियं वा खेत्तं, जम्मि वा खेत्ते ।
सेत्तं खेत्ताणुण्णा ॥

२४. से किं तं कालाणुण्णा ? कालाणुण्णा—जो णं जस्स
कालं अणुजाणति, जत्तियं वा कालं, जम्मि वा काले

व्यय किए जाने वाले धन) की अनुज्ञा दे । वह अचित्त द्रव्यअनुज्ञा
है ।

१८. वह मिश्र द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? मिश्र द्रव्यअनुज्ञा—जैसे कोई
आचार्य अथवा उपाध्याय किसी पर किसी कारण से तुष्ट होने पर
मुखभाण्ड (मुखालंकार) से मण्डित हाथी, स्थासक और चामर से
मण्डित अश्व, कड़े सहित दास अथवा सब अलंकारों से विभूषित
दासी के लिए अनुज्ञा दे । वह मिश्र द्रव्यअनुज्ञा है । वह कुप्रावचनिक
द्रव्य अनुज्ञा है ।

१९. वह लोकोत्तरिक द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? लोकोत्तरिक द्रव्य-
अनुज्ञा के तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सचित्त, अचित्त, मिश्र ।

२०. वह सचित्त द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? सचित्त द्रव्यअनुज्ञा—जैसे
कोई आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, प्रवर्तक, गणी, गणधर अथवा
गणावच्छेदक शिष्य अथवा शिष्या पर किसी कारण से तुष्ट होने पर
शिष्य अथवा शिष्या की अनुज्ञा दे । वह सचित्त द्रव्यअनुज्ञा है ।

२१. वह अचित्त द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? अचित्त द्रव्यअनुज्ञा—जैसे
कोई आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, प्रवर्तक, गणी, गणधर अथवा
गणावच्छेदक शिष्य अथवा शिष्या पर किसी कारण से तुष्ट होने पर
वस्त्र, पात्र, प्रतिग्रह, कम्बल अथवा पादप्रोच्छन की अनुज्ञा दे । वह
अचित्त द्रव्यअनुज्ञा है ।

२२. वह मिश्र द्रव्यअनुज्ञा क्या है ? मिश्र द्रव्यअनुज्ञा—जैसे कोई
आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, प्रवर्तक, गणी, गणधर अथवा गणावच्छेदक
शिष्य अथवा शिष्या पर किसी कारण से तुष्ट होने पर भण्ड, अमत्र
तथा उपकरण सहित शिष्य अथवा शिष्या की अनुज्ञा दे । वह मिश्र
द्रव्यअनुज्ञा है । वह लोकोत्तरिक द्रव्यअनुज्ञा है । वह ज्ञशरीर-भव्य-
शरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यअनुज्ञा है । वह नोआगमतः द्रव्यअनुज्ञा है । वह
द्रव्यअनुज्ञा है ।

२३. वह क्षेत्रअनुज्ञा क्या है ? क्षेत्रअनुज्ञा—जो जिसको क्षेत्र की
अनुज्ञा देता है जितने क्षेत्र की अथवा जिस क्षेत्र में अनुज्ञा देता है ।
वह क्षेत्रअनुज्ञा है ।

२४. वह कालअनुज्ञा क्या है ? कालअनुज्ञा—जो जिसको काल
की अनुज्ञा देता है जितने काल की अथवा जिस काल में अनुज्ञा देता

अणुजाणति, तं जहा—तीतं वा पडुप्पणं वा अणा-
गतं वा वसंतं हेमंतं पाउसं वा अवत्थाणहेउं । सेत्तं
कालाणुणा ॥

२५. से किं तं भावाणुणा ? भावाणुणा तिविहा
पणत्ता, तं जहा—लोइया कुप्पावयणिया लोउ-
त्तरिया ॥

२६. से किं तं लोइया भावाणुणा ? लोइया भावाणुणा
—से जहाणामए राया इ वा जुवराया इ वा जाव
तुट्ठे समाणे कस्सइ कोहाइभावं अणुजाणिज्जा ।
सेत्तं लोइया भावाणुणा ।

२७. से किं तं कुप्पावयणिया भावाणुणा ? कुप्पावय-
णिया भावाणुणा—से जहाणामए केइ आयरिए इ
वा जाव कस्सइ कोहाइभावं अणुजाणिज्जा । सेत्तं
कुप्पावयणिया भावाणुणा ॥

२८. से किं तं लोउत्तरिया भावाणुणा ? लोउत्तरिया
भावाणुणा—से जहाणामए आयरिए इ वा जाव
कम्म कारणे तुट्ठे समाणे कालोच्चियनाणाइगुण-
जोगिणो विणीयस्स खमाइपहाणस्स सुसीलस्स
सिस्सस्स तिविहेणं तिगरणविसुद्धेणं भावेणं आयारं
वा सूयगडं वा ठाणं वा समवायं वा वियाहपण्णत्ति
वा नायाधम्मकहं वा उवासगदसाओ वा अंतगड-
दसाओ वा अणुत्तरोववाइयदसाओ वा पण्हावागरणं
वा विवागसुयं वा दिट्ठिवायं वा सव्वदव्व-गुण-
पज्जवेहिं सव्वाणुओगं वा अणुजाणिज्जा । सेत्तं
लोउत्तरिया भावाणुणा । सेत्तं भावाणुणा ।

गाहा—

किमणुण ? कस्स णुणा ? केवतिकालं पवत्तिया
णुणा ? ।

आदिकर पुरिमताले, पवत्तिया उसभसेणस्स ॥१॥

अणुणा उण्णमणी णमणी णामणी ठवणा पभवो
पभावण पयारो ।

तदुभय हिय मज्जाया, णाओ मग्गो य कप्पो य
॥२॥

संगह संवर णिज्जर ठिड्ढकरणं चेव जीववुड्ढिपयं ।
पदपवरं चेव तहा, बीसमणुणाए णामाई ॥३॥

है, जैसे—अतीत, प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) अथवा अनागत, अवस्थान के
लिए वसन्त, हेमन्त अथवा प्रावृट् । वह काल अनुज्ञा है ।

२५. वह भावअनुज्ञा क्या है ? भावअनुज्ञा के तीन प्रकार प्रज्ञप्त
हैं, जैसे—लौकिक, कुप्रावचनिक और लोकोत्तरिक ।

२६. वह लौकिक भावअनुज्ञा क्या है ? लौकिक भावअनुज्ञा—
जैसे कोई राजा अथवा युवराज.....यावत् तुष्ट होने पर
किसी को क्रोध आदि भाव की अनुज्ञा दे । वह लौकिक भावअनुज्ञा
है ।

२७. वह कुप्रावचनिक भावअनुज्ञा क्या है ? कुप्रावचनिक भाव-
अनुज्ञा—जैसे कोई आचार्य अथवा.....यावत् किसी को क्रोध
आदि भाव की अनुज्ञा दे । वह कुप्रावचनिक भावअनुज्ञा है ।

२८. वह लोकोत्तरिक भावअनुज्ञा क्या है ? लोकोत्तरिक भाव-
अनुज्ञा—जैसे कोई आचार्य अथवा.....यावत् किसी कारण से
तुष्ट होने पर कालोचित ज्ञान आदि गुणों से योग्य, त्रिनीत, क्षमा
आदि को प्रधानता देने वाले, सुशील शिष्य को त्रिविध और त्रिकरण
विशुद्ध भाव से आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति,
ज्ञातधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्न-
व्याकरण, विपाकश्रुत अथवा दृष्टिवाद को सर्वद्रव्य-गुण और पर्यायों
से अथवा सारे अनुयोग की अनुज्ञा दे । वह लोकोत्तरिक भावअनुज्ञा
है । वह भावअनुज्ञा है ।

गाथा—

१. अनुज्ञा क्या है ? अनुज्ञा किसके लिए है ? अनुज्ञा कितने
काल तक प्रवर्तित है ? आदिकर भगवान् ऋषभ ने ऋषभसेन के लिए
पुरिमताले में अनुज्ञा का प्रवर्तन किया ।

२,३. अनुज्ञा, उन्नमणी, नमनी, नामनी, स्थापना, प्रभव, प्रभावन,
प्रचार, तदुभय, हित, मर्यादा, ज्ञात, मार्ग, कल्प, संग्रह, संवर, निर्जरा,
स्थितिकरण, जीववृद्धिपद तथा पदप्रवर—ये अनुज्ञा के बीस नाम हैं ।

जोगनंदी-योगनन्दी

मूल पाठ

हिन्दी अनुवाद

१. नाणं पंचविहं पणत्तं, तं जहा—आभिणिबोहिय-
नाणं सुयनाणं ओहिनाणं मणपज्जवनाणं केवल-
नाणं ॥
२. तत्थ णं चत्तारि नाणाइं ठप्पाइं ठवणिज्जाइं णो
उद्दिस्संति णो समुद्दिस्संति णो अणुण्णविज्जंति,
सुयनाणस्य पुण उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो
य पवत्तइ ॥
३. जइ सुयनाणस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य
पवत्तइ, किं अंगपविट्ठस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा
अणुओगो य पवत्तइ ? किं अंगबाहिरस्स उद्देसो
समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ? गोयमा !
अंगपविट्ठस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो
य पवत्तइ, अंगबाहिरस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा
अणुओगो य पवत्तइ । इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च
अंगबाहिरस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य
पवत्तइ ॥
४. जइ पुण अंगबाहिरस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा
अणुओगो य पवत्तइ, किं कालियस्स उद्देसो समुद्देसो
अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ? उक्कालियस्स उद्देसो
समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ? गोयमा !
कालियस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य
पवत्तइ, उक्कालियस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा
अणुओगो य पवत्तइ । इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च
उक्कालियस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य
पवत्तइ ॥
५. जह उक्कालियस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणु-
ओगो य पवत्तइ, किं आवस्सगस्स उद्देसो समुद्देसो
अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ? आवस्सगवइरित्तस्स
उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ?
गोयमा ! आवस्सगस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा
अणुओगो य पवत्तइ, आवस्सगवइरित्तस्स वि उद्देसो
समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ॥

१. ज्ञान के पांच प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुत-
ज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान ।

२. उनमें चार ज्ञान (प्रतिपादन में अक्षम होने के कारण)
स्थाप्य (असंव्यवहार्य) हैं अतएव स्थापनीय हैं । उनके उद्देश, समुद्देश
और अनुज्ञा नहीं होती । श्रुतज्ञान का उद्देश समुद्देश, अनुज्ञा और
अनुयोग (व्याख्या) प्रवृत्त होता है ।

३. यदि श्रुतज्ञान का उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त
होता है तो क्या अंगप्रविष्ट श्रुत का उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और
अनुयोग प्रवृत्त होता है अथवा अंगबाह्य श्रुत का उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा
और अनुयोग प्रवृत्त होता है ?

गौतम ! अंगप्रविष्ट श्रुत का भी उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और
अनुयोग प्रवृत्त होता है, अंगबाह्य श्रुत का भी उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा
और अनुयोग प्रवृत्त होता है । प्रस्तुत प्रस्थापना की दृष्टि से अंगबाह्य
श्रुत का उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है ।

४. यदि अंगबाह्य श्रुत का उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग
प्रवृत्त होता है ? तो क्या कालिक श्रुत का उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और
अनुयोग प्रवृत्त होता है ? अथवा उत्कालिक श्रुत का उद्देश, समुद्देश,
अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है ?

गौतम ! कालिक श्रुत का भी उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और
अनुयोग प्रवृत्त होता है, उत्कालिक श्रुत का भी उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा
और अनुयोग प्रवृत्त होता है । प्रस्तुत प्रस्थापना की दृष्टि से उत्कालिक
श्रुत का उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है ।

५. यदि उत्कालिक श्रुत का उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग
प्रवृत्त होता है तो क्या आवश्यक श्रुत का उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और
अनुयोग प्रवृत्त होता है ? अथवा आवश्यकव्यतिरिक्त श्रुत का उद्देश,
समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है ?

गौतम ! आवश्यक श्रुत का भी उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और
अनुयोग प्रवृत्त होता है । आवश्यकव्यतिरिक्त श्रुत का भी उद्देश,
समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है ।

६. जइ आवस्सगस्स उद्देशो समुद्देशो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, किं १. सामाइयस्स २. चउवीसत्थयस्स ३. वंदणस्स ४. पडिक्कमणस्स ५. काउस्सग्गस्स ६. पचचक्खाणस्स ? सव्वेसिं एतेसिं उद्देशो समुद्देशो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ॥

७. जइ आवस्सगवइरित्तस्स उद्देशो समुद्देशो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, किं कालियसुयस्स उद्देशो समुद्देशो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ? उक्कालियसुयस्स उद्देशो समुद्देशो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ? कालियस्स वि उद्देशो समुद्देशो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, उक्कालियस्स वि उद्देशो समुद्देशो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ॥

८. जइ उक्कालियस्स उद्देशो समुद्देशो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, किं १. दसवेकालियस्स २. कप्पियाकप्पियस्स ३. चुल्लकप्पसुयस्स ४. महाकप्पसुयस्स ५. उववाइयसुयस्स ६. रायपसेणीयसुयस्स ७. जीवाभिगमस्स ८. पणवणाए ९. महापणवणाए १०. पभायप्पमायस्स ११. नंदीए १२. अणुओगदाराइं १३. देविदथयस्स १४. तंदुलवेयालियस्स १५. चंदाविज्जभयस्स १६. सूरपणत्तीए १७. पोरिसिंमंडलस्स १८. मंडलप्पवेसस्स १९. विज्जाचरणविणिच्छयस्स २०. गणिविज्जाए २१. संलेहणासुयस्स २२. विहारकप्पस्स २३. वीयरगसुयस्स २४. भाणविभत्तीए २५. मरणविभत्तीए २६. मरणविसोहीए २७. आयविभत्तीए २८. आयविसोहीए २९. चरणविसोहीए ३०. आउरपचक्खाणस्स ३१. महापचक्खाणस्स ? सव्वेसिं एतेसिं उद्देशो समुद्देशो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ॥

९. जइ कालियस्स उद्देशो समुद्देशो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, किं १. उत्तरज्जभयणाणं २. दसाणं ३. कप्पस्स ४. ववहारस्स ५. निसीहस्स ६. महानिसीहस्स ७. इसिंभासियाणं ८. जंबुद्वीवपणत्तीए ९. चंदपणत्तीए १०. दीवपणत्तीए ११. सागरपणत्तीए १२. खुड्डियाविमाणपविभत्तीए १३. महल्लियाविमाणपविभत्तीए १४. अंगचूलियाए १५. वग्गचूलियाए १६. वियहचूलियाए १७. अरुणोववायस्स १८. वरुणोववायस्स १९. गरुलोववायस्स २०. धरणोववायस्स २१. वेसमणोववायस्स २२. वेल्धरोववायस्स २३. देविदोववायस्स २४. उट्ठाणसुयस्स २५. समुट्ठाणसुयस्स २६. नागपरि-

६. यदि आवश्यक श्रुत का उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है तो क्या १. सामायिक २. चतुर्विंशतिस्तव ३. वंदना ४. प्रतिक्रमण ५. कायोत्सर्ग ६. प्रत्याख्यान का होता है ?

हां इन सबका उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है ?

७. यदि आवश्यकव्यतिरिक्त श्रुत का उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है तो क्या कालिक श्रुत का उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है ? अथवा उत्कालिक श्रुत का उद्देश समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है ?

कालिक श्रुत का भी उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है, उत्कालिक श्रुत का भी उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है ।

८. यदि उत्कालिक श्रुत का उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है तो क्या १. दशवैकालिक २. कल्पिकाकल्पिक ३. क्षुल्लककल्पश्रुत ४. महाकल्पश्रुत ५. औपपातिकश्रुत ६. राजप्रशनीय-श्रुत ८. जीवाभिगम ८. प्रज्ञापना ९. महाप्रज्ञापना १०. प्रमादाप्रमाद ११. नन्दी १२. अनुयोगद्वार १३. देवेन्द्रस्तव १४. तन्दुलवैचारिक १५. १५. चन्द्रकवेध्यक १६. सूरप्रज्ञप्ति १७. पौरुषीमण्डल १८. मण्डल-प्रवेश १९. विद्याचरणविनिश्चय २०. गणिविद्या २१. संखेलनाश्रुत २२. विहारकल्प २३. वीतरागश्रुत २४. ध्यानविभक्ति २५. मरण-विभक्ति २६. मरणविशोधि २७. आत्मविभक्ति २८. आत्मविशोधि २९. चरणविशोधि ३०. आतुरप्रत्याख्यान ३१. महाप्रत्याख्यान का होता है ?

हां इन सबका उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है ।

९. यदि कालिकश्रुत का उद्देश समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है तो क्या १. उत्तराध्ययन २. दशा ३. कल्प ४. व्यवहार ५. निशीथ ६. महानिशीथ ७. ऋषिभाषित ८. जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति ९. चन्द्रप्रज्ञप्ति १०. द्वीपप्रज्ञप्ति ११. सागरप्रज्ञप्ति १२. क्षुल्लिकाविमान-प्रविभक्ति १३. महतीविमानप्रविभक्ति १४. अंगचूलिका १५. वर्ग-चूलिका १६. व्याख्याचूलिका १७. अरुणोपपात १८. वरुणोपपात १९. गरुडोपपात २०, धरणोपपात २१. वैश्रमणोपपात २२. वेल्धरोपपात २३. देवेन्द्रोपपात २४. उत्थानश्रुत २५. समुत्थानश्रुत २६. नाग-पर्यापनिका २७-३१. निरयावलिका, कल्पिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, (वृष्णिका) वृष्णिदशा । ३२. आशीविषभावना ३३. दृष्टिविषभावना ३४. चारणभावना ३५. स्वप्नभावना ३६. महा-स्वप्नभावना ३७. तेजोग्निनिसर्ग का होता है ?

यावणियाणं २७-३१. निरयावलियाणं कप्पियाणं
कप्पवडिसियाणं पुप्फियाणं पुप्फचूलियाणं (वण्ह-
याणं) वण्हदसाणं ३२. आसीविसभावणाणं ३३.
दिट्ठिविसभावणाणं ३४. चारणभावणाणं ३५.
सुमिणभावणाणं ३६. महासुमिणभावणाणं
३७. तेयग्गिनिसग्गाणं ? सर्व्वेसि पि एएसि उद्देसो
समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ॥

१०. जइ अंगपविट्ठस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो
य पवत्तइ, किं १. आयारस्स २. सूयगडस्स
३. ठाणस्स ४. समवायस्स ५. वियाहपण्णत्तीए
६. नायाधम्मकहाणं ७. उवासगदसाणं ८. अंतगड-
दसाणं ९. अणुत्तरोववाइयदसाणं १०. पण्हावागर-
णाणं ११. विवागसुयस्स १२. दिट्ठिवायस्स ?
सर्व्वेसि पि एएसि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो
य पवत्तइ । इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च इमस्स साहुस्स
इमाए साहुणीए (अमुगस्स सुयस्स) उद्देसो समुद्देसो
अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ । खमासमणाणं हत्थेणं
सुत्तणं अत्थेणं तदुभएणं उद्देसामि समुद्देसामि
अणुजाणामि ॥

हां इन सबका उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है ।

१०. यदि अंगप्रविष्ट श्रुत का उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है तो क्या १. आचार २. सूत्रकृत ३. स्थान ४. समवाय ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति ६. ज्ञातधर्मकथा ७. उपासकदशा ८. अन्तकृतदशा ९. अनुत्तरोपपातिकदशा १०. प्रश्नव्याकरण ११. विपाक-श्रुत १२. दृष्टिवाद का होता है ?

हां इन सबका उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है । प्रस्तुत प्रस्थापना की दृष्टि से इस साधु के लिए, इस साध्वी के लिए (अमुक श्रुत का) उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होता है । क्षमाश्रमणों के हाथ से सूत्र, अर्थ और तदुभय से उद्देश करता हूं, समुद्देश करता हूं, अनुज्ञा करता हूं ।

परिशिष्ट : ३ कथा

१. औत्पत्तिकी बुद्धि के दृष्टांत
२. 'भरतनट' के अन्तर्वर्ती दृष्टांत
३. वैनयिकी बुद्धि के दृष्टांत
४. कर्मजा बुद्धि के दृष्टांत
५. पारिणामिकी बुद्धि के दृष्टांत

प्रस्तुत आगम में वर्णित बुद्धि चतुष्टय की कथाओं के संकेत आवश्यकनिर्युक्ति में भी मिलते हैं। कथा का विस्तार आवश्यक-चूर्ण, आवश्यकनिर्युक्ति की मलयगिरीया वृत्ति और नन्दी की मलयगिरीया वृत्ति में मिलता है।

कथाओं का स्रोत—१. आवश्यक चूर्ण, २. आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्रीया वृत्ति, ३. आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, ४. नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, ५. नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम्, ६. आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका।

हमने अधिकांश कथाएं नन्दी की मलयगिरीया वृत्ति से ली हैं। कहीं-कहीं आवश्यकचूर्ण आदि व्याख्या ग्रन्थों से भी ली हैं। आवश्यकचूर्ण, आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्रीया वृत्ति, आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति और आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका की कथाएं प्राकृत में लिखी हुई हैं। नन्दी की मलयगिरीया वृत्ति की कथाएं संस्कृत में लिखी गई हैं। नन्दी की हारिभद्रीया वृत्ति पर मलधारी श्रीचन्द्रसूरि ने टिप्पणक लिखे हैं। उनमें उद्धृत कथाएं भी प्राकृत में हैं। कथावस्तु भी सबकी समान नहीं है। उसमें कुछ-कुछ अन्तर मिलता है। कुछ कथाओं को परिवर्तित करके प्रस्तुत किया गया है।

आख्यानक मणिकोश का प्रारम्भ बुद्धि चतुष्टय से किया गया है।^१ उसमें लिखित कथाएं प्राकृत पद्यों में हैं।

१. औत्पत्तिकी बुद्धि के दृष्टांत

१ क- भरत दृष्टान्त^१

उज्जयिनी नगरी के पास नटों का एक गांव था। वहां भरत नामक नट रहता था। उसके पुत्र का नाम रोहक था। उसकी माता का देहांत हो गया। उसकी सौतेली मां उसे दुःख देती थी। उसने अपनी सौतेली मां से कहा—तुम मुझे दुःख देती हो, यह अच्छा नहीं है। उसने रोहक की बात पर ध्यान नहीं दिया।

एक दिन रात के समय रोहक अपने पिता के पास मकान की छत पर सोया था। उसकी मां मकान में सो रही थी। अचानक रोहक चिल्लाया—पिताजी! देखिए कौन भाग रहा है? पिता हड़बड़ा कर उठा और बोला—कहां है? रोहक बोला—वह अभी-अभी इधर से भागा है। भरत को अपनी पत्नी पर संदेह हो गया। वह उसे कुलटा समझने लगा, फलतः पत्नी के प्रति उसका अनुराग शिथिल हो गया। स्त्री ने सोचा—यह सब रोहक का काम है अतः उसे प्रसन्न करना पड़ेगा। उसने प्रेमपूर्वक रोहक को अपने पास बिठाया और भविष्य में उसके साथ अच्छा व्यवहार करने का वादा किया। रोहक बोला—मां चिंता मत करो मैं पिताजी की अप्रसन्नता दूर कर दूंगा।

एक दिन के अन्तराल से रात को रोहक सोया-सोया फिर चिल्लाया—पिताजी! देखिए, देखिए, वह कौन जा रहा है? पिता उठा और हाथ में तलवार लेकर आया और बोला—बेटा! कहां है वह पुरुष? रोहक ने अपनी प्रतिच्छाया की ओर संकेत किया। पिता ने पूछा—बेटा! उस दिन जो पुरुष आया था वह भी ऐसा ही था क्या? रोहक ने कहा—हां यही था। भरत को अपने कृत्य पर पश्चात्ताप हुआ। उस दिन के बाद वह अपनी पत्नी में अधिक अनुराग रखने लगा।

१. आख्यानक मणिकोश, पृ. ३ से १७

२. (क) आवश्यक चूर्ण पृ. ५४४

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २७७

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५१७

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १४५, १४६

(च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३३

(छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १७८

मेरे अप्रिय व्यवहार से नाराज होकर मेरी मां मुझे विष न दे दे ऐसा सोचकर वह प्रतिदिन पिता के साथ भोजन करने लगा। एक बार वह अपने पिता के साथ उज्जयिनी गया। नगरी बहुत सुन्दर थी। रोहक के मन पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा। नगर निरीक्षण के बाद दोनों बाहर आ गए। पिता प्रयोजनवश पुनः शहर में गया। रोहक ने सिप्रा नदी के तट पर बालू में राज-महल तथा कोट-किले सहित समग्र उज्जयिनी का रेखांकन कर दिया। संयोगवश राजा उधर से निकला। रोहक बोला ओ राजपुत्र ! उधर मत आओ। यह राजमहल है, यहां बिना आज्ञा प्रवेश निषिद्ध है। राजा विस्मित होकर घोड़े से नीचे उतरा। धूल में अंकित नगरी का चित्र देखकर राजा बालक पर बहुत खुश हुआ। राजा को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि वह बालक पहली बार उज्जयिनी में आया है। राजा उसकी प्रज्ञा को देखकर आश्चर्यचकित हो गया। उसने रोहक से पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ? किस ग्राम में रहते हो ?

रोहक—मेरा नाम रोहक है। यहां पाशववर्ती नटों के गांव में रहता हूं।

वातचीत के दौरान भरत आया। पिता पुत्र दोनों अपने गांव चले गए। राजा अपने राजप्रासाद में आ गया।

१ ख- शिला दृष्टांत^१

उज्जयिनी के राजा ने रोहक की परीक्षा के लिए गांव के प्रधानों को आदेश दिया—तुम्हारे गांव के बाहर जो बड़ी शिला है उसे हटाए बिना ऐसा मण्डप बनाओ जिसमें राजा बैठ सके।

गांववासी इस आज्ञा को सुनकर बहुत चिन्तित हुए। समस्या को सुलभाने के लिए उन्होंने सभा बुलाई। भरत नट भी उसमें सम्मिलित हुआ। रोहक अपने पिता को बुलाने के लिए वहां गया। देखा—सब लोग चिन्तातुर हैं। उसने पूछा—आप लोग इतने चिन्तित क्यों हैं ? उन्होंने राजा के आदेश की बात कही। उसे सुनकर रोहक बोला—सर्वप्रथम शिला के चारों ओर की जमीन की खुदाई करो। उसके चारों कोनों पर यथास्थान चार खंभे लगा दो फिर बीच की मिट्टी खोद डालो। इसके बाद चारों तरफ दीवार बनाकर उसे लिपाई आदि के द्वारा सुन्दर बना दो। मण्डप तैयार हो जाएगा।

रोहक के परामर्श के अनुसार कार्य प्रारम्भ हुआ। कुछ ही दिनों में मण्डप बनकर तैयार हो गया। राजा को इसकी सूचना दी गई। राजा ने पूछा—यह सब कैसे हुआ, किसकी सूझबूझ से हुआ ? उन्होंने सारा वृत्तांत बता दिया। परीक्षा का प्रथम बिन्दु सम्पन्न हो गया।

२. पणित दृष्टांत^२

एक ग्रामीण ककड़ियों से भरी गाड़ी लेकर शहर में पहुंचा। शहर के द्वार पर उसे एक धूर्त नागरिक मिला। उसने कहा—क्या इन ककड़ियों को एक आदमी खा सकता है ? ग्रामीण हंसकर बोला—ऐसा संभव नहीं है। धूर्त ने कहा—यदि मैं अकेला तुम्हारी सब ककड़ियां खा जाऊं तो तुम मुझे क्या दोगे ? भोला भाला ग्रामीण बोला—ऐसा करके दिखा दो तो मैं तुम्हें इतना बड़ा लड्डु दूंगा कि इस द्वार से न निकल सके। कुछ लोगों की साक्षी से शर्त निश्चित हो गई।

धूर्त ने सारी ककड़ियां थोड़ी थोड़ी खाकर छोड़ दी और शर्त के अनुसार अपना पुरस्कार मांगने लगा। ग्रामीण स्तब्ध रह गया। वह घबराता हुआ बोला—अभी तक तो मेरी सारी ककड़ियां पड़ी हैं। इन्हें खाने के बाद इनाम मिलेगा। धूर्त ग्रामीण को बाजार में ले गया और बोला—अब इन्हें बेचो। ग्राहक आए और ककड़ियां देखकर बोले—ये तो खाई हुई हैं। अपनी धूर्तता के कारण धूर्त ने ग्रामीण और साक्षियों के सामने यह प्रमाणित कर दिया कि उसने सारी ककड़ियां खा डालीं।

ग्रामीण खिन्न हो गया। उसने धूर्त से अपना पीछा छुड़ाने के लिए एक रुपया देना चाहा पर धूर्त नहीं माना आखिर वह सौ रुपयों तक पहुंच गया, किंतु धूर्त को उससे भी अधिक पाने की आशा थी। अतः वह अपनी बात पर अड़ा रहा कि मुझे तो लड्डु ही लेना है। ग्रामीण ने सुलह के लिए थोड़ा समय मांगा। वह किसी अन्य धूर्त नागरिक से मिला और अपनी समस्या उसके सामने रखी। धूर्त धूर्तता से ही दब सकता है अतः उसने ग्रामीण को एक सीधा किन्तु धूर्तता पूर्ण उपाय बता दिया।

अपने सलाहकार के निर्देशानुसार ग्रामीण ने एक लड्डु खरीदा। उसे दरवाजे के पास लाकर रख दिया और बोला—

१. (क) आवश्यक चूणि, पृ. ५४५

- (ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २७७
- (ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५१७
- (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १४५, १४६
- (च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३३
- (छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, पृ. १७८

२. (क) आवश्यक चूणि, पृ. ५४६

- (ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २७८
- (ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५१९
- (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १४९
- (च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३४
- (छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, पृ. १७८

लड्डु ! तुम इस द्वार से निकल जाओ । ग्रामीण द्वारा बार-बार कहने पर भी लड्डु ज्यों का त्यों पड़ा रहा । ग्रामीण ने साक्षियों के सामने सिद्ध कर दिया कि शर्त के अनुसार नागरिक को यही लड्डु मिलना चाहिए । यह नागरिक की औत्पत्तिकी बुद्धि का चमत्कार है ।

३. वृक्ष दृष्टान्त^१

कुछ यात्रियों ने जंगल में एक आम का पेड़ देखा जो फलों से लदा हुआ था । आम देखकर उनके मुंह में पानी भर आया । वृक्ष पर कुछ बंदर बैठे थे । यात्रियों ने एक उपाय सोचा और वे बंदरों पर पत्थर फेंकने लगे । बंदर कुपित हुए और आम तोड़कर यात्रियों पर बरसाने लगे । यात्रियों को सफलता मिल गई ।

४. मुद्रिका दृष्टान्त^२

राजगृह नगर में महाराज श्रेणिक राज्य करते थे । एक बार उन्होंने एक खाली कुएं में अंगूठी डाल दी और घोषणा कराई कि जो व्यक्ति बाहर खड़ा अंगूठी निकाल देगा उसे पुरस्कृत किया जाएगा । अनेक व्यक्ति अपना-अपना भाग्य परखने के लिए उत्सुक थे किन्तु किसी को कोई उपाय नहीं सूझा ।

घटना स्थल पर अभयकुमार पहुंचा । उसने पास में पड़ा हुआ गोबर उठाया और अंगूठी पर गिरा दिया अंगूठी उससे चिपक गई । उस पर अग्नि डाली, वह सूख गया । फिर कुएं को पानी से भर दिया । गोबर में लिपटी हुई अंगूठी पानी पर तैर आई । अभयकुमार ने अंगूठी निकालकर राजपुरुषों को दे दी । राजा को स्थिति से अवगत किया गया । अभयकुमार की विलक्षण प्रतिभा देखकर राजा ने उसको प्रधानमन्त्री के पद पर नियुक्त कर दिया ।

५. वस्त्रखण्ड दृष्टान्त^३

तालाब पर दो व्यक्ति एक साथ स्नान करने गए । उन्होंने कपड़े उतार कर किनारे पर रख दिए । एक व्यक्ति के वस्त्रों में बहुमूल्य रेशमी चदर थी और दूसरे के पास साधारण कम्बल । कम्बल का स्वामी स्नान करके पहले बाहर आया और रेशमी चदर लेकर वहां से रवाना हो गया । चदर का स्वामी दौड़कर बाहर आया और उसे पुकारने लगा किन्तु उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा । चदरवाले ने उसका पीछा किया और गांव तक पहुंचते-पहुंचते वह चदर चुरानेवाले के पास पहुंच गया । उसने चदर देने से इन्कार कर दिया । चदर के स्वामी ने राजकुल में शिकायत की । न्यायाधीश ने बुद्धिबल से काम लिया । उसने दोनों के बालों में कंधी करवाई । जो व्यक्ति कम्बल का स्वामी था उसके बालों में ऊन के तार निकले । न्यायाधीश ने उसके आधार पर चदर के स्वामी को उसकी चदर लौटा दी ।

६. गिरगिट दृष्टान्त^४

एक व्यक्ति शौच के लिए गया । असावधानी से वह एक बिल पर बैठ गया । अचानक एक गिरगिट उसके गुदा भाग का स्पर्श करके बिल में घुस गया । उस व्यक्ति के मन में सन्देह हो गया कि गिरगिट मेरे पेट में चला गया । इस भ्रम के कारण वह सुस्त रहने लगा । कुछ दिनों में ही उसका शरीर कृश हो गया ।

एक दिन वह वैद्य के पास पहुंचा और आदि से अन्त तक सारी स्थिति बता दी । वैद्य ने उसका सब प्रकार से परीक्षण

१. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५४६

(ख) आवश्यक निर्युक्त हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २७८

(ग) आवश्यक निर्युक्त मलयगिरीया वृत्ति, प. ५१९

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १५०

(च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम् पृ. १३४

(छ) आवश्यकनिर्युक्त दीपिका, प. १७८

२. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५४६, ५४७

(ख) आवश्यक निर्युक्त हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २७८, २७९

(ग) आवश्यक निर्युक्त मलयगिरीया वृत्ति, प. ५१९

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १५०, १५१

(च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम् पृ. १३४

(छ) आवश्यक निर्युक्त दीपिका, प. १७८

३. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५४७

(ख) आवश्यक निर्युक्त हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २७९

(ग) आवश्यक निर्युक्त मलयगिरीया वृत्ति, प. ५१९, ५२०

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १५१, १५२

(च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम् पृ. १३४

(छ) आवश्यकनिर्युक्त दीपिका, प. १७८

४. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५४७

(ख) आवश्यक निर्युक्त हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २७९

(ग) आवश्यक निर्युक्त मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२०

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १५२

(च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३५

(छ) आवश्यकनिर्युक्त दीपिका, प. १७८

किया, पर कोई बीमारी समझ में नहीं आई। उसने बुद्धि कौशल से काम लिया। वह गम्भीर होकर बोला—सेठजी ! आपको मूल्यवान् औषधि दूंगा, उसके लिए सी रुपये देने होंगे। रोगी तैयार हो गया। वैद्य ने उसको विरेचक औषधि दी और लाख के रस से लिपटा हुआ गिरगिट बनाकर घड़े में डाल दिया। उस घड़े में शौच करने का निर्देश दिया। शौच निवृत्ति के बाद पात्र लेकर उपस्थित होने के लिए कहा। उस पात्र में पड़े हुए लाख के गिरगिट को वैद्य ने रोगी को दिखाया और कहा—आपके पेट से गिरगिट निकल गया है, अब आप पूर्णतः स्वस्थ हैं। वह व्यक्ति इस घटना के बाद स्वयं को स्वस्थ अनुभव करने लगा और थोड़े ही दिनों में उसका शरीर पहले की भांति पुष्ट हो गया।

७. काग दृष्टांत^१

वेनातट नगर में एक बौद्ध धर्मावलम्बी ने जैन अनुयायी से पूछा—तुम्हारे अरिहन्त देव सर्वज्ञ हैं। तुम उनके भक्त हो। मैं एक छोटी सी बात पूछता हूँ, बताओ इस शहर में कौए कितने हैं ? इस शठतापूर्ण प्रश्न के उत्तर में उसने अपने बुद्धिबल को काम में लेकर कहा—इस शहर में साठ हजार कौए हैं। बौद्ध ने प्रतिप्रश्न किया—इस संख्या से कम या अधिक निकले तो ? जैन ने उत्तर दिया—कम हों तो जान लेना कि कौए यात्रा पर गए हैं और अधिक हों तो जान लेना कि कौए मेहमान बनकर आए हैं। इस बुद्धिमत्ता पूर्ण उत्तर से प्रश्नकर्ता चुप हो गया।

८. उत्सर्ग दृष्टांत^१

एक ब्राह्मण अपनी सुन्दर स्त्री के साथ यात्रा कर रहा था। मार्ग में उन्हें एक धूर्त मिला वह स्त्री पर मोहित हो गया। ब्राह्मणी भी अपने पति से अप्रसन्न थी अतः धूर्त के बहकावे में आकर उसके साथ जाने के लिए तैयार हो गई। ब्राह्मण और धूर्त में स्त्री को लेकर विवाद हो गया। वे दोनों न्यायालय में पहुंचे। न्यायाधीश ने दोनों की बात सुनी और उन्हें पूछा—तुम्हारी स्त्री ने खाना क्या खाया था ? ब्राह्मण ने कहा—मैंने और मेरी स्त्री ने तिल के लड्डु खाए थे। धूर्त ने कुछ और ही बताया। न्यायाधीश ने स्त्री को जुलाब दिया। जुलाब लगने पर उसके मल की परीक्षा कराई। उसमें तिल निकले। न्यायाधीश ने उस स्त्री को ब्राह्मण के साथ कर दिया और धूर्त व्यक्ति को दण्डित किया।

९. हाथी दृष्टांत^१

वसन्तपुर का राजा एक बुद्धिमान मन्त्री की खोज में था। परीक्षा के लिए उसने चौराहे पर एक हाथी खड़ा करवा दिया और उसका वजन करने का आदेश दिया। एक बुद्धिमान व्यक्ति ने इस आदेश को स्वीकार किया। वह हाथी को एक बड़े तालाब पर ले गया और वहां उसे नौका पर चढ़ाकर नौका को गहरे पानी में ले गया। हाथी के भार से नौका जहां तक पानी में डूबी वहां एक निशान बना दिया। फिर हाथी को उतार कर नौका में उतने पत्थर भरे, जिससे वह रेखांकित स्थान तक पानी में डूब सके। इसके बाद उन पत्थरों का वजन करके बता दिया गया कि हाथी का वजन इतना है। राजा ने उस व्यक्ति को अपना प्रधानमन्त्री बना लिया।

१०. भांड दृष्टांत^१

एक भांड राजा के बहुत मुंहलगा था। राजा उसके सामने रानी की प्रशंसा करता था। भांड ने कहा—महाराज ! रानी बहुत अच्छी है, पर तब तक ही है जब तक उसका स्वार्थ सधता है। राजा ने इसका खंडन किया। भांड बोला—आप रानी की

१. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५४७, ५४८

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २७९

(घ) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२०

(ग) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १५२

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३५

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १७८, १७९

२. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५४८

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २७९, २८०

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२०

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १५२, १५३

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३५

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १७९

३. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५४८

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८०

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२०

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १५३

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम् पृ. १३५

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १७९

४. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५४८

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति पृ. २८०

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२०

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १५३

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३५

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १७९

परीक्षा ले सकते हैं। परीक्षा का उपाय बताते हुए उसने कहा—आप रानी से कहिए कि मैं दूसरा विवाह करना चाहता हूँ और नई रानी को पटरानी बनाने की सोच रहा हूँ। फिर देखिए क्या होता है ?

राजा ने ऐसा ही किया। रानी बोली—नाथ ! आप चाहें तो दूसरा विवाह कर सकते हैं, पर राज्य का उत्तराधिकारी परम्परा के अनुसार मेरा पुत्र होगा। यह सुनकर राजा को हंसी आ गई। रानी ने कारण पूछा। राजा ने टालना चाहा, पर रानी के अति आग्रह पर सही बात बतानी पड़ी। रानी ने कुपित होकर भांड को निर्वासित होने का आदेश दे दिया।

रानी का आदेश सुनकर भांड बहुत घबराया। आखिर उसे एक उपाय सूझा। वह जूतों की एक गठरी बांधकर रानी के महल के सामने से गुजरा। सिर पर गठरी देख रानी ने पूछा—यह क्या ले जा रहे हो ? भांड ने उत्तर दिया—यह जूतों की गठरी है। इन्हें पहनकर मैं जहां तक जा सकूंगा, आपका यश फैलाता रहूंगा। रानी भांड का अभिप्राय समझ गई। बदनामी के भय से उसने निर्वासन का आदेश वापिस ले लिया।

११. लाख दृष्टांत^१

एक बार किसी बालक के नाक में लाख से बनी हुई एक गोली फंस गई। उसे निकालने का बहुत प्रयास किया, पर वह नहीं निकली। आखिर उसका पिता एक सुनार के पास ले गया। सुनार ने लोहे की शलाका गर्म कर उसके अग्रभाग को सावधानीपूर्वक बच्चे की नाक में डाला। शलाका के ताप से गोली पिघल कर बाहर आ गई।

१२. स्तम्भ दृष्टांत^१

किसी राजा ने तालाब में एक खंभा गडवाया और घोषणा करवाई कि जो व्यक्ति किनारे पर बैठा-बैठा इसे बांध देगा उसे पुरस्कृत किया जायेगा। यह घोषणा सुनकर एक व्यक्ति ने तालाब के किनारे एक लोहे का खंभा गाड़ा और उसमें रस्सी बांध दी। फिर वह उस रस्सी को लेकर तालाब के किनारे चारों ओर घूमने लगा। ऐसा करने से स्तम्भ रस्सी के बीच में आ गया। फिर उससे अपना लोहे का खंभा उखाड़कर उस रस्सी को खींच लिया। इस प्रकार खंभा रस्सी से बंध गया। राजा ने उसे पुरस्कृत कर अपना प्रधानमन्त्री बना लिया।

१३. क्षुल्लक दृष्टांत

एक परिव्राजिका थी। उसने राजा के समक्ष यह प्रतिज्ञा की कि मैं कुशलकर्मा हूँ। कोई व्यक्ति कुछ भी करे वह सब मैं कर सकती हूँ। राजा ने इस प्रतिज्ञा की घोषणा कर दी। क्षुल्लक ने उसे सुना और उसने कहा—इस घोषणा का मैं प्रतिवाद करता हूँ। मैं करूँ, वैसे परिव्राजिका नहीं कर सकती। राज्यसभा में सब उपस्थित हो गए। राजा का संकेत पाकर क्षुल्लक खड़ा हुआ। उसने मूँछ और दाढ़ी के केशों का लुञ्चन किया और परिव्राजिका से कहा—तुम भी ऐसा करो। परिव्राजिका पराजित हो गई।

उपर्युक्त कहानी नन्दी मलयगिरीया वृत्ति का परिवर्तित रूप है।

१४. मार्ग दृष्टांत^१

पति-पत्नी किसी यात्रा पर जा रहे थे। मार्ग में पत्नी शौच निवृत्ति के लिए रथ से नीचे उतरी। वहाँ एक विद्याधरी पुरुष के रूप पर आसक्त हो गई। उसने उसकी पत्नी का रूप बनाया और रथ में आकर बैठ गई। स्त्री वहाँ पहुंची। तब तक रथ चल पड़ा। स्त्री चिल्लाने लगी तो विद्याधरी ने कहा—लगता है कोई व्यन्तरी मेरा रूप बनाकर हमें धोखा देना चाहती है, अतः आप रथ

१. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५४८

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८०

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२०

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १५३

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३५

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १७९

२. (क) आवश्यक चूर्ण पृ. ५४८

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८०

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२०

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १५३, १५४

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३५

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १७९

३. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५४९

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८०

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२१

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १५४

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम् पृ. १३५

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १७९

जल्दी चलाइए। रथ जल्दी चला पर स्त्री ने पीछा नहीं छोड़ा। आखिर दोनों स्त्रियां लड़ती हुई एक गांव में पहुंची। वहां न्यायालय में जाकर उन्होंने न्याय मांगा।

न्यायाधीश ने पुरुष से पूछा, पर वह कोई निर्णय नहीं दे सका। न्यायाधीश कुछ सोचकर बोला—मैं इस पुरुष को बीच में खड़ा करता हूं। तुम दोनों में से जो पहले इसका स्पर्श करेगी, वही इसकी स्त्री होगी। विद्याधरी स्त्री ने वैक्रिय शक्ति से अपना हाथ लम्बा किया और उस पुरुष का स्पर्श कर लिया। न्यायाधीश ने उसके मायाजाल का रहस्योद्घाटन कर उसे बाहर निकलवा दिया और उस पुरुष को उसकी पत्नी मिल गई।

१५. स्त्री दृष्टांत^१

मूलदेव और पुण्डरीक नामक दो मित्र थे। एक दिन वे दोनों कहीं जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने एक पुरुष के साथ जाती हुई स्त्री को देखा। स्त्री के सौन्दर्य पर पुण्डरीक मुग्ध हो गया। उसने मूलदेव से कहा—मित्र ! इस स्त्री से मिला दो, अन्यथा मैं जीवित नहीं रह सकूंगा। मूलदेव अपने मित्र के साथ उन दोनों पति-पत्नी से आगे निकल गया। वहां जंगल की झाड़ियों में पुण्डरीक को बिठा दिया और स्वयं मार्ग में खड़ा हो गया। पति-पत्नी उधर से निकले तो उसने पुरुष से कहा—इस जंगल में मेरी पत्नी प्रसव वेदना से छटपटा रही है। कृपा कर आप अपनी स्त्री को एक बार वहां भेज दें। उस पुरुष ने अपनी स्त्री को जाने के लिए कह दिया। स्त्री बड़ी चतुर थी। उसने दूर से ही देखा—वन निकुंज में कोई पुरुष उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। वह वहां से तत्काल वापिस लौट आई और उसने मूलदेव से कहा—आपकी स्त्री ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया है, आप वहां जल्दी पहुंच जाइए।

१६. पति दृष्टांत^२

किसी गांव में दो भाई थे। उन दोनों के एक ही स्त्री थी। लोग कहते थे कि स्त्री का दोनों भाइयों के प्रति एक समान स्नेह है। यह बात राजा तक पहुंची। राजा ने अपने मन्त्री से कहा। मन्त्री इससे सहमत नहीं हुआ। राजा ने परीक्षण करने के लिए कहा। मन्त्री ने दोनों भाइयों को दो भिन्न दिशाओं—पूर्व और पश्चिम के गांवों में भेजने और उसी शाम को पुनः लौट आने का आदेश दिया। स्त्री ने अपने छोटे पति को पश्चिम की ओर भेजा तथा बड़े को पूर्व की ओर। स्त्री के इस निर्णय का मूल रहस्य खोजकर मन्त्री ने कहा—स्त्री का अपने छोटे पति पर अधिक प्रेम है। क्योंकि उसने उसको पश्चिम दिशा में भेजा है। पूर्व दिशा में जाने वाले के जाते और आते समय सूर्य सामने रहता है और पश्चिम में जाने वाले के पीठ पीछे। मन्त्री के निर्णय पर राजा को विश्वास नहीं हुआ क्योंकि दोनों दिशाओं में एक-एक को भेजना जरूरी था।

मन्त्री ने एक दूसरा प्रयोग किया। कुछ समय बाद उसने पूर्ववत् आदेश दिया और दोनों व्यक्तियों के लौटने के समय दो व्यक्तियों ने एक साथ उसे सूचित किया कि तुम्हारे पति मार्ग में बीमार हो गये हैं। उस स्त्री ने अपने बड़े की अस्वस्थता के बारे में बताने वाले से कहा—उन्हें प्रायः ऐसा ही जाता है, अतः घबराने की बात नहीं है। अमुक दवा दे देना, कुछ समय में ठीक हो जाएंगे।

अपने छोटे पति की देखभाल के लिए वह स्वयं जाने के लिए तैयार हुई। उसने कहा—वे बहुत कोमल हैं, उनको कुछ हो गया तो वे घबरा जाएंगे। तुम चिकित्सक को लेकर आओ, तब तक मैं वहां पहुंच रही हूं। इस बार राजा को मन्त्री के निर्णय पर विश्वास हो गया।

१७. पुत्र दृष्टांत^३

एक श्रेष्ठी के दो स्त्रियां थीं। एक स्त्री के पुत्र था और दूसरी वन्ध्या थी। दोनों का बच्चे के प्रति अच्छा स्नेह था। एक बार सेठ अपने परिवार के साथ विदेश गया। वहां उसकी मृत्यु हो गई। पुत्र और सम्पत्ति को लेकर दोनों स्त्रियों में झगड़ा हो

१. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५४९

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८०

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५२१

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १५४,

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३५

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, पृ. १७९

२. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५४९

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८०

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५२१

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १५४, १५५

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३५, १३६

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, पृ. १७९

३. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५४९

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८०, २८१

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५२१

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १५५

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम् पृ. १३६

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, पृ. १७९

गया। न्याय के लिए वे न्यायालय में गईं। न्यायाधीश ने कुछ समय चिन्तन करके अपना निर्णय दिया—सेठ की सारी सम्पत्ति को दो भागों में विभाजित कर दो तथा इस बच्चे के भी दो टुकड़े कर डालो। दोनों को अपना-अपना हिस्सा मिल जाएगा।

इस निर्णय का सौतेली मां पर कोई असर नहीं हुआ पर सच्ची माता का दिल कांप उठा। उसने सोचा—बच्चा उसके पास रहेगा तो आंखों से मैं भी देख सकूंगी पर इसके दो टुकड़े कर देने पर क्या होगा? वह विलाप करती हुई बोली—ऐसा मत करिए। पुत्र और घर की मालकिन इसे बना दीजिए, मैं जैसे-तैसे अपना गुजारा कर लूंगी। मां की व्यथा ने रहस्य का उद्घाटन कर दिया। न्यायाधीश ने संपत्ति और पुत्र पर उसका अधिकार घोषित कर दिया।

१८. मधुसिक्थ दृष्टांत [मधु मक्खियों का छाता]

पति पत्नी में कलह होता रहता था। एक दिन दोनों मधुसिक्थ (छत्ता) के पास गए। पति बोला—शहद में कितनी मिठास है। पत्नी बोली—तुम मिठास के हेतु को नहीं जानती। सब मक्खियां रानी के आदेश पर चलती हैं। इसलिए शहद में मिठास है। तुम भी मेरी बात मानकर चलो, तुम्हारे जीवन में भी मिठास आ जाएगी। पति ने उसकी बात स्वीकार कर ली। कलह समाप्त हो गया। यह पत्नी की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

उपर्युक्त कहानी नन्दी मलयगिरीया वृत्ति में उपलब्ध कथा का परिवर्तित रूप है।

१९. मुद्रिका दृष्टांत^१

किसी नगर में एक पुरोहितजी जनता के बहुत विश्वास पात्र थे। कोई भी व्यक्ति दूर देश की यात्रा पर जाता तो अपनी बहुमूल्य चीजें पुरोहितजी के पास रख देता था। एक बार किसी एक द्रमक ने दूर देश जाते समय एक हजार मोहरों की नौली उसके पास रख दी। बहुत समय बाद वह वापिस आया। पुरोहितजी के पास पहुंचकर उसने अपनी थैली मांगी। पुरोहित उसके लिए अपरिचित बन गया और थैली की बात से अनजान होकर उसे बुरा-भला कहने लगा। आगन्तुक स्तब्ध रह गया। वह अपने भाग्य को कोसने लगा ?

एक दिन मन्त्री से उसकी भेंट हो गई। रोते-रोते उसने अपना दुःख कह सुनाया। प्रधानमन्त्री को उस पर दया आ गई। मन्त्री ने सारा घटनाचक्र राजा के सामने रखा। राजा ने पुरोहित को बुलाया और कहा—पुरोहितजी! उस बेचारे की धरोहर उसे सौंप दो। पुरोहित ने अस्वीकार करते हुए कहा कि मेरे पास उसका कुछ भी नहीं है। राजा मौन हो गया। पुरोहित अपने घर चला गया। राजा ने उस व्यक्ति को एकांत में बुलाकर पूछा कि सच बताओ क्या तुमने एक हजार स्वर्ण मुद्राएं पुरोहित के पास रखी थीं। उसने राजा को दिन, मुहूर्त, स्थान, पार्श्ववर्ती मनुष्य की पूरी जानकारी दी। राजा को विश्वास हो गया।

एक दिन राजा ने पुरोहित के साथ क्रीड़ा करने का नाटक रचा। परस्पर नामांकित मुद्रा का विनिमय कर लिया। राजा ने अपने कर्मचारी को वह नाममुद्रा दी और कहा कि मैं जो कह रहा हूँ पुरोहित को उसका पता नहीं चलना चाहिए। तुम पुरोहित के घर जाओ और उसकी पत्नी से कहो—मुझे पुरोहित ने तुम्हारे पास भेजा है यदि विश्वास न हों तो उसकी नामांकित मुद्रिका देख लो, जो प्रमाण है। उस द्रमक की हजार मुद्रा वाली नौली मुझे दो। उस कर्मचारी ने जैसा राजा का निर्देश था, वैसा ही किया। पुरोहित की पत्नी ने वह नामांकित मुद्रा देखकर विश्वास किया और उस कर्मचारी को हजार मुद्रा वाली नौली दे दी। कर्मचारी ने उसे राजा को सौंप दिया। राजा ने बहुत सारी नौलियां मंगाईं। उनके बीच द्रमक वाली नौली रख दी। द्रमक को बुलाया और पुरोहित को पास में बिठाया। द्रमक अपनी नौली देखकर प्रमुदित हो गया। नेत्र विकस्वर हो गये। चेतना जागृत हो गई। वह हर्ष से उछलकर बोला—राजन्! यह मेरी नौली है। राजा ने उसे वह नौली दे दी और पुरोहितजी की जिह्वा कटवा दी। यह राजा की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

२०. अङ्क दृष्टांत^२

नगर के एक प्रतिष्ठित सेठ के पास एक आदमी ने हजार रूपयों की थैली धरोहर रूप में रखी। सेठ के मन में पाप आ गया। उसने थैली के निचले हिस्से में छेदकर खरे रूपये निकाल लिए खोटे रूपए भर दिए और नौली की सिलाई कर दी।

१. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५०

- (ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८१
- (ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२१, ५२२
- (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १५६
- (च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३६
- (छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १७९

२. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५०

- (ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८१
- (ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२२
- (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १५६
- (च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति, टिप्पणकम्, पृ. १३६
- (छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १७९

कुछ दिनों बाद वह व्यक्ति परदेश से लौटा। अपनी थैली घर ले जाकर उसने देखा—रुपए खोटे थे। उसने सेठ से उस सम्बन्ध में पूछा, पर सेठ इन्कार हो गया। वह व्यक्ति राजकुल में गया। न्यायाधीश ने पूछा—तुम्हारी नौली में कितने रुपये थे। उसने कहा—हजार। न्यायाधीश ने हजार रुपये गिनकर उस नौली में डालने शुरू किए, नौली भर गई। सब रुपये उसमें नहीं समा सके। नीचे का भाग कुछ संकड़ा हो गया था। न्यायाधीश ने निर्णय दिया कि धरोहर को अपने पास रखने वाले ने अनैतिक व्यवहार किया है। इसलिए उसे हजार रुपए पुनः देने पड़े।

२१. नाणक दृष्टांत^१ [रुपयों की नौली]

किसी सेठ के पास मोहरों से भरी थैली रखकर एक व्यक्ति परदेश गया। पुनः आकर अपनी नौली संभाली तो उसमें नकली मोहरें निकलीं। सेठ से पूछताछ की गई, पर उसने अपनी गलती स्वीकार नहीं की। आखिर न्यायालय तक बात पहुंची। न्यायाधीश ने उस व्यक्ति से थैली रखने का समय पूछा। उसने सम्बत् और दिन बता दिए। थैली में जो मोहरें निकलीं वे उस समय से बाद में बनी हुई थी। थैली पुरानी थी और मोहरें नई। सेठ को न्यायाधीश ने अपराधी घोषित किया और धरोहर के स्वामी को असली मोहरें दिलवा दीं।

२२. भिक्षु दृष्टांत^२

एक संन्यासी के पास किसी व्यक्ति ने धरोहर रूप में मोहरों की नौली रखी। कुछ वर्षों बाद उसने अपनी थैली मांगी तो उसने नहीं दी। आज दूंगा, कल दूंगा, इस प्रकार वह ठगता रहा। संन्यासी की ठगवृत्ति को पहचान कर उसने कुछ जुआरियों को नौली निकालने का काम सौंपा। उन्होंने स्वीकार किया और कहा—हम तुम्हारी नौली ला देंगे। वे जुआरी गेरुए वस्त्र पहनकर सोने की पादुकाएं लेकर संन्यासी के पास पहुंचे और बोले—हम तीर्थ यात्रा पर जाना चाहते हैं। आप सत्यनिष्ठ होने के कारण परम विश्वसनीय हैं। इसलिए स्वर्ण पादुकाएं आपके पास रहेंगी। ठीक उसी समय वह संकेतित पुरुष उनके पास आ गया और उसने अपनी धरोहर मांगी। संन्यासी ने सोचा यदि मैं इसकी नौली नहीं लौटाऊंगा तो सोने की इन पादुकाओं से वंचित रह जाऊंगा। इसलिए सोने की पादुकाओं के लोभ में आकर उसने उसकी धरोहर उसे लौटा दी। जुआरी भी कोई बहाना बनाकर अपनी स्वर्ण पादुकाएं लेकर चले गये।

२३. बालक निधान दृष्टांत^३

एक गांव में दो मित्र थे। एक मित्र सरल था पर दूसरा कपटी। एक बार वे दोनों ग्रामांतर से आ रहे थे। मार्ग में उन्हें खजाना मिला। कपटी मित्र ने कहा—आज नक्षत्र ठीक नहीं है, हम इसे कल ले जायेंगे। रात्रि के समय कपटी मित्र ने वहां से खजाना निकाल लिया और वहां कोयले रख दिये। दूसरे दिन दोनों मित्र वहां आए और कोयले देखकर निराश हो गये। कपटी मित्र छाती पीट-पीट कर रोने लगा और बोला—यह देव कैसा है, आंखें दीं और फिर छीन ली। पहले निधान दिखाया अब अंगारे दिखा रहा है। वह बार-बार मित्र के मुंह को देखता रहा। दूसरे मित्र ने जान लिया कि इसने खजाना हड़प लिया है। उसने खजाने को हड़पने की बात को चेहरे पर नहीं आने दिया। समझाने के लिये बोला खिन्न मत बनो। क्या खिन्न होने से खजाना लौट आयेगा। दोनों अपने-अपने घर चले गये।

कपटी मित्र से बदला लेने के लिये वह प्रयत्नशील हो गया। उसने अपने मित्र की मिट्टी की मूर्ति बनवाई और दो बंदर पाले। मूर्ति के हाथों, कंधों तथा गोद में खाने की चीजें रखकर वह वहां भूखे बंदरों को छोड़ने लगा। बंदर प्रतिमा पर चढ़कर उछलकूद मचाते और चीजें खाने लग जाते।

१. (क) आवश्यक चूर्ण पृ. ५५०

(ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८१

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५२२

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १५६, १५७

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३६

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, पृ. १७९

२. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५०, ५५१

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८१

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५२२

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १५७

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३६

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, पृ. १७९

३. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५१

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८१

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५२२

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १५७

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३६

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, पृ. १७९, १८०

एक दिन उसने अपने मित्र के दो बच्चों को खाने के लिये बुलाया और किसी गुप्त स्थान में उन्हें छिपा दिया । बालक लौटकर नहीं आये तो कपटी मित्र उन्हें बुलाने के लिये गया । उसके मित्र ने वहाँ से प्रतिमा हटवा दी और बंदरों को छोड़ दिया । बंदर उछल-कूद मचाते हुए आए और उसे प्रतिमा समझकर उस पर चढ़ गए । सरल मित्र ने कपटी मित्र से कहा—मित्र ये दोनों तुम्हारे पुत्र हैं । इससे कपटी को बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने कहा—तुम दखो ये कितना आत्मीय संबंध प्रदर्शित करते हैं । तब कपटी मित्र ने पूछा—क्या मनुष्य कभी बंदर बन सकता है ? इस प्रश्न के उत्तर में दूसरे मित्र ने कहा—मित्र ! भाग्य की बात है दुर्भाग्य वश गड़ा हुआ खजाना कोयला बन गया है तो बच्चे बंदर क्यों नहीं बन सकते । कपटी मित्र ने सोचा—लगता है इसको घटना का पता लग गया है । यदि मैं कलह करूंगा तो यह मुझे राजकुल में ले जायेगा । इसका आधा हिस्सा लौटाये बिना यह मेरे पुत्रों को नहीं लौटाएगा । विवश होकर उसने वस्तु स्थिति बता दी । उसे आधा हिस्सा दे दिया । सरल मित्र ने दोनों पुत्र उसको सौंप दिये ।

२४. शिक्षा दृष्टांत^१

एक व्यक्ति धनुर्वेद की विद्या में दक्ष था । उसने कुछ धनिक पुत्रों को धनुर्वेद की शिक्षा दी । उनके पिता आदि को इसका पता चला तो उन्होंने सोचा कुमारों ने इनको बहुत ज्यादा धन दिया है । यह शिक्षक यहाँ से जायेगा उस समय इसे मारकर धन वापस ले लेंगे । शिक्षक को इस योजना का पता लग गया । उसने अपने और अपने धन की रक्षा के लिये उपाय सोचा । उसने अपने ग्रामवासी बंधुजनों को अपनी योजना बता दी और कहा—अमुक दिन मैं गोबर के उपले नदी में फेंकूंगा, आप उन्हें लेकर सुरक्षित रखना । उन्होंने उसको स्वीकृति दे दी । इधर शिक्षक ने समग्र धन को गोबर में डालकर उपले बना दिये और सुखा लिया । उसने धनिक पुत्रों से कहा हमारे कुल की एक विधि है । हम तिथि पर्व के दिन स्नान कर मन्त्रोच्चार के साथ उपलों को नदी में डालते हैं । उन्होंने कहा जैसी आपकी इच्छा । निश्चित दिन की रात्रि में वह धनिक पुत्रों के साथ नदी पर गया, स्नान किया और मन्त्रोच्चार के साथ उपले नदी में डाल दिये । बंधुजन उन्हें लेकर अपने गांव चले गए । शिक्षक अपने घर लौट आया । कुछ दिन बीतने के बाद वह अपने गांव जाने के लिए विदा हुआ । धनिक पुत्रों और पितृजनों को बुलाकर कहा अब मैं अपने गांव जा रहा हूँ । मेरे पास इन कपड़ों के सिवाय कुछ नहीं है आप देखलें । उनको आकिञ्चन्य देखा और मारने की बात समाप्त हो गई ।

२५. अर्थशास्त्र दृष्टांत^२

एक वणिक के दो पत्नियां थीं । एक पुत्रवती और दूसरी वन्ध्या । वह सौतेली मां उसका बहुत लाड-प्यार करती थी । पालन-पोषण करती थी । पुत्र दोनों को ही अपनी मां मान रहा था, दोनों में कोई भेद नहीं कर रहा था । वह वणिक अपनी पत्नी और पुत्र को लेकर देशांतर चला गया । सुमतिनाथ की जन्मभूमि में चला गया । वहाँ कुछ दिनों के बाद वणिक की मृत्यु हो गई । दोनों स्त्रियों में कलह उत्पन्न हुआ । एक ने कहा यह पुत्र मेरा है इसलिए मैं गृहस्वामिनी हूँ, दूसरी ने भी वैसा ही कहा । न्याय के लिए राजकुल पहुंचे । वहाँ भी कुछ निपटारा नहीं हुआ । सुमति तीर्थंकर की मां मंगलादेवी ने कहा इनका न्याय मैं करूंगी । राजा ने स्वीकृति दे दी । महारानी ने उन दोनों स्त्रियों को बुलाकर कहा—‘कुछ समय बाद मेरी कोख से पुत्र उत्पन्न होगा वह कुछ बड़ा होकर इस अशोक वृक्ष के नीचे बैठकर तुम्हारा न्याय करेगा । इतने समय तक तुम दोनों इस बच्चे को खिलाओ, पिलाओ, इसका पालन पोषण करो । वन्ध्या ने सोचा कोई बात नहीं इतना समय तो मिला फिर जो होगा, वह देखा जाएगा । वह प्रसन्न हो गई । उसने खुश होकर महारानी के निर्देश को स्वीकार कर लिया । दूसरे पुत्र की माता उदास हो गई । महारानी ने वन्ध्या से कहा इसकी उदासी बता रही है कि पुत्र की असली मां यह है । यह गृहस्वामिनी होगी, पुत्र इसके साथ रहेगा ।

२६. इच्छा दृष्टांत^३

किसी शहर में एक धनाढ्य सेठ था । वह लोगों को ब्याज पर रुपये देता था । अचानक उसका देहांत हो गया । सेठानी

१. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५१

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८१, २८२

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५२२

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १५८

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३६

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, पृ. १८०

२. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५१

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८२

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५२२, ५२३

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १५८, १५९

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३६

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, पृ. १८०

३. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५२

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८२

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५२३

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १५९

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३७

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, पृ. १८०

ब्याज पर दिए रूपए वसूल नहीं कर सकती थी। उसने पति के मित्र का सहयोग चाहा। मित्र ने कहा—कुछ हिस्सा मुझे भी मिलना चाहिए। सेठानी ने कहा—जो तुम चाहो, वह मुझे दे देना।

सेठ के मित्र ने थोड़े ही समय में पूरा रूपया वसूल कर लिया और थोड़ा सा हिस्सा सेठानी को देने लगा। सेठानी न्यायालय में पहुंची। न्यायाधीश ने उस व्यक्ति को बुलाकर पूछा—क्या शर्त हुई थी? वह बोला—सेठानी ने मुझे कहा कि जो तुम चाहो वह मुझे देना। न्यायाधीश ने वसूल किए गए सारे रूपए मंगवाए और उनको दो भागों में बांटा। एक भाग छोटा था, दूसरा बड़ा फिर उसको पूछा—तुम कौन सा भाग चाहते हो? उसने बड़े भाग की ओर संकेत किया। न्यायाधीश ने वह भाग सेठानी को देते हुए कहा—जो तुम चाहते हो, वह उसे मिलेगा। क्योंकि तुम्हारी शर्त यही है।

२७. शत सहस्र दृष्टान्त^१

एक परिव्राजक था। उसकी विलक्षण स्मृति थी। वह एक बार सुनी हुई बात को याद रख लेता था। उसे अपनी स्मृति पर गर्व था। उसके पास एक सोने का पात्र था। उसने घोषणा करवाई कि जो मुझे अश्रुतपूर्व सुनाएगा उसे मैं यह पात्र दे दूंगा। उसकी घोषणा सुन अनेक व्यक्ति आए पर परिव्राजक ने सबको परास्त कर दिया क्योंकि वह हर बात ज्यों कि त्यों सुना देता था।

एक सिद्ध पुत्र ने कहा—मैं नई बात सुनाऊंगा। वे दोनों राजा के पास गए। जनता को साक्षी कर सिद्धपुत्र बोला—तुम्हारे पिताजी ने मेरे पिताजी से एक लाख रूपए लिए थे। यह बात तुम्हें याद हो तो लाख रुपये दो अन्यथा तुम्हारा स्वर्ण पात्र दो। परिव्राजक स्तब्ध रह गया। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उसने वह स्वर्ण पात्र उसको दे दिया।

२. 'भरतनट' के अन्तर्वर्ती दृष्टान्त

१. मेष दृष्टान्त^१

रोहक की बुद्धि का परीक्षण करने के लिए राजा ने गांव वालों के पास एक मेंढा भेजा और यह आज्ञा दी कि पन्द्रह दिन बाद इसे लौटाना है। ध्यान रहे इसका वजन न घटे, न बढ़े।

ग्रामवासी चिन्तातुर हो गए। रोहक की बुद्धि पर उन्हें विश्वास हो गया था इसलिए उन्होंने उसको बुलाकर सारी स्थिति बता दी। रोहक ने चिन्तन कर कहा—इसे खाने के लिए पर्याप्त चारा दो और इसको भेड़िये के पिजरे के पास बांध दो। गांव वालों ने पन्द्रह दिन बाद मेंढा लौटा दिया। राजा ने वजन किया पर कोई अन्तर नहीं आया।

राजा—मेंढे का वजन क्यों नहीं घटा?

ग्रामवासी—खूब खिलाया, इसलिए वजन नहीं घटा।

राजा—खूब खिलाया, फिर वजन क्यों नहीं बढ़ा?

ग्रामवासी—इसके सामने भेड़िये का पिजरा था, इसलिए वजन नहीं बढ़ा।

राजा—यह किसकी सूझबूझ है?

ग्रामवासी—रोहक की।

२. कुक्कुट दृष्टान्त^१

राजा ने एक मुर्गा गांव वालों के पास भेजा और आज्ञा दी कि दूसरे मुर्गों के बिना ही इसे लड़ना सिखाओ, जब वह लड़ाकू बन जाए तो लौटा देना। बात रोहक के पास पहुंची। उसने एक बड़ा दर्पण मंगवाया। उसे साफ कर मुर्गों के सामने रख दिया। मुर्गों ने दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखा। उसे अपना प्रतिपक्षी समझा, लड़ने लगा। थोड़े ही दिनों में मुर्गा लड़ाकू बन गया। राजा रोहक की सूझबूझ से बहुत प्रभावित हुआ।

१. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५५२

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २८२

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५२३

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १५९

(च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३७

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, पृ. १८०

२. (क) आवश्यक चूर्ण, पृष्ठ ५४५

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २७७, २७८

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५१७

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १४६, १४७

(च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३३

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, पृ. १७८

३. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५४५

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २७८

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५१७

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १४७

(च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३३

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, पृ. १७८

३. तिल का दृष्टान्त^१

एक बार राजा ने तिलों की कुछ गाड़ियां नटों के गांव में भेजी और तिलों की संख्या बताने का आदेश दिया। गांववालों के समक्ष समस्या हो गई कि इतने तिलों की गिनती कैसे की जाए? उन्होंने रोहक को बुलाया। उससे समाधान प्राप्त कर वे राजा के पास गए और बोले—स्वामिन् ! हम ग्रामीण लोग गणित नहीं जानते फिर भी सामान्य ज्ञान के आधार पर इतना बता सकते हैं कि आकाश में जितने तारे हैं उतने ही तिल हैं। आप किसी गणितज्ञ राजपुरुष द्वारा तिलों और तारों की संख्या करवा लीजिए। यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ।

मलयगिरि द्वारा स्वीकृत पाठ में तिल का उल्लेख नहीं है इसलिए यह मलयगिरि वृत्ति में निर्दिष्ट कथाओं में अनुपलब्ध है। हस्तलिखित आदर्शों में तिल पाठ मिलता है। आवश्यक निर्युक्ति में वह पाठ उपलब्ध है। आवश्यक चूर्ण और वृत्ति में वह व्याख्यात है। हारिभद्रिया वृत्ति के टिप्पणक में तिल की कथा का उल्लेख संक्षेप में किया गया है और वह प्रस्तुत कथा से भिन्न है।

तिलसमं तेल्लं दायव्वं ति तिला अद्वाएण मिया।

४. बालुका दृष्टान्त^१

एक बार राजा ने ग्रामवासी नटों को आदेश दिया—तुम्हारे गांव के चारों ओर अत्यन्त रमणीय बालू रेत है। उसकी कुछ मोटी रस्सियां बनाकर शीघ्र भेजिए। राजा का आदेश प्राप्त कर सभी ग्रामवासी एकत्र हुए। रोहक को बुलाया गया—रोहक ने गांव वालों को समझा दिया। वे राजा के पास पहुंचकर बोले—स्वामिन् ! हम तो नट हैं। हम नाचना जानते हैं, पर रस्सी बनाना नहीं जानते। आपका आदेश हम अवश्य पालन करेंगे। आपके राज्य में बहुत सी प्राचीन रस्सियां होंगी। कृपाकर आप हमें नमूने के तौर पर एक बालू की रस्सी दे दीजिए। उसे देखकर हम दूसरी रस्सियां बनाकर आप तक पहुंचा देंगे। रोहक की औत्पत्तिकी बुद्धि से समाधान प्राप्त कर राजा ने उन्हें आदेश से मुक्त कर दिया।

५. हाथी दृष्टान्त^१

एक बार राजा ने एक बूढ़ा, रोगग्रस्त एवं मरणासन्न हाथी भेजा और ग्रामवासियों को आदेश दिया—हाथी की स्थिति से मुझे प्रतिदिन अवगत कराना, पर उसकी मृत्यु की सूचना कभी मत देना। सारे ग्रामवासी मिले। उन्होंने रोहक को बुलाया। रोहक ने कहा—अभी हाथी को चारा दो। फिर जो होगा, देखेंगे। ग्रामवासियों ने चारा दे दिया। रात्रि में हाथी की मृत्यु हो गई। गांववासी घबरा गए। उन्होंने रोहक से समस्या का समाधान पूछा। उसने उपाय बता दिया। ग्रामवासी राजा के पास जाकर बोले—स्वामिन् ! आज हाथी न उठता है, न बैठता है, न खाता है, न पीता है और न श्वास लेता है और तो क्या, वह कोई चेष्टा भी नहीं करता। राजा ने पूछा—तो क्या वह मर गया है? 'स्वामिन् ! ऐसा तो आप ही कह सकते हैं, हम नहीं।' राजा मौन हो गया।

६. कूप दृष्टान्त^१

राजा ने आदेश पत्र भेजा—तुम्हारे गांव में एक कुंआ है। उसका जल बहुत मीठा है। उसे यहां ले आओ। यह आदेश प्राप्त कर ग्राम के सब मुखिया इकट्ठे हुए और उन्होंने रोहक से पूछा। उसने युक्ति सुझाई। वह युक्तिपत्र लेकर दूत राजा के पास

१. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५४५
- (ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रिया वृत्ति, पृ. २७८
- (ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५१७
- (घ) नन्दी हारिभद्रिया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३३
- (च) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १७८
२. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५४५
- (ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रिया वृत्ति, पृ. २७८
- (ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५१७
- (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १४७
- (च) नन्दी हारिभद्रिया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३३
- (छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १७८

३. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५४५
- (ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्रिया वृत्ति, पृ. २७८
- (ग) आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५१७, ५१८
- (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १४७
- (च) नन्दी हारिभद्रिया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३३
- (छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १७८
४. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५४५
- (ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्रिया वृत्ति, पृ. २७८
- (ग) आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५१८
- (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १४७, १४८
- (च) नन्दी हारिभद्रिया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३३
- (छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १७८

पहुंचा। उसमें लिखा हुआ था—स्वामिन् ! ग्रामीण लोग स्वभाव से ही डरपोक होते हैं। हमारा कुंआ भी डरपोक है। वह अपने सजातीय भाई को छोड़कर किसी पर विश्वास नहीं करता। इसलिए आप शहर के किसी कुंए को भेजने की कृपा करें जिससे वह विश्वस्त होकर आपके पास आ जाए। यह पढ़कर राजा अवाक् रह गया।

७. वनखण्ड दृष्टान्त^१

एक दिन राजा ने ग्राम प्रधानों को आदेश दिया—गांव की पूर्व दिशा में जो वनखण्ड हैं, उसे पश्चिम में कर दो। ग्राम-प्रधानों ने समस्या का समाधान प्राप्त करने के लिए रोहक को बुलाया। रोहक ने सुझाव दिया कि गांव के लोग उस वनखण्ड के पूर्व में जाकर अपने मकान बनवा ले। ग्रामीण लोगों ने वैसा ही किया। राजपुरुषों ने राजा को सूचित किया कि वनखण्ड पश्चिम में हो गया है। रोहक परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया।

८. पायस दृष्टान्त^२

राजा ने एक बार कहा—अग्नि जलाए बिना खीर पकाओ। ग्रामवासियों ने मिलकर रोहक से परामर्श किया। उसने कहा—चावलों को पानी में भिगोओ। सूर्य की किरणों से तपे हुए उपले और पलाल की उष्मा पर चावल और दूध से भरी हुई हंडिया को रखो। वैसा ही किया गया। खीर तैयार हो गई। राजा को निवेदन किया। वह अत्यन्त विस्मित हुआ।

९. अजिका दृष्टान्त^३

एक बार राजा ने आदेश दिया—जिस बालक के प्रज्ञातिशय से आप लोगों ने हमारे सारे आदेशों का सम्यक् रूप से पालन किया, उसे यहाँ अवश्य लाएं। पर वह न शुक्लपक्ष में आए, न कृष्णपक्ष में आए। न रात्रि में न दिन में, न धूप में, न छाया में, न आकाश मार्ग से, न धरती पर पांव रखकर, न मार्ग से, न उन्मार्ग से, न स्नान करके और न बिना स्नान किए आए।

राजा की आज्ञा पाकर रोहक ने उस प्रकार की योजना बनाई और व्यवस्था की।

गले तक स्नान किया।

समय चुना अमावस्या और प्रतिपदा के संधि का, सन्ध्या का।

चालनी को छत बनाकर सिर पर रखा।

मेंढे पर बैठ गया।

गाड़ी के पहिए का मध्यवर्ती मार्ग चुना।

राजा, देवता और गुरु के दर्शन खाली हाथ नहीं करना चाहिए। इस लोकश्रुति को जानकर उसने अपने हाथ में एक मिट्टी का ढेला ले लिया।

राजा के पास पहुंचकर उसने प्रणाम किया। मिट्टी का ढेला भेंट कर दिया। राजा ने पूछा—यह क्या है? रोहक बोला—आप पृथ्वीपति हैं। इसलिए मैं उपहारस्वरूप पृथ्वी लाया हूँ। प्रथम दर्शन में उनके मंगलवचन को सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। रोहक के साथ आए हुए ग्रामवासियों को भेजकर रोहक को अपने पास रख लिया।

राजा ने रोहक को अपने पास सुलाया। एक प्रहर बीत जाने पर राजा ने पूछा—रोहक तू जाग रहा है या सो रहा है?

रोहक—जाग रहा हूँ।

राजा—क्या सोच रहा है?

रोहक—देव ! मैं सोच रहा हूँ कि बकरी के पेट में मिंगनियां गोल कैसे हो जाती हैं?

राजा ने कहा—तुमने अच्छा विमर्श किया। बताओ उसका क्या उत्तर खोजा?

रोहक—बकरी के पेट में संवर्तक नामक वायु होती है उससे मिंगनी गोल हो जाती है।

१,२. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५४५

(ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २७८

(ग) आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५१८

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १४८

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३३

(छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १७८

३. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५४५

(ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २७८

(ग) आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५१८

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १४८

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति, टिप्पणकम्, पृ. १३३, १३४

(छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १७८

१०. पत्र का दृष्टान्त^१

दूसरे प्रहर में राजा जागा और रोहक से पूछा—तू जाग रहा है या सो रहा है ?

रोहक—जाग रहा हूँ ।

राजा ने पूछा—क्या सोच रहा है ?

रोहक—सोच रहा हूँ कि पीपल के पत्ते का दण्ड बड़ा होता है या उसकी शिखा (अग्रभाग) ?

राजा—तुम्हारा क्या निर्णय है ?

रोहक—जब तक अग्रभाग नहीं सूखता, तब तक दोनों समान होते हैं ।

११. गिलहरी का दृष्टान्त^२

तीसरे प्रहर में राजा जागा और रोहक से पूछा—तू जाग रहा है या सो रहा है ?

रोहक—जाग रहा हूँ ।

राजा—क्या सोच रहा है ?

रोहक—गिलहरी के शरीर पर सफेद धारियां कितनी होती हैं और काली धारियां कितनी होती हैं ?

राजा के पूछने पर उसने कहा—जितनी सफेद धारियां होती हैं उतनी ही काली धारियां होती हैं ।

दूसरी बार फिर पूछा—क्या सोच रहे हो ?

रोहक—सोच रहा हूँ कि गिलहरी का जितना बड़ा शरीर है क्या पूँछ भी उतनी ही बड़ी है ?

राजा के पूछने पर उसने कहा—राजन् ! गिलहरी का शरीर और पूँछ दोनों बराबर होते हैं ।

१२. पञ्चपिता का दृष्टान्त^३

चौथे प्रहर में राजा ने पूछा—रोहक ! सो रहा है या जाग रहा है ? रोहक बोला नहीं । राजा ने उसे कम्बिका (बांस की खपची) से छुआ, तब उठा । पूछा—सो रहा है या जाग रहा है ?

रोहक—जाग रहा हूँ ।

राजा—क्या सोच रहा है ?

रोहक—मैं सोच रहा हूँ कि आपके कितने पिता हैं ?

उसकी बात सुनकर राजा विस्मित हुआ ।

राजा—बोलो, तुमने क्या सोचा ?

रोहक—महाराज ! आप पांच पिता के पुत्र हैं । यह सुनकर राजा उठा । शरीर चिन्ता से निवृत्त होकर मां के पास गया । चरणों में प्रणाम कर पूछा—मेरे पिता कितने हैं ?

मां—तुम अपने पिता से उत्पन्न हुए हो । राजा ने आग्रह किया । सच बताओ । तुम्हारा पिता केवल राजा ही हैं किन्तु एक दिन मैं वैश्रमण देव की पूजा करने के लिए गई थी । उसे अलंकृत विभूषित देखकर मन में अनुराग पैदा हो गया ।

मैं पूजा कर घर लौट रही थी रास्ते में चण्डाल युवक को देखा, उसके प्रति भी अनुराग पैदा हो गया । फिर एक घोड़ी मिला उसके प्रति भी अनुराग हो गया । अपने अन्तःपुर में लौट आई वहाँ उत्सव के अवसर पर एक आटे का बिच्छू बनाया हुआ था । उसे हाथ में लिया, उस पर मेरा अनुराग हो गया । यदि अनुराग मात्र से पिता होता है तो ये सब तुम्हारे पिता हैं अन्यथा राजा ही तुम्हारा पिता है ।

१. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५४५, ५४६

(ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्रीया वृत्ति, २७८

(ग) आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५१८

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १४८

(च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३४

(छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १७८

२. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५४६

(ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्रीया वृत्ति, प. २७८

(ग) आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५१८

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १४८

(च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३४

(छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १७८

३. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५४६

(ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २७८

(ग) आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, ५१८, ५१९

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १४८, १४९

(च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३४

(छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १७८

माता को नमस्कार कर राजा अपने स्थान पर आ गया। रोहक को बुलाकर एकान्त में पूछा—तुम्हें कैसे पता चला कि मैं पांच पिता से पैदा हुआ हूँ ?

रोहक—न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करते हैं उससे मैंने जान लिया कि आप राजा के पुत्र हैं।

आप दान देते हैं इससे मैंने जान लिया कि आप वैश्रमण से उत्पन्न हैं।

आप शत्रु के प्रति चाण्डाल की भांति क्रोध करते हैं उससे मैंने जान लिया कि आप चाण्डाल से उत्पन्न हैं।

धोबी जैसे वस्त्र को गहरा निचोड़ लेता है वैसे ही आप सर्वस्व हरण कर लेते हैं उससे मैंने जान लिया कि आप धोबी से उत्पन्न हैं।

मैं विश्वस्त होकर सो रहा था। आपने मेरे शरीर पर कम्बका को चुभोया। उससे मैंने जान लिया कि आप वृश्चिक से उत्पन्न हैं।

उत्तर सुनकर राजा संतुष्ट हो गया और रोहक को सर्वोच्च अधिकारी बना दिया।

३. वैनयिकी बुद्धि के दृष्टान्त

१. निमित्त दृष्टान्त^१

किसी नगर में एक सिद्ध पुत्र रहता था। उसके दो शिष्य निमित्त शास्त्र का अध्ययन करते थे। उनमें से एक गुरु के प्रति अत्यन्त विनम्र था, विमृश्यकारी था। गुरु जो भी निर्देश देते, उसे स्वीकृत कर वह निरन्तर चिन्तन करता। कहीं संदेह होने पर गुरु के पास आकर विनम्रतापूर्वक जिज्ञासा करता। इस प्रकार निरन्तर विमर्शपूर्वक शास्त्रार्थ का चिन्तन करते-करते उसकी प्रज्ञा प्रकर्ष को प्राप्त हो गई। दूसरा शिष्य अविनीत था, अविमृश्यकारी था। एक बार गुरु के निर्देशानुसार दोनों ने समीपवर्ती ग्राम के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में उन्होंने बड़े-बड़े पदचिह्नों को देखा।

विमृश्यकारी शिष्य ने पूछा—ये किसके पदचिह्न हैं? अविमृश्यकारी शिष्य ने तत्काल कहा—इसमें पूछने की क्या बात है? ये हाथी के पैर हैं? विमृश्यकारी शिष्य बोला—मित्र! ये पैर हाथी के नहीं, हथिनी के हैं। वह बाईं आंख से कानी है। उस पर कोई रानी बैठी है। वह सधवा है, गर्भवती है। उसके एक-दो दिन में ही प्रसव होने वाला है और उसके पुत्र होगा।

अविमृश्यकारी शिष्य ने पूछा—ये सारी बातें तुम्हें कैसे ज्ञात हुईं?

विमृश्यकारी शिष्य ने कहा—ज्ञान का सार है प्रत्यय, विश्वास। यह सारी घटना प्रत्यय से ही स्पष्ट हो जाएगी।

दोनों शिष्य अपनी मंजिल के निकट पहुंचे। उन्होंने देखा गांव के बाहर तालाब के किनारे रानी ठहरी हुई थी। वहां हथिनी खड़ी थी, वह बायीं आंख से कानी थी। इस बीच दासी ने आकर सूचना दी कि महारानी ने पुत्र को जन्म दिया है, बधाई दीजिए।

विमृश्यकारी शिष्य ने अविमृश्यकारी शिष्य से कहा—क्या तुमने दासी के वचन पर चिन्तन किया?

अविमृश्यकारी शिष्य बोला—मैंने सब कुछ चिन्तन कर लिया, तुम्हारा ज्ञान सही है।

दोनों ने हाथ-पैर धोए। तालाब के किनारे वटवृक्ष के नीचे विश्राम के लिए बैठे। उन्होंने एक वृद्ध महिला को देखा जिसके मस्तक पर जल से भरा हुआ घड़ा था। उसने दोनों शिष्यों की आकृति को देखा और सोचा—निश्चित रूप से ये दोनों विद्वान् हैं। इसलिए इनको देशान्तर गए हुए पुत्र के बारे में पूछना चाहिए और उसने पूछ लिया—मेरा पुत्र कब आएगा? ऐसा पूछते ही उसके सिर से गिरकर घड़ा फूट गया। शीघ्र ही अविमृश्यकारी शिष्य बोला—तेरा पुत्र मर गया है। विमृश्यकारी शिष्य—मित्र! ऐसा मत कहो। इसका पुत्र घर पहुंच गया है। बुढ़िया मां! घर जाओ, तुम्हारा पुत्र तुम्हें मिल जाएगा।

विमृश्यकारी शिष्य के ऐसा कहने पर बुढ़िया उसे सैकड़ों आशीर्वाद देती हुई अपने घर गई, देखा पुत्र घर आया हुआ है। पुत्र ने प्रणाम किया। बुढ़िया ने आशीर्वाद दिया और नैमित्तिक का वृत्तांत बताया। पुत्र को पूछकर बुढ़िया वस्त्र युगल व कुछ रुपये लेकर विमृश्यकारी शिष्य के पास गई और उसे भेंट किया। अविमृश्यकारी शिष्य ने खेदपूर्वक सोचा—निश्चित ही गुरु ने मुझे अच्छी तरह नहीं पढ़ाया है। अन्यथा जैसा यह जानता है वैसा मैं क्यों नहीं जानता?

कार्य सम्पन्न कर दोनों गुरु के पास आए। गुरु के दर्शन करते ही विमृश्यकारी शिष्य ने बढ़ाञ्जलि सिर झुकाकर बहुमानपूर्वक आनन्दाश्रुपूरित नयनों से गुरु के चरणों में प्रणाम किया। अविमृश्यकारी शिष्य शैलस्तम्भ की तरह खड़ा रहा।

१. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५५३

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८२, २८३

(ग) आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५२३, ५२४

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १६०, १६१

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३७

(छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, पृ. १८०

गुरु ने पूछा—अरे ! तू आज चरणों में प्रणिपात क्यों नहीं कर रहा है ?

अविमृश्यकारी शिष्य बोला—जिसको अच्छी तरह पढ़ाया है वही प्रणाम करेगा, मैं नहीं करूंगा ।

गुरु ने पूछा—क्या तुमको अच्छी तरह से नहीं पढ़ाया ?

उसने सारी घटित घटना बतलाई और कहा—इसका सारा ज्ञान सत्य निकला और मेरा असत्य ।

गुरु ने विमृश्यकारी शिष्य से पूछा—वत्स ! तुमने यह सब कैसे जाना ?

विमृश्यकारी शिष्य बोला—आपने जो ज्ञान दिया उसके अनुसार विमर्श करना प्रारम्भ किया कि यह पैर हाथी का है यह स्पष्ट है । फिर मैंने विशेष चिन्तन किया कि यह हाथी का पैर है या हथिनी का ? उसकी प्रश्रवण भूमि को देखकर मैंने निश्चय किया कि यह हथिनी का पैर है । दक्षिण पार्श्व की बेलें खाई हुई हैं न कि बाएं पार्श्व की । इसलिए मैंने निश्चय किया कि यह हथिनी बायीं ओर से कानी है तथा दूसरा कोई सामान्य व्यक्ति इस प्रकार हथिनी पर आरूढ़ नहीं हो सकता । इस आधार पर मैंने निश्चय किया कि अवश्य कोई राजकीय पुरुष है । उसने किसी स्थान पर हथिनी से उतरकर प्रश्रवण किया । उसको देखकर मैंने निश्चय किया कि वह रानी है । वृक्ष पर लाल वस्त्र की किनारी का कोई हिस्सा देखा, उससे मैंने अनुमान किया कि वह सधवा स्त्री है । भूमि पर हाथ को टिकाकर उठने से प्रतीत हुआ कि वह गर्भवती है । दायां पैर बहुत कठिनाई के साथ रखा हुआ है उससे मैंने जान लिया कि कल ही प्रसव होने वाला है ।

वृद्ध स्त्री के प्रश्न पूछते ही घड़ा गिर गया । तब मैंने सोचा—पानी पानी में मिल गया, मिट्टी मिट्टी में, इसलिए बुढ़िया को भी इसका पुत्र मिलना चाहिए । विमृश्यकारी शिष्य को गुरु ने प्रसन्नतापूर्वक देखा और उसे साधुवाद दिया । विमृश्यकारी शिष्य का सारा वृत्तान्त सुनकर गुरु ने अविमृश्यकारी शिष्य से कहा—इसमें मेरा दोष नहीं है, दोष तुम्हारा है कि तुम किसी तथ्य पर विमर्श नहीं करते । हम तो मात्र शास्त्र के अर्थ का अवबोध कराने के अधिकारी हैं, विमर्श के अधिकारी तो तुम हो ।

२. अर्थशास्त्र दृष्टान्त^१

नंदवंश का प्रतापी राजा नंद शासन कर रहा था । उसकी राजधानी थी पाटलिपुत्र (वर्तमान में पटना) । उसके मन्त्री का नाम था कल्पक । वह बुद्धिमान था । राजा ने किसी अपराध के कारण उसे कुएँ में डलवा दिया । लोगों ने उसकी मृत्यु की अफवाह फैला दी । शत्रु-राजाओं ने पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर दिया । नन्द राजा ने उसी समय कल्पक को कुएँ से बाहर निकलवा दिया । कल्पक सन्धिवात्ता के लिए शत्रुओं के मन्त्रियों से मिलने गया । उसने इक्षु दण्ड के ऊपर के भाग को तोड़ दिया और नीचे के भाग को भी तोड़ दिया । फिर बीच में क्या बचेगा ? यह असम्बद्ध बात हाथ के संकेत से बताई और चला गया ।^२

३,४. लेख, गणित दृष्टान्त^३

लाट, कर्नाटक, द्रविड़ (तमिल) आदि अठारह देश की लिपियों को जानने वाले की बुद्धि वैनयिकी है । आवश्यक टिप्पण-कार ने एक दृष्टान्त प्रस्तुत किया है ।

१. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५५३ : अत्यसत्थे कप्पओ दधि-कुंडग उच्छुकलावग एवमादि ।

(ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्रोया वृत्ति, पृ. २८३

(ग) आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५२४

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १६१ : मलयगिरि ने दृष्टान्त का उल्लेख किया है किन्तु उसे निरूपित नहीं किया है ।

‘अत्यसत्थे’ त्ति अर्थशास्त्रे कल्पको मन्त्री दृष्टान्तो, दहिकुंडग उच्छुकलावओ च इति संविधानके ।

(च) नन्दी हारिभद्रोया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३७

(छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, पृ. १८०

२. इस कहानी का आधार है—आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका ।

३. (क) आवश्यक हारिभद्रोया टिप्पणकम्, पृ. ५८

(ख) आवश्यकचूर्ण आदि ग्रंथों में भी इसका उल्लेख मिलता है ।

(ग) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५५३ : लेहे जथा अट्टारसल्लिविजाणओ । एवं गणिए वि ।

(घ) आवश्यक हारिभद्रोया वृत्ति, पृ. २८३ : लेहे अट्टारसल्लिविजाणगे, अण्णे भणंति—गणिए जहा विसमगणितजाणगे, अण्णे भणंति—कुमारा वट्टेहि रमंता अक्खराणि सिक्खा-वियाणि । गणिए वि, एसा वि सिक्खावयस्स वेणइगी बुद्धि ।

अठारह लिपियों का ज्ञान करना वैनयिकी बुद्धि है । एक मत यह है कि गंद से क्रीड़ा करते-करते अक्षरों को सिखा देते हैं । इसी प्रकार गणित सिखा देना गणित विषयक वैनयिकी बुद्धि है ।

(च) आवश्यक मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५२४

(छ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १६१ : ‘लेहे’ त्ति लिपिपरि-ज्ञानं, ‘गणिए’ त्ति गणितपरिज्ञानं, एते च द्वे अपि वैनयिक्यौ बुद्धी ।

एक उपाध्याय राजपुत्रों को पढ़ा रहा था। उनका मन पढ़ाई में नहीं लग रहा था। वे लाक्षा गोलकों से क्रीड़ा करते रहते, पढ़ाई नहीं करते। उपाध्याय ने अपनी बुद्धि का प्रयोग किया। राजकुमारों की क्रीड़ा को शिक्षण में बदल दिया। वह राजकुमारों से लाक्षा गोलकों का प्रक्षेप वैसे करवाने लगा जिससे अक्षरों और अंकों का अंकन हो जाए। इस विधि से उसने राजकुमारों को समस्त लिपि और गणित सिखाया। उनके क्रीड़ा रस को भी नहीं रोका और अध्ययन भी करवा दिया। यह उपाध्याय की वैतयिकी बुद्धि है। यह कहानी आवश्यक हारिभद्रिया टिप्पणकम् में उपलब्ध है।

५. कूप दृष्टान्त^१

किसी कुशल भूजलवेत्ता ने एक व्यक्ति से कहा—इतने गहरे में पानी है। उसने कुए की खुदाई की किन्तु पानी नहीं निकला। उसने भूजलवेत्ता को कहा—इतनी खुदाई कर लेने पर भी जल नहीं मिला। भूजलवेत्ता ने कहा—पार्श्व की भूमि पर एडी से प्रहार करो। प्रहार के साथ ही पानी बाहर निकल गया। यह भूजलवेत्ता की वैतयिकी बुद्धि का उदाहरण है।

६. अश्व दृष्टान्त^२

अनेक अश्व व्यापारी द्वारिका गये। वहाँ सारे राजकुमारों ने स्थूल और बड़े, छोटे अश्वों को खरीदा। वासुदेव ने एक छोटा, दुर्बल किन्तु लक्षण सम्पन्न अश्व खरीदा। वह कार्यक्षम और अनेक घोड़ों का मुखिया बन गया। यह वासुदेव की वैतयिकी बुद्धि थी।

७. गर्दभ दृष्टान्त^३

एक राजकुमार युवावस्था में राजा बना। युवा राजकुमार का युवकों की कर्मजाशक्ति में अति विश्वास था। उसने अपनी सेना से सभी वृद्ध पुरुषों को अवकाश दे दिया। उनके स्थान पर नवयुवकों की नियुक्तियाँ कर दीं। एक बार सेना के साथ जा रहा था। मार्ग में सघन अटवी आई। पानी के अभाव में तृषा से आकुल-व्याकुल हो गया। राजा किकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। उन सैनिकों में से किमी एक सैनिक ने कहा—राजन् ! वृद्ध पुरुष की बुद्धि रूपी नौका के सिवाय अब कोई भी हमें इस आपत्ति रूपी समुद्र से पार पहुंचाने में समर्थ नहीं है। अतः आपसे मेरा सानुरोध निवेदन है कि किसी वृद्ध पुरुष की खोज की जाये। राजा ने वैसे ही किया। सम्पूर्ण सेना में उद्घोषणा करवा दी कि कोई वृद्ध पुरुष हो तो वह आगे आए।

एक पितृभक्त सैनिक प्रच्छन्न रूप से अपने पिता को साथ लाया था। वह बोला—राजन् ! मेरा पिता वृद्ध है ऐसा कहते हुए उसने अपने पिता को राजा के सम्मुख उपस्थित कर दिया। राजा ने आदरपूर्वक वृद्ध से पूछा। महाभाग ! कहिए सेना को अटवी में पानी कैसे मिलेगा ? वृद्ध ने कहा—स्वामिन् ! कुछ गर्दभों को इस अटवी में स्वतन्त्र रूप से चरने छोड़ दिया जाए। वे

(ज) नन्दी हारिभद्रिया वृत्ति टिप्पणकम्, प. १३७ : लेहे जहा—
अट्टारसलिविजाणतो । एवं गणिए वि । अण्णे भणति—
वट्ठेहिं रमंतेणं अक्खराणि सिक्खाविता गणियं च । अयं
भावार्थः—खटिकामया गोलकास्तथोपाध्यायेन भूमौ
पातितः कुमारामक्षरशिक्षणाय यथा भूमावक्षराण्यु-
त्पद्यन्ते ।

टिप्पणकार ने लेख का उल्लेख अठारह लिपि ज्ञाता के संदर्भ में किया है। मतान्तर में बतलाया गया है कि उपाध्याय ने खड़िया मिट्टी से बने हुए गोलों को भूमि पर इस प्रकार डाला जिससे अक्षरों की आकृति बन जाए। यह प्रयत्न कुमारों को अक्षर सिखाने के लिए किया गया है।

(झ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १८० : लेखे—शिष्यः
शिष्यमाणः, सर्वलिपीर्वेत्ति ।

हंसलिवी १ भूयलिवी २ जकखी ३

तह रक्खसी य ४ बोधन्वा ।

उड्डी ५ जवणि ६ तुरुक्की ७ कीरी ८ दविडी ९

य सिधवीया १० मालविणी ११ ॥

नडि १२ नागरी १३ ताडलिवी १४ पारसी १५

य बोधन्वा ।

तह अनिमित्तीयलिवी १६ चाणिकी १७ मूलदेवी १८ य ॥
गणितं एकादिपराद्धर्चान्तं वेत्ति ।

१.२. (क) आवश्यकचूर्ण पृ. ५५३

(ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्रिया वृत्ति, पृ. २८३

(ग) आवश्यकनिर्युक्ति मलयगरीया वृत्ति, प. ५२४

(घ) नन्दी मलयगरीया वृत्ति, प. १६१

(च) नन्दी हारिभद्रिया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३७

(छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १८१

३. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५५३

(ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्रिया वृत्ति, पृ. २८३

(ग) आवश्यकनिर्युक्ति मलयगरीया वृत्ति, प. ५२४

(घ) नन्दी मलयगरीया वृत्ति, प. १६१

(च) नन्दी हारिभद्रिया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३७-१३८

(छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १८१

चरते हुए जिस भूभाग को सूँघें, वहाँ पानी मिल जायेगा। राजा ने वैसा ही किया। पानी मिल गया। पानी मिलने पर सभी सैनिकों को राहत मिली। राजा संकट से उबर गया।

८. लक्षण वृष्टान्त^१

पारस देश में कोई घोड़े का व्यापारी रहता था। उसने एक व्यक्ति को अश्व रक्षक के रूप में रखा और उसे एक नियत कालावधि के पश्चात् अश्व रक्षा के मूल्य स्वरूप दो मन इच्छित अश्व देने का वादा किया। वह अश्व रक्षक अश्व स्वामी की पुत्री के साथ था। एक दिन उसने उससे (स्वामी की पुत्री से) पूछा—दो अच्छे अश्व कौनसे हैं? उसने कहा—‘पत्थरों से भरे हुए कुप्पे को वृक्ष के शिखर से गिराएँ। उन पत्थरों के शब्द को सुनकर जो भयभीत न हों, वे अश्व अच्छे हैं।’ अश्वरक्षक ने उसी विधि से घोड़ों का परीक्षण किया।

जब वेतन प्रदान करने का समय आया तो वह बोला—श्रेष्ठिवर ! मुझे अमुक-अमुक दोनों घोड़े प्रदान करें। व्यापारी यह बात सुन असमञ्जस में पड़ गया। उसने कहा—अन्य सारे घोड़ों को ले लो पर इनको मत लो। वह तो उन्हीं घोड़ों को चाहता था अतः उसने व्यापारी की बात को अस्वीकार कर दिया। उस व्यापारी ने अपनी पत्नी से कहा—हमें इस अश्वरक्षक को गृह जामाता के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। अन्यथा यह इस श्रेष्ठ अश्वद्वय को लेकर चला जाएगा। पत्नी ऐसा नहीं चाहती थी। व्यापारी ने उसे समझाते हुए कहा—लक्षणसम्पन्न अश्व से अन्य बहुत से अश्वों को पैदा किया जा सकता है और उनका कुटुम्ब भी बढ़ जाता है। ये दोनों ही अश्व लक्षणसम्पन्न हैं अतः तुम मेरी बात को स्वीकार करो और इसे अपना गृह जामाता बना लो। आखिर पत्नी को पति की बात जच गई। उसने अपनी पुत्री का विवाह अश्वरक्षक के साथ कर दिया। अश्वरक्षक गृह जामाता बन गया। वे दोनों अश्व उसके घर में ही रहे। यह अश्वस्वामी की वैनयिकी बुद्धि थी।

९. ग्रन्थि दृष्टान्त^२

पाटलिपुत्र नगर में मुरण्ड राजा शासन करता था। किसी विदेशी राजा ने दूत के माध्यम से तीन वस्तुएं भेजी—१. गुड़ सूत्र (मोम से लिपटा सूत्र) २. समयष्टि (जिसके दोनों सिरे समान हों) ३. पेटी (लाख से लिपटी हुई जिसका मुंह दिखाई नहीं देता)। इन तीनों वस्तुओं के रहस्य की व्याख्या को मुरण्ड राजा से जानना चाहा—१. सूत्र का अन्त कहां है २. यष्टि का मूल भाग कहां है ३. पेटी का द्वार कहां है? राजा मुरण्ड ने ये वस्तुएं सभासदों के सामने रखीं पर कोई भी सभासद इसका रहस्य नहीं समझ सका। राजा ने पादलिप्त सूरि से पूछा—भगवन् ! क्या आप इनका रहस्य बताएंगे? उन्होंने कहा—हां मैं बता सकता हूँ, बहुत अच्छी तरह बता सकता हूँ।

पादलिप्त सूरि ने सूत्र को गरम पानी में डाला, उससे मोम पिघल गया। सूत्र का अन्त भाग पकड़ में आ गया। यष्टि को पानी में डाला, इसका गुरु भाग नीचे चला गया, आदि भाग पकड़ में आ गया।

पेटी को गरम पानी में डाला, लाख पिघल गई, द्वार प्रकट हो गया। राजा ने पादलिप्त सूरि को निवेदन किया—भगवन् ! आप भी कोई ऐसा दुर्विज्ञेय कौतुक करें, जिसे मैं वहां भेज सकूँ। आचार्य ने एक तुम्बा लिया। उसके एक स्थान में एक खंड को हटा कर (एक टुकड़ा काटकर) तुम्बे को रत्नों से भर दिया। पुनः उस खंड को तुम्बे पर लगाकर इस प्रकार सिलाई की कि कोई जान न सके।

राजा ने विदेशी राजा के दूतों को कहा—इस तुम्बे को तोड़े बिना रत्नों को ग्रहण करना है। उन लोगों ने बहुत प्रयत्न किया पर वे इसमें सफल नहीं हो सके। यह पादलिप्त सूरि की वैनयिकी बुद्धि थी।

१. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५५३, ५५४

(ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्रोया वृत्ति, पृ. २८३

(ग) आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५२४

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १६१, १६२

(च) नन्दी हारिभद्रोया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३८

(छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, पृ. १८१

२. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५५४

(ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्रोया वृत्ति, पृ. २८३

(ग) आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५२४, ५२५

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १६२

(च) नन्दी हारिभद्रोया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३८

(छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, पृ. १८१

१०. औषध दृष्टांत^१

किसी नगर में एक राजा राज्य करता था। शत्रु सेना से वह सब ओर से घिर गया। राजा ने योजना बनाई कि जल को विषमय बना दिया जाये जिससे शत्रु अपना डेरा न डाल सके। यह चिंतन कर राजा ने विष-वैद्यों को आमन्त्रित किया।

एक वैद्य जौ जितना विष लेकर आया। थोड़ा-सा विष देख राजा कुपित हो गया। वैद्य ने निवेदन किया—राजन् ! आप क्रुद्ध न हों। यह सहस्रवेधी विष है।

राजा—इसका प्रमाण क्या है ?

वैद्य—राजन् ! कोई बूढ़ा हाथी मंगाएं।

राजा ने वैसा ही किया। विषवैद्य ने हाथी की पूंछ के स्थान से एक बाल उखाड़ा और उस रन्ध्र में विष को संचरित किया। विष जहां-जहां फैला, वह अंग मृतवत् हो गया।

वैद्य—राजन् ! यह सारा हाथी विषमय हो गया है। जो भी इसे खाएगा वह भी विषमय हो जाएगा। इस विष के सहस्र-वेधी होने का यह प्रमाण है।

राजा—क्या हाथी को स्वस्थ बनाने का, विष प्रतिकार का कोई उपाय है ?

अवश्य। उसने उसी बाल के रन्ध्र में दवा का प्रक्षेप किया। सारा विष विकार शीघ्र ही प्रशान्त हो गया। हाथी स्वस्थ हो गया। राजा वैद्य पर तुष्ट हुआ। यह वैद्य की वैनयिकी बुद्धि थी।

११. रथिक और गणिका दृष्टांत^२

पाटलिपुत्र नगर में दो गणिकाएं रहती थीं। वे कोशा और उपकोशा के नाम से प्रसिद्ध थीं। कोशा के साथ अमात्यपुत्र स्थूलभद्र रहता था। कालान्तर में वह विरक्त होकर मुनि बन गया। मुनि बनने के बाद उसने आचार्य की अनुज्ञा प्राप्त कर कोशा की चित्रशाला में चातुर्मास किया था। कोशा की विचारधारा अब उसे प्रभावित नहीं कर सकी। वह मुनि की दृढ़ता से प्रभावित होकर दृढ़ श्राविका बन गई। उसने राजा के अलावा अब्रह्मचर्य के सेवन का प्रत्याख्यान कर लिया।

एक रथिक राजा को प्रसन्न कर कोशा के पास पहुंचा। कोशा उसके समक्ष पुनः पुनः मुनि स्थूलभद्र का गुणगान करने लगी। उसको महत्त्व नहीं दिया। रथिक अपना कौशल दिखाने के लिए उसे अशोकवन में ले गया। वह भूमि पर खड़ा हो गया। बाण चलाया उससे आम की लुम्बी को बींध दिया। फिर दूसरा बाण चलाया। वह बाण के मुख (पिछला भाग) से जुड़ गया। इस प्रकार बाण चलाता गया। आखिरी बाण हाथ के पास आ गया। हाथ से उन सबको खींचा, आम की लुम्बी बींध बाण से आम की लुम्बी को काटा, वह उसके हाथ में आ गई।

कोशा पर उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। वह बोली—अभ्यास से क्या दुष्कर है ? उसने कहा—अब तुम मेरा कौशल देखो। उसने सर्षप के डेर पर कनेर के फूलों को पुरोया और उस पर सूइयां रखी और उसके अग्रभाग पर नृत्य किया। रथिक ने उसके कौशल की भूरि-भूरि प्रशंसा की। कोशा ने उसे समझाते हुए कहा—देखो ! शिक्षित व्यक्ति के लिए आम्रलुम्बी को तोड़ना दुष्कर नहीं है, सर्षप राशि पर नृत्य करना दुष्कर नहीं है। दुष्कर है महान् शक्ति का प्रयोग जो मुनि स्थूलभद्र ने किया, जो प्रमदवन (अन्तःपुरोचित क्रीडावन) में रहकर निलिप्त रहा। यह कहकर कोशा ने स्थूलभद्र का समग्र वृत्तान्त कह सुनाया। रथिक का मन शांत हो गया। यह रथिक और कोशा की वैनयिकी बुद्धि का उदाहरण है।

१२. सीया साडी दृष्टांत^३

एक राजा था। उसने राजकुमारों को प्रशिक्षण देने के लिए किसी कलाचार्य को नियुक्त किया। कलाचार्य ने राजकुमारों

- | | |
|-------------------------------------------------------|--------------------------------------------------|
| १. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५५४ | (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६२ |
| (ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८३ | (च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३६ |
| (ग) आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२५ | (छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १८१ |
| (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६२ | ३. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५५५ |
| (च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३६ | (ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८४ |
| (छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १८१ | (ग) आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२५ |
| २. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५५४, ५५५ | (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६२, १६३ |
| (ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८३, २८४ | (च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३८ |
| (ग) आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२५ | (छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १८१ |

को प्रशिक्षण दिया। राजकुमारों ने कलाचार्य को प्रचुर धन दिया। राजा धन का लोभी था इसलिए वह बहुत कुपित हुआ। उसने कलाचार्य को मरवाने की योजना बनाई। राजपुत्रों को यह बात ज्ञात हो गई। उन्होंने सोचा—विद्यादाता होने से कलाचार्य भी हमारे परमार्थ पिता हैं। अतः इनको विपत्ति से बचाना चाहिए। कुछ समय के बाद जब कलाचार्य भोजन करने के लिये आये, स्नान करके धोती मांगने लगे। तब राजकुमारों ने सूखी धोती को भी कहा—यह गीली है, इसलिए दी नहीं जा सकती। द्वार के सन्मुख तृण रखकर बोले—यह तृण दीर्घ है। स्नान के अन्त में क्राँचपक्षी को मंगल निमित्त आरती की भाँति प्रदक्षिणा करके उतारा जाता था। उस समय कुमारों ने उसे बायीं ओर से नीचे उतारा।

कलाचार्य इन संकेतों को समझ गये। राजा मुझे मरवाना चाहता है और कुमार मेरी रक्षा करना चाहते हैं। गीली धोती का संकेत है कि पिता आपके प्रति विरक्त हो गया। दीर्घ तृण का संकेत है रास्ता लम्बा है आप जल्दी चलें। क्राँच को आरती की भाँति प्रदक्षिणा पूर्वक उतारा जाता है। इस समय बाईं ओर से एक भटके में उतार दिया। यह इस बात का संकेत है कि आपका संहार होने वाला है। वह संकेत को समझकर चला गया।^१

१३. नीबोदक दृष्टान्त^२ (नेबे का पानी)

किसी वणिक स्त्री का पति विदेश गया हुआ था। एक दिन वणिक स्त्री ने दासी से किसी पुरुष को लाने के लिए कहा। दासी उसे लेकर आ गई। फिर नख कटवाए और स्नान करवाया। रात्रि में दोनों दूसरी मंजिल पर गये। वर्षा शुरू हो गई। वह आगन्तुक व्यक्ति प्यास से व्याकुल हुआ। उसने नीबोदक^३ पी लिया। वह जल त्वचा में विषवाले सर्प से संसृष्ट था। अतः उसको पीने से वह पुरुष मर गया। उस वणिक स्त्री ने रात्रि के पिछले भाग में उसे शून्यदेवकुल में ले जाकर छोड़ दिया। प्रातःकाल दण्ड-पाशिक (पुलिस) ने उसे देखा, उसका विमर्श किया। इसका नख आदि का संस्कार अभी-अभी किया हुआ है। नापित वर्ग को पूछा गया—नखादि का कर्म किसके द्वारा किया गया है? एक नापित ने कहा—अमुक नाम वाली वणिक स्त्री की दासी के कहने से मैंने किया है। फिर दासी से पूछा गया—वह इन्कार हो गई। पुलिस द्वारा पीटने पर उसने यथार्थ बतला दिया। यह दण्डपाशिकों की वैनयिकी बुद्धि थी।

१४. बैल, अश्व और वृक्ष दृष्टान्त^४

एक हतभाग्य पुरुष जो कुछ भी करता, वह उसकी विपत्ति के लिए होता। उसने एक बार अपने मित्र से बैल मांगकर हल चलाया। एक दिन उसने विकाल बेला में उन बैलों को लाकर उसके बाड़े में छोड़ दिया। उस समय उसका मित्र भोजन कर रहा था इसलिए वह उसके पास नहीं गया। मित्र ने बैलों को देख लिया है—ऐसा सोचकर वह अपने घर चला गया। वे दोनों बैल बाड़े से निकलकर कहीं अन्यत्र चले गए। चोरों ने उनका अपहरण कर लिया। बैलों के स्वामी ने अपने उस हतभाग्य मित्र से अपने बैल मांगे। पर वह दे नहीं सका। मित्र उसे राजकुल ले गया।

जब वह मार्ग में जा रहा था, सामने से कोई अश्वारोही आया। घोड़े ने उसे गिरा दिया और भागने लगा। अश्वारोही बोला—इस घोड़े को एक डण्डा लगाओ। हतभाग्य ने उसके मर्मस्थल पर चोट कर दी फलतः वह मर गया। अब अश्वारोही ने भी उस हतभाग्य को पकड़ लिया। जब वे नगर में पहुँचे, तब न्यायालय का कार्य सम्पन्न हो चुका था। ऐसा सोचकर नगर के बहिर्भाग में ही ठहर गये। वहाँ पर बहुत से नट सोए हुए थे। हतभाग्य ने सोचा—इस आपत्ति रूपी समुद्र से मेरा उद्धार नहीं होगा। वृक्ष से गले में फाँसी लगाकर मर जाऊँ। उसने वस्त्र से फाँसी लगाई और वृक्ष से लटकने लगा। वस्त्र बहुत जीर्ण था। वह उसके भार को न सह सका। वस्त्र फट गया। हतभाग्य नीचे सोए हुए नटों के सरदार के ऊपर गिर गया। नट सरदार का गला उससे दब गया और वह मर गया। अब नटों ने भी उसे बंदी बना लिया।

१. इस कथा का अनेक स्थलों पर संकलन है किन्तु संकेतों की स्पष्ट व्याख्या आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका में है।

२. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५५५

(ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्रिया वृत्ति, पृ. २८४

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२५

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६३

(च) नन्दी हारिभद्रिया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३८, १३९

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८१

३. नीबः—[क] केलू की छूत का किनारा।

[ख] छप्पर या छाजन का छोर जहाँ से वर्षा का पानी जमीन पर गिरता है।

४. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५५, ५५६

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रिया वृत्ति, पृ. २८४

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२५, ५२६

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६३

(च) नन्दी हारिभद्रिया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३९

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८१

दूसरे दिन प्रातःकाल सभी राजकुल में उपस्थित हुए। सबने अपनी-अपनी कहानी सुनाई। अमात्यकुमार ने उस बेचारे को पूछा। वह दीनमुख होकर बोला—देव ! ये जो कहते हैं वह सत्य है। अमात्यकुमार को उस पर दया आ गई। उसने कहा—(बैल के स्वामी से) यह तुम्हें दो बैल देगा पर तुम्हारी आंखों को निकाल लेगा। यह तो उसी समय ऋणमुक्त हो गया था, जब तुमने आंखों से बैलों को देख लिया। यदि तुमने उन्हें न देखा होता तो शायद यह उन्हें छोड़ अपने घर नहीं जाता। जो व्यक्ति जिसे जो देने जाता है वह उसे बिना कहे समर्पणीय वस्तु ऐसे ही छोड़कर अपने घर नहीं जाता। फिर अश्वस्वामी को बुलाया गया। अमात्यकुमार ने उसे कहा—यह तुम्हें घोड़ा देगा, पर तुम्हारी जीभ काट लेगा। जब तुमने ही इसे अपनी जीभ से कहा कि इस घोड़े को डण्डा मारो तभी इसने उसे मारा, अन्यथा नहीं। अतः केवल डण्डा मारने वाले को ही दण्ड दिया जाए, तुम्हारी जीभ को नहीं—यह कौनसा नीतिपथ है। फिर उसने नटों से कहा—इसके पास कुछ भी नहीं है तो क्या दिलाएं ? केवल इतना करवाएंगे कि यह नीचे सो जाएगा और तुममें से कोई एक मुखिया वृक्ष से अपने गले में फासी लगाकर वैसे ही नीचे गिरे, जैसे वह नीचे गिरा।

अमात्यकुमार का न्याय सुनकर सभी ने उसको मुक्त कर दिया। यह अमात्यकुमार की वैतयिकी बुद्धि थी।

४. कर्मजा बुद्धि के दृष्टान्त

१. हैरण्यक दृष्टान्त^१

जैसे कर्म में कुशल स्वर्णकार जिसने अपने धंधे में ज्ञान का प्रकर्ष प्राप्त किया है। वह अंधेरे में भी रूपये को छूकर परीक्षा कर लेता है—यह सिक्का खोटा है अथवा असली।

२. कृषक दृष्टान्त^२

एक बार किसी तस्कर ने वणिज के घर में पद्म के आकार वाली सेंध लगाई। प्रातः उसे देखकर लोगों ने तस्कर के चातुर्य की प्रशंसा की। तस्कर भी उसी घर में आकर अपनी प्रशंसा सुनने लगा। तभी एक किसान बोला—भाई ! अभ्यास कर लेने पर क्या दुष्कर है ? जो जिस कर्म का सदा अभ्यास करता है, वह उसमें यदि प्रकर्ष प्राप्त कर लेता है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं होती। उसके अमर्ष रूपा अग्नि को उद्दीप्त करने वाले वाक्य को सुनकर वह क्रोध से जलभून उठा। उसने किसी पुरुष से उसका सारा परिचय प्राप्त किया। अगले दिन हाथ में छुरी लेकर किसान के घर पहुंचा और बोला—मैं तुम्हें अभी मारता हूं। किसान ने कारण पूछा तो उसने कहा—तुमने उस दिन मेरे द्वारा लगाई गई सेंध की प्रशंसा नहीं की। किसान ने कहा—तुम ठीक कहते हो। यह सत्य है कि जो जिस विषय में अभ्यास कर लेता ? वह उसमें प्रकर्ष प्राप्त कर सकता है। इसका उदाहरण मैं ही हूं। मेरे हाथ में मूंग के दाने हैं। यदि तुम कहो तो मैं इन सबको अधोमुख गिरा दूं। और तुम कहो तो इनको ऊर्ध्वमुख या तिरछा गिरा दूं।

यह सुनकर वह तस्कर बड़ा विस्मित हुआ। उसने कहा—इन सबको अधोमुख गिराओ। किसान ने भूमि पर एक कपड़ा बिछाया और उस पर सारे मूंग अधोमुख गिरा दिए। तस्कर को वह कार्य महान् आश्चर्य सा लगा। उसने पुनः-पुनः 'अहो विज्ञानं-अहो विज्ञानं' कहकर किसान के कौशल की प्रशंसा की। उसने कहा—यदि आज तुमने ये सारे मूंग अधोमुख न गिराए होते तो मैं तुम्हें निश्चित मार देता।

पद्माकार सेंध लगाना तस्कर की कर्मजा बुद्धि थी। मूंग को अधोमुख गिराना किसान की कर्मजा बुद्धि थी।

३. कौलिक दृष्टान्त^३

जुलाहा तन्तुओं को मुट्टी में लेकर बता देता है कि धागे के इतने कण्डक (गुच्छों) से पट बन जाएगा।

४. दर्वीकार दृष्टान्त^४ (चाटु बनाने वाले)

चाटु बनाने वाला यह जान लेता है कि इस दर्वी में इतना समाएगा।

१,२. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५६

(ख) आवश्यकनिर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८५

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२६

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६४

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३९

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८२

३,४. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५६

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८५

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२६

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६५

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३९

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८२

५. मुक्ता दृष्टान्त^१

मणिकार मोती को आकाश में फेंककर सूर के बाल को इस तरह खड़ा करता है कि ऊपर से गिरते हुए मोती के छेद में वह प्रवेश कर जाए।

६. घृत दृष्टान्त^२

घृत विक्रेता जो अपने विज्ञान के प्रकर्ष पर पहुंचा हुआ है, चाहे तो गाड़ी में बैठे-बैठे ही कुण्ठकानाल में घी का प्रक्षेप कर सकता है।

७. प्लवक दृष्टान्त^३

प्लवक (नट) आकाशस्थित बांस पर चढ़कर करतब दिखाता है।

८. तुन्नाग दृष्टान्त^४ (रफू करने वाला)

अपने विज्ञान के प्रकर्ष पर पहुंचा हुआ दर्जी इस प्रकार की सिलाई करता है कि दूसरे को पता ही नहीं चले कि यह सिलाई किया हुआ है।

९. वर्धकि दृष्टान्त^५

अपने विज्ञान के प्रकर्ष पर पहुंचा हुआ बढई देवकुल, रथ आदि के प्रमाण को जान लेता है।

१०. आपूपिक दृष्टान्त^६ (रसोइया)

आपूपिक हलवाई आटे को मापे बिना ही अपूप (रोटी) का परिमाण बता देता है।

११. कुम्भकार दृष्टान्त^७

अपने ज्ञान के प्रकर्ष पर पहुंचा हुआ कुम्भकार विवक्षित घट के लिए प्रमाण युक्त मिट्टी लाता है।

१२. चित्रकार^८

चित्रकार रेखा आदि का माप किए बिना ही प्रमाणयुक्त चित्र बना देता है अथवा कुञ्चिका के अन्दर इतना ही रंग ग्रहण करता है जिससे उसका कार्य पूर्ण हो जाए।

५. पारिणामिकी बुद्धि के दृष्टांत

१. अभय दृष्टांत^१

प्रद्योत ने राजगृह नगर को घेर लिया। अभयकुमार ने पूर्व सूचना के आधार पर प्रद्योत के आने से पहले ही सेना के पड़ाव स्थल पर प्रचुर धन गड़वा दिया। फिर चण्डप्रद्योत के पास पहुंचा। प्रणाम करके बोला—मेरे लिए आप और पिताजी दोनों समान हैं। मैं आपके लिए हितकारी बात बताता हूँ। चण्डप्रद्योत ने बात सुनने की उत्सुकता दिखाई। अभयकुमार बोला—पिताजी ने आपके सेनापति को रिश्वत देकर अपने वश में कर लिया। वे लोग प्रातःकाल आपको पकड़वा देंगे। राजा को विश्वास दिलाने के लिए वह

१-३. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५६

- (ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २८५
- (ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२६
- (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६५
- (च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३९
- (छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८२

४. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५६

- (ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २८५
- (ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२६, ५२७
- (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६५
- (च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३९
- (छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८२

५-८. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५७

- (ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २८५
- (ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२७
- (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६५
- (च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १३९
- (छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १८२

९. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५५७

- (ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २८५, २८६
- (ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२७, ५२८
- (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६५, १६६
- (च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४०
- (छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८२

उन्हें सेनापति के डेरे के पीछे ले गया और गड़ा हुआ धन दिखा दिया। राजा उसकी बात से विश्वस्त होकर रात्रि में ही घोड़े पर सवार होकर अपने राज्य में पहुंच गया। यह अभयकुमार की पारिणामिकी बुद्धि थी।

२. श्रेष्ठी दृष्टांत'

एक नगर में काष्ठ नामक श्रेष्ठी रहता था। उसकी पत्नी का नाम था वज्रा। देवशर्मा ब्राह्मण प्रतिदिन उसके घर आता था। एक बार श्रेष्ठी दिग्यात्रा के लिए गया। श्रेष्ठी की पत्नी का देवशर्मा के साथ अनुराग हो गया। श्रेष्ठी के घर तीन पक्षी थे—तोता, मैना और मुर्गा। उन तीनों को प्रशिक्षित कर रात्रि के समय जब ब्राह्मण वज्रा के पास आया, तब मैना ने तोते से कहा—पिता से कौन नहीं डरता ! तोते ने उसे रोकते हुए कहा—ऐसा मत कहो, जो माता को प्रिय है वह हमारा पिता है। मैना ने तोते की बात पर ध्यान नहीं दिया। जब भी ब्राह्मण वज्रा के पास आता, वह उस पर आक्रोश करती। उसके आक्रोशपूर्ण व्यवहार से क्षुब्ध होकर वज्रा ने उसे मार दिया, किन्तु तोते को नहीं मारा।

एक दिन कोई नैमित्तिक वज्रा के घर आया। मुर्गों को देखकर उसने कहा—जो इस मुर्गों के सिर को खाएगा वह राजा बनेगा। यह बात उससे ब्राह्मण ने सुन ली। उसने वज्रा से कहा—इस मुर्गों को मारो, मुझे इसका मांस खाना है। वज्रा बोली—यह मुर्गा तो मेरे लिए पुत्र के सदृश है, अतः इसे मत मारो। ब्राह्मण के बहुत आग्रह करने पर वज्रा ने उसे मार डाला। ब्राह्मण स्नान करने चला गया। इसी बीच वज्रा का पुत्र पाठशाला से आ गया। वह भूख से रोने लगा। वज्रा ने उस मुर्गों के मांस के शीर्ष भाग को पुत्र को परोस दिया। जब ब्राह्मण स्नान आदि से निवृत्त हो भोजन करने बैठा। वज्रा ने अवशिष्ट मांस उसे परोस दिया। उसने सिर मांगा। वज्रा ने कहा—वह तो बालक को दे दिया। यह सुन ब्राह्मण रुष्ट हुआ। उसने कहा—सिर के लिए ही तो मैंने मुर्गों को मारा था। यदि मैं इस बालक का सिर खाऊं तो राजा बन जाऊंगा। उसने मन ही मन बालक को मारकर उसका सिर खाने का निर्णय कर लिया।

धाय ने ब्राह्मण और वज्रा के सारे वार्तालाप को सुन लिया। वह बालक को लेकर वहां से भाग गई। धायमाता और बालक दोनों वहां से किसी दूसरे नगर में पहुंचे। वहां का राजा अकस्मात् मर गया। उसके कोई संतान नहीं थी। परम्परानुसार घोड़े को घुमाया गया। प्रशिक्षित अश्व के द्वारा उसका अभिषेक हुआ। वह बालक अब राजा बन गया।

इधर काष्ठ श्रेष्ठी अपने घर आ गया। उसने घर को पूरी तरह अस्त-व्यस्त पाया। उसने वज्रा से सारी स्थिति का जायजा लेना चाहा पर उसने कुछ भी नहीं बताया। पिंजरे से मुक्त तोते ने ब्राह्मण के साथ संबंध आदि की सारी बात श्रेष्ठी को कह दी। श्रेष्ठी को संसार के सही स्वरूप का ज्ञान हो गया। उसने सोचा मैं इसके लिए इतना कष्ट उठाता हूँ और इसका असली रूप इस प्रकार का है। श्रेष्ठी का मन संसार से विरक्त हो गया। उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

कुछ समय बाद परिस्थितियों में परिवर्तन आया। वज्रा और ब्राह्मण दोनों अभावग्रस्त होकर घूमते-घूमते उसी नगर में पहुंच गए जहां उसका पुत्र राज्य करता था। मुनि के रूप में काष्ठ श्रेष्ठी का भी उसी नगर में पदार्पण हुआ। वज्रा ने मुनि को पहचान लिया। उसने मुनि को छलपूर्वक भिक्षा में स्वर्ण दिया व शोर मचाने लगी। आरक्षकों ने मुनि को पकड़ लिया और उसे राजा के पास ले गए।

धाय ने मुनि को ध्यान से देखा। उसने मुनि को पहचान लिया और राजा को सारी स्थिति से अवगत कराया।

राजा ने पिता को भोग के लिए निमन्त्रित किया। मुनि ने उसे स्वीकार नहीं किया। उसने राजा को संबोध प्रदान कर श्रावक बना दिया।

वर्षावास पूर्ण हो गया। मुनि का अपयश कैसे हो, ऐसा सोचकर ब्राह्मण ने दासी को इस कार्य के लिए नियुक्त किया। दासी ने परिभ्रष्ट औरत (कुलटा) का रूप बनाया। वह गर्भवती के रूप में पीछे-पीछे चलने लगी। उसने मुनि को पकड़ लिया और कहने लगी—हे मुनि ! यह गर्भ तुम्हारा है। तुम इसे छोड़कर कहां जा रहे हो। मुनि ने सोचा—यह लोगों को भ्रांत करेगी तो प्रवचन की अप्रभावना होगी। अतः प्रवचन रक्षा के लिए उन्होंने कहा—यदि यह गर्भ मेरा हो तो प्रसव यथाविधि हो, अन्यथा यह पेट चीरकर बाहर निकले। समय आने पर उस दासी का पेट चीरकर (ऑपरेशन के द्वारा) प्रसव करवाना पड़ा। फलतः दासी की मृत्यु हो गई। लोगों ने यथार्थ जाना। प्रवचन की बहुत अधिक प्रभावना हुई। यह श्रेष्ठी की पारिणामिकी बुद्धि थी।

१. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५८, ५५९

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २८६

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, पृ. ५२८

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, पृ. १६६

(च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४०

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, १८२

३. कुमार दृष्टान्त^१

एक राजकुमार था। उसे लड्डू खाने का बहुत शौक था। एक बार वह मोदक के भण्डार में चला गया। स्त्रियों के साथ जी भरकर मोदक खाए।

उसे अजीर्ण रोग हो गया। अपान भी दूषित हो गई। उसने चिन्तन किया—अहो! यह शरीर कैसा अशुचिमय है। इस प्रकार के मनोहर धान्य कण भी शरीर के संपर्क से दुर्गन्धयुक्त हो गए हैं। अशुचिमय इस शरीर को धिक्कार है। शरीर के प्रति होने वाले इस मोह को धिक्कार है। इस शरीर के लिए प्राणी पापकर्मों का अर्जन करते हैं। इस प्रकार शरीर से अनासक्ति हो गई। यह राजकुमार की पारिणामिकी बुद्धि थी।^२

४. देवी दृष्टान्त^३

पुष्पभद्र नगर में पुष्पसेन राजा, पुष्पवती रानी। उसके दो सन्तान थी—पुष्पचूल और पुष्पचूला। वे दोनों परस्पर अनुरक्त हो गए और भोग भोगने लगे। इमे देख रानी को संसार में विरक्ति हो गई और उसने दीक्षा ले ली। वहां से आयुष्य पूर्ण कर वह देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुई। उसने चिन्तन किया—यदि पुष्पचूल और पुष्पचूला इस अवस्था में मरेंगे तो वे नरक अथवा तिर्यच गति में उत्पन्न होंगे। सन्तान को दुर्गति से बचाने के लिए उसने एक उपाय सोचा और पुष्पचूला को स्वप्न में नारकों को दिखाया। नारक अवस्था के दुःखों को देखकर वह भयभीत हो गई। उसने कुछ धर्मावलम्बियों से नरक के विषय में पूछा, पर वे इस विषय में कुछ नहीं जानते थे। उस समय वहां अणिकापुत्र नामक जैनाचार्य विराजते थे। उन्हें बुलवाया गया। पुष्पचूला ने जब उन्हें नरक के विषय में पूछा। उन्होंने सूत्र का कथन किया। पुष्पचूला ने पूछा—महाराज! क्या आपने भी नरक का स्वप्न देखा? आचार्य ने कहा—नहीं, हमने सूत्र में ऐसा नरक देखा है। (सूत्र में ऐसे नरक का वर्णन मिलता है।)

देवता ने अबकी बार पुष्पचूला को स्वप्न में देवलोक दिखाए। आचार्य अणिकापुत्र से जब उसने देवलोक के विषय में जिज्ञासा की, तो उन्होंने भी वैसे ही वर्णन किया जैसा उसने स्वप्न में देखा था। नरक और देवगति की यथार्थ जानकारी कर उसने समझ लिया कि भोग उसकी दुर्गति के कारण बनेंगे। वह उनसे विरक्त होकर प्रव्रजित हो गई। यह देव (देवी पुष्पवती) की पारिणामिकी बुद्धि थी।

५. उदितोदय दृष्टान्त^४

पुरिमताल नगर, उदितोदय राजा, श्रीकान्ता रानी। दोनों श्रावक थे।

एक बार एक परिव्राजिका आई। उसने परिव्राजक धर्म का उपदेश दिया किन्तु राजा और रानी की युक्तियों से उसे पराजित होना पड़ा। दासियों ने विडम्बनापूर्वक उसे सभा से निकाल दिया। उसके मन में राजा रानी के प्रति द्वेष जाग गया। उनसे बदला लेने के लिए वह वाराणसी गई। वहां उस समय राजा धर्मरुचि शासन करता था। वह धर्मरुचि के दरबार में गई और एक फलक पट्टिका पर रानी श्रीकान्ता का अत्यन्त सुन्दर चित्र बनाकर उसे दिखाया। राजा भी श्रीकान्ता के रूप पर आसक्त हो गया। उसने अपना दूत पुरिमताल भेजा। दूत को प्रतिहत और अपमानित कर नगर से निकाल दिया गया। अन्य उपाय न देखकर राजा धर्मरुचि ने पुरिमताल पर चढ़ाई कर दी और पूरे नगर पर घेराबन्दी कर दी।

राजा उदितोदय ने सोचा—यदि युद्ध होगा, महान् जनहानि होगी। भयंकर जनक्षय से क्या लाभ। उसने उपवास किया और वैश्रवण देव को याद किया। देव ने उसकी भावना जानकर राजा सहित पुरिमताल नगर का संहरण कर लिया। प्रातःकाल नगर को न देख धर्मरुचि को खाली हाथ लौटना पड़ा। युद्ध टल गया। यह उदितोदय की पारिणामिकी बुद्धि थी।

१. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५९

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रोया वृत्ति, पृ. २८६

(ग) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६६

(घ) नन्दी हारिभद्रोया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४१

(च) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८२

२. आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका में यह कथा भिन्न प्रकार से उपलब्ध होती है।

३. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५९

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रोया वृत्ति, पृ. २८६, २८७

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२८, ५२९

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६६

(च) नन्दी हारिभद्रोया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४१

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८२

४. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५९

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रोया वृत्ति, पृ. २८७

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२९

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६६

(च) नन्दी हारिभद्रोया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४१

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८२

६. साधु-नन्दिषेण दृष्टान्त^१

नन्दिषेण राजा श्रेणिक का पुत्र था। उसने भगवान महावीर के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। उसकी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण थी। कुछ समय बाद वह भगवान की अनुमति से भगवान से अलग विहार करने लगा। नन्दिषेण के एक शिष्य को संयम में अरति उत्पन्न हो गई। वह संयम को छोड़कर गृहवास में जाना चाहता था। नन्दिषेण ने सोचा यदि हम भगवान महावीर स्वामी के पास राजगृह में जाएं तो यह मेरे अन्तःपुर की रानियों को देखकर स्थिर हो सकता है। यह सोचकर नन्दिषेण राजगृह में गए। भगवान राजगृह पधार गए। राजा श्रेणिक और अन्य कुमार भी अपने अपने अन्तःपुर के साथ वन्दना करने के लिए आए। सरोवर के मध्य हंसनियों की तरह श्वेत परिधान से युक्त नन्दिषेण का अन्तःपुर सब रानियों से अधिक सुशोभित हो रहा था। उस अस्थिरमना साधु ने उन्हें देखा और विक्षिप्त चित्त से अन्तःपुर की उन अप्सराओं को देखकर चिन्तन करने लगा। मेरे आचार्य ने इतना सुन्दर अन्तःपुर छोड़ा है। मैंने तो किसी को छोड़ा ही नहीं, फिर क्यों मैं भोग के लिए गृहवास में जाऊं। वह पुनः संयम में स्थिर हो गया। नन्दिषेण और साधु दोनों की पारिणामिकी बुद्धि थी।

७. धनदत्त दृष्टान्त^२

धनदत्त के आपत्तिकालीन चिन्तन को पारिणामिकी बुद्धि कहा है।^३

८. श्रावक दृष्टान्त^४

किसी नगर में एक श्रावक रहता था। उसके परस्त्री गमन का प्रत्याख्यान था। एक बार उसने अपनी पत्नी की सखी को देखा। वह उसमें अत्यन्त आसक्त हो गया। उसको इस प्रकार देखकर उसकी पति ने चिन्तन किया—यदि ये इस अध्यवसाय में मृत्यु को प्राप्त होंगे तो नरक गति अथवा तिर्यञ्च गति को प्राप्त करेंगे। इसलिए मुझे कुछ उपाय करना चाहिए। ऐसा सोचकर उसने अपने पति से कहा—आप इतने आतुर न हों। मैं विकाल बेला में उसको आपके पास भेज दूंगी। उसने मंजूर कर लिया। विकालबेला में कुछ अन्धकार होने पर उसने अपनी सखी के वस्त्र व आभूषण धारण कर लिए। सखी के रूप में एकान्त में उसके समक्ष उपस्थित हो गई। यह मेरी पत्नी की सखी है ऐसा जानकर उसने अपनी कामना की पूर्ति कर ली। उसके पश्चात् काम का अध्यवसाय समाप्त हो गया। उस समय उसे पूर्व स्वीकृत व्रत का स्मरण हुआ। मैंने अपने लिए हुए व्रत को खण्डित कर दिया—ऐसा चिन्तन कर वह खिन्न हो गया। उसकी पत्नी ने उसे वस्तुस्थिति बतलाई। वह कुछ स्वस्थ हुआ। गुरु के पास जाकर अपने विकार-पूर्ण मानसिक संकल्प के लिए प्रायश्चित्त किया।

९. अमात्य दृष्टान्त^५

ब्रह्मदत्त को लाक्षागृह में जलाने की योजना बनाई गई। वरधनु के पिता अमात्य ने सुरंग खुदवाकर उस योजना को विफल करवा दिया। यह अमात्य की पारिणामिकी बुद्धि थी।^६

१. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५५९, ५६०

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८७

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२९

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६६

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४१

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८२

२. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५६०

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८७

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२९

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६६

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४१

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८२

३. द्रष्टव्य—पायाधम्मकहाओ १।१८

४. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५६०, ५६१

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८७

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२९

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६६

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४१

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८२

५. (क) आवश्यक चूर्ण पृ. ५६०

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २८७, २८८

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५२९, ५३०

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६६, १६७

(च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४१, १४२

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८२

६. द्रष्टव्य उत्तरज्जयणाणि भाग १, पृ. ३०९ से ३१२

१०. क्षपक दृष्टान्त^१

एक तपस्वी (क्षपक) था। वह क्रोध बहुत करता था। वह मरकर सांप बन गया। फिर वहाँ से मरकर वह राजा के घर उत्पन्न हुआ। कुछ समय बाद वह मुनि बना। चार तपस्वियों की सेवा में लग गया। एकदा भोजन की बेला में क्षपकों ने उस प्रव्रजित राजकुमार के पात्र में थूक दिया। उस समय वह लघु मुनि उसे घी मानकर उपशान्त रहा। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

११. अमात्यपुत्र दृष्टान्त^२

राजा ब्रह्म का अमात्य था धनु। उसके पुत्र का नाम था वरधनु। अमात्य पुत्र उसी के लिए प्रयुक्त हुआ है। अमात्य धनु ने दीर्घपृष्ठ और रानी चुननी के कदाचार पूर्ण संबंधों की बात ब्रह्मदत्त तक पहुंचानी चाही। अमात्य पुत्र वरधनु ने दीर्घपृष्ठ के चरित्र का यथार्थ चित्रण ब्रह्मदत्त के सामने बड़ी बुद्धिमत्ता से किया। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

१२. चाणक्य दृष्टान्त^३

चन्द्रगुप्त राज्य कर रहा था। चाणक्य उसका मन्त्री था। कोश खाली हो गया। खजाने को भरने के लिए चाणक्य ने अनेक उपाय किए। उसमें एक उपाय था कि एक दिन घोड़ों को भगाना और कहा इनके केशों से आकाश को ढकना चाहिए। जनता ने कहा यह संभव नहीं है तो धन लाओ।

१३. स्थूलभद्र दृष्टान्त^४

स्थूलभद्र ने मंत्रीपद को छोड़कर दीक्षा स्वीकार की। यह उनकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

१४. नासिक्य सुन्दरीनन्द दृष्टान्त^५

नासिकपुर नगर नन्दवणिक, सुन्दरी पत्नी। वह अपनी पत्नी में बहुत आसक्त रहता था इसलिए वह सुन्दरीनन्द हो गया। उसका भाई प्रव्रजित हो गया। एक बार वह नासिकपुर आया और उद्यान में ठहरा। जनता धर्मोपदेश सुनने के लिए आई पर उसका भाई नन्द नहीं आया। उसने सुना—नन्द अपनी पत्नी में बहुत आसक्त है। वह उसके घर गया। नन्द ने दान दिया। साधु ने भिक्षा ग्रहण कर भिक्षा-पात्र भाई के हाथ में दे दिया और कहा—आओ मेरे साथ चलो। लोग नन्द के हाथ में पात्र देखकर उपहास करने लगे—‘क्या सुन्दरीनन्द प्रव्रजित हो गया है?’ फिर भी वह मुनि के साथ उद्यान तक गया। साधु ने उसे देशना दी किन्तु पत्नी के प्रति अत्यन्त अनुराग होने के कारण उस पर उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। साधु वैक्रिय लब्धि सम्पन्न थे। उन्होंने चिन्तन किया—कोई दूसरा उपाय करना चाहिए।

मुनि ने वैक्रिय लब्धि से मर्कटयुगल की विकुर्वणा की। साधु ने नन्द से पूछा। सुन्दरी अधिक सुन्दर है या मर्कट-युगल? नन्द ने कहा—सर्षप व मेरु की कैसी तुलना। उसके पश्चात् साधु ने विद्याधर-युगल की विकुर्वणा की। नन्द से पूछा—बताओ विद्याधर-युगल सुन्दर है या सुन्दरी? नन्द ने कहा दोनों समान ही हैं। साधु ने देवयुगल का रूप दिखाया। और वहीं प्रश्न किया—बताओ कौन सुन्दर है देवयुगल या सुन्दरी? नन्द ने कहा—भगवन्! इस देवयुगल के समक्ष तो सुन्दरी बन्दरी की तरह लगती है। मुनि ने कहा—थोड़ा सा धर्माचरण करने से तुम ऐसी अनेक देवियां प्राप्त कर सकते हो। मुनि के इस कथन पर उसे विश्वास हो गया और उसकी सुन्दरी के प्रति आसक्ति कम हो गई। कुछ समय बाद उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। यह साधु की पारिणामिकी बुद्धि थी।

१,२. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५६१

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रोया वृत्ति, पृ. २८८

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५३०

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६७

(च) नन्दी हारिभद्रोया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४२

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८३

३. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५६३-५६६

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रोया वृत्ति, पृ. २८९,२९०

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५३१,५३२

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६७

(च) नन्दी हारिभद्रोया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४२

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८३

४,५. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५६६

(ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रोया वृत्ति, पृ. २९०,२९१

(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५३२,५३३

(घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६७

(च) नन्दी हारिभद्रोया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४३

(छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८३

१५. वज्रस्वामी दृष्टान्त^१

वज्रस्वामी ने संघ को बहुमान दिया। यह उनकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

१६. चरणाहत दृष्टान्त^२

एक राजा था। वह तरुण था। एक बार कुछ नवयुवकों ने मिलकर राजा से निवेदन किया—देव ! आप नवयुवकों को ही अपने पास रखिए। उन स्थविरों से क्या ? जिनके केश पक गए हैं और शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया है। ऐसे लोग आपकी सेवा में रहते हुए शोभा नहीं देते।

नवयुवकों के इस प्रस्ताव पर उनकी बुद्धि की परीक्षा करने के लिए राजा ने उनसे पूछा—यदि कोई मेरे सिर पर पांव से प्रहार करे तो उसे क्या दण्ड देना चाहिए ? नवयुवक बोले—महाराज ! तिल जितने छोटे-छोटे टुकड़े करके उनको मरवा देना चाहिए। राजा ने यही प्रश्न स्थविर पुरुषों से किया। स्थविर पुरुषों ने कहा—स्वामिन् ! हम चिन्तन करके कहेंगे। वे एकांत स्थान में गए और विचार करने लगे—रानी के सिवाय दूसरा कौन व्यक्ति राजा के सिर पर पांव से प्रहार कर सकता है। अतः उसका विशेष सम्मान करना चाहिए। ऐसा चिन्तन करके स्थविर पुरुष राजा की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने निवेदन किया—स्वामिन् ! उसका विशेष सत्कार करना चाहिए। यह उत्तर सुनकर राजा संतुष्ट हुआ। उनकी प्रशंसा की और कहने लगा—वृद्धों को छोड़कर इस प्रकार का बुद्धिमान कौन हो सकता है। इसलिए वह अपने पास स्थविरों को ही रखने लगा। तरुणों को अपनी सेवा में नहीं रखा। यह राजा और स्थविर पुरुषों की पारिणामिकी बुद्धि थी।

१७. कृत्रिम आंवला दृष्टान्त^३

एक व्यक्ति ने किसी व्यक्ति को कृत्रिम आंवला दिया। उसका रंग, रूप तथा आकार आंवले जैसा ही था, पर स्पर्श कठोर था। वह ऋतु आंवला फलने की नहीं थी अतः उस व्यक्ति ने ऋतु और स्पर्श की कठोरता के आधार पर बता दिया कि वह आंवला कृत्रिम है।

१८. मणि का दृष्टान्त^४

एक जंगल में एक सांप रहता था। उसके मस्तक पर मणि थी। रात्रि के समय वृक्षों पर चढ़कर पक्षियों के अण्डों को खा जाता था। एक बार वह वृक्ष से नीचे गिर पड़ा और मणि वृक्ष पर ही रह गई। वृक्ष के नीचे एक कुंआ था। मणि की प्रभा के कारण उसका पानी लाल दिखाई देने लगा। किसी बच्चे ने लाल पानी देखकर अपने वृद्ध पिता के पास जाकर कहा। वृद्ध पुरुष वहां आया और पानी लाल होने का कारण समझ गया। इधर उधर खोजकर उसने मणि प्राप्त कर ली। यह वृद्ध की पारिणामिकी बुद्धि थी।

१९. सर्प का दृष्टान्त^५

चण्डकौशिक सर्प का भगवान् के प्रति जो चिन्तन हुआ, भगवान् की महिमा को जाना। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

१. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५६६

- (ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २९१
- (ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५३३
- (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६७
- (च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४३
- (छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८३

२. (क) आवश्यक चूर्ण पृ. ५६६, ५६७

- (ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २९१
- (ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५३३
- (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६७
- (च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४३
- (छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८३

३. (क) आवश्यक चूर्ण पृ. ५६७

- (ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २९१
- (ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५३३
- (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६७
- (च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४३
- (छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८३

५. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५६७

- (ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्राया वृत्ति, पृ. २९१
- (ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५३३
- (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६७
- (च) नन्दी हारिभद्राया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४३
- (छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८३

२. खड्गि दृष्टान्त^१

किसी नगर में श्रावक रहता था। छोटी अवस्था में मृत्यु हो गई। वह यौवन के मद से मूढ बना रहा। धर्माचरण नहीं किया। फलतः वह मरकर गेंडा बना। वह बहुत क्रूर था। जंगल में आने वाले मनुष्यों को मारकर खा जाता था। एक बार कुछ मुनि उस जंगल से गुजर रहे थे। उन्हें देखा पर आक्रमण नहीं कर सका। वह चिन्तन में डूब गया, पूर्वजन्म की स्मृति हो गई। पूर्व भव को जानकर उसने अनशन कर लिया। आयुष्य पूरा कर वह देवलोक में गया। यह गैडे की पारिणामिकी बुद्धि थी।

२१. स्तूप दृष्टान्त^२

वैशाली पर विजय पाने के लिए कूणिक का प्रयत्न सफल नहीं हुआ। उस समय कूलबालुक ने मुनिसुव्रत स्वामी के स्तूप को उखाड़ने का सुझाव दिया। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।^३

१. (क) आवश्यकचूर्ण, पृ. ५६७
 (ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २९१
 (ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५३३
 (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६७
 (च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४३
 (छ) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, प. १८३

२. (क) आवश्यक चूर्ण, पृ. ५६७, ५६८

- (ख) आवश्यक निर्युक्ति हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. २९१
 (ग) आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरीया वृत्ति, प. ५३३
 (घ) नन्दी मलयगिरीया वृत्ति, प. १६७
 (च) नन्दी हारिभद्रीया वृत्ति टिप्पणकम्, पृ. १४३
 (छ) आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, प. १८३
 ३. आवश्यक निर्युक्ति दीपिका में इस कथा के स्थान पर 'स्तूप' और 'इन्द्र' दो भिन्न कथाएं मिलती हैं।

परिशिष्ट : ४

विशेषनामानुक्रम-देशीशब्द

अई (ती) य	समय का प्रकार	२२, २५	अज्जमंगु	श्रुतधर आचार्य	गा० २८
अंग	ग्रंथ	८१-९१, १२३	अज्जसमुद्	श्रुतधर आचार्य	गा० २७
अंगचूलिया	ग्रंथ	७८	अज्जभयण	ग्रन्थ परिच्छेद	८१-८७, ९०, ९१
अंगपविट्ट	श्रुतज्ञान का भेद	५५, १२७, १२७।१	अट्टापय	दृष्टिवाद परिच्छेद	९४, ९५
अंगपविट्ट	ग्रंथ	७३, ८०	अड्ढभरह	जनपद ग्राम	गा० ३३, ३७
अंगबाहिर	ग्रंथ	७३, ७४	अणंगपविट्ट	श्रुतज्ञान का भेद	५५
अंगुल	मान का प्रकार	१८।३, ८, २०, २२, २५	अणंगपविट्ट	ग्रंथ	७९
अंतगडदसा	ग्रंथ	६५, ८०, ८१	अणंत	तीर्थकर	गा० १९
अंतगय	अवधिज्ञान का भेद	१०-१४, १६	अणंतर	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२
अंतरदीवग	मनुष्य	२३	अणंतरसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३०, ३१
अंतरदीवग	जनपद ग्राम	२३, २५	अणक्खर	श्रुतज्ञान का भेद	६०।१
अंतोमणुस्सखेत्त	जनपद ग्राम	२५	अणक्खरसुय	श्रुतज्ञान का भेद	५५, ६०
अंतोमुहुत्तिय	समय का प्रकार	५०	अणाइय	श्रुतज्ञान का भेद	५५, ६२, ६९, ७१
अकंपिय	गणधर	गा. २१	अणागय	समय का प्रकार	२२, २५
अकम्मभूमि	जनपद ग्राम	२५	अणाणुगामिय	अवधिज्ञान का भेद	९, १७
अकम्मभूमिय	मनुष्य	२३	अणुओग	दृष्टिवाद परिच्छेद	९२, ११९, १२१
अकिरिय	अन्यतीर्थिक	गा० ९	अणुओगदार	ग्रंथ	७७
अकिरियवाई	अन्यतीर्थिक	८२	अणुओगदार	ग्रंथ परिच्छेद	८१-९१, १२३
अक्खर	श्रुतज्ञान का भेद	७१, १२७।१	अणुओगिय	व्याख्यानार्थ	गा० ३८
अक्खरसुय	श्रुतज्ञान का भेद	५५, ५६, ५९	अणुत्तरोववाइयदसा	ग्रंथ	६५, ८०, ८९
अगणि	अग्नि	१८।२	अणुप्पवाय	पूर्व	११८।१
अगमिय	श्रुतज्ञान का भेद	५५, ७२	अणुसार	अनक्षर श्रुत का भेद	६०।१
अग्गिभूइ	गणधर	गा० २०	अणेगसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३१
अग्गिवेसायण	गोत्र	गा० २३	अण्णालिगसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३१
अग्गेणीय	पूर्व	१०४, १०६	अण्णाणियवाइ	अन्यतीर्थिक	८२
अचरमसमय- अजोगिभवत्थ	केवलज्ञान का भेद	२८	अतित्थयरसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३१
अचरमसमय- सजोगिभवत्थ	केवलज्ञान का भेद	२९	अतित्थसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३१
अच्छिण्णच्छेयनइय	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०३	अत्थसत्थ	लौकिक ग्रंथ	३८।४
अजाणिया	परिषद्	१	अत्थिनत्थिप्पवाय	पूर्व	१०४, १०८
अजिय	तीर्थकर	गा० १८	अत्थुग्गह	मतिज्ञान का भेद	४०, ४२
अजोगिभवत्थ	केवलज्ञान का भेद	२७, २९	अद्धमास	समय का प्रकार	१८।५
अज्जजोयधर	श्रुतधर आचार्य	गा० २६	अपज्जवसिय	श्रुतज्ञान का भेद	५५, ६८, ६९, ७१
अज्जनागहत्थि	श्रुतधर आचार्य	गा० ३०	अपढमसमय- अजोगिभवत्थ	केवलज्ञान का भेद	२९
			अपढमसमय- सजोगिभवत्थ	केवलज्ञान का भेद	२८

अपढमसमय सिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३२	आवलिवा	समय का प्रकार	१८।३,२२
अपोह	मतिज्ञान का पर्यायवाची	५४।६,६२	आवस्सय	ग्रन्थ	७४,७५
अप्पडिवाइ	अवधिज्ञान का भेद	९,२१	आवस्सयवइरित्त	ग्रन्थ	७४,७६,७९
अप्पडिवाइ	केवलज्ञान का भेद	३३।१	आवाग	आवा (पज्जावा)	५३
अभय	व्यक्ति	३८।११	आसुरुत्त	लौकिक ग्रन्थ	६७
अभिनंदन	तीर्थंकर	गा० १८	आहच्चाय	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२
अभिन्नदसपुव्वि	श्रुतधर	६६	इंदभूई	गणधर	गा. २०
अमच्च	राजपरिकर	३८।११	इंदियपच्चक्ख	ज्ञान	४,५
अम्मा	पारिवारिक सदस्य	८६-८९,९१	इत्थिलिंगसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३१
अयलपुर	जनपद ग्राम	गा० ३२	इसिभासिय	ग्रंथ	७८
अयलभाया	गणधर	गा० २१	ईहा	मतिज्ञान का भेद	३९,४४,४५,५०, ५३,५४।१
अर	तीर्थंकर	गा० १९	ईहा	मतिज्ञान का पर्यायवाची	५४।६,६२
अरय	वाहन व वाहन के उपकरण	गा० ५	उक्का	अग्नि	१२-१५
अरुणोववाय	ग्रंथ	७८	उक्कालिय	ग्रन्थ	७२,७६,७७
अलाय	अग्नि	१२-१५	उग्गह	मतिज्ञान का भेद	३९,४०,४३,५०, ५४।१
अवंभ	पूर्व	१०४,११५	उज्जाण	उद्यान	८६-८९,९१
अवलंबणया	अवग्रह का पर्यायवाची	४३	उज्जुमइ	मनःपर्यवज्ञान का भेद	२४,२५
अवाय	मतिज्ञान का भेद	३९,४६,४७,५०, ५३,५४।१	उज्जुसुय	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२
अवाय	अवाय का पर्यायवाची	४७	उज्झर	जल व जलाशय	गा. १५
असंखेज्जसमयसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३२	उत्तरज्झयणाइ	ग्रंथ	७८
असण्णि	प्राणिवर्ग	६२,६४	उदग	जल व जलाशय	२५
असण्णिसुय	श्रुतज्ञान का भेद	५५,६४	उदिओदय	व्यक्ति	३८।११
असुयनिस्सिय	मतिज्ञान का भेद	३७,३८	उद्देसग	ग्रन्थ परिच्छेद	८५
असुर	देव	गा० ३	उद्देसण	ग्रन्थ परिच्छेद	८१-८४,८६-९१
अस्स	प्राणि वर्ग	३८।६	उप्पत्तिया	मतिज्ञान का भेद	३८।१,२,७९
आउरपच्चक्खाण	ग्रन्थ	७७	उप्पायपुव्व	पूर्व	१०४,१०५
आगर	खान	८३	उवट्टाणसुय	ग्रंथ	७८
आगासपय	दृष्टिवाद परिच्छेद	९४-१००	उवधारणया	अवग्रह का पर्यायवाची	४३
आजीविय	अन्यतीर्थिक	१०१,१०३	उवसंपज्जणसेणिया-परिकम्म	दृष्टिवाद परिच्छेद	९३,९८
आणुओगिय	व्याख्यानार्थ	गा. ३२,४३	उवसंपज्जणावत्त	दृष्टिवाद परिच्छेद	९८
आणुगामिय	अवधिज्ञान का भेद	९,१०	उवासगदसा	ग्रंथ	६५,८०,८७
आभिण्णिवोहिय	ज्ञान	३५,५४।६	उसभ	तीर्थंकर	गा. १८
आभिण्णिवोहियनाण	ज्ञान	२,३४,३५,३७, ५१,५४।६	उसहसामि	तीर्थंकर	७९
आभीरी	जाति	गा. ४४	ऊससिय	अनक्षर श्रुत का भेद	६०।१
आभोगणया	ईहा का पर्यायवाची	४५	एकसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३१
आयप्पवाय	पूर्व	१०४,१११	एगगुण	दृष्टिवाद परिच्छेद	९४-१००
आयरिय	पद	गा. ३९, सू. ३५	एगट्टियपय	दृष्टिवाद परिच्छेद	९४,९५
आयविसोहि	ग्रन्थ	७७	एरवय	जनपद ग्राम	६९
आयार	ग्रन्थ	६५,८०,८१	एलावच्च	गोत्र	गा. २५
आवट्टणया	अवाय का पर्यायवाची	४७	एवंभूय	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२
आवलियंत	समय का प्रकार	१८।३	एगट्टियपय	दृष्टिवाद परिच्छेद	९४,९५

ओगाढसेणियापरिकम्म दृष्टिवाद परिच्छेद	१३, ९७	कुंड	जलाशय	८३	
ओगाढावत्त	दृष्टिवाद परिच्छेद	१७	कुंथु	तीर्थकर	गा. १९
ओगेण्हणया	अवग्रह का पर्यायवाची	४३	कुच्छि	मान का प्रकार	२०
ओवाइय	ग्रन्थ	७७	कुडग	गृह उपकरण	गा. ४४
ओसप्पिणी	समय का प्रकार	१८८, २२, ६९, १२१	कुलगर	राजा का प्रकार	१२१
ओहि	ज्ञान	१८१, २२१, १, २	कुवलय	वनस्पति	गा. ३१
ओहिनाण	ज्ञान	२, ८, १०, १७-२२	कुसमय	लौकिक ग्रन्थ	गा. २२
ओहिनाणपच्चक्ख	ज्ञान	६	कुसुम	वनस्पति	गा. १६
ओहिनाण	ज्ञानी	२२, १२०	कुहर	शास्त्रमण्डपादि	गा. १५
कंदरा	पर्वत	गा. १४	कूड	पर्वत	गा. १३, सू. ८३
कच्चायण	गोत्र	गा. २३	कूव	जलाशय	३८६
कणगसत्तरि	लौकिक ग्रंथ	६७	केउभूय	दृष्टिवाद परिच्छेद	९४-१००
कणय (ग)	धातु व रत्न	गा. १३, १७	केउभूयपडिगह	दृष्टिवाद परिच्छेद	९४-१००
कणिया	वनस्पति	गा. ७	केवलनाण	ज्ञान	२, २६, ३३, ३३२
कप्प	ग्रन्थ	७८	केवलनाणपच्चक्ख	ज्ञान	६
कप्परुक्खग	वनस्पति	गा. १६	केसराल	वनस्पति	गा. ७
कप्पवडसिया	ग्रन्थ	७८	कोट्टु	धारणा का पर्यायवाची	४९
कप्पाकप्पिय	ग्रन्थ	७७	कोडिल्लय	लौकिक ग्रंथ	६७
कप्पासिय	लौकिक ग्रन्थ	६७	कोलिय	शिल्पी व व्यवसायी	३८१९
कमल	वनस्पति	गा. ३७	कोसिय	गोत्र	गा. २५, २६
कम्मपयाड	ग्रंथ	गा. ३	खओवसमिय	अवधिज्ञान का भेद	७, ८
कम्मप्पवाय	पूर्व	१०४, ११२	खंदिलायरिय	श्रुतधर आचार्य	गा. ३३
कम्मभूमि	जनपद-ग्राम	२५	खंभ	गृह	३८३
कम्मभूमिय	मनुष्य	२५	खग्गि	प्राणीवर्ग	३८३
कम्मया	मतिज्ञान का भेद	३८१, ७९	खाणि	खान	गा. ४१
करग ^१		गा. २८	खमासमण	आचार्य विशेषण	३८१२
करण ^२	ग्रन्थ		खासिय	अनक्षर श्रुत का भेद	६०११
करिसय	शिल्पी व व्यवसायी	३८१९	खडुग	आभूषण	३८३
काउस्सग्ग	ग्रन्थ परिच्छेद	७५	खुडुगपयर		२५
काय	प्राणी वर्ग	३८३	खुडुयाविमाण-	ग्रन्थ	७८
कालिओवएस	संज्ञिश्रुत का भेद	६१, ६२	पविभत्ति		
कालिय	ग्रन्थ	७२, ७६, ७८, ७९	गंडिया	दृष्टिवाद परिच्छेद	१२१
कालियसुय	ग्रन्थ	गा. ३२, ३५, ४३	गंडियाणुओग	दृष्टिवाद परिच्छेद	११९, १२१
काविल	लौकिक ग्रंथ	६७	गणह (ध)र	पद	गा. २१, सू. १२०, १२१
कासव	गोत्र	गा. २३	गणिपिडग	ग्रन्थ	६५, ६६, ६८, ८४, १२४-१२६
किरियावाइ	अन्यतीर्थिक	८२	गणिय	लौकिक ग्रन्थ	३८६
किरियाविसाल	पूर्व	१०४, ११७	गणिविज्जा	ग्रन्थ	७८
कुंच	प्राणी वर्ग	३८७	गद्भ	प्राणीवर्ग	३८६

१. कालिकादिसूत्रोक्तमेवोपधिप्रत्युपेक्षणादिक्रियाकलापं करोतीति कारकः ।

२. करणं — पिण्डविशुद्ध्यादि ।

गब्भवककंतिय	जन्म का प्रकार	२३	चकिखदियपच्चक्ख	ज्ञान	६
गमिय	श्रुतज्ञान का भेद	५५,७२,१२७।१	चकिखदियलद्धिक्खर	अक्षर श्रुत का भेद	५९
गरुलोववाय	ग्रन्थ	७८	चरमसमयअजोगि-	केवलज्ञान का भेद	२९
गवेसणया	ईहा का पर्यायवाची	४५	भवत्थ		
गवेसणा	मतिज्ञान का पर्याय- वाची	५४।६,६२	चरमसमयसजोगि-	केवलज्ञान का भेद	२८
गह	ग्रह	गा. १०	भवत्थ		
गाउय	मान का प्रकार	१८।४,२०	चरणविहि	ग्रन्थ	७७
गिहिलिगसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३१	चाणक्य	व्यक्ति	३८।१२
गुणपच्चइय	अवधिज्ञान का भेद	२२।१	चामीयर	धातु व रत्न	गा. १२
गुणपच्चइय	मनःपर्यवज्ञान का भेद	२५।१	चालणि	गृह उपकरण	गा. ४४
गुहा	पर्वत	गा. १४, सू. ८३	चिंता	ईहा का पर्यायवाची	४५
गो	प्राणी वर्ग	गा. ४४	चिंता	मतिज्ञान का पर्यायवाची	६२
गोयम	गोत्र	गा. २४	चित्रकार	शिल्पी व व्यवसायी	३८।९
गोल	गृह उपकरण	३८।३	चूडलिय	अग्नि	१२-१५
घड (कार)	शिल्पी व व्यवसायी	३८।९	चुयअचुयसेणिया-	दृष्टिवाद परिच्छेद	१००
घय	शिल्पी व व्यवसायी	३८।९	परिकम्म		
घयण	जाति	३८।३	चुयअचुयावत्त	दृष्टिवाद परिच्छेद	१००
घाणिदियअत्थुग्गह	मतिज्ञान का भेद	४२	चुयाचुयसेणिया-	दृष्टिवाद परिच्छेद	९३
घाणिदियअवाय	"	४६	परिकम्म		
घाणिदियईहा	"	४४	चुल्लकप्पसुय	ग्रन्थ	७७
घाणिदियधारणा	"	४८	चुल्लवत्थु	दृष्टिवाद परिच्छेद	११८।३,१२३
घाणिदियपच्चक्ख	ज्ञान	६	चूलिया	दृष्टिवाद परिच्छेद	९२,११८।३,१२२
घाणिदियलद्धि-	अक्षरश्रुत का भेद	५९	चूलियावत्थु	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०५-१०८
अक्खर			चेइय	गृह	८६-८९,९१
घाणिदियवज्जणुग्गह	मतिज्ञान का भेद	४१	चोइसपुव्वि	श्रुतधर	६६
घोडग	प्राणी वर्ग	३८।७	छिण्णच्छेयनइय	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०३
घोडमुह	लौकिक ग्रन्थ	६७	छीय	अनक्षरश्रुत का भेद	६०।१
चउक्कण (न) इय	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०१,१०३	छेलिय	अनक्षरश्रुत का भेद	६०।१
चउवीसत्थय	ग्रन्थ परिच्छेद	७५	जंबु	श्रुतधर आचार्य (अन्तिम केवली)	गा. २३
चउसमयसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३२	जंबुद्दीव	जनपद ग्राम	१८।५
चंद	ग्रह	गा. ९ सू. ६१	जंबुद्दीवपण्णत्ति	ग्रन्थ	७८
चंदगविज्जय	ग्रन्थ	७७	जच्चंजण	धातु व रत्न	गा. ३१
चंदपण्णत्ति	ग्रन्थ	७८	जलूम	प्राणीवर्ग	गा. ४४
चंपग	वनस्पति	गा. ३७	जलोह	जलाशय	गा. ७
चक्क	वाहन व वाहन के उपकरण	गा. ५	जव	मान का प्रकार	२०
चक्कवट्टि	राजा का प्रकार	१२१	जसभद्	श्रुतधर आचार्य	गा. २४
चकिखदियअत्थुग्गह	मतिज्ञान का भेद	४२	जसवंश	वंश	गा. ३०
चकिखदियअवाय	मतिज्ञान का भेद	४६	जाणिया	परिषद्	१
चकिखदियईहा	मतिज्ञान का भेद	४४	जाहग	प्राणीवर्ग	गा. ४४
चकिखदियधारणा	मतिज्ञान का भेद	४८	जिब्भिदियअत्थुग्गह	मतिज्ञान का भेद	४२

जिन्मिदियअवाय	मतिज्ञान का भेद	४६	दह	जलाशय	८३
जिन्मिदियईहा	मतिज्ञान का भेद	४४	दिट्टिवाओवएस	संज्ञिश्रुत का भेद	६१,६४
जिन्मिदियधारणा	मतिज्ञान का भेद	४८	दिट्टिवाय	ग्रंथ	६५,७२,८०,९२, १२३
जिन्मिदियपच्चक्ख	ज्ञान	६			
जिन्मिदियवंजणुग्गह	मतिज्ञान का भेद	४१	दिवस	समय का प्रकार	१८।४
जीवाभिगम	ग्रंथ	७७	दिवसंत	समय का प्रकार	१८।४
(जीवजीवाभिगम)			दीव	जनपद ग्राम	गा. २७, १८।६, २५
जूया	मान का प्रकार	२०	दीवसागरपण्णत्ति	ग्रंथ	७८
जोइ	अग्नि	१२-१५	दुगुण	दृष्टिवाद परिच्छेद	९४-१००
जोइट्टाण	अग्नि	१७	दुप्पडिग्गह	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२
जोइस	ग्रह	२५	दुयावत्त	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२
भरग ^१		गा. २८	दुवालसंग	ग्रंथ	६५,६६,६८, १२४-१२६
भाणविभत्ति	ग्रंथ	७७	दुव्वियड्डा	परिषद्	१
टंक	पर्वत	८३	दुसमयसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३२
ठवणा	धारणा का पर्यायवाची	४९	दुसगणि	श्रुतधर आचार्य	गा. ४१
ठाण	ग्रंथ	६५,८०,८३	देविदत्थय	ग्रंथ	७७
डोय	शिल्पी व व्यवसायी	३८।९	देविदोववाय	ग्रंथ	७७
णयर	जनपद ग्राम	गा. ४	घणदत्त	व्यक्ति	३८।११
णागज्जुणारिय	श्रुतधर आचार्य	गा. ३५	धणु	मान का प्रकार	२०
तंदुलवेयालिय	ग्रंथ	७७	धम्म	तीर्थकर	गा. १९
तिगनइय	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०३	धरणा	धारणा का पर्यायवाची	४९
तिगुण	दृष्टिवाद परिच्छेद	९४-१००	धरणोववाय	ग्रंथ	७८
तित्थंकर	पद	गा. २२	धातु	धातु व रत्न	गा. १४
तित्थयर	पद	गा. २५,३३ सू. ७९,१२१	धारणा	मतिज्ञान का भेद	३९
तित्थयरसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३१	नई	जलाशय	८३
तित्थसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३१	नंदनवन	उद्यान	गा. १३
तिसमयसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३२	नंदावत्त	दृष्टिवाद परिच्छेद	९४-१००,१०२
तुंगिय	गोत्र	गा. २४	नंदिलखमण	श्रुतधर आचार्य	गा. २९
तुंब	वाहन व वाहन के उपकरण	गा. ५	नंदिसेण	व्यक्ति	३८।११
तुण्णाग	शिल्पी व व्यवसायी	३८।९	नंदी	ग्रंथ	७७
तुरय	प्राणी वर्ग	गा. ६	नपुंसगलिगसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३१
तेरासिय	अन्यतीर्थिक	१०१,१०३	नमि	तीर्थकर	गा. १९
थूभ	गृह	३८।१३	नगर	जनपद ग्राम	गा. ३३
थूलभद्	श्रुतधर आचार्य	गा. २४, सू. ३८।१२	नाइल	वंश	गा. ३८
दससमयसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३२	नाग	देव	९०
दसवेयालिय	ग्रंथ	७७	नागज्जुणरिसि	श्रुतधर आचार्य	गा. ३९
दसा	ग्रंथ	७७	नागज्जुणवायय	श्रुतधर आचार्य	गा. ३६
दसार	राजा प्रकार	१२१	नागपरियावणिया	ग्रंथ	७८
			नागसुहुम	लौकिक ग्रंथ	६७

१. धर्मध्यानं ध्यायतीति ध्याता ।

नाडग	लौकिक ग्रंथ	६७	पढमसमयसजोगि-भवत्थ	केवलज्ञान का भेद	२८
नाणप्पवाय	पूर्व	१०४, १०९	पणग	वनस्पति	१८१
नाणय	नोली	३८४	पणवणा	ग्रंथ	७७
नायाधम्मकहा	ग्रंथ	६५, ८०, ८६	पण्णा	मतिज्ञान का पर्यायवाची	५४१६
नाल	वनस्पति	गा. ७	पण्णास	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२
नासिकक	जनपद ग्राम	३८१२	पण्हावागरण	ग्रंथ	६५, ८०, ९०
निच्छूढ	अनक्षरश्रुत का भेद	६०११	पत्तेयबुद्धसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३१
निज्जुत्ति	ग्रंथ परिच्छेद	८१-९१, १२३	पम्भार	पर्वत	८३
निमित्त	लौकिक ग्रंथ	३८१६	पभव	श्रुतधर आचार्य	गा. २३
निरयावल्लिया	ग्रंथ	७८	पभावग	आचार्य विशेषण	गा. २८
निव्वोदय	जलाशय	३८१७	पमायप्पमाय	ग्रंथ	७७
निसीह	ग्रंथ	७८	परंपर	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२
निस्सिधिय	अनक्षरश्रुत का भेद	६०११	परंपरसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३०, ३२
नीससिय	अनक्षरश्रुत का भेद	६०११	परतित्थिय	अन्यतीथिक	गा. १०
नेमि	तीर्थकर	गा. १९	परमोहि	ज्ञान	१८१२
नोइंदियअत्थुग्गह	मतिज्ञान का भेद	४२	परसमय	लौकिकग्रंथ	८२-८५
नोइंदियअवाय	मतिज्ञान का भेद	४६	परिकम्म	दृष्टिवाद परिच्छेद	९२, ९३, १०१
नोइंदियईहा	मतिज्ञान का भेद	४४	परिणयापरिणय	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२
नोइंदियधारणा	मतिज्ञान का भेद	४८	परिपूणग	गृह उपकरण	गा. ४४
नोइंदियपच्चक्ख	ज्ञान	६	परोक्ख	ज्ञान	३, ३४
नोइंदियलद्धिक्खर	अक्षरश्रुत का भेद	५९	पलिओवम	समय का प्रकार	२५
नोउस्सप्पिणी	समय का प्रकार	६९	पवत्तिणी	पद	१२०
नोओसप्पिणी	समय का प्रकार	६९	पवय	शिल्पी व व्यवसायी	३८१९
पइ	पारिवारिक सदस्य	३८१३	पहास	गणधर	गा. २१
पइट्टा	धारणा का पर्यायवाची	४९	पाइण्णग	गोत्र	गा. २४
पइण्णग	ग्रंथ	७९	पागार	गृह	गा. ४
पईव	अग्नि	१२-१५	पाडिच्छम ^१		गा ४२
पउम	वनस्पति	गा. ८	पाढ	दृष्टिवाद परिच्छेद	९४-१००
पच्चक्ख	ज्ञान	३, ४, ३३	पाणाउ	पूर्व	१०४, ११६
पच्चक्खाण	ग्रंथ परिच्छेद	७५	पाय	शरीरांग	गा. ४२
पच्चक्खाण	पूर्व	१०४, ११३	पाय	मान का प्रकार	२०
पच्चावट्टणया	अवाय का पर्यायवाची	४७	पायस	खाद्य	३८१३
पडागा	गृह उपकरण	गा. ६	पारिणामिया	मतिज्ञान का भेद	३८११, १०, १२, १३
पडिक्कमण	ग्रंथ परिच्छेद	७५	पारियल्ल	वाहन व वाहन के उपकरण	गा. ५
पडिवत्ति	ग्रंथ परिच्छेद	८१-९४, १२३	पावयणि ^१	प्रवचनकार आचार्य	गा. ४२
पडिवाइ	अवधिज्ञान का भेद	९, २०	पावादुय	अन्यतीथिक	८२
पढमसमयअजोगि-भवत्थ	केवलज्ञान का भेद	२९	पास	तीर्थकर	गा. १९
			पासओ	अवधिज्ञान का भेद	११, १४, १६

१. ये गच्छान्तरवासिनः स्वाचार्यं पृष्ट्वा गच्छान्तरेऽनुयोगश्रवणाय समागच्छन्ति अनुयोगाचार्येण च प्रतीच्छ्यन्ते—अनुमन्यन्ते ते प्रातीच्छिका उच्यन्ते, स्वाचार्यानुज्ञापुरःसरमनुयोगाचार्यप्रतीच्छ्या चरन्तीति प्रातीच्छिका इति वगुत्पत्तेः ।
 २. 'प्रावचनिकानां' प्रवचने —प्रवचनार्थकथने नियुक्ताः प्रावचनिकास्तेषां, तत्कालापेक्षया युगप्रधानानामित्यर्थः ।

पाहुड	दृष्टिवाद परिच्छेद	१२३	भद्बाहु	श्रुतधर आचार्य	गा. २४, १२१
पाहुडपाहुड	दृष्टिवाद परिच्छेद	१२३	भरह	जनपद ग्राम	१८५, ६९
पाहुडपाहुडिया	दृष्टिवाद परिच्छेद	१२३	भरह	व्यक्ति	३८३
पाहुडिया	दृष्टिवाद परिच्छेद	१२३	भवत्थकेवलनाण	केवलज्ञान का भेद	२६, २७
पियर	पारिवारिक सदस्य	८६-८९, ९१	भवन	गृह	गा. ४
पियामह	पारिवारिक सदस्य	गा. १	भवपच्चइय	अवधिज्ञान का भेद	७, २२।१
पुट्टुसेणियापरिकम्म	दृष्टिवाद परिच्छेद	९३, ९६	भारह	लौकिक ग्रंथ	६७
पुट्टापुट्टु	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२	भूयदिण्ण	श्रुतधर आचार्य	गा. ३९
पुट्टावत्त	दृष्टिवाद परिच्छेद	९६	भेरी	वाद्य	गा. ४४
पुत्त	पारिवारिक सदस्य	३८।३	मइ	ज्ञान	३५, ३६
पुप्फचूलिया	ग्रंथ	७९	मइ	मतिज्ञान का पर्यायवाची	५४.६
पुप्फदंत	तीर्थकर	गा. १८	मइअण्णाण	अज्ञान	३६
पुप्फिया	ग्रंथ	७९	मइंद	प्राणी वर्ग	गा. १४
पुरओ	अवधिज्ञान का भेद	११, १२, १६	मइनाण	ज्ञान	३६
पुराण	लौकिक ग्रंथ	६७	मंडलपवेस	ग्रंथ	७७
पुव्व	दृष्टिवाद परिच्छेद	गा. ३५, सू. १२२, १२३	मंडिय	गणधर	गा. २१
पुव्वगय	दृष्टिवाद परिच्छेद	९२, १०४, ११९	मंदरगिरि	पर्वत	गा. १७
पुरिसलिंगसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३१	मगर	प्राणीवर्ग	गा. ११
पूइय	शिल्पी व व्यवसायी	३८।९	मग्गओ	अवधिज्ञान का भेद	११, १२, १६
पोरिसिमंडल	ग्रंथ	७७	मग्गणया	ईहा का पर्यायवाची	४५
पोसहोववास	धार्मिक क्रिया	८७	मग्गणा	मतिज्ञान का पर्यायवाची	५४।६, ६२
फासिदियअत्थुग्गह	मतिज्ञान का भेद	४२	मज्झगय	अवधिज्ञान का भेद	१०, १५, १६
फासिदियअवाय	मतिज्ञान का भेद	४६	मणपज्जवनाण	ज्ञान	२, २३, २५
फासिदियईहा	मतिज्ञान का भेद	४४	मणपज्जवनाण-	ज्ञान	६
फासिदियधारणा	मतिज्ञान का भेद	४८	पच्चक्ख		
फासिदियपच्चक्ख	ज्ञान	६	मणि	धातु व रत्न	१२-१५, ३८।१३
फासिदियलद्धिअक्खर	अक्षर श्रुत का भेद	५९	मण्युल्लोय	जनपद ग्राम	१८।५
फासिदियवंजणुग्गह	मतिज्ञान का भेद	४१	मणुस्सखेत्त	जनपद ग्राम	२५।१
बंधीवक	शाखा	गा. ३२	मणुस्ससेणिया-		
बलदेव	राजा का प्रकार	१२१	परिकम्म	दृष्टिवाद परिच्छेद	९३, ९५
बहुभंगिय	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२	मणुस्सावत्त	दृष्टिवाद परिच्छेद	९५
बहुल	श्रुतधर आचार्य	गा. २५	मत्थय	शरीरांग	१५
बहुल	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२	मय	प्राणी वर्ग	गा. ९
विराली	प्राणी वर्ग	गा. ४४	मरणविभत्ति	ग्रंथ	७७
बुद्धबोहियसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३१	मल्लग	गृह उपकरण	५३
बुद्धवयण	लौकिक ग्रंथ	६७	मल्लि	तीर्थकर	गा. १९
बुद्धि	अवाय का पर्यायवाची	४७	मसग	प्राणी वर्ग	गा. ४४
भंगी ^१	ग्रंथ	गा. ३	महाकप्पसुय	ग्रंथ	७७
भणक ^२	आचार्य विशेषण	गा. २८	महागिरि	श्रुतधर आचार्य	गा. २५
			महानिसीह	ग्रंथ	७८

१. भङ्गिका—चतुर्भङ्गिकाद्यास्तच्छ्रुतं वा ।

२. कालिकादिसूत्रार्थं भणतीति: भणः, स एव प्राकृतशैल्या भणकः ।

महापञ्चकखाण	ग्रंथ	७७	रूढ	वनस्पति	गा. ८
महापणवणा	ग्रंथ	७७	लद्धिक्खर	अक्षरश्रुत का भेद	५६,५९
महाविदेह	जनपद ग्राम	६९	लिकखा	मान का प्रकार	२०
महावीर	तीर्थकर	गा. २	लेह	लौकिक ग्रन्थ	३८।६
महिल्लियाविमाण- विभक्ति	ग्रंथ	७८	लोकविदुसार	पूर्व	१०४,११८
महिस	प्राणी वर्ग	गा. ४४	लोगायय	लौकिक ग्रंथ	६७
महुअरी	प्राणी वर्ग	गा. ८	लोहिच्च	श्रुतधर आचार्य	गा. ४०
माउगापय	दृष्टिवाद परिच्छेद	९४,९५	वइर	धातु व रत्न	गा. १२
माढर	गोत्र	गा. २४	वइर	श्रुतधर आचार्य	३८।१२
माढर	लौकिक ग्रंथ	६९	वइसेसिय	लौकिक ग्रंथ	६७
मास	समय का प्रकार	१८।५	वंजणक्खर	अक्षरश्रुत का भेद	५६,५९
मिच्छसुय	श्रुतज्ञान का भेद	५५,६७	वंजणुग्गह	मतिज्ञान का भेद	४०,४१,५१
मुणिवर	पद	गा. १४,१६	वंदणय	ग्रन्थ परिच्छेद	७५
मुणिसुव्वय	तीर्थकर	गा. १९	वग्ग	ग्रन्थ परिच्छेद	८८,८९
मुत्ति	शिल्पी व व्यवसायी	३८।९	वग्गचूलिया	ग्रंथ परिच्छेद	७८
मुह	शरीरांग	गा. ९	वच्छ	गोत्र	गा. २३
मुद्दिया	आभूषण	३८।४	वड्ढइ	शिल्पी व व्यवसायी	३९।९
मुद्दिया	खाद्य	गा. ३१	वड्ढमाणय	अवधिज्ञान का भेद	९,१८
मुहुत्तंत	समय का प्रकार	१०।४	वण	उद्यान	१६
मुहुत्तमद्ध	समय का प्रकार	५४।३	वणसंड	उद्यान	३८।३,८६-८९,९१
मूलपढमाणुओग	दृष्टिवाद परिच्छेद	११९,१२०	वण्हदसा	ग्रंथ	७८
मेयज्ज	गणधर	गा. २१	वत्तमाणुप्पय	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२
मेस	प्राणी वर्ग	गा. ४४	वत्थु	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०५-११८,११८।
मेहलाग	आभूषण	गा. १२	वद्धमाण	तीर्थकर	१,२,१२३
मेहा	अवग्रह का पर्यायवाची	४३	वद्धमाणसामि	तीर्थकर	गा. १९
मोर	प्राणी वर्ग	गा. १५	वरुणोववाय	ग्रंथ	७८
मोरियपुत्त	गणधर	गा. २१	ववहार	ग्रंथ	७८
रयण	धातु व रत्न	गा. ४,७,१२,१४, १७	वसभ	प्राणी वर्ग	गा. १८
रयणि	मान का प्रकार	२०	वाउभूइ	गणधर	गा. २०
रसणिदियलद्धिक्खर	अक्षरश्रुत का भेद	५९	वागरण ^१	ग्रंथ	गा. ३०
रह	वाहन व वाहन के उपकरण	गा. ६	वागरण	लौकिक ग्रंथ	६७
रामायण	लौकिक ग्रन्थ	६७	वायग	व्याख्यानार्थ	गा. ३२
राय	राजा का प्रकार	३८।११,८६-८९,९१	वायगत्तण	पद	गा. ३६
रायपसेणि (णइ) य	ग्रन्थ	७०	वायगपय	पद	गा. ३२
रासिबद्ध	दृष्टिवाद परिच्छेद	९४-१००	वायगवंश	वंश	गा. ३०,३१
राहु	ग्रह	गा. ९	वायणा	ग्रंथ परिच्छेद	८१-९१,१२३
रुक्ख	वनस्पति	३८।३,७	वालग्ग	मान का प्रकार	२०
रुयग	जनपद ग्राम	१८।५	वास	समय का प्रकार	१८ ५,२३
			वासुदेव	राजा का प्रकार	१२१
			वासुपुज्ज	तीर्थकर	गा. १९

१. व्याकरण—प्रश्नव्याकरणं शब्दप्राभृतं वा ।

विउलमइ	मनःपर्यवज्ञान का भेद	२४,२५	सगभद्विया	लौकिक ग्रन्थ	६७
विजयचरिय	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२	सच्चप्पवाय	पूर्व	१०४,११०
विज्जाचरणविणिच्छय ग्रंथ		७७	सजोगिभवत्थ	केवलज्ञान का भेद	२७,२८
विज्जाणुप्पवाय	पूर्व	१०४,११४	सट्टितंत	लौकिक ग्रन्थ	६७
विज्जु	अग्नि	गा. १६	सण्णवखर	अक्षरश्रुत का भेद	५६,५७
विण्णाण	अवाय का पर्यायवाची	४७	सण्णा	मतिज्ञान का पर्यायवाची	५४।६
विप्पजहणसेणिया-परिकम्म	दृष्टिवाद परिच्छेद	९३,९९	सण्णि	प्राणीवर्ग	२५,६२-६४
विप्पजहणावत्त	"	९९	सण्णि	श्रुतज्ञान का भेद	१२७।१
विमल	तीर्थंकर	गा. १९	सण्णिसुय	" "	५५:६१,६४
वियत्त	गणधर	गा. २०	सपज्जवसिय	" "	५५,६८,६९,७१, १२७।१
वियावत्त	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२	सप्प	प्राणीवर्ग	३८।३३
वियाह	ग्रंथ	८५	समणोवासग	श्रावक	८७
वियाहचूलिया	ग्रंथ	७८	समभिरूढ	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२
वियाहपणत्ति	ग्रंथ	६५,८०	समय	समय का प्रकार	१८।१,२८,२९, ३२,५२,५४।३
विवागसुय	ग्रंथ	६५,८०,९१	समय	ग्रन्थ	६७
विहत्थि	मान का प्रकार	२०	समवाय	ग्रन्थ	६५,८०,८४
विहारकप्प	ग्रन्थ	७७	समुट्ठाणसुय	ग्रन्थ	७८
वीमंसा	ईहा का पर्यायवाची	४५	समुद्द	जल व जलाशय	गा. १५,१७, १८।६,२५
वीमंसा	मतिज्ञान का पर्यायवाची	५४।६,६२	समुद्देसग	ग्रन्थ परिच्छेद	८५
वीयरागसुय	ग्रन्थ	७७	समुद्देसण	ग्रंथ परिच्छेद	८१-८४,८६-९१
वीर	तीर्थंकर	गा. ३,२१,२२	समोसरण	सभामण्डप	८६-८९,९१
वीरिय	पूर्व	१०४,१०७	सम्म	श्रुतज्ञान का भेद	१२७।१
वेढा	ग्रन्थ परिच्छेद	८१-९१,१२३	सम्मसुय	" "	५५,६५,६७,६९
वेणइयवाइ	अन्यतीर्थिक	८२	सयंबुद्धसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३१
वेणइया	मतिज्ञान का भेद	३८।१,७९	सरड	प्राणीवर्ग	३८।३
वेय	लौकिक ग्रन्थ	६७	सर्लिंगसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३१
वेरुलिय	धातु व रत्न	गा. १७	सवणया	अवग्रह का पर्यायवाची	४३
वेलंधरोववाय	ग्रन्थ	७८	सव्वओभद्द	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२
वेला	जल व जलाशय	गा. ११	ससमइय	ग्रन्थ	१०१,१०३
वेसमणोववाय	ग्रन्थ	७८	ससि	तीर्थंकर	गा. १८
वेसिय	लौकिक ग्रन्थ	६७	सहस्सपत्त	वनस्पति	गा. ८
सइ	मतिज्ञान का पर्यायवाची	५४।६	साइ	श्रुतधर आचार्य	गा. २६
संखेज्जसमयसिद्ध	केवलज्ञान का भेद	३२	साइय	श्रुतज्ञान का भेद	५५,६७,६९,७१ १२७।१
संजूह	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२	साडी	वस्त्र	३८।७
संडिल्ल	श्रुतधर आचार्य	गा. २५	सामज्ज	श्रुतधर आचार्य	गा. २६
संति	तीर्थंकर	गा. १९	सामाइय	ग्रंथ परिच्छेद	७५
संभव	तीर्थंकर	गा. १८	सामाण	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२
संभिण्ण	दृष्टिवाद परिच्छेद	१०२	सावग	श्रावक	गा. ८,१५,३८।११
संभूय	श्रुतधर आचार्य	गा. २४	सिज्जंभव	श्रुतधर आचार्य	गा. २३
संमुच्छिम	जन्म का प्रकार	२३			
संलेहणासुय	ग्रंथ	७७			
संसारपडिग्गह	दृष्टिवाद परिच्छेद	९४-१००			

सिज्जंस	तीर्थंकर	गा. १८	सोइंदियलद्विक्खर	अक्षरश्रुत का भेद	५९
सिद्धसेणियापरिकम्म	दृष्टिवाद परिच्छेद	९३, ९४	सोइंदियवज्जणुग्गह	मतिज्ञान का भेद	४१
सिद्धावत्त	" "	९४	हंभी	लौकिक ग्रन्थ	६७
सिला	पर्वत	३८।३	हंस	प्राणीवर्ग	गा. ४४
सिलायल	पर्वत	गा. १३	हत्थ	मान का प्रकार	१८।४
सिलोग	ग्रंथ परिच्छेद	८१-९१, १२३	हरिवंश	कुल	१२१
सिहर	पर्वत	गा. १६	हायमाणय	अवधिज्ञान का भेद	९, १९
सिहरि	पर्वत	८३	हार	आभूषण	गा. १५
सीयल	तीर्थंकर	गा. १८	हारिय	गोत्र	गा. २६
सीस	शिष्य	गा. ३९	हिमवंत	श्रुतधर आचार्य	गा. ३४
सीह	श्रुतधर आचार्य	गा. ३२	हिमवंतखमासमण	" "	गा. ३५
सुंदरीनंद	व्यक्ति	३८।१२	हेऊवएस	संज्ञिश्रुत का भेद	६१, ६३
सुनंदि	वाद्य	गा. ६	हेरणिय	शिल्पी व व्यवसायी	३८।९
सुपास	तीर्थंकर	गा. १८	देशी शब्द—		
सुप्पभ	तीर्थंकर	गा. १८	हंद		गा. ११
सुमइ	तीर्थंकर	गा. १८	उद्धमाय		गा. १३
सुय	ग्रन्थ	गा. २, ४, २८, सू. ७२, ८६-८९, ९१	चंपग		गा. ३७
सुय	ज्ञान	३५, ३६, ६९	परिपूणग		गा. ४४
सुयअण्णाण	अज्ञान	३६	से		सू. ४
सुयक्खंध	ग्रन्थ परिच्छेद	८१-९१, १२३	मग्गओ		११
सुयनाण	ज्ञान	२, ३४-३६	णं		२२
सुयनिस्सिय	मतिज्ञान का भेद	३७, ३९	खुडुग		२५
सुर	देव	गा. ३	अगड		३८।३
सुवण्ण	देव	९०	खुडुग		३८।३
सुहत्थि	श्रुतधर आचार्य	गा. २५	घयण		३८।३
सुहम्म	गणधर	गा. २०, २३	(खाडहिला)		
सूयगड	ग्रंथ	६५, ८०, ८२	नाणय		३८।४
सूर	ग्रह	गा. ८, १०, सू. ७१	चेडग		३८।४
सूरपण्णत्ति	ग्रन्थ	७७	पेयाल		३८।५
सेल	पर्वत	८३	कोलिय		३८।९
सेलघण	मुद्गशूल	गा. ४४	डोय		३८।९
सोइंदियअत्थुग्गह	मतिज्ञान का भेद	४२	आमंड		३८।१३
सोइंदियअवाय	" "	४६	मल्लग		५१
सोइंदियईहा	" "	४४	रावेहिति		५३
सोइंदियघारणा	" "	४८	छेलिय		६०।१
सोइंदियपच्चक्ख	ज्ञान	६	चहिय		६५
			अम्मा		८६
			'चुल्ल' वत्थु		११८।३

परिशिष्ट : ५

पदानुक्रम

अंगुलमावलियाणं	१८३	काले चउण्ह वुड्ढी	१८७
	आनि. ३२ विभा. ६०८		आनि. ३६ विभा. ६१७
अवखर सण्णी सम्मं	१२७१	केवलनाणेणत्थे	३३२
	आनि. १९,८६२ विभा. ४५४ बृभा. ४२		आनि. ७८ विभा. ८२९
अड्ढभरह-प्पहाणे	गा. ३८	खमए अमच्चपुत्ते	३८१२
अणुमाण हेउ-दिट्ठंत-साहिया	३८१०		आनि. ९५०
	आनि. ९४८	गुणभवण-गहण ! सुय-	गा. ४
अत्थ-महत्थ-क्खाणिं	गा. ४१	चत्तारि दुवालस अट्ट	१२८३
अत्थाणं उग्गहणं	५४२	चलणाहण-आमंहे	३८१३
	आनि. ३ विभा. १७९		आनि. ९५१
अभए सिट्ठि-कुमारे	३८११	जच्चंजण-धाउसमप्पहाण	गा. ३१
	आनि. ९४९	जयइ जगजीवजोणी	गा. १
अयलपुरा निकखंते	गा. ३२	जयइ सुयाणं पभवो	गा. २
अह सव्वदव्वपरिमाण-	३३१	जसभहं तुंगियं वंदे	गा. २४
	आनि. ७७ विभा. ८२३	जावइया तिसमयाहारगस्स	१८१
आगम-सत्थग्गहणं	१२७२		आनि. ३० विभा. ५८८
	आनि. २१ विभा. ५५८	जीवदया-सुंदर-कंदरुद्धरिय-	गा. १४
ईहा अपोह वीमंसा	५४६	जे अन्ने भगवंते	गा. ४३
	आनि. १२ विभा. ३९६	जेसि इमो अणुओगो	गा. ३३
उग्गह इक्कं समयं	५४३	तत्तो हिमवंतमहंत-विक्कमे	गा. ३४
	आनि. ५ विभा. ३३३	तव-संजम-मय-लंछण !	गा. ९
उग्गह ईहावाओ	५४१	तिसमुद्द-खाय-कित्ति	गा. २७
	आनि. २ विभा. १७८	दस चोद्दस अट्ट	११८१
उप्पत्तिया वेणइया	३८१	नाणम्मि दंसणम्मि य	गा. ९
	आनि. ९३८		आनि. ९७९ विभा. ३०९६
उवओगविट्टुसारा	३८८	नाण-वररयण-दिप्पंत-	गा. १७
	आनि. ९४६	निमित्ते अत्थसत्थे य	३८६
ऊससिसं नीससियं	६०१		आनि. ९४४
	आनि. २० विभा. ५०१ बृभा. ७६	नियमूसिय-कणय-सिला-	गा. १३
एलावच्चसगोत्तं	गा. २५	निव्वुइ-पह-सासणयं	गा. २२
ओही भवपच्चइओ	२२१	नेरइयदेवतित्थंकरा य	२२२
कम्मरय-जलोह-विणिग्गयस्स	गा. ७		आनि. ६६ विभा. ७६६
कालियसुय-अणुओगस्स	गा. ३५	पढमित्थ इंदभूर्इ	गा. २०
	बृभा. ७४४	परतित्थिय-गह-पह-नासगस्स	आनि. ५९३
			गा. १०

तुलना—१. आनि—आवश्यकनिर्युक्ति ।

२. विभा.—विशेषावश्यकभाष्य ।

३. बृभा.—बृहत्कल्पभाष्य ।

परिशिष्ट ५ : पदानुक्रम

२३६

पुट्टं सुणेइ सद्दं	५४।४	वड्ढउ वायगवंसो	गा. ३०
	आनि. ५ विभा. ३२६	वरतविय-कणग-चंपग	गा. ३७
पुव्वमदिट्टमसुयमवेइय-	३८।२	विणय-णय-पवर-मुणिवर	गा. १६
	आनि. ९३९	विमलमणंत य धम्मं	गा. १९
वारस इक्कारसंगे	११८।२		आनि. ३७१
भणगं करगं भ्ररगं	गा. २८	संखेज्जम्मि उ काले	१८।६
भद्दं धिइ-वेला-परिगयस्स	गा. ११	आनि. ३५ विभा. ६१५	
भद्दं सब्वजगुज्जोयगस्स	गा. ३	संजम-तव-तुंबारयस्स	गा. ५
भद्दं सीलपडागूसियस्स	गा. ६	संवर-वरजल-पगलिय-उज्भर	गा. १५
भरनित्थरणसमत्था	३८।५	सम्महंसण-वइर-दढ	गा. १२
	आनि. ९४३	सव्ववहु अगणिजीवा	१८।२
भरहम्मि अद्धमासो	१८।५	आनि. ३१ विभा. ५९८	
१. भरहसिल २. पणिय ३. रुक्खे	आनि. ३४ विभा. ६१०	सावगजणमहुअरिपरिवुडस्स	गा. ८
	३८।३	सीया साडी दीहं	३८।७
(१. भरहसिल २. मिंढ ३. कुक्कुड)	आनि. ९४०	आनि. ९४५	
	आनि. ९४१	सुकुमाल-कोमल-तले	गा. ४२
भावमभावा हेऊ	१२४।१	सुत्तथो खलु पढमो	१२७।५
भासासमसेढीओ	५४।५	आनि. २४ विभा. ५६६ वृभा. २०९	
	आनि. ६ विभा. ३५१	सुमुणिय-णिच्चाणिच्चं	गा. ४०
भूयहिअ-प्पगळे	गा. ३९	सुस्सूसइ पडिपुच्छइ	१२७।३
मंडिय-मोरियपुत्ते	गा. २१	आनि. २२ विभा. ५६१	
	आनि. ५९५	सुहम्मं अग्गिवेसाणं	गा. २३
मणपज्जवनाणं पुण	२५।१	सुहुमो य होइ कालो	१८।८
	आनि. ७६ विभा. ८१०	आनि. ३७ विभा. ६२१	
महुसित्थ-मुद्दि-अंके	३८।४	१. सेल-घण २. कुडग ३. चालणि	गा. ४४
	आनि. ९४२	आनि. १३९ विभा १४५४ वृभा. ३३४	
मिउ-मद्व-संपण्णे	गा. ३६	हत्थम्मि मुहुत्तंतो	१८।४
मूअं हुंकारं वा	१२७।४	आनि. ३३ विभा. ६०९	
	आनि. २३ विभा. ५६५ वृभा. २१०	हारियगुत्तं साइं	गा. २६
वंदे उसभं अजिअं	गा. १८	हेरणिणए करिसए	३८।९
	आनि. ३७०—होही अजिओ संभव****	आनि. ९४७	

परिशिष्ट : ६
टिप्पण : अनुक्रम

अंतरदीवग	सू. २३	६७	आभिनबोधिक ज्ञान	सू. ५१-५३	१०१-१०३
अकम्मभूमग	सू. २३	६७	के दृष्टान्त		
अकिरिय	गा. ९	१५	आभिनबोधिक ज्ञान	सू. ५४।६	१०६
अक्खोभस्स	गा. ११	१५	के पर्याय		
अक्षर आदि श्रुत ज्ञान	सू. १२७।१	१८९	आर्य समुद्र	गा. २७	२३
अक्षर के तीन प्रकार	सू. ७१	१२५-१२७	आर्य स्कन्दिल और	गा. ३३,३५	२६
अक्षर के दो प्रकार	सू. ७०	१२४,१२५	आर्य नागार्जुन		
अक्षर-श्रुत	सू. ५६-५९	११६-११८	आर्य हिमवंत	गा. ३४	२५
अनक्षर श्रुत	सू. ६०	११८,११९	आवश्यक का रचनाकाल	सू. ७४,७५	१५६
अनानुगामिक अवधिज्ञान	सू. १७	६८	इडिपत्त	सू. २३	६८
अनुयोग	सू. ११९-१२१	१८५	इन्द्रिय प्रत्यक्ष	सू. ५	५३,५४
अनुयोगधर आचार्य	गा. ४३	२६,२७	उज्जल	गा. १३	१६
अन्तगत	सू. १०	५८	उज्जर	गा. १५	१६
अपच्छिमो	गा. २	१३	उद्धमाय	गा. १३	१६
अप्पडिचक्क	गा. ५	१५	उत्का	सू. १२	५८
अप्पमत्तसंयत	सू. २३	६७	उवओगदिट्टुसारा	सू. ३८।८	९५
अब्भहियतराए	सू. २५	६९	ऊसिय	गा. १३	१६
अलात	सू. १२	५८	ऋजुमति विपुलमति	सू. २४,२५	६८,६९
अवगाढ	गा. १२	१६	कंत	गा. १७	१७
अवग्रह आदि का	सू. ५४।३	१०४	कण्णिय	गा. ७	१५
कालमान			कन्दरा	गा. १४	१६
अवधिज्ञान	सू. ७	५४	कम्मपसंग	सू. ३८।८	९५
अवधिज्ञान का उत्कृष्ट	सू. १८।२	६०,६१	कम्मभूमग	सू. २३	६७
क्षेत्र			करगं	गा. २८	२५
अवधिज्ञान का क्षेत्र	सू. १८।३-६	६१	काल आदि की सूक्ष्मता	१८।८	६२
व काल			कालिक और उत्कालिक	सू. ७६-७८	१५६-१६४
अवधिज्ञान का विषय	सू. २२	६३,६४	काले चउण्ह	१८।१	६२
अवधिज्ञान के प्रकार	सू. ९	५५,५६	कुहर	गा. १५	१६
अवधिज्ञान के विकल्प	सू. २२।१	६४	केवलज्ञान	सू. २६-३२	६९-७१
अव्वाहयफलजोगा	सू. ३८।२	९५	केवलज्ञान का विषय	सू. ३३	७०-७६
अश्रुतनिश्रित	सू. ३८	९३-९५	केसराल	गा. ७	१५
असंबद्ध	सू. १७	६९	क्षाद्योपणमिक अवधिज्ञान	सू. ८	१२७
आनुगामिक अवधिज्ञान	सू. १०-१६	५६-५८	गमिक और अगमिक-	सू. ७२	१२७
आभिनबोधिक ज्ञान	सू. ३७	९२,९३	श्रुत		
आभिनबोधिक ज्ञान	सू. ५४	१०३,१०४	गाढ	गा. १२	१६
का विषय			चित्त	गा. १३	१६

चुडलियं	सू. १२	५८
चूलिका	सू. १२२	१८५, १८६
जगगुरु	गा. १	११
जगजीवजोणीवियाणओ	गा. १	११
जगनाहो	गा. १	१२
जगप्पियामहो	गा. १	१२
जगबंधू	गा. १	१२
जगाणंदो	गा. १	११
जयइ	गा. १	१३
जलंत	गा. १३	१६
ज्योति	सू. १२	५८
ज्ञान-अज्ञान	सू. ३६	९१, ९२
ज्ञान मीमांसा	सू. २	४९-५१
भ्ररंगं	गा. २८	२५
तप	गा. ६	१५
तिवग्ग	सू. ३८।५	९५
तीर्थकरावली	गा. १८, १९	१७
दित्त	गा. १४	१६
दिप्पंत	गा. १७	१७
दूध्यगणी	गा. ४१, ४२	२६
दृष्टिवाद	सू. ९२	१८०
द्वादशाङ्ग	सू. ८०-९१	१६४-१८०
द्वादशाङ्ग के प्रकार	सू. १२५	१८८
द्वादशाङ्गी का काल	सू. ६८, ६९	१२३, १२४
द्वादशाङ्गी का प्रतिपाद्य	सू. १२४	१८७
द्वादशाङ्गी की त्रैकालिकता	सू. १२६	१८८
धिइ	सू. ११	१५
नियम	गा. ६	१५
नैरयिक आदि का अवधिज्ञान	सू. २२।२	६५
पउररवंत	गा. १५	१६
पज्जत्तग	सू. २३	६७
पणोल्लेमाणे	सू. १२	५८
परतित्थिय	गा. १०	१५
परिकर्म	सू. ९३-१०१	१८०-१८२
परिघोलणा	सू. ३८।८	९५
परिघोलेमाणे	सू. १७	५९
परिपेरंत	सू. १७	५९
परिषद्	गा. ४४	२७-३१
परोक्ष ज्ञान	सू. ३४, ३५	९०
पसत्थअज्झवसाण	सू. १८	६०

पारियल्ल	गा० ५	१४
पूर्वगत	सू. १०४-११८	१८३, १८४
पूर्वों के अन्य विभाग	सू. १२३	१८६
पेयाला	सू. ३८।५	९५
प्रकीर्णक की रचना	सू. ७९	१६४
प्रतिपाती-अप्रतिपाती	सू. २०, २१	६३
प्रत्यक्ष	सू. ४	५२, ५३
प्रत्यक्ष-परोक्ष	सू. ३	५१, ५२
प्रभावक	गा. २८	२५
ब्रह्मद्वीपक शाखा और आर्यसिंह	गा. ३२	२५
भणगं	गा. २८	२५
भूतदिन्न	गा. ३०-३९	२६
मंगु...नागहस्ती	गा. २८-३०	२४, २५
मणि	सू. १२	५८
मध्यगत	सू. १०	५८
मनःपर्यवज्ञान	सू. २३	६५-६८
महप्पा	गा. २	१३
महागिरि...बलिस्सह	गा. २५	२०, २१
मेखला	गा. १२	१६
यशोभद्र...स्थूलभद्र	गा. २४	१९, २०
रयण	गा. ७	१५
रुंद	गा. ११	१५
रूढ	गा. १२	१६
रेवतीनक्षत्र	गा. ३१	२५
लेस्स	गा. १०	१५
लौहित्य	गा. ४०	२६
वर्धमान अवधिज्ञान	सू. १८	५९
विउलतराए	सू. २५	६९
विणयमय कुसुमाउल- वणस्स	गा. १६	१६, १७
विषयग्रहण की प्रक्रिया	गा. ५४।४	१०५
विसुद्ध	गा. ३८।२	९५
विसुद्धतराए-वित्तिमिर- तराए	सू. २५	६९
व्याख्यान विधि	सू. १२७।५	१९०
शब्दग्रहण की प्रक्रिया	सू. ५४।५	१०५
शील	गा. ६	१५
श्रवण विधि	गा. १२७।४	१९०
श्रुतज्ञान की ग्रहणविधि	गा. १२७।२, ३	१८९, १९०
श्रुतज्ञान की त्रैकालिकता	गा. १२६	१८८

श्रुतज्ञान की विषयवस्तु	गा. १२७	१८८	सम्मुच्छिममणुस्स	सू. २३	६५-६८
श्रुतज्ञान के प्रकार	गा. ५५	११६	सम्यक्श्रुत और	सू. ६५-६७	११२-१२३
श्रुतज्ञान के भेदों की	गा. ७३	१२७-१२९	मिथ्याश्रुत		
मीमांसा			सव्वओ समंता	सू. १६	५८
श्रुतनिश्चित	सू. ३९-५०	९५-१००	साहुक्कार फलवई	सू. ३८।८	९५
संकलिस्समाण	सू. १९	६३	सुधर्मा ... शय्यंभव	गा. २३	१७-१९
संघस्तुति	गा. ४।१७	१४-१७	सुयाणं पभवो	गा. २	१३
संज्ञीश्रुत	सू. ६१-६४	११९-१२२	सूत्र	सू. १०२, १०३	१८२, १८३
संबद्ध	सू. १७	५९	स्वाति... शांडिल्य	गा. २६	२१-२३
संवर	गा. १५	१६	हीयमान अवधिज्ञान	सू. १९	६३

परिशिष्ट : ७

ज्ञानमीमांसा

ज्ञान मीमांसा के स्रोत—

ज्ञान मीमांसा में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के स्वरूप और सम्बन्धों पर विचार किया जाता है। प्रस्तुत आगम (नंदी) का प्रारम्भ ज्ञान से होता है।

ज्ञान के पांच प्रकार हैं—

नाणं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा—आभिणिबोहियनाणं सुयनाणं ओहिनाणं मणपज्जवनाणं केवलनाणं ॥'

ज्ञान का स्वरूप—

ज्ञान आत्मा का गुण है।

करणादिसाधनो ज्ञानशब्दो व्याख्यातः। न। अयं ज्ञानशब्दः करणादिसाधन इति व्याख्यातः पुरस्तात्।

इतरेषां तदभावः। १९। इतरेषामेकान्तवादिनां तस्य ज्ञानस्य करणादिसाधनत्वं नोपपद्यते। तत्कथमिति चेत्? उच्यते—
आत्माभावे ज्ञानस्य करणादित्वानुपपत्तिः कर्तुरभावात्। १०। येषामात्मा न विद्यते तेषां ज्ञानस्य करणादित्वं नोपपद्यते। कुतः? कर्तुरभावात्। सति हि देवदत्ते छेत्रि परशोः करणत्वं दृष्टम्। तथा चात्मन्यसति नास्य करणत्वम्। तत एव भावसाधनत्वमपि नोपपद्यते—ज्ञातिर्ज्ञानम् इति। न ह्यसति भाववति भाव इति।

स्यादेतत्—जानातीति ज्ञानमिति कर्तृसाधनत्वमिति; तन्न; निरीहकत्वात्। न हि निरीहको भावः कर्तृत्वमास्कन्दति। निरीहकाश्च सर्वे भावाः।

किञ्च, पूर्वोत्तरापेक्षस्य लोके कर्तृत्वं दृष्टम्। न च तस्य ज्ञानस्य पूर्वोत्तरापेक्षास्ति क्षणिकत्वात्, अतो निरपेक्षस्य कर्तृत्वाभावः। किञ्च, करणव्यापारापेक्षस्य लोके कर्तृत्वं दृष्टम्। न च ज्ञानस्यान्यत् करणमस्ति। अतोऽस्य कर्तृत्वमपि नोपपद्यते। स्वशक्तिरेव करणमिति चेत्; न; शक्तिशक्तिमद्भेदाभ्युपगमे आत्मास्ति त्वसिद्धेः। अभेदे च दोषस्तदवस्थ एवेति। सन्तानापेक्षया कर्तृकरणभेदोपचार इति चेत्; न; परमार्थविपरीतत्वे मृषावादोपपत्तेः, भेदाभेदविकल्पनयोरुक्तदोषप्रसङ्गाच्च। मनश्चेन्द्रियञ्चास्य करणमिति चेत्; न; तस्य तच्छक्त्यभावात्। मनस्तावन्न करणम्, विनष्टत्वात् षण्णामनन्तरातीतं विज्ञानं यद्धि तन्मनः [अभिध. १।१७] इति वचनात्। नेन्द्रियमप्यतीतम् तत एव। नाप्युपजायमानस्य करणत्वम्। नहि सव्यविषाणं युगपदुपजायमानमितरस्य विषाणस्य करणं भवति।

किञ्च, प्रकृत्यर्थादन्यस्याभावात्। 'ज्ञा' इत्यस्याः प्रकृतेरवबोधनमर्थः, न तस्मादन्यः कश्चिदर्थोस्ति यः कर्तृत्वमनुभवेत्, अतोऽस्य कर्तृत्वाभावः।

किञ्च, एकक्षणविषयं यत्कर्तृत्वं तदनेकक्षणगोचरोच्चारणलब्धजनमा कर्तृशब्देन कथमुच्यते? कथं वाऽयमेकक्षणेऽसन् वाचकः स्यात्? सन्तानावस्थानाद् वाच्यवाचकभावसम्बन्ध इति चेत्; न; तस्य प्रतिविहितत्वात्।

अथ मतमेतत्, खात्पतिता नो रत्नवृष्टिः, अवाच्यमेव हि तत्त्वमिष्यते। अव्यापारेषु हि सर्वधर्मेषु वाग्व्यवहारो नास्त्येवेति; तदपि नोपपद्यते; स्ववचनविरोधात्, तत्त्वप्रतिपत्त्युपायापह्नावप्रसङ्गाच्च।

किञ्च, जानातीति ज्ञानमिति कर्तृसाधनत्वं नोपपद्यते। कुतः? विशेषानुपलब्धेः।

येन हि कर्तृसाधनत्वमवगतं करणादिसाधनत्वं च तेनेदं युज्यते वक्तुम्—'कर्तृसाधनमिदं न करणादिसाधनम्' इति। न च क्षणिकवादिनः प्रत्यर्थवशवतिज्ञानविकल्पनायाम् अनवधारितोभयस्वभावस्य तद्विशेषोपलब्धिरस्ति। न हि शुक्लेतरविशेषानभिज्ञस्य 'शुक्लमिदं न नीलादि' इति विशेषणमुपपद्यते।

अस्तित्वेऽप्यविक्रियस्य तदभावः, अनभिसंबन्धात्। ११। आत्मनः अस्तित्वेऽपि ज्ञानस्य करणाद्यभावः। कुतः? अनभिसंबन्धात्। यस्य मतम्—आत्मनो ज्ञानाख्यो गुणः तस्म'च्चार्यन्तरभूतः, "आत्मेन्द्रियमनाऽर्थसन्निकर्षात् यन्निष्पद्यते तदन्यत्" [वैशे. सू. ३।१।१८] इति वचनादिति तस्य ज्ञानं करणं न भवितुमर्हति। कुतः? पृथगात्मलाभाभावात्। दृष्टो हि लोके छेत्रुदेवदत्ताद् अर्थान्तरभूतस्य

परशोः तैक्ष्ण्यगौरवकाठिन्यादिविशेषलक्षणोपेतस्य सतः करणभावः, न च तथा ज्ञानस्य स्वरूपं पृथगुपलभामहे ।

किञ्च, अपेक्षाभावात् । दृष्टो हि परशोः देवदत्ताधिष्ठितोद्यमननिपातनापेक्षस्य करणभावः, न च तथा ज्ञानेन किञ्चित् कर्तृसाध्यं क्रियान्तरमपेक्ष्यमस्ति ।

किञ्च, तत्परिणामाभावात् । छेदनक्रियापरिणतेन हि देवदत्तेन तत्क्रियायाः साचिव्ये नियुज्यमानः परशुः 'करणम्' इत्येतद्युक्तम्, न च तथा आत्मा ज्ञानक्रियापरिणतः ।

अर्थान्तरत्वे तस्याऽज्ञत्वात् । इह यज्ज्ञानान्दयद्भवति तदज्ञं दृष्टं यथा घटादिद्रव्यम्, तथा च ज्ञानान्दय आत्मा इत्यज्ञत्व-प्रसङ्गः । ज्ञानयोगाज्ज्ञत्वं दृष्टत्वात् दण्डवदिति चेत्; न; तत्स्वभावाभावे संबन्धनियमानुपपत्तिः इन्द्रियमनावत् । ज्ञस्वभावाभावे सति 'आत्मन्येव योगो न मनसेन्द्रियेण वा' इति नियमाभावः । युतसिद्धयोश्च दण्डदण्डिनोः सम्बन्धः, दण्डस्य च प्रसिद्धस्य सतो विशेषण-मात्रत्वेनोपादानात्, आत्मनश्च तदुत्पत्तौ हिताहितविचारणाविक्रियानुपपत्तोरसाम्यम् । उभयोश्चाज्ञयोः संबन्धेऽप्यज्ञत्वप्रसङ्गः, दृष्टत्वात्, जात्यन्धयोः संबन्धे दर्शनशक्त्यभावात् ।

किञ्च, इन्द्रियमनः प्रसङ्गात् । यदि 'जायतेऽनेन ज्ञानम्' इति करणमभ्युपगम्यते, तेनेन्द्रियाणां मनसश्च ज्ञानत्वप्रसङ्गः विशेषाभावात्, तैरपि जायत इति ।

किञ्च, उभयोर्निक्रियत्वात् । सर्वगतस्य तावदात्मनः क्रिया नास्ति, नापि ज्ञानस्य । 'क्रियावत्त्वं द्रव्यस्यैव लक्षणम्' इति वचनात् । ततः क्रियाविरहितस्य कथं कर्तृत्वं करणत्वं वा स्यात् ?

यस्यापि मतम्—अनित्यगुणव्यतिरेकाच्छुद्धः पुरुषो नित्यश्च निर्विकारत्वात् इति; तस्य ज्ञानं करणं न भवितुमर्हति । कुतः अनभिसंबन्धात् । या बुद्धिः इन्द्रियमनोऽहङ्कारमहद्वृत्त्युपनीता आलोचनसंकल्पाभिमानाध्यवसायरूपा सा प्रकृतिः, पुरुषः पुनरविक्रियः शुद्धश्च, तस्य सा करणं कथं स्यात् ? क्रियापरिणतस्य हि देवदत्तस्य लोके करणसंप्रयोगो दृष्टः । इत्येवमादि योज्यम् ।

नापि कर्तृसाधनत्वं युज्यते । लोके हि करणत्वेन प्रसिद्धस्यासेः, तत्प्रशंसापरायामभिधानप्रवृत्तौ समीक्षितायां "तैक्ष्ण्यगौरव-काठिन्याहितविशेषोऽयमेव छिनत्ति" इति कर्तृधर्माधारोपः क्रियते, न च तथा ज्ञानं करणत्वेन प्रसिद्धमस्ति पूर्वदोषोपपत्तेः । अतोऽस्य कर्तृत्वमयुक्तम् ।

न च भावसाधनत्वमुपपत्तिमत्; अविक्रियस्य तत्परिणामाभावात् । विक्रियास्वभावस्य हि वस्तुनस्तण्डुलादेः विक्लेदादिदर्शनात्, 'पचनं पाकः' इत्येवमादि भावनिर्देशो युक्तः नाकाशस्येति ।

किञ्च फलाभावात् । ज्ञानं हि प्रमाणमिष्टम् । प्रमाणेन च फलवता भवितव्यम् । न चावबोधनमन्तरेण फलमन्यदुपलभ्यते । तस्मान्दनेन ज्ञानेन भवितव्यं यस्मिन् सति सा ज्ञातिरवबोधः फलमात्मनो भवति, तच्च नास्त्यतो न भावसाधनत्वम् ।

अधिगमश्चात्र न भावान्तरमिति 'फले प्रामाण्योपचारः' इति चाऽयुक्तम्; मुख्याभावात् । आकारभेदात् फलप्रमाणपरिकल्पना चाऽयुक्ता; आकाराकारवतोभेदाभेदयोरनेकदोषोपपत्तेः ।

निर्विकल्पकत्वाच्च तत्त्वस्य आकारकल्पनाभावः । बाह्यवस्त्वाकारापोहे अन्तरङ्गाकारानुपपत्तिश्चेति । जैनेन्द्राणां तु परमपिसर्वज्ञप्रणीतनयभङ्गगहनप्रपञ्चविपश्चितां स्याद्वादप्रकाशोन्मीलितज्ञानचक्षुषाम् एकस्मिन्नप्यर्थेऽनेकपर्यायसंभवादुपपद्यते इति विमृष्टार्थमेतत् ।^१

ज्ञान का विकास—

पृथ्विकाइतेहितो आउक्कातियाण अणंतभागेण विसुद्धतरं नाणमक्खरं, एवं कमेणं तेउ-वाउ-वणस्सति-बेइंदिय-तेइंदिय-चतुरिदिय-असण्णिपंचेदिय-सण्णिपंचेदियाण य विसुद्धतरं भवति ।^१

विकास के हेतु—

१. क्षयोपशम भाव^१
२. क्षायिक भाव—'एकविधं' एकप्रकारम्, आवरणाभावात् क्षयस्यैकरूपत्वात् । केवलं—मत्यादिनिरपेक्षं, केवलं च तज्ज्ञानम् ।^२

१. तत्त्वार्थवार्तिक १, पृ. ४५-४७

२. नंदी चूर्ण, पृ. ५६

३. नंदी, सू. ८

४. हारिभद्रीया वृत्ति, पृ. ४३

ज्ञान के स्रोत—

१. इन्द्रियां^१
२. आत्मा^२

परोक्ष ज्ञान के दो स्रोत—

१. आभिनिबोधिकज्ञान^३
२. श्रुतज्ञान^४

ज्ञेय—

ज्ञेय के चार प्रकार हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ।

ज्ञान और ज्ञेय का संबंध—

अक्खरग्गहणेण णाणस्स गहणं कतं, णाणं च जेयाओ अव्वतिरित्तं, कहं ?, जाव जाणियव्वा भावा ताव णाणं, अतो एतिसि णाणणेयाणं परिमाणं इमं भण्णति, तं जहा—सव्वागासपदेसग्गं अणंतगुणितं पज्जवग्गं अक्खरं लब्भति, तत्थ सव्वसद्दो णिरव्वसेसिए अत्थे वट्टइ, आगासं पसिद्धं चेव, तस्स जं पएसग्गं, अग्गंति वा परिमाणंति वा पमाणंति वा एग्गट्टा, तेण चेव सव्वागासपदेसग्गेण अणंतगुणितं पज्जवग्गं अक्खरं लब्भति, पज्जायाणं च एग्गेग्गस्स आगासपदेसस्स जावइया अगुरुलहुपज्जाया तेसि सर्पिडियाणं जं अग्गं एतं परिमाणं अक्खरस्सत्ति, णाणपमाणंति वुत्तं भवति ।^५

चैतन्यशक्तेर्द्रावाकारौ ज्ञानाकारौ ज्ञेयाकारश्च । अनुपयुक्तप्रतिबिम्बाकारादर्शतलवत् ज्ञानाकारः, प्रतिबिम्बाकारपरिणता-दर्शतलवत् ज्ञेयाकारः । तत्र ज्ञेयाकारः स्वात्मा, तन्मूलत्वाद् घटव्यवहारस्य । ज्ञानाकारः परात्मा, सर्वसाधारणत्वात् । स घटो ज्ञेया-कारेणास्ति नान्यथा । यदि ज्ञेयाकारेणाप्यघटः स्यात्; तदाश्रयेतिकर्तव्यतानिरासः स्यात् । अथ हि ज्ञानाकारेणापि घटः स्यात्; पटादि-ज्ञानाकारकालेऽपि तत्सन्निधानाद् घटव्यवहारवृत्तिः प्रसज्येत ।^६

[पं० दलसुखभाई मालवणिया ने 'आगम युग का जैन दर्शन' में ज्ञान मीमांसा का जो प्रकरण लिखा है, वह यहाँ अत्रिकल रूप से उद्धृत है ।]

ज्ञान-चर्चा की जैन दृष्टि :

जैन आगमों में अद्वैतवादियों की तरह जगत् को वस्तु और अवस्तु—माया में तो विभक्त नहीं किया है, किन्तु संसार की प्रत्येक वस्तु में स्वभाव और विभाव सन्निहित है, यह प्रतिपादित किया है । वस्तु का परानपेक्ष जो रूप है, वह स्वभाव है, जैसे आत्मा का चैतन्य, ज्ञान, सुख आदि, और पुद्गल की जड़ता । किसी भी काल में आत्मा ज्ञान या चेतना रहित नहीं और पुद्गल में जड़ता भी त्रिकालाबाधित है । वस्तु का जो पर सापेक्ष रूप है, वह विभाव है, जैसे आत्मा का मनुष्यत्व, देवत्व आदि और पुद्गल का शरीर रूप परिणाम । मनुष्य को हम न तो कोरा आत्मा ही कह सकते हैं और न कोरा पुद्गल ही । इसी तरह शरीर भी केवल पुद्गल नहीं कहा जा सकता । आत्मा का मनुष्य रूप होना पर सापेक्ष है और पुद्गल का शरीर रूप होना भी पर सापेक्ष है । अतः आत्मा का मनुष्य रूप और पुद्गल का शरीर रूप ये दोनों क्रमशः आत्मा और पुद्गल के विभाव हैं ।

स्वभाव ही सत्य है और विभाव मिथ्या है, जैनों ने कभी यह प्रतिपादित नहीं किया । क्योंकि उनके मत में त्रिकालाबाधित वस्तु ही सत्य है, ऐसा एकांत नहीं । प्रत्येक वस्तु चाहे वह अपने स्वभाव में ही स्थित हो, विभाव में स्थित हो सत्य है । हां, तद्विषयक हमारा ज्ञान मिथ्या हो सकता है, लेकिन वह भी तब, जब हम स्वभाव को विभाव समझें या विभाव को स्वभाव । तत् में अतत् का ज्ञान होने पर ही ज्ञान में मिथ्यात्व की संभावना रहती है ।

विज्ञानवादी बौद्धों ने प्रत्यक्ष ज्ञान को वस्तुग्राहक और साक्षात्कारात्मक तथा इतर ज्ञानों को अवस्तुग्राहक, भ्रामक, अस्पष्ट और असाक्षात्कारात्मक माना है । जैनागमों में इन्द्रिय निरपेक्ष एवं केवल आत्म सापेक्ष ज्ञान को ही साक्षात्कारात्मक प्रत्यक्ष कहा गया है, और इन्द्रिय सापेक्ष ज्ञानों को असाक्षात्कारात्मक और परोक्ष माना गया है । जैनदृष्टि से प्रत्यक्ष ही वस्तु के स्वभाव और विभाव का साक्षात्कार कर सकता है, और वस्तु का विभाव से पृथक् जो स्वभाव है, उसका स्पष्ट पता लगा सकता है । इन्द्रिय

१. नंदी, सू. ५

२. वही, सू. ६ से ३३

३. वही, सू. ३७ से ५४

४. वही, सू. ५५ से १२७

५. वही, सू. २२, २५, ३३, ५४, १२७

६. आवश्यक चूणि, पृ. २९

७. तत्त्वार्थवात्तिक १, पृ. ३४

सापेक्ष ज्ञान में यह कभी संभव नहीं, कि वह किसी वस्तु का साक्षात्कार कर सके और किसी वस्तु के स्वभाव को विभाव से पृथक् कर उसको स्पष्ट जान सके, लेकिन इसका मतलब जैनमतानुसार यहक भी नहीं, कि इन्द्रिय सापेक्ष ज्ञान भ्रम है। विज्ञानवादी बौद्धों ने तो परोक्ष ज्ञान को अवस्तुग्राहक होने से भ्रम ही कहा है, किन्तु जैनाचार्यों ने वैसा नहीं माना। क्योंकि उनके मत में विभाव भी वस्तु का परिणाम है। अतएव वह भी वस्तु का एक रूप है। अतः उसका ग्राहक ज्ञान भ्रम नहीं कहा जा सकता। वह अस्पष्ट हो सकता है, साक्षात्कार रूप न भी हो, तब भी वस्तु-स्पर्शी तो है ही।

भगवान् महावीर से लेकर उपाध्याय यशोविजय तक के साहित्य को देखने से यही पता लगता है, कि जैनों की ज्ञान-चर्चा में उपर्युक्त मुख्य सिद्धांत की कभी उपेक्षा नहीं की गई, बल्कि यों कहना चाहिए कि ज्ञान की जो कुछ चर्चा हुई है, वह उसी मध्य-बिन्दु के आसपास ही हुई है। उपर्युक्त सिद्धांत का प्रतिपादन प्राचीन काल के आगमों से लेकर अब तक के जैन साहित्य में अविच्छिन्न रूप से होता चला आया है।

आगम में ज्ञानचर्चा के विकास की भूमिकाएं :

पञ्च ज्ञानचर्चा जैन परम्परा में भगवान् महावीर से पहले होती थी, इसका प्रमाण राजप्रश्नीय सूत्र में है। भगवान् महावीर ने अपने मुख से अतीत में होने वाले केशीकुमार श्रमण का वृत्तांत राजप्रश्नीय में कहा है। शास्त्रकार ने केशीकुमार के मुख से निम्न वाक्य कहलवाया है :—

‘एवं खु पएसी अहं समणाणं निग्गंथाणं पंचविहे नाणे पण्णते—तं जहा आभिणिबोहियणाणे सुयनाणे ओहिणाणे मणपञ्जवणाणे केवलणाणे (सूत्र १६५)

इस वाक्य से स्पष्ट फलित यह होता है कि कम से कम उक्त आगम के संकलनकर्ता के मत से भगवान् महावीर से पहले भी श्रमणों में पांच ज्ञानों की मान्यता थी। उनकी यह मान्यता निर्मूल भी नहीं। उत्तराध्ययन के २३ वें अध्ययन से स्पष्ट है कि भगवान् महावीर ने आचार-विषयक कुछ संशोधनों के अतिरिक्त पार्श्वनाथ के तत्त्वज्ञान में विशेष संशोधन नहीं किया। यदि भगवान् महावीर ने तत्त्वज्ञान में कुछ नयी कल्पनाएं की होतीं, तो उनका निरूपण भी उत्तराध्ययन में अवश्य ही होता।

आगमों में पांच ज्ञानों के भेदों-प्रभेदों का जो वर्णन है, कर्मशास्त्र में ज्ञानावरणीय के जो भेदप्रभेदों का वर्णन है, जीव-मार्गणाओ में पांच ज्ञानों की जो घटना वर्णित है, तथा पूर्वगत में ज्ञानों का स्वतंत्र निरूपण करने वाला जो ज्ञानप्रवाद पूर्व है। इन सबसे यह फलित होता है कि पंचज्ञान की यह चर्चा भगवान् महावीर ने नयी नहीं शुरू की है, किन्तु पूर्व परंपरा से जो चली आती थी, उसको ही स्वीकार कर उसे आगे बढ़ाया है।

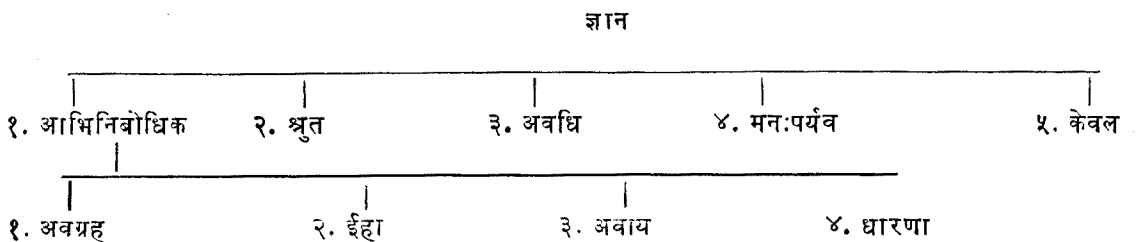
इस ज्ञान चर्चा के विकासक्रम को आगम के आधार पर देखना हो, तो उनकी तीन भूमिकाएं हमें स्पष्ट दीखती हैं :—

१. प्रथम भूमिका तो वह है, जिसमें ज्ञानों को पांच भेदों में ही विभक्त किया गया है।

२. द्वितीय भूमिका में ज्ञानों को प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो भेदों में विभक्त करके पांच ज्ञानों से मति और श्रुत को परोक्षान्तर्गत और शेष अवधि, मनःपर्यव और केवल को प्रत्यक्ष में अन्तर्गत किया गया है। इस भूमिका में लोकानुसरण करके इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष को अर्थात् इन्द्रियज—मति को प्रत्यक्ष में स्थान दिया गया है। और जो ज्ञान, आत्मा के अतिरिक्त अन्य साधनों की भी अपेक्षा रखते हैं, उनका समावेश परोक्ष में किया गया है। यही कारण है कि इन्द्रियजन्य ज्ञान जिसे जैनेतर दार्शनिकों ने प्रत्यक्ष कहा है, प्रत्यक्षान्तर्गत नहीं माना गया है।

३. तृतीय भूमिका में इन्द्रियजन्य ज्ञानों को प्रत्यक्ष और परोक्ष उभय में स्थान दिया गया है। इस भूमिका में लोकानुसरण स्पष्ट है।

१. प्रथम भूमिका के अनुसार ज्ञान का वर्णन हमें भगवती सूत्र में (८८.२.३१७) मिलता है। उसके अनुसार ज्ञानों को निम्न सूचित नक्शे के अनुसार विभक्त किया गया है।



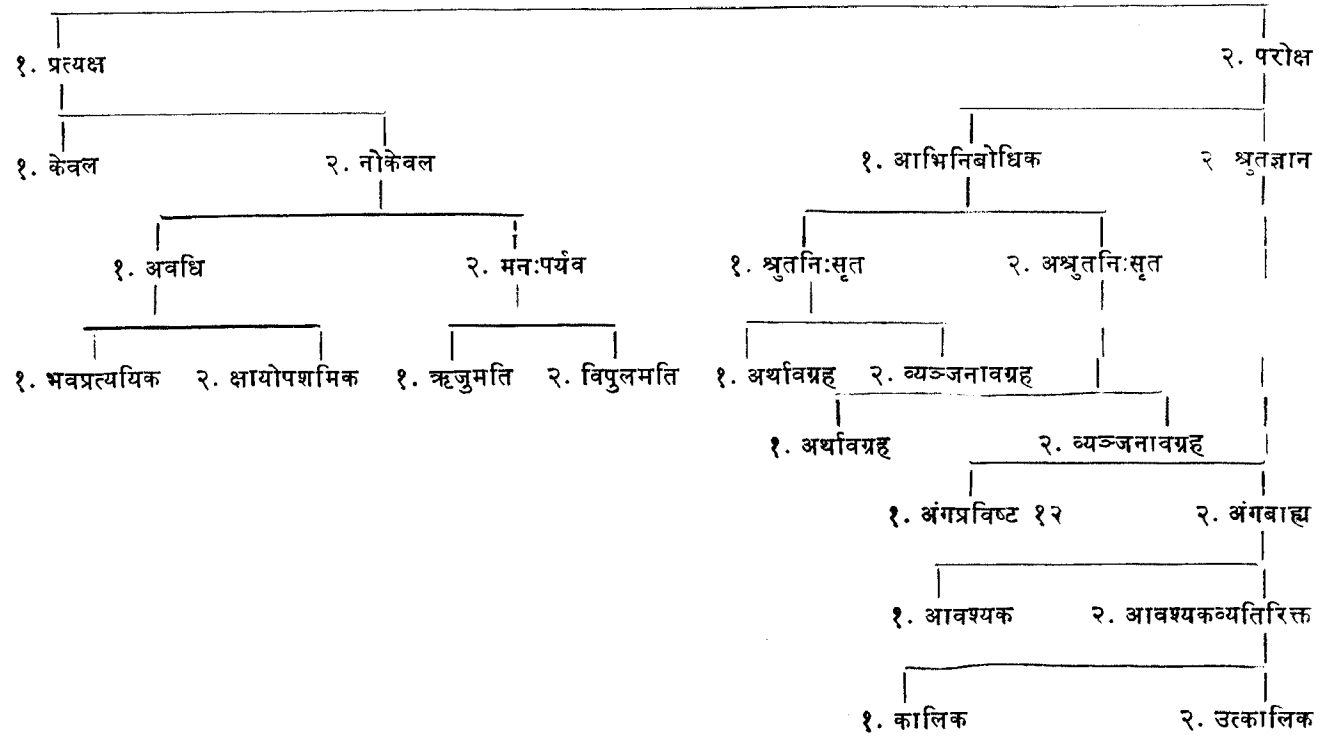
सूत्रकार ने आगे का वर्णन राजप्रश्नीय से पूर्ण कर लेने की सूचना दी है, और राजप्रश्नीय सूत्र (१६५) को देखने पर मालूम होता है, कि उसमें पूर्वोक्त नक्षत्रों में सूचित कथन के अलावा अवग्रह के दो भेदों का कथन करके शेष की पूर्ति नन्दीसूत्र से कर लेने की सूचना दी है।

सार यही है कि शेष वर्णन नन्दी के अनुसार होते हुये भी अन्तर यह है कि इस भूमिका में नन्दीसूत्र के प्रारम्भ में कथित प्रत्यक्ष और परोक्ष भेदों का जिक्र नहीं है। और दूसरी बात यह भी है कि नन्दी की तरह इसमें अभिनिबोध के श्रुतनिःसृत और अश्रुतनिःसृत ऐसे दो भेदों को भी स्थान नहीं है। इसी से कहा जा सकता है, कि यह वर्णन प्राचीन भूमिका का है।

२. स्थानांग-गत ज्ञान-चर्चा द्वितीय भूमिका की प्रतिनिधि है। उसमें ज्ञान को प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो भेदों में विभक्त करके उन्हीं दो में पंच ज्ञानों की योजना की गई है।

इस नक्षत्र से यह स्पष्ट है कि ज्ञान के मुख्य दो भेद किए गये हैं, पांच नहीं। पांच ज्ञानों को तो उन दो भेद प्रत्यक्ष और परोक्ष के प्रभेद रूप से गिना है। वह स्पष्ट ही प्राथमिक भूमिका का विकास है।

ज्ञान (सूत्र ७१)

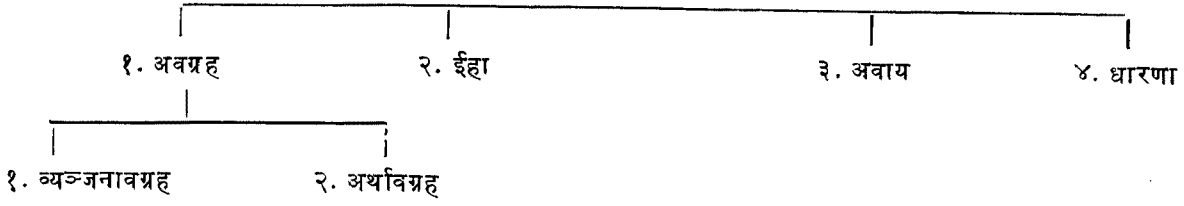


इस भूमिका के आधार पर उमास्वाति ने भी प्रमाणों को प्रत्यक्ष और परोक्ष में विभक्त करके उन्हीं दो में पंच ज्ञानों का समावेश किया है।

बाद में होने वाले जैनताकिकों ने प्रत्यक्ष के दो भेद बताए हैं—विकल और सकल। 'केवल का अर्थ होता है सर्व—सकल और नोकेवल का अर्थ होता है, असर्व—विकल। अतएव ताकिकों के उक्त वर्गीकरण का मूल्य स्थानांग जितना तो पुराना मानना ही चाहिए।

यहां पर एक बात और भी ध्यान देने के योग्य है। स्थानांग में श्रुतनिःसृत के भेदरूप से व्यञ्जनावग्रह और अर्थावग्रह ये दो बताये हैं। वस्तुतः वहां इस प्रकार कहना प्राप्त था—

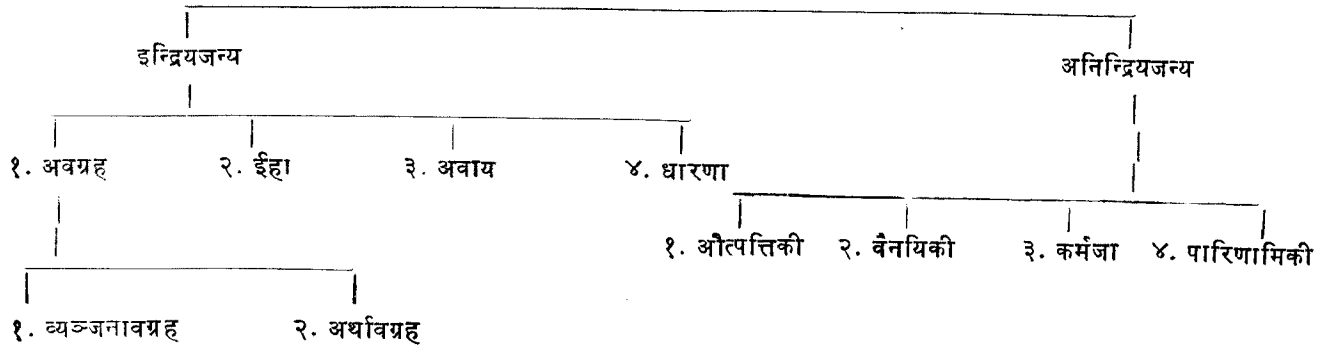
श्रुतनिःसृत



किन्तु स्थानांग में द्वितीय स्थानक का प्रकरण होने से दो-दो बातें गिनाना चाहिए, ऐसा समझकर अवग्रह, ईहा आदि चार भेदों को छोड़कर सीधे अवग्रह के दो भेद ही गिनाए गये हैं।

एक दूसरी बात की ओर भी ध्यान देना जरूरी है। अश्रुतनिःसृत के भेदरूप में भी व्यञ्जनावग्रह और अर्थावग्रह को गिना है, किन्तु वहां टीकाकार के मत से यह चाहिए—

अश्रुतनिःसृत



औत्पत्तिकी आदि चार बुद्धियां मानस होने से उनमें व्यञ्जनावग्रह संभव नहीं। अतएव मूलकार का कथन इन्द्रियजन्य अश्रुतनिःसृत की अपेक्षा से द्वितीय स्थानक के अनुकूल हुआ है, यह टीकाकार का स्पष्टीकरण है। किन्तु यहां प्रश्न है कि क्या अश्रुतनिःसृत में औत्पत्तिकी आदि के अतिरिक्त इन्द्रियज्ञानों का समावेश साधार है? और यह भी प्रश्न है कि आभिनिबोधिक के श्रुतनिःसृत और अश्रुतनिःसृत ये भेद क्या प्राचीन हैं? यानी क्या ऐसा भेद प्रथम भूमिका के समय होता था?

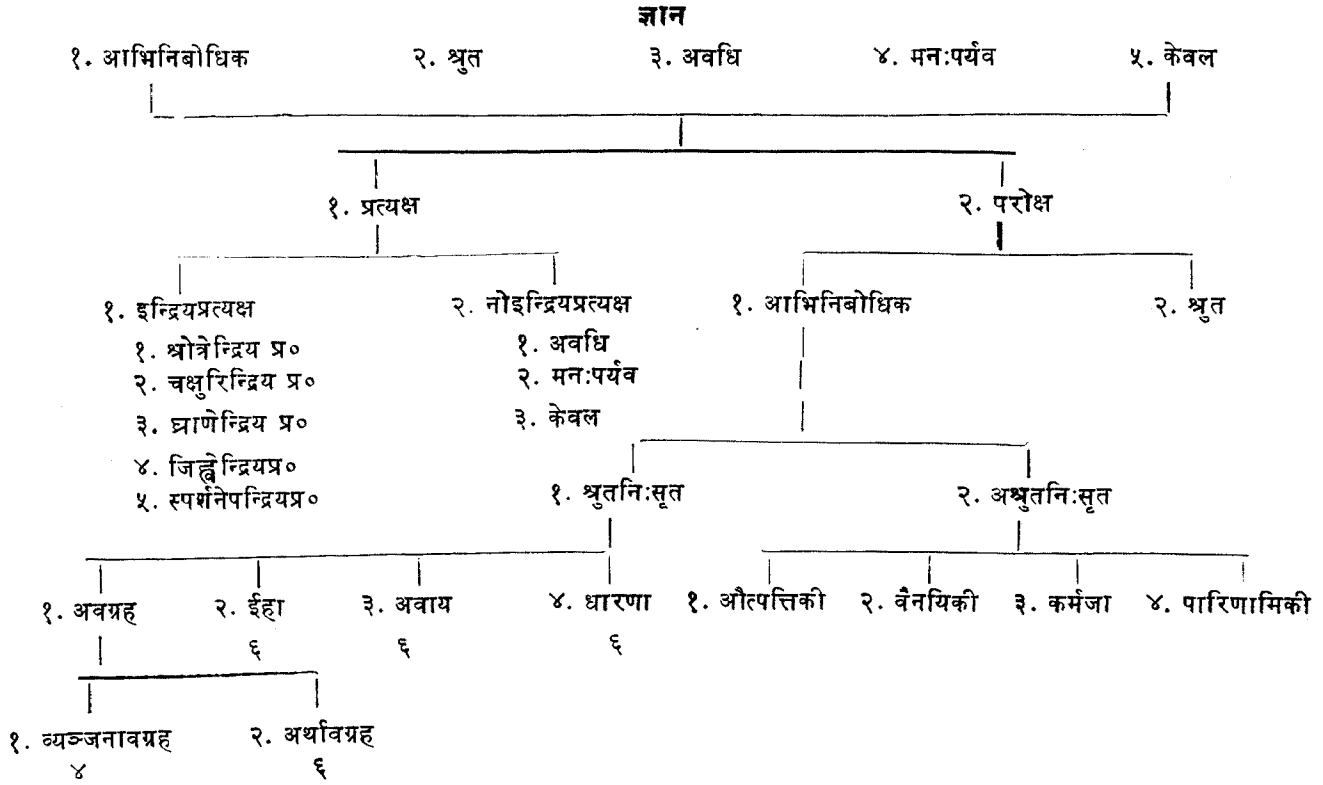
नन्दी सूत्र जो कि मात्र ज्ञान की ही विस्तृत चर्चा करने के लिए बना है, उसमें श्रुतनिःसृत मति के ही अवग्रह आदि चार भेद हैं। और अश्रुतनिःसृत के भेदरूप से चार बुद्धियों को गिना दिया गया है। उसमें इन्द्रियज अश्रुतनिःसृत को कोई स्थान नहीं है। अतएव टीकाकार का स्पष्टीकरण कि अश्रुतनिःसृत के वे दो भेद इन्द्रियज अश्रुतनिःसृत की अपेक्षा से समझना चाहिए, नन्दी-सूत्रानुकूल नहीं किन्तु कल्पित है। मतिज्ञान के श्रुतनिःसृत और अश्रुतनिःसृत ऐसे दो भेद भी प्राचीन नहीं। दिगम्बरीयवाङ्मय में मति के ऐसे दो भेद करने की प्रथा नहीं। आवश्यक निर्युक्ति के ज्ञानवर्णन में भी मति के उन दोनों भेदों ने स्थान नहीं पाया है।

आचार्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थसूत्र में भी उन दोनों भेदों का उल्लेख नहीं किया है। यद्यपि स्वयं नन्दीकार ने नन्दी में मति के श्रुतनिःसृत और अश्रुतनिःसृत ये दो भेद तो किये हैं, तथापि मतिज्ञान को पुरानी परम्परा के अनुसार अठाईस भेदवाला ही कहा है।^१ उससे भी यही सूचित होता है कि औत्पत्तिकी आदि बुद्धियों का मति में समाविष्ट करने के लिए ही उन्होंने मति के दो भेद तो किए पर प्राचीन परंपरा में मति में उनका स्थान न होने से^२ नन्दीकार ने उसे २८ भेदभिन्न ही कहा। अन्यथा उन चार बुद्धियों को मिलाने से तो वह ३२ भेदभिन्न ही हो जाता है।

१. "एवं अट्ठावीसइविहस्स आभिणिबोहियनाणस्स" इत्यादि नन्दी ३५।

२. स्थानांग में ये दो भेद मिलते हैं। किन्तु यह नन्दीप्रभावित हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

तृतीय भूमिका नन्दीसूत्रगत ज्ञानचर्चा में व्यक्त होती है। वह इस प्रकार है—



अंकित नक्शे को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि सर्वप्रथम इसमें ज्ञानों को पांच भेद में विभक्त कर संक्षेप में उन्हीं को प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो भेदों में विभक्त किया गया है। स्थानांग से विशेषता यह है कि इसमें इन्द्रियजन्य पांच मतिज्ञानों का स्थान प्रत्यक्ष और परोक्ष उभय में है क्योंकि जैनेतर सभी दर्शनों ने इन्द्रियजन्य ज्ञानों को परोक्ष नहीं, किन्तु प्रत्यक्ष माना है, उनको प्रत्यक्ष में स्थान देकर उस लौकिक मत का समन्वय करना भी नन्दीकार को अभिप्रेत था। आचार्य जिनभद्र ने इस समन्वय को लक्ष्य में रखकर ही स्पष्टीकरण किया है कि वस्तुतः इन्द्रियज प्रत्यक्ष को सांख्यव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहना चाहिए। अर्थात् लोकव्यवहार के अनुरोध से ही इन्द्रियज मति को प्रत्यक्ष कहा गया है। वस्तुतः वह परोक्ष ही है क्योंकि प्रत्यक्ष कोटि में परमार्थतः आत्म-मात्र सापेक्ष ऐसे अवधि, मनःपर्यव और केवल ये तीन ही हैं। अतः इस भूमिका में ज्ञानों का प्रत्यक्ष-परोक्षत्व व्यवहार इस प्रकार स्थिर हुआ—

१. अवधि, मनःपर्यव और केवल पारमार्थिक प्रत्यक्ष है।
२. श्रुत परोक्ष ही है।
३. इन्द्रियजन्य मतिज्ञान पारमार्थिक दृष्टि से परोक्ष है और व्यावहारिक दृष्टि से प्रत्यक्ष है।
४. मनोजन्य मतिज्ञान परोक्ष ही है।

आचार्य अकलंक ने तथा तदनुसारी अन्य जैनाचार्यों ने प्रत्यक्ष के सांख्यव्यवहारिक और पारमार्थिक ऐसे जो दो भेद किए हैं सो उनकी नयी सृष्टि नहीं है। किन्तु उसका मूल नन्दीसूत्र और उसके जिनभद्रकृत स्पष्टीकरण में है।

ज्ञान-चर्चा का प्रमाण-चर्चा से स्वातन्त्र्य

पंच ज्ञानचर्चा के क्रमिक विकास की उक्त तीनों आगमिक भूमिकाओं की एक खास विशेषता यह रही है कि इनमें ज्ञानचर्चा के साथ इतर दर्शनों में प्रसिद्ध प्रमाणचर्चा का कोई सम्बन्ध या समन्वय स्थापित नहीं किया गया है। इन ज्ञानों में ही सम्यक्त्व और मिथ्यात्व के भेद के द्वारा जैनागमिकों ने वही प्रयोजन सिद्ध किया है जो दूसरों ने प्रमाण और अप्रमाण के विभाग के द्वारा सिद्ध

१. “एगन्तेण परोक्खं लिंगियमोहाइयं च पच्चक्खं ।

इन्द्रियमणोभवं जं तं संवहारपच्चक्खं ।” विशेषा. १५ और इसकी स्वोपज्ञवृत्ति ।

किया है। अर्थात् आगमिकों ने प्रमाण या अप्रमाण ऐसे विशेषण बिना दिए ही प्रथम के तीनों में अज्ञान-विपर्यय-मिथ्यात्व की तथा सम्यक्त्व की संभावना मानी है और अन्तिम दो में एकान्त सम्यक्त्व ही बतलाया है। इस प्रकार ज्ञानों को प्रमाण या अप्रमाण न कह करके भी उन विशेषणों का प्रयोजन तो दूसरी तरह से निष्पन्न कर ही दिया है।

जैन आगमिक आचार्य प्रमाणाप्रमाणचर्चा, जो दूसरे दार्शनिकों से चलती थी, उससे सर्वथा अनभिज्ञ तो थे ही नहीं किन्तु वे उस चर्चा को अपनी मौलिक और स्वतन्त्र ऐसी ज्ञानचर्चा से पृथक् ही रखते थे। जब आगमों में ज्ञान का वर्णन आता है, तब प्रमाणों या अप्रमाणों से उन ज्ञानों का क्या सम्बन्ध है उसे बताने का प्रयत्न नहीं किया है। और जब प्रमाणों की चर्चा आती है तब किसी प्रमाण को ज्ञान कहते हुए भी आगम प्रसिद्ध पांच ज्ञानों का समावेश और समन्वय उसमें किस प्रकार है, यह भी नहीं बताया है। इससे फलित यही होता है कि आगमिकों ने जैनशास्त्र प्रसिद्ध ज्ञानचर्चा और दर्शनान्तर प्रसिद्ध प्रमाणचर्चा का समन्वय करने का प्रयत्न नहीं किया—दोनों चर्चा का पार्थक्य ही रखा। आगे के वक्तव्य से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

जैन आगमों में प्रमाण-चर्चा :

प्रमाण के भेद—जैन आगमों में प्रमाण-चर्चा ज्ञानचर्चा से स्वतन्त्र रूप से आती है। प्रायः यह देखा गया है कि आगमों में प्रमाणचर्चा के प्रसंग में नैयायिकादिसम्मत चार प्रमाणों का उल्लेख आता है। कहीं-कहीं तीन प्रमाणों का उल्लेख है।

भगवती सूत्र (५.३.१६१, १६२) में गौतम गणधर और भगवान् महावीर के संवाद में गौतम ने भगवान् से पूछा कि जैसे केवलज्ञानी अंतकर या अंतिम शरीर को जानते हैं, वैसे ही क्या छद्मस्थ भी जानते हैं ? इसके उत्तर में भगवान् ने कहा कि—

“गोयमा णो तिणट्ठे समट्ठे । सोच्चा जाणति पासति पमाणतो वा । से किं तं सोच्चा ? केवलिसस वा केवलिसावयस्स वा केवलिसावियाए वा केवलिउवासगस्स वा केवलिउवासियाए वा” से तं सोच्चा । से किं तं पमाणं ? पमाणे चउव्विहे पणत्ते, तं जहा—पच्चक्खे अणुमाणे ओवम्मे आगमे जहा अणुओग्हारे तहा णेयव्वं पमाणं” भगवती सूत्र ५.३.१६१, १६२ ।

परिशिष्ट : ८
प्रयुक्त ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ का नाम	लेखक, सम्पादक, अनुवादक, वाचना प्रमुख, प्रवाचकादि	संस्करण	प्रकाशक
१. अंगसुत्ताणि भाग-१ (आयारो, आयारचूला)	वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी सम्पादक युवाचार्य महाप्रज्ञ	द्वितीय संस्करण वि.सं. २०४९	जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनू (राज०)
२. अंगसुत्ताणि भाग-२ (भगवई)	देखें— अंगसुत्ताणि भाग-१		
३. अंगसुत्ताणि भाग-३ (उवासग-दसाओ, अणुत्तरोववाइयदसाओ)	देखें— अंगसुत्ताणि भाग-१		
४. अणुओगदाराइं	वा. प्र. गणाधिपति तुलसी सं./विवेचक आचार्य महाप्रज्ञ मलधारी हेमचन्द्र	१९९६ १९३९	जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनू (राज०) श्री केशरबाई ज्ञान मंदिर, पाटण
५. अनुयोगद्वार मलधारी हेमचन्द्रीया वृत्ति	आचार्य हेमचन्द्र		देखें— स्याद्वादमंजरी
६. अन्ययोगव्यवच्छेदिका	ले. आचार्य वसुवन्धु	सन् १९७०	बौद्ध भारती, वाराणसी
७. अभिधम्मकोश	डॉ. भागचन्द्र जैन	१९९३	आलोक प्रकाशन, नागपुर
८. अभिधम्मत्थसंगहो	आचार्य हेमचन्द्र	वि.सं. २०२०	चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी
९. अभिधानचिन्तामणि (नाममाला)	सं. नेमिचन्द्र शास्त्री		
१०. अष्टसहस्री			
११. आगम युग का जैन दर्शन	दलसुखभाई मालवणिया	१९६६	सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा
१२. आचारांगभाष्यम्	वा. प्र. गणाधिपति तुलसी भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ, अनुवादक—मुनि दुलहराज	१९९४	जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनू (राज०)
१३. आचारांग वृत्ति	श्री शीलाकाचार्य		
१४. आचारांगसूत्र चूर्ण	श्री जिनदास गणि	सन् १९४१	श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वे. संस्था, रतलाम (मालवा)
१५. आप्टे	बी. एस. आप्टे	१९५७	प्रसाद प्रकाशन पूना
१६. आप्तमीमांसा	सं. प्रो. उदयचन्द्र	१९२९	श्री गणेशवर्णी दिगम्बर जैन संस्थान
१७. आयारो तह आयारचूला	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. मुनि नथमल	सन् १९६७	जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा आगम-साहित्य प्रकाशन समिति कलकत्ता
१८. आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान चरक शारीरिक	वैद्य रणजीतराय देसाई	१९५६	श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, प्राइवेट लिमिटेड गुप्तालेन, कलकत्ता-६
१९. आवश्यक निर्युक्ति (हरिभद्र वृत्ति सहित)	भद्रबाहु स्वामी	वि. सं. २०३८	श्री भैरंलाल कन्हैयालाल कोठारी, धार्मिक ट्रस्ट, बम्बई

ग्रन्थ का नाम	लेखक, सम्पादक, अनुवादक, वाचना प्रमुख, प्रवाचकादि	संस्करण	प्रकाशक
२०. आर्हत् आगमों नुं अवलोकन	एच. एल. कापड़िया	१९९५	हीरालाल रसिकदास कापड़िया, सूरत
२१. उत्तराध्ययनाणि (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पण)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. वि. युवाचार्य महाप्रज्ञ	द्वितीय संस्करण १९९२	जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनू (राज०)
२२. उत्तराध्ययन चूर्ण	श्री जिनदास गणि	सन् १९३३	श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वे. संस्था, रतलाम (मालवा)
२३. उत्तराध्ययन निर्युक्ति (श्री उत्तराध्ययनानि)	भद्रबाहु स्वामी	१९१७	सेठ देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तको-द्वार फण्ड, मुम्बई
२४. उवंगसुत्ताणि खण्ड-१ (रायपसेणियं, जीवाजीवाभिगमे)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८७	जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनू (राज०)
२५. उवंगसुत्ताणि खण्ड-२ (पणवणा)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८९	जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनू (राज०)
२६. कंदली टीका सहित प्रशस्तपाद भाष्य	पं. दुर्गाधर भा शर्मा	१९७७	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वारा.
२७. कर्मग्रन्थ (कर्म विपाक)	श्री देवेन्द्रसूरि विवे. पं. सुखलालजी संघवी		श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन धार्मिक शिक्षा समिति, बड़ोत, (मेरठ)
२८. कषाय पाहुड	सं. पं. फूलचन्द्र, पं. महेन्द्रकुमार, पं. कैलाशचन्द्र	सन् १९४४	भा. दि. जैन संघ ग्रन्थमाला, चौरासी, मथुरा
२९. गोम्मटसार जीवकांड	श्रीमन्नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती सं. डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये श्रीमज्जयाचार्य	१९७९	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
३०. चौबीसी			
३१. चौरासी आगम अधिकार			अमुद्रित
३२. जंबूचरियं			
३३. जैन आगम साहित्य मां गुजरात	डॉ. भोगीलाल ज. सांडेसरा	१९५२	गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद
३४. जैन दर्शन का आदिकाल	दलमुख मालवणिया		लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद
३५. जैन धर्म का मौलिक इतिहास			
३६. जैन धर्म के प्रभावक आचार्य	साधवी संघमित्रा	द्वि. सं. १९८६	जैन विश्व भारती, लाडनू
३७. जैन साहित्य का इतिहास पूर्व पीठिका	पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री	वी.नि.स. २४८९	श्री गणेशप्रसाद वर्णी, जैन ग्रन्थ-माला, वाराणसी
३८. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास	बेचरदास दोशी	१९६६	पार्श्वनाथ विद्याश्रम संस्थान
३९. ज्ञान बिन्दु प्रकरण परिचय, प्रस्तावना	यशोविजयजी	सन् १९५१	सिंधी जैन ग्रन्थमाला
४०. ठाणं (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पण)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. वि. मुनि नथमल	वि.सं. २०३३	जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनू (राज०)
४१. तत्त्व संग्रह	शान्तरक्षित	१९८२	बौद्ध भारती, वाराणसी
४२. तत्त्व चिन्तामणि	गंगेश उपाध्याय	१९७३	केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम्, तिरुपति
४३. तत्त्वार्थ भाष्यानुसारिणी	श्री सिद्धसेन गणि	१९३०	सेठ देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तको-द्वार फण्ड, बम्बई

ग्रन्थ का नाम	लेखक, सम्पादक, अनुवादक, वाचना प्रमुख, प्रवाचकादि	संस्करण	प्रकाशक
४४. तत्त्वार्थ वार्तिक	ले. भट्ट अकलंक देव सं. पं. महेन्द्रकुमार जैन	वि.सं. २००९	भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस
४५. तत्त्वार्थ सूत्र	ले. उमास्वाति	वि.सं. १९८९	सेठ मणिलाल रेवाशंकर जगजीवन जौहरी, बम्बई-२
४६. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्	टीकाकार सिद्धसेनगणि		सेठ देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, बम्बई
४७. तन्दुलवेयालिय पड़ण्यं			
४८. तर्क भाषा	श्री केशवमिश्रः	१९९०	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
४९. दर्शन और चिन्तन	पं. सुखलालजीः	१९५७	पं. सुखलालजी सन्मान समिति, अहमदाबाद-१
५०. दसवेआलियं (मूल पाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पण)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. वि. मुनि नथमल	१९७४	जैन विश्व भारती, लाडनू (राज०)
५१. नंदी चूर्ण (नंदिसुत्तं)	श्री जिनदास गणि सं. मुनिश्री पुण्यविजयजी	सन् १९६६	प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, वाराणसी
५२. नयचक्र (लिखित प्रति)			
५३. नवसुत्ताणि, नंदी, पञ्जोसवणाकण्पो, ववहारो	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	१९८७	जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनू (राज०)
५४. निशीथ सूत्रम् (भाष्य व चूर्ण सहित)	सं. उपाध्याय कवि श्री अमर मुनि मुनिश्री कन्हैयालाल 'कमल'	१९८२	सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी, आगरा
५३. न्याय बिन्दु			
५५. न्याय मंजरी	जयन्त भट्ट	१९९२	एल० डी० इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी, अहमदाबाद
५४. न्याय विनिश्चय			
५५. न्याय सूत्र	गौतम	१९७६	बौद्ध भारती, वाराणसी
५६. न्यायावतार	आचार्य सिद्धसेन	१९७६	श्री परम श्रुत प्रभावक मंडल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास
५७. नियमसार	ले. आचार्य कुन्दकुन्द सं. बलभद्र जैन	१९८७	श्री कुन्दकुन्द भारती १८-बी, इन्सटिट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली
५८. निश्चय द्वात्रिंशिका			
५९. पड़ण्यसुत्ताई प्रथमो भागः	सं. पुण्यविजयो मुनिः		श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई
६०. पट्टावली प्रबन्ध संग्रह			
६१. पट्टावली समुच्चय श्रीगुरु पट्टावली कल्पसूत्र की स्थविरावली			
६२. परिशिष्ट पर्व	श्री हेमचन्द्राचार्यकृत परिशिष्ट- पर्वणो गद्यानुबन्धः गद्या० पन्यास श्री शुभङ्करविजय गणि०	वि. सं. २०१२	शा. अमृतलाल शीवलाल लीचवाला

ग्रन्थ का नाम	लेखक, सम्पादक, अनुवादक, वाचना प्रमुख, प्रवाचकादि	संस्करण	प्रकाशक
६३. पातञ्जलयोगदर्शनम्	ले. महर्षि पतञ्जलि	१९६८	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
६४. प्रज्ञापना वृत्ति-मलयगिरीया	ले. श्रीमन्मलयगिर्याचार्य	१९१८	आगमोदय समिति, मेहसाणा
६५. प्रमाणमीमांसा	ले. हेमचन्द्राचार्य		सरस्वती पुस्तक भण्डार, अहमदाबाद
६६. प्रमेयकमलमार्तण्ड	प्रभाचन्द्राचार्य	१९४१	निर्णयसागर मुद्रणालय, मुम्बई
६७. प्रवचनसार	कुन्दकुन्दाचार्य	१९४८	श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़, सौराष्ट्र
६८. प्रश्नोत्तर तत्त्व बोध	ले. जयाचार्य, प्रवाचक— आचार्य तुलसी, सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	१९८८	जैन विश्व भारती, लाडनू (राज.)
६९. प्राचीन अर्धमागधी की खोज में	ले. के. आर. चन्द्र	१९९१	प्राकृत जैन विद्या विकास फण्ड, अहमदाबाद
७०. बृहत्कल्प भाष्य (स्वोपज्ञ निर्युक्ति, संघदासगणि संकलित भाष्य आदि सहित)	ले. स्थविर आर्यभद्रबाहु सं. चतुरविजय पुण्यविजय	१९३३	श्री जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर
७१. भगवई वियाहपण्णत्ति (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद तथा भाष्य)	वा. प्र. गणाधिपति तुलसी सं. भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ	१९९६	जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनू (राज.)
७२. भगवती वृत्ति, भाग १, २, ३	अभयदेव सूरि	वि. सं. १९७४- १९७७	आगमोदय समिति
७३. मलयगिरीयावृत्ति (नंदी)	श्रीमन्मलयगिर्याचार्य	सन् १९१७	आगमोदय समिति, सुरत
७४. मीमांसा दर्शनम्			
७५. मूलाचार	श्रीवट्टकेराचार्य	वि. सं. १९७७	माणिक चन्द्र—दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति
७६. रत्नसंचय प्रकरण			
७७. विविध तीर्थकल्प			
७८. विशेषणवती			
७९. विशेषावश्यक भाष्य	ले. जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण सं. दलसुखभाई मालवणिया		लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद
८०. वीर शासन के प्रभावक आचार्य			
८१. व्यवहार भाष्य	वा. प्र. गणाधिपति तुलसी प्रधान सं. आचार्य महाप्रज्ञ	१९९६	जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनू (राज.)
८२. व्यवहार भाष्य वृत्ति (भाष्य एवं मलयगिरि विरचित वृत्ति सहित)	सं. मुनि माणक	१९२८	वकील केशवलाल प्रेमचन्द्र
८३. शास्त्रवार्ता समुच्चय			
८४. श्रमण वंश वृक्ष			
८५. श्री भिक्षु आगम विषय कोष	वा. प्र. गणाधिपति तुलसी प्र. सं. आचार्य महाप्रज्ञ	१९९६	जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनू (राज.)
८६. श्रीमत्सूत्रकृताङ्गम्	सं. चन्द्रसागर		पार्श्वनाथ जैन ग्रन्थमाला
८७. षट्खण्डागम (धवला टीका सहित)	ले. पुष्पदन्त भूतबलि, वीरसेनाचार्य कृत धवला टीका सहित, सं. हीरालाल जैन	१९४२	सेठ शीतलराय लक्ष्मीचन्द्र अमरावती

ग्रन्थ का नाम	लेखक, सम्पादक, अनुवादक, वाचना प्रमुख, प्रवाचकादि	संस्करण	प्रकाशक
८८. सन्मति प्रकरण	ले. सिद्धसेन दिवाकर	२०१९	ज्ञानोदय ट्रस्ट, अनेकान्त विहार, श्रेयस् कालोनी के पास, अहमदाबाद
८९. सभाष्य तत्त्वार्थविधिगम सूत्र	ले. उमास्वाति	१९३२	सेठ मणिलाल, रेवाशंकर जगजीवन ऋवेरी, मुम्बई २
९०. समयसार	आ. कुंदकुंद		श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
९१. समवाओ (मूल पाठ, संस्कृत छाया, वा. प्र. आचार्य तुलसी हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पण)	सं. विवेचक युवाचार्य महाप्रज्ञ आचार्य पूज्यपाद	१९८४	जैन विश्व भारती, लाडनू (राज.)
९२. सर्वार्थसिद्धि	सं. पं. फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री ईश्वर कृष्ण	१९९१	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
९३. सांख्य कारिका		१९८८	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस
९४. सिद्धिविनिश्चय			
९५. सूयगडो भाग १, २ (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पण)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. विवेचक युवाचार्य महाप्रज्ञ	भाग-१ १९८४ भाग-२ १९८६	जैन विश्व भारती, लाडनू (राज.)
९६. सेन प्रश्नोत्तर			
९७. स्थानांग वृत्ति	ले. अभयदेव सूरि	१९३७	सेठ माणिकलाल चुन्नीलाल, अहमदाबाद
९८. स्याद्वादमंजरी	अनु. सं. डा. जगदीशचन्द्र जैन	१९९३	श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम, अगास
९९. स्वर्णभूमि में कालकाचार्य			
१००. हरिवंश पुराण	जिनसेनाचार्य सं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य	सन् १९६२	भारतीय ज्ञानपीठ काशी
१०१. हारिभद्रियावृत्ति (नंदी)	हरिभद्रसूरि सं. मुनिश्री पुण्यविजयजी	१९६६	प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, वाराणसी
१०२. Studies in Jaina Philosophy	डॉ. नथमल टाटिया		पी. बी. रिसर्च इन्स्टीट्यूट

